भगवतीचरण वर्मा : जीवन और साहित्य

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्ति हेतु शोध-प्रबंध)
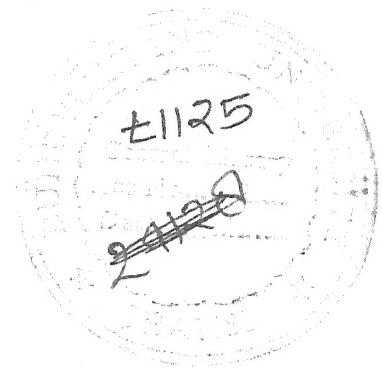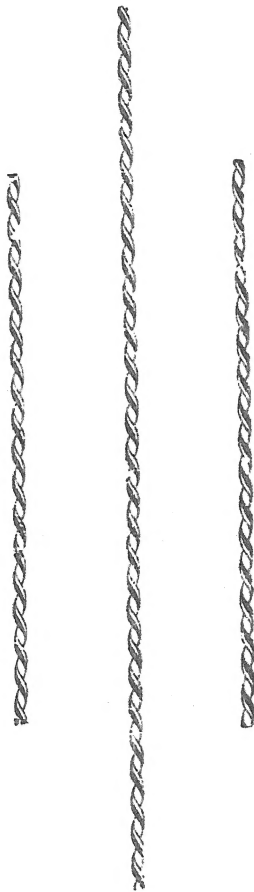
निदेशक

डॉ0 कृष्ण जी

डी० लिट्

प्राचार्य

इंस्टीट्यूट ऑफ ओरिएण्टल फिलॉसफी

वृन्दाबन (मथुरा)

अनसंधित्सु

कु0 सुरेखा पाठक

एम०ए०(हिन्दी, अर्थशास्त्र),बी०एड०

प्रमाण- पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि "भगवती चरण वर्मा : जीवन और साहित्य" विषय पर ॥जो बुन्देल खण्ड वि० वि० झाँसी- द्वारा पी-एच-डी- उपाधि के लिये पत्र संख्या : बु० वि०/एमडे/शोध/ 90/9464-65 दिनांक 16- 8- 1990 के द्वारा स्वीकृत हुआ था ॥ प्रस्तुत शोध प्रबंध अनुसंधित्सु कु० सुरेखा पाठक का मौलिक प्रयास है। मेरे निर्देशन के अनुकूल विषय का प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण व यथा स्थल सांकेतिक संबोधन आदि के संदर्भ में अपेक्षित संपूर्ण शोध प्रक्रिया बड़ी तत्परता लगन एवं परिश्रम से पूरी की गई है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में इनके द्वारा शोध परक सामग्री एवं अनेक तथ्यों का उद्घाटन किया गया है वह अभी तक अस्पृश्य रहे हैं। अनुसंधित्सु ने 200 दिन से अधिक की उपस्थिति दे कर मेरे निर्देशन में अपना शोधकार्य पूर्ण किया है। मैं इनके शोध कार्य से पूर्ण रूपेण संतुष्ट हूँ।

॥ डॉ० कृष्ण जी ॥
शोध निदेशक / पर्यवेक्षक
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

प्रमाण- पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि "भगवती चरण वर्मा : जीवन और साहित्य" विषय पर (जो बुन्देल खण्ड वि० वि० झाँसी- द्वारा पी-एच-डी- उपाधि के लिये पत्र संख्या : बु० वि०/एमडे/शोध/ 90/9464-65 दिनांक 16- 8- 1990 के द्वारा स्वीकृत हुआ था) प्रस्तुत शोध प्रबंध अनुसंधित्सु कु० सुरेखा पाठक का मौलिक प्रयास है। मेरे निर्देशन के अनुकूल विषय का प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण व यथा स्थल सांकेतिक संबोधन आदि के संदर्भ में अपेक्षित संपूर्ण शोध प्रक्रिया बड़ी तत्परता लगन एवं परिश्रम से पूरी की गई है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में इनके द्वारा शोध परक सामग्री एवं अनेक तथ्यों का उद्घाटन किया गया है वह अभी तक अस्पृश्य रहे हैं। अनुसंधित्सु ने 200 दिन से अधिक की उपस्थिति दे कर मेरे निर्देशन में अपना शोधकार्य पूर्ण किया है। मैं इनके शोध कार्य से पूर्ण रूपेण संतुष्ट हूँ।

(डॉ० कृष्ण जी)
शोध निदेशक / पर्यवेक्षक
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

:- दो शब्द :-

भगवती चरण वर्मा का स्थान हिंदी साहित्य में अप्रतिम है। वर्मा जी बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। इनकी लेखनी से काव्य कहानी, उपन्यास, समीक्षात्मक, निबंध, रेडियो रूपक एकांकी नाटक, संस्मरण आदि अनुस्यूत हुए हैं फिर भी वे कथाकार के रूप में अधिक विख्यात हैं।

मैंने वर्मा जी का उपन्यास "चित्रलेखा" पढ़ा तो बहुत ही अच्छा लगा जिज्ञासा हुई कि इनके समग्र साहित्य का अध्ययन किया जाय। अतः मैंने इनकी साहित्य सामग्री एकत्र कर अध्ययन किया।

अध्ययनोपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँची कि क्यों न वर्मा जी के जीवन और साहित्य को लेकर शोधकार्य किया जावे ? इस संबंध में मैंने डॉ0 कृष्ण जी , डी0लिट जिन्होंने मुझे एम0 ए0 ।हिंदी। मे पढ़ाया था से संपर्क किया और उनसे अनुरोध किया कि मुझे अपने निर्देशन में इस विषय ।भगवती चरण वर्मा जीवन और साहित्य। पर शोध प्रबंध करायें। कुछ प्रश्न वर्मा जी पर करने के उपरांत पूर्ण रूपेण संतुष्ट होते हुए उन्होंने मार्ग निर्देशन हेतु अपनी अनुमति प्रदान कर दी।

वैसे वर्मा जी का बहुआयामी साहित्य है जिसकी सीमा विस्तृत है लेकिन अनावश्यक विस्तार भय से बचने के लिए मैंने अपनी दृष्टि उनके काव्य, उपन्यासों एवं कहानियों पर अधिक केन्द्रित की है फिर भी संक्षिप्त रूप से इनके साहित्य के सभी पहलुओं पर विहंगम दृष्टि अवश्य डाली है जिससे इनका समग्र साहित्य प्रकाश में आ सके तथा हिंदी शोध जगत् में इन पर शोध कार्य करने वालों को दिशा प्राप्त हो सके।

इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने में मेरे निर्देशक डॉ0 कृष्ण जी डी0 लिट संप्रति इंस्टीट्यूट ऑफ ओरियण्टल फिलोस्फी वृन्दावन ।मथुरा। उ0 प्र0 में प्राचार्य हैं का मार्ग निर्देशन मिला है उसके लिए मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ। प्रस्तुत शोध प्रबंध उनके कुशल निर्देशन, कृपा, सहयोग एवं आशीर्वाद का प्रतिफल है।

समय - समय पर मेरे आदरणीय पिता जी श्री बाँके बिहारी पाठक, सेवा निवृत प्रबंधक इलाहाबाद बैंक से इस कार्य को करने में प्रेरणा, सहयोग एवं आशीर्वाद

प्राप्त हुआ है उस हेतु मैं उनकी चिर ऋणी हूँ। पिता जी के समान प्रेरणा, सहयोग एवं आशीर्वाद मुझे अपनी पूजनीय माता जी एवं बड़े भाई साहब श्री बी0 बी0 पाठक अधिकारी सी0 जी0 बी0 से भी प्राप्त हुआ जिनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ। मेरे दो छोटे भाई (चिरंजीव किशोर कुमार पाठक एवं हेमन्त कुमार पाठक) भी अपना सहयोग देने में पीछे नहीं रहे, उनकी शुभ कामनाओं से मुझे बल मिला।

हिंदी विद्वानों (डॉ0 रणजीत बाँदा, डॉ0 राधा बल्लभ शर्मा ग्वालियर, डॉ0 ओ0पी0 खरे उरई,) एवं पुस्तकालयों से जो सहायता मिली है, उस संबंध में मैं अपनी उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

टंकण, वर्तनी एवं व्याकरण संबंधित अशुद्धियों से बचने का पूर्ण प्रयास किया गया है, यदि फिर भी कोई चूक रह गई हो तो उस हेतु मैं क्षमा प्रार्थिनी हूँ।

(कु0 सुरेखा पाठक)

:- भगवती चरण वर्मा : जीवन और साहित्य :-

:- पुस्तकानुक्रमणिका :-

युग-धर्म और लेखक।

सन् 1900 के आस-पास का हिन्दुस्तान अंग्रेजों की गुलामी से बेहद जकड़ा हुआ था। यह काल भारतीय राजनीति का न केवल महत्त्वपूर्ण समय था बल्कि भावी परिवर्तनों का सूचक भी था। ऐसे ही समय में 1903 ई0 में वर्मा जी का जन्म हुआ। बीसवीं शताब्दी का प्रथम दशक भारत में नवीन सामाजिक, धार्मिक सांस्कृतिक और राजनैतिक चेतना से आक्रान्त था। धर्म के क्षेत्र में आर्य समाज का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा था। स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द समग्र भारत पर छा गये थे। सांस्कृतिक जीवन में पुराने रीतिरिवाजों के साथ बढ़ती हुई अभिनव अंग्रेजी शिक्षा के सम्पर्क से मध्यवर्गीय परिवारों का ढाँचा तेजी से बदल रहा था।

विश्व स्तर पर पूँजीवाद अपना विस्तारकर चुका था। उसका मुख्य उद्देश्य जारशाही और जमींदारी को नष्ट करना था। जमींदार ताल्लुकेदार अपनी अकर्मण्यता और विलासी प्रवृत्ति के कारण पतनोन्मुख थे, तथा गाँवों में पूँजीवाद का विकास तेजी से हो रहा था। वर्माजी के युग की इन सभी परिस्थितियों का अलग-अलग अध्ययन ही अपेक्षित होगा।

राजनैतिक स्थिति :- वर्मा जी ने प्राइमरी स्कूल में जाना शुरू ही किया था कि विश्व में आमूल परिवर्तन की लहर दौड़ गई। रूसी मजदूरों ने क्रांतिकारी संघर्ष किया जिससे समाजवादी क्रांतियों का श्री गणेश हुआ। भारत में भी करवट बदलती हुई चेतना को संतुष्ट करने के लिये ब्रिटिश सरकार ने 1919 में माटेग्यू चेम्स फोर्ड सुधार प्रस्तुत किये जिसमें यह आश्वासन था कि भारत को धीरे-धीरे स्वशासन प्रदान किया जायेगा। भारत का स्वाधीनता आन्दोलन कांग्रेस के नेतृत्व में तब तक आरम्भ हो चुका था।

ब्रिटिश सरकार की अद्भुत नीति यह थी कि यह एक ओर सुधारों को लागू करती और दूसरी ओर दमनकारी कानूनों को भी प्रश्रय देती थी। प्रथम विश्व युद्ध के समय भारत ने धन और जन से अंग्रेज सरकार की सहायता की थी किन्तु उस बलिदान के पुरस्कार स्वरूप रोलट बिल देश पर थोप दिया गया। यह बिल क्रांतिकारियों की आड़ में व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का दमन करता था। गांधीजी ने यह घोषणा की थी कि यदि सरकार ने इस बिल को वापस नहीं लिया

तो सत्याग्रह का देश व्यापी युद्ध छेड़ देंगे। और सत्याग्रह को देश में चारों तरफ मान्यता प्राप्त हुई। इस समय हिन्दुओं और मुसलमानों ने अद्भुत एकता का परिचय दिया। इस एकता पर स्वयं सरकार चकित थी। ऐसे ही राजनीतिक वातावरण में भगवती चरण वर्मा ने थियोसाफिकल स्कूल से आठवी कक्षा उत्तीर्ण कर क्राइस्ट चर्च कालेज कानपुर में प्रवेश लिया। राष्ट्रीय चेतना का प्रसार पूरे भारत में आंधी की गति से ही हो रहा था जिससे वर्मा जी प्रभावित हुये बिना न रह सके। इस छोटी सी उम्र में ही वर्मा जी ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर देश भक्ति त्याग और बलिदान की भावना से परिपूर्ण कविता में लिखना आरम्भ किया, जिनका प्रकाशन राष्ट्रीय चेतना के प्रतिनिधि पत्र "प्रभात" में हुआ।

इस समय चारों तरफ अंग्रेजी सत्ता के प्रति दबा हुआ आक्रोश फूट पड़ा था और हड़तालों जुलूसों की परिणति आरम्भ हो गई। पंजाब में हिंसक कार्यवाही हुई जिसे शांत करने के लिये गांधी जी पंजाबपहुँचें किन्तु सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर बंबई भेज दिया। गांधी जी की गिरफ्तारी की प्रतिक्रिया के रूप में अहमदाबाद, वीरमगाँव, कलकत्ता आदि में उत्पात हुये पंजाब में उन्हीं उत्पातों का बदला लेने के लिये 18 अप्रैल को जलियावाला बाग हत्याकाण्ड हुआ। जनरल डायर ने अत्यन्त निर्लज्जता से अपने कार्य को उचित बतलाया इन हिंसापूर्ण वारदातों से गांधी जी के हृदय पर बड़ी ठेस पहुँची और अपने कार्य को हिमालय की तरह महान भूल स्वीकार करते हुये उन्होंने सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

अब भारत की आजादी के विषय में अलग-अलग तरीके से सोचने लगे थे। भारतीय नेता एवं बौद्धिक वर्ग क्षुब्ध हो उठा। देश एक अनजाने निराशा के कुहासे से आछन्न हो गया। उन्हीं दिनों वर्मा जी ने अपना कार्य निर्धारित किया- साहित्य सृजन। भारतीय राजनीति का यह संक्रमण काल था। क्या बच्चे, क्या जवान, क्या वृद्ध सभी का एक सपना था, एक कामना थी, स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये तन-मन से जुट जाना। 1930 में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने पूर्ण स्वाधीनता का उद्देश्य सामने रखते हुये 26 जनवरी को स्वाधीनता दिवस मनाने की घोषणा की। जिस उत्साह से यह स्वाधीनता दिवस मनाया गया उससे यह तय हो गया कि देश अब किसी समझौते के लिये तैयार नहीं।

गांधी जी ने अहिंसा को अपनी नीति घोषित करते हुये सत्याग्रह की पुनः तैयारियां शुरू कर दी। 6 अप्रैल 1930 को "दण्डी" में गांधी जी ने नमक

कानून तोड़ा। इस सत्याग्रह का फैलाव विदेशी वस्त्र बहिष्कार और शराब की दुकानों पर धरना देने के रूप में भी हुआ। करीब 90 हजार लोगो ने कारावास यात्रा की अंग्रेजी उद्योग धन्धे हिल गये। 1931 में गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने गांधी जी लंदन गये किन्तु परिषद से खाली हाथ लौटे। उनके भारत लौट आने से पहले ही प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिये गये। न मालूम कहां से नेता निकल आये जिन्होने अपने ढंग से कार्यक्रम बना लिये और कानून भंग का. कार्यक्रम जोरों पर चलता रहा।

इसी समय देश पर द्वितीय विश्व युद्ध के बादल मंडराने लगे। प्रथम विश्व युद्ध में भारतीय नेताओं ने ब्रिटिश शासन की पूरी मदद की थी किन्तु इस बार स्थिति विपरीत थी। कांग्रेस ने निश्चय किया था कि यदि सरकार युद्धोपरान्त स्वतंत्रता की घोषणा करे एवं युद्ध काल में शासन के कार्य भारत को दे दे तो भारत की ओर से हार्दिक सहायता की जायेगी। दूसरी ओर गांधी जी नैतिक आधार पर क रहे थे कि संकट के समय ब्रिटेन पर कोई शर्त नहीं लादनी चाहिये उन्होने अपनी पूर्ण सहानुभूति का परिचय दिया और कहा - "इंग्लैण्ड की बरबादी के साथ भारतीय स्वतंत्रता की रचना नहीं की जा सकती।"

एक अन्य मत नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का था। वे अपनी राजनीति को राजनीति के स्तर पर स्वीकार करते हुये शत्रु के शत्रु को अपना मित्र मानकर ब्रिटेन से लड़ने के पक्ष में थें इसी आधार पर जर्मनी और जापान की सहायता से उन्होंने "आजाद हिन्द फौज" का गठन किया था।

गांधी जी द्वारा चलाया गया सत्यग्रह आंदोलन वर्ष भर चलता रहा। अगस्त 1942 में कांग्रेस महासमिति ने प्रस्ताव पास किया कि अंग्रेज शीघ्रातिशीघ्र भारत छोड़ दें। वस्तुत: इस प्रस्ताव में खुलकर यह कहा कि फासिज्म की ही तरह ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अन्त संसार में हर जगह होना चाहिये। भारतीय स्वाधीनता इसका पहला कदम होगा। गांधी जी सहित कांग्रेसके सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गये, जिससे जनता भीषण रूप से उत्तेजित हो उठी और विद्रोह करने लगी। रेल की पटरियाँ उखाड़ी जाने लगी, बिजली फोन आदि तोड़े जाने लगें। सरकारी सम्पत्ति लूटी जानेलगी। सरकार ने भी इतना भीषण दमन किया कि 24 सितम्बर 1942 तक 6580 व्यक्ति मारे गये और हजारों घायल हुये। संसार के सभी देशों

यहाँ तक कि इग्लैण्ड से भी सरकार की बड़ी आलोचना की गई। अंगरखा के महल में बन्दी गांधी जी ने अनशन आरम्भ कर दिया। गांधी जी के अनशन की चिन्ता न केवल देश के सभी वर्गों व सम्प्रदायों ने की बल्कि सारी दुनियाँ ने की। अमेरिका से ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आवाज उठी और मई 1944 में गांधी जी को मुक्त कर दिया गया।

भारतीय राजनीति में कुछ शीतलता का समय आया ही था कि हिन्दू मुस्लिम एक दूसरे के खून के प्यासे होगये। तीन दिन तक भयानक रक्त-रंजित क्रांति में नर-संहार हुये। इस बीच माउन्टवेटन वायसराय बनकर भारत आ गये थे। साम्प्रदायिकता फैलती जा रही थी। ब्रिटिशसरकार भी अब भारत छोड़ने को तैयार थी। अतः मुस्लिम बाहुल्य प्रान्तों को पाकिस्तान, शेष को भारत के रूप में स्वाधीनता दे देना चाहती थी। यद्यपि देश का विभाजन संघर्ष और हिंसा से भी अधिक क्रूर था पर उस समय वही सरल मार्ग दिखलाई पड़ा। अंततः साम्प्रदायिक दंगों के रक्तिम वातावरण में 15 अगस्त 1947 को भारत व पाकिस्तान दो राष्ट्र बनकर स्वतन्त्र हो गये ऐसे ही राजनीतिक वातावरण में भगवती बाबू अपनी लेखनी द्वारा साहित्य जगत् पर स्थापित हो रहे थे। वर्माजी ने अपने " भूले बिसरे चित्र" तथा "टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यासों मेंउपर्युक्त राजनीतिक गतिविधियों का सजीव चित्र रूपायित किया है।

कानपुर में वर्माजी ने अपने पिताजी के जूनियर वकील गुन्नूलाल के निर्देशन में ऐसे ही वातावरण में वकालत की प्रैक्टिस प्रारम्भ की थी परन्तु आर्थिक संघर्ष, स्वास्थ्य शैथिल्य और सृजनात्मक प्रतिभा के जोश में वकालत पेशे में असफल ही रहें और कविता सम्मेलनों में रूचि लेते रहे। आजीविका की समस्या ने कवि वर्माजी को कल्पना के रंगीन गलीचे से बाहर लाकर यथार्थ की नंगी चारपाई पर खड़ा कर दिया अतएव यथार्थ जीवन की संघर्ष भरी भाव भूमियों की अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने साहित्यिक विधा "उपन्यास" को अपने सृजन का माध्यम बनाया। "युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहजशैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्यकाव्य उपन्यास है। अतः वर्माजी ने उपन्यास को अपने साहित्य सृजन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की परिवर्तित सामाजिक राजनैतिक पृष्ठभूमि तथा जमींदारी- उन्मूलन से प्राप्त स्वानुभूत तथ्यों के आधार पर वर्मा जी ने "भूले बिसरे चित्र" व "सामर्थ्य और सीमा" उपन्यास का प्रणयन किया। इन उपन्यासों में राजनैतिक गतिविधियाँ व मृत्यु एवं विनाश का ऐसा मधुमय संगीत है कि पाठक विस्मृत हो उठता है। इनके "सीधीसच्ची बातें" उपन्यास में त्रिपुरी कांग्रेस अधिवेश सन्1939 से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत विभाजन और गांधी जी की मृत्यु तक का जीवन रूपायित है। सन् 1970 एवं 73 में प्रकाशित "सबहिंनचावत राम गुसाईं" और "प्रश्नऔर मरीचिका" उपन्यास भी राजनीतिक दृष्टि से साहित्यिक जगत् में भव्य कृतियाँ हैं।

सामाजिक स्थिति :- उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाज, थियोसोफिकल समाज आदि के द्वारा अधिकतर सामाजिक स्तर पर कार्य हुए। गांधी जी की देश सेवा का क्षेत्र अधिक विस्तृत हुआ और उन्होंने बड़े पैमाने पर एक जनवादी आन्दोलन शुरू किया। राष्ट्र-व्यापी आन्दोलन के लिये आवश्यक था कि भारतीय समाज की बुनियादी विषमताओं को दूर कर दलित वर्ग को भी उसमें शामिल किया जाये। अछूत और नारी भारत के दलित वर्ग थे। दोनों को शताब्दियों से पददलित किया गया था।

1916 में कलकत्ता कांग्रेस में अछूत समस्या पर विचार किया गया और समस्त देश से यह अपील की गई कि अछूतों पर लगी सभी बंदिशें समाप्त कर दी जायें। जब गांधी जी तथा उनके साथ ही देश का प्रगतिशील तथा दूरदर्शी वर्ग विषमताओं की दीवारों को ढाने के लिये उत्सुक था, तब अंग्रेज सरकार अछूत वर्ग को मुसलमानों की तरह हमेशा के लिये भारत में एक सम्प्रदाय के रूप में स्थापित कर देना चाहती थी। डॉ0 अम्बेदकर और श्रीनिवासन ने गोलमेज परिषद् में अछूतों के स्वतंत्र प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव रखा। रैमजे मैकडानल्ड के क्यूनल एनार्ड ने इसे स्वीकार कर लिया।

कुछ राजनैतिक प्रश्नों पर समझौता हो जाने से ही गांधी जी संतुष्ट होने वाले नहीं थे। उनके हृदय में तो अस्पृश्यता को जला देने की आग धधक रही थी। मंदिरों में अछूतों को प्रवेश दिलाने के लिये समाज सेवियों को अथक प्रयास करना पड़ा जब गांधी जी दौरे पर निकले तो कई जगहों पर उन पर हमले किये गये। पूना में एक सभा में जाते समय उन पर बम फेंका गया। बिहार जैसे गांधी-भक्त सूबे में भी

उनकी मोटर पर लाठियों के प्रहार हुये, यह सब कुछ स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। बदलते हुये युग ने भी इस समस्या की गांठ को ढीला किया। उद्योगों का बढ़ना, व्यस्त शहरी सभ्यता, तथा यात्राकी मजबूरियों ने वर्ण व्यवस्था की कट्टरता को दूर किया। सम-सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप ही वर्माजी ने अपने साहित्य में वर्ण व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत किया है।

नारी की स्वतंत्र सत्ता की आवाज भी आधुनिक प्रगतिशील युग में ही उठी। राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती ने नारी की स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया। समाज सुधार व राष्ट्र उत्थान के लिये नारी शक्तिपर विश्वास सबसे पहले विवेकानंद ने किया।नारी शक्ति को देश के कार्यों में क्रियात्मक रूप से गांधीजी नेजोड़ा।शारीरिक शक्ति से कहीं अधिक महत्त्व उन्होने आत्म-बल को दिया। उन्होने कहा-नारी अबला नहीं है और यदि अहिंसा ही हमारे मूल्यांकन की कसौटी है तो निश्चय ही भविष्य का निर्माण स्त्रियों के हाथ में है।

नारी घर की चहरदीवारी से निकलकर राजनैतिक सामाजिक क्षेत्र में कार्य करे, यह प्रयास इसी शताब्दी में हुआ। 1917 कलकत्ता कांग्रेस में यह विचार किया गया कि शिक्षा व स्थानीय सरकार से सम्बन्ध रखने वाली निर्वाचित संस्थाओं में मत देने का अधिकार व उम्मीदवार के रूप में खड़ा होने का अधिकार आदि के लियें स्त्रियों के लिये वही शर्तें हों जो पुरूषों के लिये हैं बाद में 1931 में करांची में स्त्री पुरूषों के बुनियादी अधिकारों की घोषणा की गई। भारत की नारी सदियों से खीची हुई लक्ष्मण रेखा को पार करके सामाजिक क्षेत्र में आई, तथा महिलाओं ने अपनी योग्यता और धैर्य का प्रमाण भी दिया।

जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार और समाज के धार्मिक आडम्बरों की समाप्ति हुई, वैसे-वैसे भारतीय नारी में नई चेतना का संचार हुआ। किसी भी वर्ण की उन्नति के लिये स्वयं उसमें नई चेतना जाग्रत होना आवश्यक है। बदलती स्थितियों में नारी ने अपनी जीवन की सार्थकता को समझा और जीवन में एक उद्देश्य को प्राप्त किया। शिक्षा के साथ ही स्त्रियाँ नौकरी के क्षेत्र में प्रविष्ट हुई, और आर्थिक रूप से भी अपने पैरों पर खड़ी हुई। इसका ज्वलंत उदाहरण वर्माजी के "भूले बिसरे चित्र" में मिलता है। विद्या ऐसी ही नारी पात्र है जो बंधी हुई परम्पराओं को तोड़कर राजनीतिक क्षेत्र में कूद पड़ती है और अपने पैरों खड़ी होती है यह उस युग की नारियों के लिये प्रगतिशील कदम ही कहा जायेगा। नारी की मुक्ति भारतीय युग परिवर्तन

और प्रगति के रूप में याद रखी जाने वाली घटना है।

सांस्कृतिक व धार्मिक स्थिति :-

जर्मन विचारक श्री किंग का कथन है। कि "किसी युग की एक ही विचार धारा नहीं होती है और न ही एक आत्मा होती है। वरन् कई विचार धारायें होती हैं तथा युग की कई आत्मायें होती हैं।" भारत की धारा आदर्शवाद की ओर मुड़ गई। गांधीजी ने अहिंसा को जीवन का आधार माना जिसके पास पहुँचने के लिये सत्य सबसे बड़ा माध्यम है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के काल में आदर्शवादी विचार धारा देश पर हावी रही और सत्य, अहिंसा, हृदय परिवर्तन आदि सब वातावरण में व्याप्त रहे।

आधुनिक काल केचिंतकों ने व्यक्ति की गरिमा पर जोर दिया और स्वीकार किया कि समाज व्यक्ति के लिये है, अत: व्यक्ति की सुविधा के अनुकूल परम्परायें मान्यतायें बदलेंगी किन्तु पश्चिम की तरह व्यक्ति की निरंकुश सत्ता को भारत ने नहीं स्वीकारा। आधुनिक भारतीय चिंतन व्यक्ति की स्वाधीनता का समर्थक तो है किन्तु अंततोगत्वा वह व्यक्ति का समाज से तालमेल बैठाना चाहता है। व्यक्ति को शक्ति व विश्वास का केन्द्र मानने के कारण इस मान्यता की स्थापना हुई कि नैतिकता का आधार व्यक्ति है। सामाजिक दोष वस्तुत: व्यक्ति के दोष हैं अत: उनका समाधान भी व्यक्ति के स्तर पर होना चाहिये।

मध्ययुग के विचारकों का आधार ईश्वर शक्ति पर विश्वास करना था। विज्ञान ने उस विश्वास को सारे विश्व में झकझोर दिया। बैट्रेण्ड रसैल का विचार है कि "वैज्ञानिक युग के पूर्व ईश्वर को ही सर्वशक्तिमान सत्ता के रूप में ही स्वीकार किया जाता था अत: मानव अपनी असमर्थता तथा नम्रता व्यक्त करते हुये ईश्वर पर पूर्ण विश्वास करता था।

भारत में आधुनिक युग में धार्मिक पुनर्जागरण हुआ। धर्म के प्रति भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण बढ़ा। विवेकानन्द, अरविन्द जैसे धार्मिक नेता इसके लिये पहलें से ही प्रयत्नशील थे। जैसे-जैसे वैज्ञानिक अध्ययन बढ़ता गया, धार्मिक संकीर्णता क्षीणप्राय होने लगी। भाग्यवाद, कर्मफल आदि बातों का समय टलने लगा और इन

विचारों को पूँजीवादी वर्ग के प्रपंच की संज्ञा दे दी गई। इस मामले में नेहरू जी का व्यक्तित्व व नेतृत्व देश के लिये अत्यंत लाभदायक रहा। उन्होंने प्रखर वैज्ञानिक दृष्टि से धार्मिक संकीर्णताओं और रूढ़ियों से अत्यन्त साहसिक टक्कर ली। वैज्ञानिक चिंतन ने जो भौतिक दृष्टिकोण दिया, धर्म निरपेक्ष शासन उसकी चरमपरिणति और शानदार उपलब्धि है।

भारत में मुसलमानों का आगमन केवल राजनैतिक नहीं था वह सांस्कृतिक भी था। हिन्दू और मुसलमान एक लम्बें अर्से तक मिलकर एक नहीं हो सके लेकिन जब दोनों के भाग्य एक दूसरे से बधे हुये है तब वे न केवल एक दूसरे के पास आये बल्कि कला साहित्य, भाषा, वेशभूषा आदि में उनका आदान-प्रदान हुआ। यदि शासकों की नीति भड़काने वाली न होती तो निश्चय ही दोनों का आपसी प्रेम बढ़ता। पर यह स्पष्ट है कि ये संस्कृतियाँ एक दूसरेपर बहुत प्रभाव डालने के बाद भी एक दूसरे में घुलमिल न सकीं और घृणा और वैमनस्य के वातावरण में दो राष्ट्रों के खतरनाक सिद्धान्त का जन्म हुआ। अपनी-अपनी संस्कृति को ही उच्च मानने की भावना ने हिन्दू और मुसलमान दोनों में ही संशय और विद्वेष को जन्म दिया। दोनों और के साम्प्रदायिक नेता यह भूल गये कि राष्ट्रीय एकता का आधार धर्म अथवा जाति नहीं वरन् मातृभूमि है। गांधी जी ने लोकतंत्र के सिद्धान्त और मानवीयता के आधार पर अथक प्रयास किया कि हिन्दू और मुसलमान में बैर न उभरे किन्तु उसके बाद भी जगह-जगह कई बार दंगे हुये और धार्मिक जोश में मानवीयता को बिल्कुल भुला दिया गया। भारत की स्वाधीनता भी दो राष्ट्रों के बीच में हिन्दू मुसलमान दंगों से उत्पन्न भीषण रक्तपात के वातावरण में प्राप्त हुई। आज भी यह समस्या सुलझी नहीं है। ऐसी सांस्कृतिक स्थिति में वर्माजी अछूते न रह सके। उन्होंने अपनी लेखनी से हिन्दू-मुस्लिम संघर्षों का यथार्थ चित्र अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

स्वाधीनता की प्राप्ति भारतीय समाज ने सुखी जीवन का सुनहरा द्वार समझा था किन्तु यह एक कटु यथार्थ है। गांधी जी के आदर्शों को सामने रखकर राजनीतिज्ञों ने जनता को आश्वस्त किया कि देश की शीघ्र उन्नति होगी। चतुर्मुखी विकास के लिये तथा आत्म निर्भर होने के लिये योजनाबद्ध तरीके से औद्योगीकरण

प्रारम्भ किया गया इससे देश को नया स्वरूप प्राप्त हुआ और उन्नति के लक्षण भी दिखाई दिये। नवीन उद्योगों के माध्यम से भारत आधुनिक संसार से जुड़ा और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का नाम ऊँचा उठा। किन्तु शीघ्र ही देश के नेताओं की अदूरदर्शिता और मतलबपरस्ती सामने आने लगी। हर कुर्सी का उपयोग अपने स्वार्थ के लिये किया जाने लगा। यह कल्पना की गई थी कि देश की तरक्की का लाभ हर व्यक्ति को मिलेगा किन्तु इसके विपरीत दिन पर दिन पैसे वालों की तरक्की होती गई और देश पूँजीवाद के गर्त में डूबता गया।

इन आंतरिक विसंगतियों और अव्यवस्था के वातावरण में भगवती चरण वर्मा अपना दायित्व निभा रहे थे। देश की बिगड़ती हालत को व दिन प्रतिदिन रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार और महंगाई की बढ़ती हुई हालत को वर्माजी ने निकट से देखा था और अपने उपन्यासों मेंसमग्रता से प्रस्तुत करने का प्रयास किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय समृद्ध और स्वच्छ समाज के जो स्वप्न देश की जनता ने देखे थे वे पूरी तरह नष्ट हो गये। जोड़-तोड़ करने वाला वर्ग ही सुखी जीवन बिताने लगा और मेहनती तथा ईमानदार व्यक्ति निराशा के अंधेरे में डूबने लगा, इस यथार्थ का चित्र वर्माजी ने अपने उपन्यास "प्रश्न और मरीचिका" में अद्भुत कौशल से चित्रित किया है।

-------x------

:- अध्याय -- । :-

:- अध्याय प्रथम :-

------x------

साहित्याकाश में कितने ही महान कलाकर उदित होते हैं और अस्त हो जाते हैं, परन्तु कोई- कोई ऐसा व्यक्तित्व देखने में आता है जिसके दे दीप्यमान प्रकाशसे सम्पूर्ण साहित्यिक जगत् आलोकित हो उठता है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री भगवती चरण वर्मा का ऐसा ही तेजस्वी व्यक्तित्व था।

:- जन्मकाल, जन्मस्थल, माता-पिता :-

------x--------x-------x------

हिन्दी साहित्य के इस यशस्वी कलाकार का जन्म उत्तर-प्रदेश के उन्नाव जिले के "शफीपुर" नामक ग्राम में 30 अगस्त 1903 को एक सम्पन्न कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पूज्य पितामह दो-तीन गाँवों के जमींदार थे। जिसकी आय से परिवार का खर्च आसानी से चल जाता था। तत्कालीन मध्यवर्गीय सामाजिक प्रथा का अभिशाप वर्मा जी को भुगतना पड़ा। वर्मा जी के पिता जी ने दो विवाह किये थे। फलत: थोड़ी जायदाद कई हिस्सों में बँट गयी। अपने परिवार की गिरती हुई आर्थिक व्यवस्था को सम्भालने के लिये वर्मा जी के पिता जी श्री देवी चरण जी ने वकालत को ही जीविकोपार्जन का साधन बनाया/कानपुर की अपेक्षा वकालत किसी छोटे स्थान पर अच्छी चल सकेगी, यह सोचकर उन्नाव जिले की शफीपुर तहसील में वकालत प्रारम्भ की। यहीं आपका जन्म हुआ।

धार्मिक दृष्टि से वर्मा जी का परिवार शाक्त कहा जा सकता है। देवी की उपासना उनके पूर्वजों ने अपना इष्ट समझ कर की और उनके परिवार को विशेष दैवीय कृपा भी प्राप्त हुई। परिवार के लोगों के नामकरण भी कुछ अंशों में इस बात के प्रमाण हैं-कालीचरण, देवीचरण, भगवती चरण इत्यादि। अपने पूर्वजो की धार्मिक वृत्तियों के सम्बन्ध में उन्होने लिखा है- "मेरे पूर्वज वैष्णव थे, शैव थे या शाक्त थे या फिर इन सवो में से कुछ भी नहीं थे। इसका लेखा-जोखा मेरे पास नहीं है। [1] परन्तु इसी के आगे उन्होंने एक ऐसी घटना का उल्लेख किया है, जिसके कारण उनके पूर्वज तथा वे स्वयं भी देवी के अनन्य भक्त बन गये थे। घटना इस प्रकार है - मुंशी शिवदीन सिंह जी की पहली पत्नी एक लम्बी बीमारी

---

1. धुप्पल, पृष्ठ- 14

में चल बसी थीं। अत: उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। दूसरी पत्नी के पुत्र न होने के कारण भगवती बाबू के बाबा और दादी दोनों ही परेशान रहा करते थे। ज्योतिषियों और साधु-संतों से पूछताछ करने के बाद एक फकीर ने बताया कि उनके संतान-योग नहीं है। यदि कोई सुहागिन उन्हें अपनी भावी सन्तानदेदे तो उनके संतान हो सकती है। मुंशी शिवदीन सिंह जी सुपरिटेन्डेन्ट ऑफ पोस्ट ऑफिस थे। उन्हीं के नीचे एक पद पर कन्नौजिया पोस्टमैन थे, जिन्हें किसी कारण फाँसी की सजा सुना दी गयी थी। अंग्रेजों की प्राणरक्षा के सिलसिले में शिवदीन जी को अंग्रेजी सरकार द्वारा ईनाम-स्वरूप जमीनरूपया आदि दिये जाने का निर्णय लिया गया था। इसके बदले में उन्होंने उस कन्नौजिया पोस्टमैन की प्राणरक्षा माँगी और उनके कहने से उन्हें प्राणदण्ड से मुक्त कर दिया गया। मुंशी जी का यह एहसान चुकाने के लिये परिवार लालायित था। जब उसपोस्टमैन की पत्नी को यह बात मालूम पड़ी तो उन्होंने शिवदीन जी की पत्नी को मंदिर में ले जाकर अपनी दो भावी संतानें भगवती बाबू की दादी को दान कर दीं। परिणामस्वरूप उनके दो पुत्र हुये पहले कालीचरण और दूसरे देवीचरण। इसके बाद ही उस कन्नौजिया ब्राह्मणी के दो पुत्रों की संख्या कम हो गई थी।

इसके बाद शिवदीन सिंह जी ने वहीं "शुमरेमऊँ" नामक स्थान पर जगह खरीद कर काली का मंदिर बनवा दिया। उन्होंने स्वयं लिखा है- "अपने बाबा के ऊपर काली जी की कृपा की कहानी सुनकर मैं काली जी का भक्त बन गया था। -------जीवन में बौद्धिक विकास के साथ मुझमें धार्मिक दृष्टि से न जाने कितने परिवर्तन हुए, लेकिन काली जी में आस्था मुझसे चिपक-सी गयी और आज भी चिपकी हुई है। [1]

:- बाल्यावस्था :-

अब हम देखते हैं कि किस आँच में तपकर यह सोना कुंदन बना। सन् 1908 में भयंकर रूप से प्लेग की महामारी फैली और इससे उनके पिता जी स्वर्गवासी हो गये। इस समय भगवती बाबू की आयु मात्र 5 वर्ष थी। छोटे भाई 3

।x। धुप्पल, पृष्ठ- 17

वर्ष के थे और सबसे छोटी बहन 3 माह की थी। पिता का संरक्षण समाप्त हो जाने के बाद इनका परिवार अपने ताऊ जी के संरक्षण में रहने लगा। यद्यपि ताऊ जी ने इनकी जमीन आदि बेच कर रुपया बैंक में जमा कर दिया था, जिससे ब्याज की रकम घर चलाने के लिये मिलती रहे। पर यह धनराशि 22 रु. महावार थी जो कि परिवार के भरण-पोषण के लिये अपर्याप्त थी। वर्मा जी ने इन विषम परिस्थितियों का डटकर मुकाबला किया और एक जिम्मेदार गृहस्थ की तरह माता तथा भाई-बहिनों का भार सम्हाला।

वर्मा जी के प्रारम्भिक जीवन में कानपुर के पटकापुर मोहल्ले का वातावरण भी बहुत महत्त्व रखता है। पटकापुर में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का बहुत अच्छा प्रभाव था। इन्हीं संस्कारों में पलकर वर्मा जी ने अपने इस निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व का निर्माण किया। पटकापुर के पहलवानी के वातावरण ने भी वर्मा जी को काफी हद तक अपनी ओर आकृष्ट किया। और वे बहुत दिनों तक कुश्ती लड़ते रहें। इसी प्रकार मोहल्ले में चलने वाले भजन-कीर्तन ने वर्मा जी को गाने-बजाने की ओर प्रेरित किया। उनके व्यक्तित्व में जो एक मस्ती दिखाई देती है, वह उन प्रारम्भिक क्षणों के पड़े इस सामंती वातावरण का प्रभाव है। उन्होंने स्वयं कहा है-

"यार हम संभ्रान्त कुल में न पैदा हुये होते तो
बजाय कवि होने के गवैये ही होते आज। "

:- शिक्षा- दीक्षा:-
------x------

बालक भगवती चरण वर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा कानपुर में हुई। पढ़ने-लिखने में वे बड़े मेधावी थे। अभावों के बावजूद छोटी कक्षाओं में प्रथम आते रहे कभी-कभी उन्हें डबल प्रमोशन भी मिला। एक बार एक गणित का सवाल न आने पर मास्टर जी ने पंखे की रस्सी से इनकी पिटाई की। फलत: कई दिन बुखार आया और इसी बात पर एक दर्जा नीचे उतार दिया गया। इस सजा का परिणाम भगवती बाबू की मानसिक प्रतिक्रिया पर उल्टा ही हुआ और वे और भी अधिक परिश्रम से पढ़ने लगे। पाँचवे तथा छठे दर्जों में प्रथम तथा द्वितीय स्थान प्राप्त कर सातवीं कक्षा में पहुँच गये पर हिन्दी में फेल हो गये। हिन्दी में इनकी इस दुर्दशा से खिन्न होकर इनके तत्कालीन शिक्षक श्री जगमोहन विकसित जी ने इनकी काफी भर्त्सना की-"यह कितनी लज्जा की बात है कि तुम

हिन्दी में फेल हुयें। तुम्हें मन लगाकर पढ़ना चाहिये। कोर्स के अलावा भी हिन्दी की किताबें पढ़ा करों। इससे तुम्हारा हिन्दी अभ्यास बढ़ेगा।" 1.

गुरू की इस सीख का वर्मा जी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि हिन्दी साहित्य जगत् कोउनका जैसा यशस्वी कवि और कथाकार प्राप्त हो सका। साधारण तथा महान् व्यक्तियों में यही मूलभूत अंतर होता है कि," जहाँ साधारण व्यक्ति पर किसी के कहने, सुनने या बताने का असर बरसाती नदी की तरह बहता हुआ निकल जाता है, वहीं महान् व्यक्ति सीख की एक-एक बूँद को स्वाति नक्षत्र से हुई वर्षा के जल की भाँति अपने मानस की सीपी में" मोती बनादेते हैं। "

संघर्ष पूर्ण परिस्थितियों में वर्मा जी ने पढ़ाई पूरी की। मिडिल तक आते-आते परिवार की स्थिति काफी डगमगा चुकी थी। किन्तु भगवती बाबू ने न किसी से सहायता की भीख माँगी न किसी के अहसान का बोझ अपने सिर पर लिया। अपने स्वाभिमान को जिंदा रखते हुये वे जीवन के मार्ग में आगे बढ़ते रहे। उनकी पढ़ाई में दसवी कक्षा के बाद से एक व्यवधान आया-वह था कविता लिखने के शौक का उदय। कवि होने का पुरूस्कार मिला-स्वभाव में एक मस्ती का, एक मनमौजी पन का समावेश। फलत: वर्मा जी हाई स्कूल में फेल हुऐं और सन् 1921 में दूसरे वर्ष बड़ी कठिनाई से पास हो सके पर उन्होंने पढ़ाई छोड़ी नहीं और सन् 1924 में इंटर तथा सन् 1926 में बी.ए. की परीक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पास की। उनकी विषयों का चुनाव करने की कहानी भी कम रोचक नहीं है। किस घण्टे में क्या पढ़ाया जाता है, इसके अनुसार उन्होंने विषयों का चयन किया था। नागर जी के शब्दों में- "उन्हें विषयों से मतलब नहीं था। घण्टों से था। " 2.

सन् 1927 में एम.ए. पूर्वार्द्ध की परीक्षा हिन्दी विषय से प्रथम श्रेणी के अंको से उत्तीर्ण की, किन्तु एम. ए. करके जीविकोपार्जन के लिये अध्यापन का कार्य न करना पड़े अत: एम. ए. (हिन्दी) उत्तरार्द्ध की परीक्षा ही नहीं दी। सन् 1928 में एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण करके वकील बन गये। इस ओर रुचि होने में उनके अपने पारिवारिक संस्कारो का विशेष योगदान रहा है। जिस समय भगवती बाबू

---

1. आज के लोकप्रिय कवि: भगवती चरण वर्मा, अमृत लाल नागर पृष्ठ-12.
2. आज के लोकप्रिय कवि- भगवती चरण वर्मा- अमृत लाल नागर।

ने विधि स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की, उस समय वकालत बहुत सम्मान का पेशा समझा जाता था इसके अतिरिक्त भगवती बाबू की माँ की इच्छा थी कि मेरा बेटा बड़ा आदमी बने। उनकी यह इच्छा पूरी करने की भावना भी इस वकालत के पीछे जुड़ी हुई थी।

:- पारिवारिक परिवेश :-
-----x-----x-------

जीवन के इन्हीं संघर्षों के बीच भगवती बाबू का विवाह भी हो गया। पर नियति उनके साथ क्रूर ही रही। विवाह के कुछ समय पश्चात् ही उनकी पत्नी उमा के चार हजार के गहने चोरी चले गये जिसका सदमा वह बर्दाश्त न कर सकीं और उन्हें सेप्टिक की संघातिक बीमारी हो गई। इस संबंध में वर्मा जी ने लिखा है- "अपना सब कुछ भी बेचकर मैंने उसका कितना इलाज किया। सच बात तो यह है कि मैं उससे बेहद प्रेम करने लगा था। कितना पवित्र था वह मेरा प्रथम प्यार। "1"

अपने पति की गोद में सिर रखकर उमा ने प्राण त्याग दिये। गहने चोरी होने के सदमें में प्राण त्याग देने का चित्रण "आखिरी-दाँव" में रामेश्वर की पत्नी के रूप में किया गया है। और गोद में सिर रखकर प्राण त्यागने का चित्रण "तीन-वर्ष" की सरोज के रूप में किया गया है।

सन् 1933 में भगवती बाबू की पहली पत्नी नहीं रहीं। सन् 1934 में उनका दूसरा विवाह गिरिजा जी से हुआ। इस सम्बन्ध में भगवती बाबू का कहना है "उमा और गिरिजा शक्ति के दो रूप- कोई संयोग ही समझा जाए इसे। "2" भगवती बाबू का तीसरा विवाह नंदिता जी से हुआ। "3"

भगवती बाबू के सम्पूर्ण परिवार का परिचय प्राप्त करने के लिये हम उनके परिवारिक-विस्तार को इस प्रकार समेट सकते हैं-

---

1. धुप्पल, पृष्ठ- 20
2. वही, पृष्ठ- 32
3. नंदिता जी से विवाह कब और किस कारणवश हुआ, यह पता नहीं हो सका है।

वंश वृक्ष

भगवती बाबू की बड़ी पुत्री श्री मती शंकुतला वर्मा आजकल गोंडा में हैं उनके पति श्री शांति प्रकाश श्रीवास्तव "मेडिकल प्रेक्टिशनर" हैं। उनके बाद अभय प्रताप सिंह वर्मा हैं जो कि बम्बई में "इण्डियननिलोलियम" में कार्यरत हैं। उनके बाद विजय प्रताप सिंह वर्मा हैं, जो कि "जयनारायण डिग्री कालिज" में लेक्चरर हैं।

भगवती बाबू का यह परिवार उनकी संयुक्त परिवार से सम्बन्धित मानसिकता का ज्वलंत उदाहरण है। भगवती बाबू एक महान् साहित्यकार होने के साथ-साथ एक इन्सानभी थे। माया-मोह में फंसे रहना इन्सानों का स्वभाव हुआ करता है। इससे भगवती बाबू भी अछूते न रह सकें। उन्होंने स्वयं इस बात

को स्वीकार किया है- "यह जिन्दगी भी अजीब चिपचिपी चीज है- लेकिन इस जिन्दगी की चिपचिपाहट से मैं कितना प्रसन्न हूँ। यह सुनकर आप आश्चर्य न करें कि पुत्र-पुत्रियों, पौत्र-पौत्रियों, प्रपौत्र-प्रपौत्रियों- इन्हीं सब से मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। आगे की पीढ़ियों का भी सुख उठाने को मैं लालयित हूँ। "1" यह कामना उन्होंने अंतिम दिनों तक की। जिन्दगी से उन्हें बेहद मोह था! अडिग जीवनी शक्ति ने वृद्धावस्था तक उनमें शिथिलता नहीं आने दी। सन् 84 तक मैं राज्य सभा में रहूँगा और चौरासी में मेरी उम्र इक्यासी साल की हो जायेगी---------- न जाने यह धारणा मेरे मन में जम गयी है कि मैं छियानवे वर्ष की आयु तक जीवित रहूँगा। "2"

किन्तु उन्होंने कई बार यह बात भी लिखी है- "अनिवार्य को रोकने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।" शायद यह सामर्थ्य किसी में भी नहीं है कि वह नियति के चक्र को बदल सके अन्यथा साहित्य जगत का जगमगाता सितारा यूँ न हमारे बीच से विलुप्त होने पता। भगवती बाबू की छियानवे वर्ष तक जीनें की लालसा चूर-चूर हो गयी। 5 अक्टूबर 1981 के मनहूस दिन ने एक महान् नियतिवादी साहित्यकार को हमसे सदा-सदा के लिए छीन लिया। पर वह अपनें श्रेष्ठ कृतित्व के माध्यम से आज भी जीवित हैं। और सदा जीवित रहेंगे। अपने साहित्य के माध्यम से वह आगामी पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहेंगे।

:- जनसम्पर्क :-
-----x----

संसार का सबसे प्यारा और भावनात्मक रिश्ता है मित्रता का। भारतीय दृष्टिसे कुछ पूर्व जन्म के संस्कार तथा कुछ समान गुण-धर्म के मिल जाने से व्यक्ति स्वत: ही एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। यही भावात्मक-आकर्षण मित्रता का रूप ग्रहण कर लेता है। व्यक्तित्व के निर्माण में संगति व मित्र-मण्डली का विशेष योगदान होता है। साहित्याकाश के जगमगाते सितारे श्री भगवती चरण वर्मा जी के व्यक्तित्व निमाण में भी उनके मित्रों एवं सहयोगियों की भूमिका विस्मृत नहीं की जा सकती है। भगवती बाबू का

---

1. धुप्पल, पृष्ठ 101
2. वही, पृष्ठ 106

क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था। इसीलिये वे जीवन के अनेक क्षेत्रों से जुड़े हुए थे। प्रत्येक क्षेत्र के व्यक्ति उनके सम्पर्क में आये। फलत: राजनेता, साहित्यकार, अधिकारी वर्ग, फिल्म-कम्पनी से सम्बन्धित लोग, राजाओं, जमींदारोंआदि तथा अन्य सम्बन्धित लोगों से उनकी मित्रता थी, हर वर्ग के लोग उनकी मित्र- मंडली में सम्मिलित थे।

साहित्य-जगत् में भगवती बाबू सर्व प्रथम कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुयें सबसे पहली कविता लिखने की प्रेरणा उन्हें श्री मैथिलीशरण गुप्त की "भारत-भारती" पढ़ते समय मिली। उन्हीं के शब्दों में- "भारत-भारतीपढ़ते-पढ़ते मेरे हृदय में उमंगों का सागर लहराने लगा। मैंने कागज पेंसिल उठाई, भारत-भारती के छन्द पर देश-भक्ति में मैंने सात-आठ पंक्तियाँ लिख डालीं"[1] कवि बनने की प्रेरणा मैथिलीशरण गुप्त से ही मिली है। वे एक तरह से मेरे गुरू मित्र हैं। "[2] इस तरह वर्मा जी ने कविता के क्षेत्र में पदार्पण किया। और सफलता के सोपान पार करते हुये उच्च शिखर तक पहुँच गये।

श्री जगमोहन "विकसित" जी ने उन्हें कविता में मात्राएँ गिनने तथा इसी प्रकार की अन्य जानकारियाँ देकर उनका मार्ग प्रशस्त किया× और कविता का यह प्रथम एवं अन्तिम पाठ पढ़कर वर्मा जी एक महान् कवि के रूप में ख्याति प्राप्त कर सके।

श्री गणेश शंकर विद्यार्थी वर्मा जी के आत्मीय मित्रो में से रहे हैं। वर्मा जी गणेशशंकर विद्यार्थी का नाम आते ही श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं। उनके व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण भाग विद्यार्थी जी से प्रभावित रहा है। जिसे कि उन्होने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है।-" यदि मैं बाल्यकाल में ही विद्यार्थी जी के सम्पर्क में न आया होता तो मैं कोई दूसरा ही व्यक्ति होता। मुझे यह अनुभव हो रहा है- यह न झुकने की प्रवृत्ति, यह दूसरों पर सहज-सरल विश्वास, यह जिसे मैं सत्य और न्याय समझता हूँ, उस पर अडिग आस्था जिसे मैं जीवन भर ढोने का प्रयास करता रहा हूँ। ऐसा लगता है यह सब मुझे उनसे ही विरासत् के रूप में मिले हैं। -------- मुझे लगता है कि मेरे निर्माणमें उनका बहुत

---

1. अतीत के गर्त से, पृष्ठ 64।
2. ये सात और हम, पृष्ठ 12

बड़ा प्रभाव रहा है, मेरे अनजाने ही। "1" गणेश शंकर विद्यार्थी को प्रेरणा से ही कथा-जगत् को भगवती बाबू जैसा यशस्वी उपन्यासकार मिल सका। जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है- "कविता के क्षेत्र से-गद्य के क्षेत्र को अपनाने का श्रेय मूल रूप से गणेश शंकर विद्यार्थी को है। "2 "गणेश शंकर विद्यार्थी को वे आजन्म न भुला सकें। "मैं गणेश शंकर विद्यार्थी का शिष्य नहीं रहा, मैं उनका अनुयायी न बन सका। लेकिन उन्होंने मेरे जीवन में अन्जाने ही एक अमिट छाप छोड़ दी। यह मैं स्वीकार करता हूँ। मैं एक अजीब किस्म का आदमी मैंने हमेशा उनका आदर किया। शायदइतना आदर मैंने और किसी का नहीं किया अपने जीवन में। "3"

ओजस्वी कवि श्री रामधारी सिंह "दिनकर" भगवती बाबू के बहुत अच्छे मित्रों में से थे। दोनों एक-दूसरे की साहित्यिक प्रतिभा से प्रभावित थे। दिनकर की काव्य-प्रतिभा को स्वीकार करते हुये उन्होंने लिखा है- "दिनकर के कारण मैं कविता के क्षेत्र से अलग हट गया, मेरी यह स्वीकारोक्ति दिनकर की महत्ता पर अच्छाखासा प्रकाश डालती है। "4" दिनकर भी भगवती बाबू की प्रतिभा से प्रभावित थे। इसीलिये उन्होंने यशपालके "झूठा-सच" की अपेक्षा वर्मा जी के "भूले-बिसरे" चित्र को साहित्य अकादमी पुरस्कार के उपयुक्त समझा। भगती बाबू कलाकार की हैसियत से दिनकर को सबसे अधिक स्पष्ट और ईमानदार "5" मानते थे। दिनकर के प्रति उनके मन में हमेशा सौहार्द का भाव बना रहा व वह उनका आभार मानते रहे।

विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक" जी भी उनके घनिष्ठ मित्र थे। कौशिक जी के आग्रह से हिन्दी मनोरंजन में उन्होंने चार-पाँच कहानियाँ लिखीं। "6 "कौशिक जी की उन्मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुये उन्होंने लिखा है "मेरे अन्दर वाले" कहानीकार के मार्गदर्शन के विकास में विश्वम्भर नाथ कौशिक का योगदान भी है। "7"

---

1. अतीत के गर्त से, पृष्ठ 13-14
2. वही, पृष्ठ 13
3. अतीत के गर्त से पृष्ठ
4. वही पृष्ठ 82
5. ये सात और हम पृष्ठ 89
6. अतीत के गर्त से पृष्ठ 26
7. वही पृष्ठ 1

कहानीकार के अतिरिक्त कौशिक जी के व्यंग्यकार के रूप से भी वर्मा जी के अन्दर वाले व्यंग्यकार ने प्रेरणा ग्रहण की है। संगीत के प्रति रुझान वर्मा जी के स्वभाव में था। पर रागों और स्वरों का जो थोड़ा बहुत ज्ञान हुआ और जिस ज्ञान के बल पर उन्होंने ऑलइण्डिया रेडियो में सुगम संगीत के प्रथम प्रोड्यूसर बन कर दिल्ली से सुगम संगीत के कार्यक्रम का संयोजन किया वह सब कौशिक जी के साथ के कारण।

प्रताप नारायण श्रीवास्तव भगवती बाबू के अन्तरंग मित्र थे। बाल्यकाल में ही दोनों में गहरी मित्रता हो गई थी। दोनों आर्य समाज स्कूल में एक साथ पढ़ते थे। दोनों ने एक साथ ही एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। श्रीवास्तव जी ने लखनऊ विश्वविद्यालय से और भगवती बाबू ने प्रयाग वि० विद्यालय से। उनके निधन से भगवती बाबू को बहुत दुःख हुआ था। "प्रताप नारायण श्रीवास्तव मेरे बचपन के साथी थे। मैं उनके अन्त समय तक उनको नहीं भूल सका। जब मैंने उनकी मृत्यु की खबर पायी, मुझे एक धक्का-सा लगा और मैंने अपने जीवन में एक प्रकार के सूनेपन का अनुभव किया।"[1]

श्री सुमित्रानन्दन पंत के साथ वर्मा जी के बड़े ही मधुर सम्बन्ध थे। पंत जी की कविताओं से मैं इतना प्रभावित था कि मैंने तथाकथित छायावाद को स्वीकार कर लिया था।"[2] "विशुद्ध भावात्मकता के आधिक्य के कारण भगवती बाबू पंत जी की कविताओं में स्वयं को पूरी तरह खो दिया करते थे। "सुमित्रा नन्दन पंत के निर्देशन में मैंने कविता में कुछ महत्त्वपूर्ण काम किया। अपनी कविता में श्री सुमित्रानन्दन पंत को मैं काफी महत्त्व दे सकता हूँ।----- -- काव्य रूपकों में-------- ऐसे रूपक भी शामिल है, जो अगर पंत जी की प्रेरणा मुझे न मिली होती, तो मैंने न लिखे होते। मेरे कर्ण और द्रौपदी रूपक सशक्त कविताओं में सम्मिलित हैं।"[3] भगवती बाबू ने भी पंत जी को प्रभावित किया था। पंत जी ने भगवती बाबू के कहने से लोकायतन महाकाव्य लिखा था।

साहित्य-जगत ही नहीं अपितु पंत जी ने भगवती बाबू के व्यक्तिगत जीवन को भी प्रभावित किया था श्री सुमित्रा नन्दन पंत अतिशय उदार स्वभाव के थे। भगवती बाबू लखनऊ में अपना मकान बनाना चाहते थे। जैसे- तैसे महानगर में एक प्लॉट भी

---

1. अतीत के गर्त से, पृष्ठ 41
2. वही, पृष्ठ 110
3. धुप्पल- पृष्ठ, 70

ले लिया था लेकिन मकान बनाने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। क्योंकि वे भयानक अर्थाभाव से पीड़ित थे। पंत जी ने जोर दिया कि रुपयों की चिन्ता न करें और मकान बनवा लें। पंत जी ने उसी समय चार हजार का चैक दे दिया बिना किसी लिखापढ़ी के।-------- मकान बनने की प्रसन्नता उन्हें उतनी ही थी जितनी वर्मा जी को पंत जी के निधन से उन्होंने अपने जीवन में एक रिक्तता का अनुभव किया।- श्री सुमित्रा नन्दन पंत को मैंने महामानव के रूप में पाया और उनसे अपनी घनिष्ठता पर मुझे अतीव प्रसन्नता थी। उनके जाने से मैं अपने अन्दर कहीं टूट-सा गया हूँ।----- जीवन में मैं सिवाय श्री सुमित्रानन्दन पंत के और किसी के सामने पूर्ण रूप से नत मस्तक नहीं हो सका। "2"

बम्बई के फिल्म-जगत् में आने के उपरान्त भगवती बाबू को यह दुनिया साहित्य के अनुकूल प्रतीत नहीं हुई पर डॉ० मोती चन्द्र जी से रोज का साथ हो गया और उनमें साहित्य में रहने की प्रवृत्ति आ गई थी। किसी- दुनिया से अलग रहने व साहित्य सेवा करते रहने का श्रेय वर्मा जी मुक्तकण्ठ से मोती जी को देते थे।

भगवती बाबू के आसन्न मित्रों में प्रख्यात साहित्यकार यशपाल की गणना की जाती है। भगवती बाबू में अहं की सीमा तक पहुँचने वाला स्वाभिमान था। वे सहज ही किसी की प्रतिभा को स्वीकार नहीं करते थे। जब तक किसी को अपने से अधिक शक्तिशाली या सामर्थ्यवान नहीं समझ लेते थे तब तक किसी के सामने नहीं झुकते थे। पर यशपाल जी की प्रतिभा के वे प्रशंसक थे।-"यदि मैंने अपने समक्ष किसी को उपन्यासकार और कथाकार समझा है तो यशपाल को और उनके जाने के बाद लखनऊ एक तरह से मेरे लिये सूना हो गया। "3"

महादेवी वर्मा ने भी वर्मा जी को बहुत प्रभावित किया "मैं सचमुच महादेवी की प्रतिभा के आगे झुक जाता हूँ। इसमें मुझे कला की उत्कृष्टता के दर्शन होते हैं। ----- महादेवी के शब्द संगीत और कल्पना के चित्रों में मैं अपने आप को खो देता हूँ। "4" प्रेमचन्द्र के व्यक्तित्व और साहित्य दोनों ही के प्रति भगवती बाबू के मन में सदैव

---

1. अतीत के गर्त से- पृष्ठ, 111
2. अतीत के गर्त से, पृष्ठ 112
3. अतीत के गर्त से, पृष्ठ 103
4. ये सात और हम, पृष्ठ 7।

आदर का भाव रहा है। इसे उन्होंने अनेके स्थानोंपर खुले हृदय से स्वीकार किया है। प्रेमचन्द्र के प्रति उनके मन की भावना की ऊँचाई उनके इस कथन में देखी जा रही है। "सच बात तो यह है कि हिन्दी साहित्य में मैने उतना ऊँचा आदमी नहीं देखा।"1.

हालावाद के प्रवर्तक श्री हरिवंश राय बच्चन उनके साहित्यक मित्रों में से एक थे। बच्चन जी की कलात्मक प्रतिभा से वह बहुत प्रभावित थे। उनकी कविताओं को वे अक्सर गुनगुनाया करते थे। "जिन्हें बेर-बेर पढ़ने पर भी नया रस मिलता था।"2.

नरेन्द्र शर्मा को भगवती बाबू अपना निजी मानते थे। फलत: नरेन्द्र शर्मा वर्मा जी के "अविच्छिन्न और अविलग" साथी बन गये थे।"3" नरेन्द्र शर्मा जैसे प्रतिभावान कवि को अपने मित्र के रूप में पाकर वह अपने ऊँपर गर्वका अनुभव करते थे।"4.

पं. कृष्णकान्त मालवीय भगवती बाबू के मित्र ही नहीं वरन् अभिभावक भी थे, लेकिन वे अपनी तरफ से बराबरी का बर्ताव करते थे। आर्थिक संघर्षों के दौर से गुजरते हुए भगवती बाबू कुछ काम पाने के उद्देश्य से मालवीय जी के पास गये। मालवीय जी ने सहायता करने के उद्देश्य से उन्हें एक पुस्तक अनुवाद करने के लिये दी। मालवीय जी ने अनुवाद केवल भगवती बाबू के स्वाभिमान की रक्षा करने के लिये करवाया था। "उस घटना के बाद कृष्ण कान्त जी उनकी नजरों में बहुत ऊँचे उठगये थे।"5" मालवीय जी से मिलकर उन्हें बहुत सुख मिलता था और अनेक दुश्चिन्ताओं को वे उनसे मिलकर भूल जाते थे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद एक महामानव ही नहीं, भगवती चरण वर्मा के अच्छे मित्र भी थे। भगवती बाबू को सबसे पहले उन्होंने जीवन के संघर्षों में रत एक अं-जाने युवक के रूप में देखा था। पहली बार में ही उन्होंने भगवती बाबू की सारी बात विस्तार से सुनकर उनकी "लिमिटेड प्रकाशन संस्था" का डायरेक्टर बनना स्वीकार कर लिया और कागजों पर हस्ताक्षर भी कर दिये। इसकेबाद उनमें आत्मीयता बढ़ती गयी। स्वतंत्रता प्राप्ति पर राजेन्द्र प्रसाद भारत के राष्ट्रपति बने। इतना बड़ा पद प्राप्त करने पर भी वे अपने आत्मीयों को भूले नहीं। एक पारिवारिक भोज में उन्होंने भगवती बाबू को राष्ट्रपति भवन में आमन्त्रित किया और उनसे कविताएँ सुनाने का आग्रह किया। इसके बाद भी इनका आपस में मिलन होता रहा। पर भगवती बाबू ने उनसे घनिष्ठता

---

1. ये सात और हम, पृष्ठ 96
2. वही- पृष्ठ, 105
3. वही- पृष्ठ, 128
4-5 अतीत के गर्त से -पृष्ठ, 45

बढ़ाने का प्रयत्न नहीं किया क्योंकि पद मान, प्रतिष्ठा में वे भगवती जी से बड़े थे। राजेन्द्र बाबू की मृत्यु का उन्हें गहरा दुख हुआ।- "जिस दिन उनकी मृत्यु की खबर मुझे मिली थी, बरबस ही मेरी आँखों में आँसू आ गये थे।-------- राजेन्द्र बाबू के संपर्क के रूप में मुझे उदात्त मानवता से संपर्क प्राप्त हुआ था।"[1]

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान से भगवती बाबू के बहुत ही मधुर तथा पारिवारिक सम्बन्ध थे। सुभद्रा जी का नाम भगवती बाबू के लिये बहुत ही पवित्रता, आस्था और सद् का प्रतीक था। भगवती बाबू जब भी जबलपुर जाते तो रोज ही सुभद्रा जी से मिलते थे। सुभद्रा जी जब बम्बई जातीं तब भगवती बाबू के यहाँ ही ठहरतीं थीं। भगवती बाबू की पत्नी से उनका बहनापे का सम्बन्ध हो गया था। साहित्यकार होते हुये भी सुभद्राजी का जीवन अपने बच्चों, परिवार व देश के लिए समर्पित था। उनके इस रूप ने भगवती बाबू को बहुत ही अधिक प्रभावित किया था। आज जो मेरी धारणा बन गयी है कि "स्त्री मूल रूप से माता है।------ वह सुभद्रा कुमारी चौहान जैसी सामाजिक जीवन में अग्रगण्य सृष्टा साहित्यकार की अपने बच्चों के प्रति ममता को देखकर बलवती बन पायी।"[2]

बहुचर्चित साहित्यकार श्री उदयशंकर भट्ट की गणना भगवती बाबू के नजदीकी मित्रों में की जाती है। उनसे भगवती बाबू का भावनात्मक लगाव था। दिल्ली रेडियो स्टेशन में उदयशंकर जी साहित्य के प्रोड्यूसर थे और वर्मा जी सुगम संगीत के। दोनों एक साथ भाँग छानने जाया करते थे। समान मनोवृत्तियों के कारण उनमें प्रगाढ़ मित्रता थी। भगवती बाबू के हृदय में उनके प्रति असीम श्रद्धा का भाव था। वर्मा जी ने उनके लिये लिखा है।- "मेरी उनसे आत्मीयता एक उन्मत्त भावना लिए हुये थी मेरे जैसा उद्धत और अपने में केन्द्रित आदमी एक तरहसे उनके आगे झुक जाता था, यह निर्विवाद सत्य है।"[3]

श्री राधाकृष्ण खेतान भगवती बाबू के ऐसे मित्रों में से थे, जिन्होंने वर्मा जी को स्थापित कराने में तन, मन, धन से अपना योगदान दिया था। भगवती बाबू ने कलकत्तासे "विचार" नामक पत्र निकाला था "विचार" के बन्द हो जाने पर बम्बई से उसे शुरू करना चाहते थे।

---

1. अतीत के गर्त से-पृष्ठ, 52
2. अतीत के गर्त से-पृष्ठ, 58
3. वही- पृष्ठ, 102

। राधा कृष्ण खेतान करोड़पति साहित्यकार श्री रामगुपाल गुप्त बम्बई के करोड़पतियों गिने जाते थे, परन्तु साहित्य में रुचि रखने के कारण वे भगवती बाबू के बहुत निकट आ ये थे। वर्मा जी को सामाजिक जीवन में चहल-पहल का काफी शौक रहा है। इसमें उन्हें । रामगोपाल गुप्त का बड़ा सहयोग मिला। ------ वे प्राय: नित्य ही श्री रामगोपाल प्त के यहाँ ब्रिज खेलने जाया करते थे।" [1]

कुँवर शम्भूशरण सिंह भी भगवती बाबू के मित्र थे- "मेरे एक मित्र होते थे, वर शम्भूशरण सिंह मेरी याद में वे दुनिया के इने गिने नेक आदमियों में एक थे। उन्होंने कारण ही हर जगह मेरी सहायता की थी। दूसरों की सहायता करनाउनका गुण था।" [2]

भगवती बाबू का सम्पर्क बहुत विस्तृत था। इन मित्रों के अतिरिक्त श्री बालकृष्ण राव, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, डॉ० सम्पूर्णानन्द, कमलेश्वर, रमाशंकर अवस्थी, हरिकृष्ण प्रेमी जगदीश चन्द्र माथुर तथा रामकृष्ण वर्मा के नाम उल्लेखनीय है। राजनैतिक क्षेत्र के मित्रों में डॉ० केसकर, चौधरी चरण सिंह, द्वारिका प्रसाद मिश्र, ठाकुर हुकुम सिंह, पं. मुन्ना लाल द्विवेदी, पं. गोविन्द बल्लभ पंत आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त अधिकारी व सम्भ्रान्त वर्ग के अन्य लोगों से भी उनकी मित्रता थी- हमीरपुर के तत्कालीन जिलाधीश श्री भण्डारकर, श्री फीरोजगाँधी, राजा साहब भदरी, प्रख्यात निर्देशक श्री बी. आर. चोपड़ा, गंगा सिंह चूड़ामणि. हरनारायण दुबे, किशोर शर्मा, केशव प्रसाद पाठक, गुरुदत्त सोलंकी, प्रकाश, पुरुषोत्तम दास टण्डन, चतुर दास गुजराती, गुलाब प्रसन्न शाखाल, ज्ञानस्वरूप भटनागर एवं लक्ष्मी निवासबिड़ला इत्यादि। इनमें से न जाने कितनों के साथ न जाने कितनी प्यारी मीठी यादें वर्मा जी के साथ जुड़ी हुई थी। इनके चले जाने पर वर्मा जी अपने जीवन में शून्यता महसूस करते थे। वर्मा जी के सुपुत्र श्री धीरेन्द्रवर्मा के शब्दों में "भगवती बाबू के इतने मित्र थे और सबके प्रति उनके मन में बहुत आत्मीयता का भाव था, क्योंकि उनके सम्बन्ध अपने मित्रों तथा संबन्धियों से सौहार्दपूर्ण थे और वे अपने सम्बन्धियों को बहुत स्नेह तथा आदर देते थे। सम्बन्धियों को बहुतके अतिरिक्त अन्जाने व्यक्तियों से भी जिनसे वे पहले कभी नहीं मिले या कभी नहीं मिलेंगे, उनसे भी सौहार्दपूर्ण व्यवहार करते थे।"

---

1. धुप्पल, पृष्ठ 49
2. वही-पृष्ठ, 7

:-स्वभाव, प्रवृत्ति :-
------x-------

अक्खड़ और स्पष्टवादिता का समन्वित व्यक्तित्व लेकर वर्मा जी हिन्दी साहित्य में कवि, कथाकार नाटककार, सम्पादक, फिल्म-सीनेरियो, लेखक आदि विविध रूपों में प्रख्यात हुए। जिस प्रकार मानसरोवर में खिलता सहस्त्रदलीय कमल एवं विस्तृत आकाश में अटल ध्रुवनक्षत्र हैं- हिन्दी साहित्य के धरातल पर भगवती चरण वर्मा का नाम भी कुछ ऐसा ही है। उनकी सफल एवं यशस्वी कृतियाँ इसकी प्रमाण हैं, जिन में वर्मा जी का भव्य व स्वाभिमानीय व्यक्तित्व पूर्णिमा की चन्द्र-ज्योत्स्ना -सा झलकता दिखाई पड़ता है। डॉ० वेद प्रकाशशास्त्री के शब्दों में "बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा स्वाभिमानी व्यक्तित्व के स्वामी भगवती बाबू का व्यक्तित्व उनके उपन्यासों में बहुमुख होकर प्रकट हुआ है। कभी वे दर्शन-परख हैं तो कभी अर्थशास्त्र-परख, कहीं मानवतावादी हैं तो कहीं परिस्थितिवादी, कहीं सफल प्रेमी हैं, तो कहीं सफल राजनीतिज्ञ, कहीं संवेदनशील साहित्यकार हैं तो कहीं कलम के सिपाही, मानवता के रक्षक।"[1]

वैभव की गोदी में जन्में, मुसलफी में पले इस महान् व्यक्तित्व ने जीवन के भयानक संघर्षों से जूझते हुये अपना मार्गप्रशस्त किया। आर्थिक संघर्षों को झेलते हुये भी अपने स्वाभिमान की रक्षा की कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया।

भगवती बाबू में एक बहुत बड़ा सद्गुण यह था कि जिससे उन्होंने जो कुछ भी सीखा अथवा उसका प्रभाव ग्रहण किया उसे उन्होंने उन्मुक्त कंठ से स्वीकार किया तथा उसका सदैव आभार माना। भगवती बाबू बहुत मस्तमौला तथा फक्कड़ स्वभाव के थे। अपनी मस्ती में विशालहस्ती को छिपाये हुये उनका महान् व्यक्तित्व मस्ती के उस आलम में लेना तो क्या पर अपने प्यार से सिंचित भावनाओं सेओत-प्रोत अमृत बाँटना चाहता था। उनकी इस मस्ती की झाँकी उनके साहित्य में सर्वत्र देखने को मिलती है। मध्यम कद का स्वस्थ सुडौल गठा हुआ साँवला चुस्त बदन, मुख पर मधुर मुस्कान, और मन में असीम आत्म विश्वास, आँखों में एक प्रकार का विषाक्त सम्मोहन तथा दिल में धधकता हुआ अंगारा जिस पर इन्द्र धनुष खेल रहा हो, ऐसा मोहक व्यक्तित्व था वर्मा जी का। साफ धुला खद्दर का कुर्ता- पाजामा पहने हुये, सिर पर तिरछी टोपी पहने, मुँह में पान दबाये आहिस्ता-आहिस्ता जब किसी समाज में वर्मा जी पहुँच जाते तो उनके

---

1. अध्येय विशेषांक जुलाई-सितम्बर 1972 पृष्ठ 20-21

आस-पास हँसी और उल्लास की झड़ी-सी लग जाती। सरल, निश्छल- हृदय में आत्मीयता ही आत्मीयता।

वे नौजवानों में नौजवान, प्रौढ़ों में प्रौढ़, भावनाप्रधान, मानवता के मूर्तिमान प्रतीक, महाप्राण शक्ति सम्पन्न , लक्ष्य के समक्ष वक्ष तान कर कर्म से प्रेरित, नियति से प्रभावित प्रफुल्लित, अनुभव की अमूल्य सौगात लिए स्वाभिमानी व्यक्ति थे। ठाकुर प्रसाद सिंह केशब्दों में"वस्तुत: बहुमुखी प्रतिभा के धनी भगवती बाबू का व्यक्तित्व कुछ ऐसा आकर्षक है कि जो उनके परिचित हैं, उन्हें वे अत्यन्त मधुर मालूम होते हैं। "प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और हिन्दी के पुराने पत्रकार पं. कमलापति त्रिपाठी के कथनानुसार-"मुझे तो उनकी सभी बातें अच्छी लगतीं हैं। सबसे ज्यादा उनका पान खाना, उनकी अचकन, चौड़ी मोहरी का पाजामा, उनकी चाल मानो लखनऊ नाप लेंगे। "1" अमृत लाल नागर ने उनकी प्रखर प्रतिभा और तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित हो कर लिखा है- " भगवती बाबू यदि कवि न हुये होते तो आजवे आई.पी. एस. ऑफीसर भी हो सकते थे और राजनैतिक नेता- मंत्री भी। आरम्भ में यदि अनुकूल परिस्थितियाँ मिल जातीं तो शायद वे सफल उद्योगपति भी हो सकते थे।"अपने सम्बन्ध में व्यक्त की गई बात तो और भी अधिक महत्त्व रखती है। अपने सम्बन्ध में एक स्थान पर उन्होंने स्वयं लिखा है, "और अपनी आत्मा का एक रूप जो मुझे बड़ा प्यारा लगता है वह है, आत्म-सन्तुष्टि का। जो कुछ भी मुझे मिला था या मिलरहा है उसे मुझे संतोष है। कहीं भी कुण्ठा नहीं, घुटन नहीं, किसी से मुझे ईर्ष्या नहीं, किसी सेअपने को हीन समझने की प्रवृत्ति नहीं। "2"

भगवती बाबू स्वाभिमानी व्यक्ति थे। किसी सीमा तक उन्हें अनासक्त भी कहा जा सकता है। वे अपनी प्रशंसा से लापरवाह तथा अपनी आलोचना से बेफिक्र रहने वाले व्यक्ति थे। स्पष्टवादिता उनके स्वभाव की विशेषता थी अपने स्वभाव की इस विशेषता के कारण उन्होंने अपनी प्रशंसा या आलोचना की परवाह नहीं की- "यह तो सत्य नहीं है कि प्रशंसा मुझे बुरी लगती है लेकिन प्रशंसा की भूख मुझमें नहीं है और निंदा से चोट अवश्य लगती है लेकिन निंदा का भय मुझेमें नहीं है। "3"

भगवती बाबू के अन्दर मस्ती और जीवनी शक्ति नें उन्हें हर परिस्थिति का

---

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 15 दिसम्बर 1963,
2. सारिका, जनवरी 1963 पृष्ठ 9
3. सारिका, जनवरी 1963 पृष्ठ 9

सामना करने की एक ऐसी शक्ति प्रदान की थी कि वे हमेशा अजेय बने रहे। उनकी इस शक्ति ने जीवन की विषमतम परिस्थितियों में भी उनके साहस को नष्ट नहीं होने दिया। प्रख्यात साहित्यकार अमृत लाल नागर ने उनकी उस अपराजेय शक्ति की ओर संकेत करते हुये लिखा है- " जीवन की बड़ी-बड़ी पराजयों के कालकूट को हिन्दी का यह भोला-भण्डारी और मस्त कलाकार न जाने कितनी बार हँस-हँसकर पचा चुका है।

"हमारी उलझन" में स्वयं उन्होंने भी लिखा है- "मुझ पर मुसीबतें पड़ी, ऐसी मुसीबतें पड़ीं जिनकी कल्पना करने से ही हृदय काँप उठता था। लेकिन जब वे मुसीबतें सिर पर आयीं, तब मैंने अनुभव किया कि वह मुसीबतें कुछ भी नहीं हैं। नित्य ही घटित होने वाली साधारण घटनाओं की भांति वह मुसीबतें आयीं और चली गयीं।"[1]

:-क्रियाशीलता व निधन :-

भगवती बाबू ने अपना साहित्यिक जीवन कवि की हैसियत से आरम्भ किया था। सातवीं कक्षा में हिन्दी में फेल होने पर तत्कालीन शिक्षक श्री जगमोहन विकसित जी ने वर्मा जी को डाँटा व भारत-भारती पढ़ने का आदेश दिया भारत-भारती पढ़ते-पढ़ते उनकेकवि रूप का विकास हुआ व वे तुकबंदियाँ करने लगे। अपनी प्रथम कविता उन्होंने विकसित जी को दिखाई तो विकसित जी ने छंद सम्बन्धी दोष तथा मात्राएँ गिनना उन्हें समझाया/ गणेश शंकर विद्यार्थी के "प्रताप" में उनकी प्रथम कविता, "चलता होवे वायु हड़हड़ाता और आँधी हो विकट बड़ी " हहर-हहर हो पवन प्रवाहित आँधी होवे विकट बड़ी।" केरूप में संशोधित होकर 1918 में प्रकाशित हुई। द्वितीय कविता बिना संशोधन के"प्रताप" में प्रकाशित हुई। तब से वे लगातार कविताएं लिखते रहे। उनके कवि रूप को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त वातावरण भी मिल गया और विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", पं. बालकृष्णशर्मा "नवीन", पं. रमाशंकर अवस्थी चंद्रिकाप्रसाद मिश्र जैसे कवियों का संसर्ग उन्हें प्राप्त होने लगा। आयु में सबसे छोटे होने पर भी वर्मा जी ने अपनी विनोदी वृत्ति और हाजिर जवाबी के कारण अपने वरिष्ठों की गोष्ठी में मित्र का स्थान प्राप्त कर लिया। कविता का चस्का लगने के कारण उनकी पढ़ाई में विघ्न उपस्थित होने लगा फिर भी आपने 1928 में एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। वकालत पास करके कानपुर में वकालत करना प्रारम्भ किया पर साहित्यिक

---

1. हमारी उलझन, पृष्ठ 5

सेवा के कारण जीवन में जो अनियमितता हो गयी थी वह वकालत में आड़े आने लगी। कविता में लीन रहने के कारण कई मुकदमों के बयाने भी वापिस करने पड़े। वकालत की मंथर गति के साथ साहित्यिक कार्य तेजी से चलने लगा। अब वर्मा जी ने पद्य के साथ गद्य में प्रवेश किया। सन् 1928 में उन्होंने अपनापहला उपन्यास "पतन" लिखा। संघर्षमय जीवन के पच्चीस वर्ष बिताकर वे पहले की अपेक्षा अधिक गम्भीर हो गये थे। संघर्ष उन्हें यथार्थ के कठोर धरातल पर ले आये थे। अब उपन्यास का क्षेत्र उन्हें कविता से अधिक रुचिकर लगने लगा।

कानपुर से वकालत छोड़ने के बाद उन्होंने हमीरपुर में वकालत करने का निश्चय किया। हमीरपुर निवासकाल में ही उन्होंने अपना सबसे प्रसिद्ध और बहुचर्चित दूसरा उपन्यासचित्रलेखा" लिखना प्रारम्भ किया, पर हमीरपुर में वे अधिक दिन न रह सके और सन् 1931 में प्रतापगढ़ वकालत करने चले गये। भदरी के तत्कालीन नरेश जो कि वर्मा जी के बड़े प्रशंसक थे, वर्माजी द्वारा कराने का आश्वासन दिया परन्तु उनकी वकालत न चल सकी। दयादान वाली स्थिति उनके लिए असह्य थी इस लिये उन्होंने भदरी का राजाश्रय भी ठुकरा दिया, पर हिन्दी साहित्य का एक अनमोल रत्न चित्रलेखा अवश्यपूर्णहो गई सन्1933 में चित्रलेखा प्रकाशित हुई। जिसे आशातीत ख्याति प्राप्त हुई। सन् 1935 में वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंत्री निर्वाचित हुये और 1936 में प्रथम सामाजिक उपन्यास "तीनवर्ष" की रचना की। तीन वर्ष के बाद इंस्टालमेंट,प्रेम संगीत और दूसरा कहानी संग्रह "दो बाँके" प्रकाशित हुए। इसी बीच कलकत्ता छोड़कर पुनः प्रयाग आना पड़ा 1936 में कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में सम्मिलित हुये और पुनः वहीं से कलकत्ता चले गये। जहाँ "विचार" नामक साप्ताहिक बड़ी धूमधाम से प्रकाशित किया। "हमारी उलझन" के अधिकांश लेख इसी पत्र में प्रकाशित हुए। 1940 में केदारनाथ शर्मा ने चित्रलेखा पर पहली फिल्म बनाई और इसी वर्ष उनका "मानव" कविता संग्रह भी प्रकाशित हुआ। सन् 1942 में "विचार" की स्थिति डाँवाडोल हो गई। पर उन्ही दिनों बम्बई टॉकीज सेकथा सीनेरियों लिखने के लिए आमन्त्रित किया गया। इस तरह वर्मा जी ने बम्बई के फिल्म जगत में प्रवेश किया। 1942 से लेकर 1947 तक वे बम्बई की फिल्मी दुनिया में रहे। इसी बीच उन्होंने अपना महत्त्वपूर्ण उपन्यास "टेढ़े-मेढ़े रास्ते" लिखा। पर शीघ्र ही फिल्मी दुनिया के खोखलेपन से उनका मन उचटने लगा और वे लखनऊ चले आए। वहाँ कुछ माह "नव जीवन" पत्र में सम्पादक का कार्य किया पर वहाँ की राजनीति से ऊबकर

948 में प्रधान सम्पादकीय से त्यागपत्र दे दिया। 1949 में बम्बई के फिल्मजीवन पर आधारित उपन्यास "आखिरी-दाँव" समाप्त करके वे उत्तर-प्रदेश के जमींदारी उन्मूलन के प्रचार कार्य में लग गये। सन् 1950 में आकाशवाणी में हिन्दी सलाहकार नियुक्त हुये और सुगम-संगीत एवं साहित्यिक प्रोग्राम प्रोड्यूसर के रूप में भी कार्य करते रहे। आकाशवाणी के कार्यकाल में ही उन्हें सन् 1953 से 1955 तक दिल्ली में ही रहना पड़ा पर स्वतंत्र प्रवृत्ति के कारण आकाशवाणीकी नौकरी भी वह न कर सके व 1957 में रेडियो की नौकरी छोड़कर लखनऊ वापिस चले आये। अब लेखन कार्य स्वतंत्र रूप से चलने लगा। लखनऊ के प्रवास-काल में ही "भूले-बिसरे चित्र"-जिसकी रचना बम्बई में प्रारम्भ हुई थी सन् 1959 में प्रकाशित हुआ। बृहत उपन्यास की श्रृंखला में"भूले-बिसरे चित्र' का विशेष महत्त्व है। इसे साहित्य अकादमी के पुरस्कार से भी सम्मानित किया जा चुका है।

आजादी के बाद देश की बदली हुई राजनैतिक परिस्थिति और जमींदारी उन्मूलन के नये अनुभवों को"सामर्थ्य और सीमा" में संजोकर देश की नाशोन्मुख स्थिति का बड़ा ही सजीव और हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है। जीवन के इतने लम्बे सफर के कटु अनुभवों ने उन्हें भाग्यवादी बना दिया। उनका यही नियतिवाद"सामर्थ्य और सीमा" में बड़े उग्र रूप में हमारे सामने आया है।

वर्मा जी ने "रेखा" की रचना करके सेक्स और मनोविज्ञान को अनोखे ढंग से जोड़ने का प्रयत्न किया है। "रेखा" नारी की बदलती हुई मानसिक स्थितियों को स्पष्ट करने वाली कृति है। इसका प्रकाशन कथाकार ने 1964 में किया। सन् 1968 में अपनी नवीन कृति"सीधी-सच्ची बातें" प्रकाशित की। इसमें द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ काल से लेकर भारत के स्वतंत्र होने तक की गाथा सीधे-सच्चे ढंग से प्रस्तुत की गयी है। यह कृति उनकी कर्मठता व गतिशील व्यक्तित्त्व की परिचायक है। 1970 में"सबहि नचावत राम गोसाईं" व 1973 में'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यास प्रकाशित हुए। सन् 1978 में'युवराज चूण्डा' प्रकाशित हुआ। 1978 में ही वे राज्य सभा के मानद सदस्य चुने गये। सन् 1981 में माँ भारती के इस वरद पुत्र का देहावसान हो गया। इतनी लम्बी उम्र होने पर भी उनकी जिजीविषा बनी हुई थी। वे साहित्य-जगत को और भी अनमोल कृतियाँ देना चाहते थे। पर काल केक्रूर पंजों से आज तक कौन बच सका है।

इस साहित्यिक हस्ती को काल ने हमसे दूर कर लिया है पर उनका कालजयी साहित्य हमें सदा उनकी याद दिलाता रहेगा। वह आजन्म साहित्य सृजन में रत रहे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनका अंतिम उपन्यास चाणक्य 1982 में प्रकाशित हुआ।

(ख)- व्यक्तित्व एवं प्रतिभा :-

1. लेखक
2. कहानीकार
3. उपन्यासकार
4. एकांकी, नाटककार
5. निबन्धकार
6. रेडियो रूपककार
7. गीति नाट्यकार
8. कवि
9. वार्ताकार

बहु आयामी, बहुमुखी, प्रतिभा सम्पन्न वर्मा जी ने साहित्य की प्रत्येक विधा पर अपनी लेखनी चलायी है। कविता, काहानी, नाटक, संस्मरण अथवा फिल्मों की (फीचर) कहानियाँ तक साहित्य की प्रत्येक विधा में पूरे अधिकार के साथ लिखकर उन्होंने सफलता प्राप्त की।

:- कवि:-

आपके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ कवि के रूप में हुआ। कादम्बिनी में दिये गये एक साक्षात्कार में अपनी प्रथम कविता के विषय में आपने लिखा है "जहाँ तक मुझे याद है, मैंने प्रथम बार एक कविता लिखी थी, जुलाई या अगस्त सन् 1917 में। लेकिन मेरी कविता प्रकाशित हुई थी सन् 1918 में। इसके पश्चात् उनकी अनेक रचनाएँ "प्रताप" तथा अन्य पत्र -पत्रिकाओं में छपती रहीं। सन् 1933 में प्रथम काव्य -संग्रह "मधुकण" प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात "प्रेमसंगीत" तथा सन् 1970 में "मानव" कविता संग्रह प्रकाशित हुआ इसके अतिरिक्त उनके "त्रिपथगा विस्मृति के फूल" "रंगों से मोह" आदि काव्यसंग्रह प्रकाश में आये। इन कविताओं में उनकी उर्वर कल्पना

प्रखर प्रतिभा तथा अनुपम काव्य-सौष्ठव के दर्शन किए जा सकते हैं। उनकी कविताएँ मन को अभिभूत कर लेतीं है।

:- लेखक-निबन्धकार :-

पद्य से हटकर भगवती बाबू गद्य के क्षेत्र में आए। इस क्षेत्र में भगवती बाबू की प्रखर प्रतिभा के दर्शन होते हैं। लीडर प्रेस से भगवती बाबू के निबन्धों का संग्रह "हमारी-उलझन" शीर्षक से प्रकाशित हुआ। भगवती बाबू के कलाकर रूप की अभिव्यंजना इन लेखो में मिलती है। "साहित्य की मान्यताएँ" इस संकलन के निबन्धों के माध्यम से लेखक ने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। सम्पूर्ण संकलन में यह बात सामने आती है कि भगवती बाबू व्यक्तिवादी होते हुये भी सामाजिकता की सीमा को स्वीकार करते हैं। -" साहित्य का क्षेत्र भावना हैऔर-साहित्य का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है। सामाजिक रूप से यह भावना गुण की कोटि में होनी चाहिये। विकृति असामाजिक है। सामाजिक नियमों की रक्षा मानव की स्वाभाविक या सात्त्विक प्रवृत्ति ही करती है और इसलिए यह मनोरंजन असात्त्विक नहीं होना चाहिये।"[1]

"हमारी उलझन" संकलन के निबन्ध विश्लेषणात्मक न होकर विवेचनात्मक है। इन निबन्धों में सामाजिक समस्याओं और प्रचलित परम्पराओं पर लेखक के विचार प्राप्त होते हैं।

:- कहानीकार:-

कथा-साहित्य का क्षेत्र भगवती बाबू का सर्वाधिक-प्रिय क्षेत्र रहा है।उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखकर कथा-जगत की जो श्री वृद्धि की है, उसके लिए हिन्दी कथा-साहित्य उनका चिरऋणी रहेगा। उनकी हर कहानी मन को बाँधने में सक्षम है। रमेश बक्षी के शब्दों में-"श्री भगवती चरण वर्मा की कहानियाँ 'औत्सुक्य की दृष्टि से"कम्पलीट" होती है। इंस्टालमेण्ट, विक्टोरिया क्रॉस, दो बाँके, प्राय-श्चित्त आदि छोटी-छोटी ट्रिक कहानियाँ है जिनमें चरम सीमा पर सारा औत्सुक्य केन्द्रित होताहै। और हमारी पूर्व कल्पना शॉक देकर अप्रत्याशित अन्त से कहानी को विशेष रोचक बना देती है।"[2] वर्माजी के व्यक्तित्व में दीवानों की-सी मस्ती और अजीब फक्कड़पन का समन्वयहै। इसकी प्रतिक्रिया उनकी कहानियों में भी मिलती है।

---

1. साहित्य की मान्यताएँ- पृष्ठ, 38
2. रमेश बक्षी, कहानी में औत्सुक्य का अनुतत्त्व, पृष्ठ 6।

प्रेम चन्द्र की भाँति इनका जीवन एक निरंतर संग्राम का जीवन रहा है। जीवन के कटु अनुभवों ने इनको जीवन के प्रति एक क्रान्तिकारी का स्वरूप दे दिया। जिससे इनकी लेखनी से सदा विद्रोह की चिंगारी निकलती रही इससे इनका कथा साहित्य भी प्रभावित हुआ है।

कहानीकार के रूप में वर्मा जी को व्यक्तिवादी तथा स्वच्छन्दता-प्रिय कहानीकार के रूप में रखा जा सकता है। जिन्दादिली इनके साहित्य का प्राण है! जो इनकी कहानियों में भी स्पन्दित होती दिखाई देती हैं। यही कारण है कि इनको कहानीकारों के किसी वर्ग अथवा समुदाय में नहीं रखा जा सकता, यद्यपि हिन्दी के अनेक कहानी लेखकों से इनकी समता की जा सकती है। डॉ० श्रीपति शर्मा त्रिपाठी के अनुसार-"सजीवता में ये प्रेमचन्द्र के सम्मुख लाए जाते हैं। कहानियों का वातावरण चित्रण प्रसाद जैसा है। पात्रों के मनोविज्ञान निर्देशन में ये जैनेन्द्र से मिलते- जुलते हैं। जीवन के प्रति आक्रोश और विद्रोह की भावना इनमें अज्ञेय जैसी है। नग्न यथार्थ का चित्रण इन्होंने उग्र की भाँति किया है। पर वास्तव में वर्मा जी किसी के अनुयायी नहीं हैं वरन् इन तमाम गुणों के रासायनिक समन्वय ने इनके कथाकार के व्यक्तित्व को एक निराला और एकान्त रूप प्रदान किया है। मनोविज्ञान और दर्शन का समन्वय उनके कथा साहित्य में इनकी मौलिकता का परिचायक है।."*" इन्होंने कहानी में वर्ण्यवस्तु तथा उद्देश्य से अधिक, शैली को महत्त्व दिया है। उनकी कहानियों में जीवन की विपन्नता अवसाद तथा विषमता का सफल चित्रण मिलता है। आज का मानव सामाजिक विपन्नताओं की चक्की में पिस कर जर्जर हो रहा है, वर्मा जी ने इसका बहुत मर्मस्पर्शी चित्रण अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। "दो बाँके" तथा "इन्स्टालमेमट" दोनों कहानी संग्रहों में प्राय: सभी कहानियाँ ऐसे चरित्रों को सामने रखतीं हैं जो परिस्थितियों से विवश समाज के किसी कोने में आहें भर रहे हैं। वर्मा जी की कहानियों की सजीवता और सफलता का एक कारण उनकी व्यंग्यमिश्रित रोचक शैली भी है। व्यंग्यकार के रूप में इतने सफल और कुशल लेखक हिन्दी में थोड़ेही हैं। कहीं तो उनका व्यंग्यसरल - निश्छल फुलझड़ियाँ बरसाता है, और कहीं गुदगुदाकर हमें उल्लसित करता है। वर्मा जी ने अपने व्यंग्य द्वारा समाज की कमजोरियों को दिखाकर उदात्तीकरण का एक मार्ग प्रस्तुत किया है। "मुगलों ने सल्तनत बख्श दी, प्रायश्चित दो बाँके, इन्सटालमेण्ट तथा

---

*. कहानी "कला, विकास और इतिहास-डॉ० श्रीपति शर्मा त्रिपाठी-पृष्ठ 190

दो पहलू आदि कहानियाँ व्यंग्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इसी से उनकी कहानियाँ आद्यन्त पाठक के मन पर एक अमिट छाप छोड़ जाती हैं। इसलिए वे हिन्दी के सफल कहानीकारों में गिने जाते है।

:- उपन्यासकार :-
-----x-----

मात्र कहानी लिखकर ही वर्मा जी के कथाकार रूप को सन्तुष्टि नहीं मिली, उनका वास्तविक क्षेत्र तो उपन्यास का था। इस क्षेत्र में वर्मा जी ने जो कार्य किया, उसके लिए वे युगों-युगों तक अमर रहेंगे। उनकी एक ही कृति" चित्रलेखा" को जितनी ख्याति प्राप्त हुई है वह विरले साहित्यकारों को ही प्राप्त हो पाती है। इस उपन्यास ने उन्हें ख्याति के चरम शिखर पर पहुँचा दिया था। 1936 में उनका एक और सफल उपन्यास "तीन-वर्ष" प्रकाश में आया। "तीन वर्ष" नयी सभ्यता की चकाचौंध से पथभ्रष्ट युवक की मानसिक व्यथा की कहानी है। 1946 में उनका एक और सफल राजनीतिक उपन्यास "टेढ़े-मेढ़े रास्ते प्रकाशित हुआ। 1950 में वर्मा जी ने " आखरी दाँव" की रचना की। जो कि उनके आर्थिक दृष्टकोण का परिचायक है। 1957 में प्रकाशित ‡अपने-खिलौने" नई दिल्ली की "मार्डन सोसायटी" पर व्यंग्यशर वर्षण है। इनका सबसे बृहत्तम् और सर्वाधिक सफल उपन्यास "भूले-बिसरे चित्र"‡1959‡ है। जिसमें अनुभूति और वेदना की कलात्मक सत्यता के साथ उन्होंने तीन पीढ़ियों का, भारत के स्वातंत्र्य- आन्दोलन के तीनयुगों की पृष्ठभूमि में मार्मिक-चित्रण किया है। 1960 में "वह फिर नहीं आयी, 1962 में "सामर्थ्य और सीमा" 1963 में"थके पाँव,' 1964 में रेखा 1968 में "सीधीसच्ची बातें, 1969 में "सबहि नचावत राम गोसाईं, सन् 1973 में "प्रश्न और मरीचिका, सन् 1978 में ऐतिहासिक उपन्यास"युवराज चूण्डा" व 1982 में अन्तिम उपन्यास "चाणक्य" प्रकाशित हुआ। इस प्रकार भगवती बाबू एक श्रेष्ठ उपन्यास-कार के रूप में हिन्दी साहित्य-जगत् में प्रख्यात हैं।

:- एकांकी नाटककार :-
-----x--------

भगवती बाबू एक बहुमुखी साहित्यकार थे। उनकी प्रतिभा केवल,कविता, निबन्ध, कहानी, उपन्यास लेखन तक ही सीमित नहीं रही है, अपितु उन्होंने एकांकी भी लिखे हैं। "सबसे बड़ा आदमी" तथा"दो कलाकार" एकांकी हिन्दी के सफल एकांकी हैं। ये हास्य-प्रधान एकांकी हैं।'चौपाल में'व्यंग्य-प्रधान एकांकी है।

एकांकी ही नहीं भगवती बाबू ने नाटक लिख कर भी हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि में अमूल्य योगदान दिया है। "बुझता दीपक" व "रूपया तुम्हें खा गया" नाटक उनकी प्रतिभा पर प्रकाश डालते हैं।

:- रेडियो रूपककार :-
-----x-------x----

काव्य रूपक लिखकर भगवती बाबू ने एक नवीन विधा की अभिवृद्धि की है। रेडियो में सेवारत रहने के दौरान श्री सुमित्रा नन्दनपन्त की प्रेरणा से वर्मा जी ने कर्ण, द्रौपदी तथा महाकाल नामक काव्य रूपकों की रचना की। भगवती बाबू अतीत और वर्तमान की अतल गहराइयों में पहुँचकर उसके सत्य को जानने के लिए उत्सुक रहे हैं। अतीत के प्रति ममत्व व नवीन के प्रति उतना ही उत्साह उनमें रहा है। अपने काव्य-रूपकों के विषय में उन्होंने इस बात की पुष्टि की है- "इनमें यद्यपि मैंने पौराणिक- कथाओं का सहारा लिया है लेकिन जो एक तरह से नितांत मौलिक है।"[1] इन काव्य-रूपकों की सफलता के लिए भगवती बाबू ने अपने अन्दर के कहानीकार को बहुत सहायक माना है।

इस प्रकार साहित्य की कोई भी विधा भगवती बाबू की लेखनी से अछूती नहीं रहने पायी है। साहित्य की प्रत्येक विधा को उन्होंने अपनी पारस लेखनी के संस्पर्श से जगमगा दिया है। वे कवि, कथाकार, कहानीकार, निबन्धकार, नाटककार, रेडियोरूपककार सभी रूपों में हिन्दी-साहित्य जगत् में जाने जाते हैं। उनकी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का प्रस्फुटन साहित्य की इन सभी विधाओं में हुआ है।

---

1. धुप्पल, पृष्ठ- 70

(ग) विचारधारा :-

सामाजिक	विचारधारा
राजनैतिक	विचारधारा
आर्थिक	विचारधारा
साहित्यिक	विचारधारा

किसी साहित्यकार की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक, विचारधारा क्या है, यह जानने के लिए हमें उसके साहित्य का गहन अध्ययन करना अत्यावश्यक है। तभी हम जान सकते हैं कि उसकी विचारधारा किस तरह की है। किसी की भी विचारधारा को निरूपित करने में तत्कालीन परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योग दान होता है। परिस्थितियों से निर्मित विचारधारा साहित्यकार के सम्पूर्ण कृतित्व को बहुत अधिक प्रभावित करती है। भगवती बाबू के साहित्य का गहन अध्ययन करने के उपरान्त निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं-

सामाजिक :-

सामाजिक दृष्टि से भगवती बाबू समाज के सड़े गले व समाज के लिए अहितकर स्वरूप को मिटाकर आदर्श तथा कल्याणकारी समाज की रचना करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में समाज का यही स्वरूप वांछनीय है।

राजनैतिक :-

राजनैतिक दृष्टि से वह पदलिप्सा, भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता को समाप्त करके मानव मात्र के लिए कल्याणकारी सुविधा व सुरक्षा-दायक नैतिक तथा न्याय संगत शासन प्रणाली लाने के पक्षधर हैं। सामन्तवादी, साम्राज्यवादी शोषण, देशद्रोह व भोग-विलास के वेसख्त विरोधी हैं। वे इस वर्ग को समाप्त करके, पूँजी की असमानता दूर करके समाज में समानता लानाचाहते हैं। वंशानुगत साम्राज्य के भी वे विराधी हैं। अपने राष्ट्र से उन्हें बहुत ही प्रेम व लगाव है वेउसे पतित होता नहीं देख सकते। राष्ट्रीय भाव के ह्रास पर उनका मन विचलित एवं पीड़ित हो उठता है। अपने देश की ही नहीं बल्कि समस्त विश्व की खुशहाली, शान्तिव प्रगति वह चाहते हैं।

आर्थिक :-

आर्थिक दृष्टि से वह समाज में से लोभ, स्वार्थ, शोषण, को मिटाकर समान आर्थिक वितरण, सम्पन्नता व खुशहाली लाना चाहते हैं। महाजनी शोषण के वह खिलाफ हैं। शोषितों के प्रति उनके मन में सहानुभूति, दया तथा संवेदना के भाव हैं। वह अर्थ को साध्य नहीं वरन् साधन समझते हैं।

साहित्यिक :-

साहित्यिक दृष्टि से भगवतीबाबू साहित्य के जनरंजन कारी पक्ष को महत्त्व देते हैं। उन्हीं के शब्दों में- "कला में मनोरंजन प्रधान है, इसे स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं होता।" [1] किन्तु भगवती बाबू ऐसे मनोरंजन के पक्षपाती हैं जो आनन्द के स्तर तक उठ सके। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि "कला का स्रोत न भावना में है न बुद्धि में हैं। इस अन्तः प्रेरणा को नियमों में नहीं बांधा जा सकता है। यह अन्त: प्रेरणा एक रहस्य की भाँति हरेकमनुष्य के अन्दर स्थित है। इसकी मनुष्य के जीवन में महत्त्वपूर्ण सत्ता है।" [2] साहित्य में विचारों की बोझिलता और दर्शन की घुसपैठ को वर्मा जी उचित नहीं मानते हैं। वह स्वीकार करते हैं कि साहित्य भावात्मक होना चाहिये। लेखक के व्यक्तित्व और उसकी अनुभूतियों की उसमें झलक होनी चाहिए। "व्यक्तित्व साहित्यकार के जीवन का अभिन्न भाग होने के कारण उसके कृतित्व का भी महत्त्व पूर्ण भाग हुआ करता हैं।" [3]

वर्मा जी के अनुसार साहित्य में जीवन की गरिमा को उपयुक्त स्थान मिलना चाहिये। कर्मरत मानव जीवन की अभिव्यक्ति में सजीवता और स्वस्थता का अभाव तो हो ही नहीं सकता महादेवी जी की "यामा" की समीक्षा करते हुये उन्होंने इस तथ्य को इन शब्दों में प्रस्तुत किया हैः-

"कला में ताजगी की बहुत बड़ी आवश्यकता है। उसी कलाकार की देन आज महत्त्व की समझी जायेगी जो जिन्दगी के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाल सके।" वर्मा जी सृजन में मौलिकता को बहुत महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार "कवि का महत्त्व इस बात में है कि वह मौलिक भाव कथन की गरिमा को न भूल जाए।" वर्मा जी ने अपने इस मंतव्य को एक अन्य स्थल पर इन शब्दों में व्यक्त किया है- "महान साहित्य वही

---

1. साहित्य की मान्यताएँ- पृष्ठ 6
2. वही- पृष्ठ, 22
3. साहित्य की मान्यताएँ, पृष्ठ 59

कहलाता है जो मौलिक होता है।" अतः स्पष्ट है कि स्वस्थ, स्वाभाविक और मौलिक अभिव्यक्ति ही साहित्य का आदर्श है।

वर्मा जी अनुभूति की सजीवता और मौलिकता के उपरान्त स्पष्टता को काव्य का तृतीय गुण मानते हैं। अर्थ की स्पष्टता सत्काव्य का सर्वोत्तमगुण है। इसके लिए भावना की सहजता की भाँति अभिव्यंजना की सुख-सरलता भी वांछनीय है इस गुण के निर्वाह को वर्मा जी ने काव्य की प्रमुख विशेषता माना है। "मैं तो कभी भी उस काव्य को जिसमें भाषा तथा भाव की स्पष्टता न हो, सफल काव्य मानने को तैयार नहीं क्योंकि ऐसी हालत में तो कला के उद्देश्य की ही हत्या हो जाती है।"[1]

वर्मा जी के अनुसार-"अपनी भावना को दूसरों में लय कर देना ही साहित्य का उद्देश्य है। जितनी सफलता के साथ एक कवि अपनी भावना को उसी प्रखरता, उसी सम्मोहन उसी प्रभाव के साथ जैसी उसमें थी, दूसरे पर व्यक्त कर देता है, वह उतना ही सफल है।"

पर साहित्य की मान्यताओं पर वर्मा जी स्पष्ट विचार नहीं रखपाये हैं। कहीं-कहीं अजीब विरोधाभास देखने को मिलते हैं। यथा-एक ओर लेखक साहित्य को भावनाओं से जुड़ा हुआ मानता है, वहीं एक स्थान पर वह लिखता है "एक बहुत बड़ी भ्रान्त धारणा लोगों में फैली हुई है कि कलाकार भावना प्रधान प्राणी होता है"[2]

---

1. साहित्य की मान्यताएँ- पृष्ठ 29
2. प्रेम संगीत- पृष्ठ 15

(घ) साहित्य सृजन के प्रेरक तत्त्व :-

भगवती बाबू के व्यक्तित्व के विकास एवं साहित्य सृजन के प्रेरक तत्त्वों में सर्वप्रथम उनकी माँ का योगदान अविस्मरणीय है। भगवती बाबू के ही शब्दों में-"बड़ा लम्बा वैधव्य भोगा था मेरी माता ने और जीवन में वहीं मेरी सबसे निकटस्थ रहीं हैं। मेरे निर्माण में शत-प्रतिशत उनका हाथ था। बेतरह प्यार करती थी वे मुझे।"[1]

श्री जगमोहन विकसितजी की डाँट भी भगवती बाबू के साहित्य-सृजन की प्रेरक तत्त्व कही जा सकती है। सातवीं कक्षा में हिन्दी में फेल होने पर श्री जगमोहन "विकसित" ने इनसे कहा था कि-यह कितने शर्म की बात है कि तुम हिन्दी में फेल हुये। "गुरू की इस फटकार का उनके भावी जीवन व विशेष रूप से हिन्दी साहित्य सेवा की दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती ने वर्मा जी को अत्यधिक प्रभावित किया। उनकी प्रथम कविता भारत भारती को पढ़ते-पढ़ते ही रची गयी थी। भगवती-बाबू के शब्दों में- अब अगर मैं कहूँ -

"कवि कविता दोउ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी इन कवि की, जिन कविता दिया दिखाय।।"

तो अनुचित न होगा।

इस प्रकार वर्मा जी के कवि रूप के विकास में गुप्त जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है,उनकी प्रेरणा भुलाई नहीं जा सकती।

श्री गणेश शंकर विद्यार्थी से भी वर्मा जी को साहित्य-सृजन की प्रेरणा मिली थी। गणेश शंकर विद्यार्थी की प्रेरणा से ही प्रेरित होकर उन्होंने कच्ची उम्र में ही विक्टर-ह्यूगो के उपन्यास पढ़ डाले थे। गणेश शंकर विद्यार्थी की प्रेरणा से कथा-साहित्यके प्रति रूचि भी हो गई थी। वर्मा जी के ही शब्दों में- " मेरे निर्माण में उनका बहुत बड़ा प्रभाव रहा है, मेरे अनजाने ही।"

---

[1] धुप्पल- पृष्ठ 85

विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" के आग्रह से उन्होंने "हिन्दी-मनोरंजन" में चार-पाँच कहानियाँ लिखीं थीं। कौशिक जी के अपने ऊपर पड़े प्रभाव को वर्मा जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है- "कौशिक जी" की "दुबे की चिट्ठियाँ" में जिस व्यंग्यकार का रूप प्रकट होता है वह उस चेतना व कलाकार का रूप है, जिससे मेरे उन्दर वाले व्यंग्यकार ने प्रेरणा ग्रहण की है।"1.

सुमित्रा नन्दन पंत से भी वर्मा जी ने प्रेरणा ग्रहण की है। पंत जी की ही प्रेरणा से उन्होंने काव्य-रूपक लिखे थे।

इन सब महानुभावों के अतिरिक्त वर्मा जी जैसे प्रतिभाशाली साहित्यकार के निर्माण में उनकी स्वयं की अन्दरवाली प्रवृत्ति प्रेरक-तत्व रही है। अपनी अन्त: प्रवृत्ति से प्रेरित हो कर ही वह कालजयी साहित्य का सृजन कर सके। वर्मा जी के ही शब्दों में- "आज जो कुछ मैं हूँ, वह अपने अन्दर वाली प्रवृत्तियों एवं अपने चारों ओर वाली परिस्थितियों की उपज ही तो हूँ।"2.

---

1. अतीत के गर्त से - पृष्ठ 23
2. वही, पृष्ठ 19

:- अध्याय - 2 :-

:= कवि भगवती चरण वर्मा :=

:-काव्य पृष्ठ भूमि :-
----x----x----

सभ्यता और संस्कृति के जिस संक्रांतिकाल में भगवती चरण र्मा ने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया था उस समय एक संवेदनशील मन पर उथल-ल से भरे युग में इतने प्रभाव पड़ते रहे होंगे जिन्हें गद्य में ही बांधना कठिन रहा होगा। र्मा जी अपने को मूलत: उपन्यासकार मानते है ।[1] साहित्य क्षेत्र में अधिकांश लेखकों ी तरह वे भी काव्य के माध्यम से आए थे। अपने साहित्यिक कृतित्व के सम्बन्ध में चर्चा रते हुए वे यहाँ तक कह देते हैं कि कविता को तो कभी भी वस्त्र की की तरह उतारा ा सकता है। किन्तु कविता से न केवल उनकेसाहित्यिक जीवन का अथ हुआ बल्कि कभी-भी उन्होंने कविता को अपनी एक प्रवृत्ति महसूस की। उनकी स्वीकारोत्तिक -" कविता एक प्रवृत्ति है, सलिसत नहीं मानती थी।तो जब तब लिख लेता था।[2] यह पंक्ति उन्हें स्व भावत: कवि सिद्ध करती है।काव्य के क्षेत्र से गद्य के क्षेत्र में प्रवेशकर तथा स्थापित होने के बाद भी मित्रों के आग्रह पर उन्होंने कविताएं लिखीं। वर्मा जी ने छायावाद से लेकर आधुनिक काल तक का समय देखा है इसलिए उनके काव्यमें लम्बे समय के उतार-चढ़ाव की झलक दिखाई पड़ती है। उनके विचार एवं जीवन- दर्शन की सहज अभिव्यक्ति उनके काव्य में प्राप्त होतीि है।

कविता वर्मा जी की अन्तरात्मा में उसी प्रकार अनुस्यूत है कि कविता से उनका संबंध कभी विछन्न हो ही नहीं सकता है। हिंदी-कविता के विविधवादों की भूमि पर उन्होंने पदार्पण किया किन्तु अधिक समय तक वे किसी वाद की परिधि में आबद्ध नहीं रहे। उनकी अल्हड़ता, मस्ती और स्वातंन्त्र्य प्रियता इन्हें प्रत्येक बार" वादों की प्राचीरों से विमुक्त होने के लिए आकुल बनाती रही। एक के बाद दूसरे वाद की सीमा में प्रविष्ट होने और उसे ठोक बजा कर देखने के अनन्तर वे मस्ती से गुनगुनाते हुये आगे बढ़गये।--

हम दीवानों की क्या हस्ती है,आज यहाँ कल वहाँ चले।

जिस समय वर्मा जी ने काव्य रंगमंच पर पग रखा, छायावाद की लहर चलना प्रारम्भ हो गयी थी। इस नई लहर में वह भी बह चले और छायावादी कवियों में उनकी गणना होनेलगी।" पर न तो वे छायावादी काव्यानुभूति के अशरीरी आधारों के प्रति आकर्षित हुए, न उनकी अतिशय मृदुलता को ही कभी अपना सके।[3] उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि छायावाद उनके वश की बात नहीं और उन्होंने कुछ समय के लिए काव्य क्षेत्र

---

1. ।डॉ० नगेन्द्रविचार-विश्लेषण - पृष्ठ, 67 ।2। भगवती चरण वर्मा: रंगो से मोह, पृष्ठ-4
3. धूपदान : पृष्ठ 78, भगवती चरण वर्मा

से ही पलायन कर लिया ।

अपने काव्य संग्रह "मानव" तक आते-आते वर्मा जी एक प्रगतिशील कवि के रूप में परिणत होगये। उनके बौद्धिक चिंतन और सामाजिक जागरूकता ने उन्हें समाज के निम्न वर्ग के अभिशाप ग्रस्त जीवन- स्तर के प्रति संवेदन शील बनाया और वे "भैंसा गाड़ी" जैसी ख्याति लब्ध कविताओं की सृष्टि कर सके। इसी प्रकार अन्य वादों की सीमा रेखा में जाकर उन्हें देख सुन कर वर्मा जी वापिस लौट आये। "अंह" के प्रति उनका अनुराग अक्षुण्ण बना रहा। "अंह" के प्रति वे सदैव इतने ईमान दार रहे कि जबरन किसी वाद के दायरे में बधने की कभी चेष्टा न की। अंह की भावना छायावादी कवियों में न थी वे केवल व्यक्तिवादी कवि थे अंहवादी नहीं, किन्तु उनके बाद के कवियों ने अहंवाद का पोषण किया। इन अहंवादी कवियों में वर्मा जी का विशिष्ट स्थान है। वर्मा जी लिखते हैं-- आज मैं जो सोचता हूँ कि किस प्रकार अपना मस्तक ऊँचा कर मैं भूख और बेकारी से लड़ा हूँ तब मुझे कुछ शान्ती मिलती है। ------ मैं अहं का उपासक हूँ। अहम् नाम की चीज गुलामों मे नहीं मिल सकती। अंह का प्रशस्तिगान करने वाले इन कवियों ने अपनी निजी सुख-दुख और घरेलू घटनाओं को काव्य का विषय बनाया। निजी आशा-निराशा का व्यक्तिकरण, मृत्यु की कामना, शराब- साकी से दिल बहलाव इन कवियों में विशेष रूप से प्रदर्शित हुआ। यह निजी कविता ह्रासशील पूँजीवाद की परिस्थितियों की देन थी। उसे तत्कालीन पराजित पीढ़ी की कविता कह सकते हैं। - 1.

इस प्रकार वर्मा जी की कविताओं में अहंवाद की खुली अभिव्यक्ति हुई हैं। छायावादी कविता से अपना साहित्यिक जीवन आरंभ कर छायावादयुग के कल्पनालोक के ध्वंस हो जाने के अनन्तर वे दूसरे वादों की सीमा में भी प्रविष्ट हुए। इन्हे किसी "वाद" विशेष के अन्तर्गत मानना गलत है। यों रूमानी मस्ती, नियतिवाद, प्रगतिवाद, अन्तत: मानववाद इनकी विशिष्टता है ही पर वर्मा जी का संगीत वीणा या सितार का नहीं, हार्मोनियम का संगीत है उससे गमक की मांग करना ज्यादती है। - 2. वर्मा जी के काव्य में न छायावादी शिल्प सौंदर्य है, न अलंकरण और न उक्तिवैचित्र्य तथा प्रतीकों की छटा। सरल अभिधात्मकता रूप में इन्होने भावाभिव्यक्ति की है जो सरल भावाभिव्यक्ति का दूषण न होकर अलंकरण है। "विस्मृति के फूल" की भूमिका में स्वयम् वर्मा जी ने लिखा है:-

---

1. धुप्पल --- भगवती चरण वर्मा - पृष्ठ 16
2. विचार विश्लेषण : पृष्ठ 78 डॉ0 नगेन्द्र

हिन्दी के कुछ आलोचकों को मेरी कविता के साथ यह शिकायत रही है कि वे स्पष्ट हैं और गद्य के सन्निकट हैं। इस शिकायत को मैंने हमेशा अपनी प्रशंसा के रूप में ही स्वीकारा है। कला में दुरूहता के प्रति मुझमें कभी आस्था नहीं रही है, दुरूहता को मैं कला के क्षेत्र में दोष मानता हूँ। मुझे इस बात का संतोष है कि आलोचना के मापदण्ड में दुरूहता को महत्त्व देने की प्रथा अब समाप्त हो गयी है।' [1]

वर्मा जी की कविताओं में अनुभूति पक्ष का सशक्त रूप दीख पड़ता है। उनमें भाव संबंधी मस्ती, व्यंग्य-विनोद, अहंकार, नियतिवाद, हालावादी स्वर, प्रकृति सौंदर्य, मानववाद, का प्रस्तुतीकरण अत्यंत सुंदर रूप में देखने को मिलता है। उनके अभिव्यक्ति पक्ष के संदर्भ में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उनमें शिल्पाग्रह नहीं के बराबर है। उनकी कविता में न अलंकरण है और न उक्ति वैचित्र्य की छटा। सीधे- सादे शब्दों में बात को कह देना भर है। शैली, शिल्प, प्रतीक विधान और बिम्ब योजना के प्रति उनका कोई आग्रह नहीं हैं।

भगवती चरण वर्मा श्रेष्ठ कथाकार के साथ-साथ एक सुंदर कवि भी हैं। उनकी सरल उक्तियों में पाठकों का दिल झकझोर देने की क्षमता है। वे उन छायावादोत्तर कवियों में से हैं जिन्होंने कविता को अतिशय कल्पनाशीलता वायवीयता और स्वप्निल परिधि से बाहर निकालकर मांसल अनुभूतियों का क्षेत्र प्रदान किया, काव्य की दुरूह भाषा को जन भाषा के निकट पहुँचा कर कविता को जनसाधारण के लिए बोधगम्य बनाया है। इस धारा के कवि प्रायः कवि सम्मेलनों में अपनी कविताएं सुनाकर लोकप्रिय बने। उन्होंने ऐसी कवितायें लिखीं, जिन्हें साधारण जनता भी समझ सके। निश्चित ही छायावादोत्तर कवियों में उनका स्थान अप्रतिम है।

---

1. विस्मृति के फूल : पृष्ठ, 16 भगवती चरण वर्मा

:- वर्मा जी की काव्य धारणा :-
-----x-----x-----x-----

साहित्य के अनंत गगन मंडल में कितने ही महान कलाकार उदित होते हैं और अस्त हो जाते हैं किन्तु कोई-कोई ऐसा व्यक्तित्वदेखने में आता है जिसके दे दीप्यमान प्रकाश से सम्पूर्ण साहित्यिक जगत् आलोकित हो उठता है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी सहज कवि और उपन्यासकार भगवती चरण वर्मा का कुछ ऐसा ही व्यक्तित्व था। भावुक कवि-प्रतिभा भगवती बाबू को जन्म से मिली। किसी वस्तु को मौलिक ढंग से ग्रहण करने की उनके पास अपनी दृष्टि थी। उनकी रचनाओं में हमें उनके निजी अनुभव, मौलिक दृष्टि, नवीन चित्रण शैली के दर्शन होते हैं। अपनी रचनाओं में कभी वर्मा जी अपना तार्किक रूप वाला व्यक्तित्व लिये हैं तो कभी हास्य व्यंग्यकार के रूप में आये हैं क्योंकि तर्क उनकी आदत है और व्यंग्य उनकी दृष्टि। अत: वर्मा जी का काव्य सौष्ठव अनूठा बन पड़ा है। कहीं प्रणयानुभूति है तो कहीं भूख से पीड़ित जनता की कराह है-

" कवि लिखने बैठा मधुबाला
जिसकी आंखों में भोला पन,
जिसके उभरे वक्षस्थल पर
अज्ञात प्रेम का नव-स्पंदन,
कवि सहसा सिहरा, कांप उठा
सुन भूखे बच्चों का रोदन
पत्नी की पथराई आंखो पर
केंद्रित था जग का क्रंदन ,, [1]".

कवि को जीवन पर्यन्त विरोध से जूझना पड़ा। आजीवन अभावों और आपत्तियों से जूझते रहने के कारण वर्मा जी का कवि-हृदय अनुभवों और भावों से भर गया। फलत: उनके काव्य में क्षोभ, दु:ख, प्रेम, व्यंग्य, दृढ़ता, बौद्धिकता अनेक चित्र समाहित हो गये।

हिन्दी काव्य साहित्य में वैयक्तिक कविता के रचयिताओं में भी भगवती चरण वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। यह छायावाद और प्रगति वाद की मध्यवर्तिनी काव्य धारा है। इसके विकास में भगवती चरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, शिव मंगल सिंह" सुमन आदि

---

1. मेरी कवितायें - पृष्ठ - 62 " कवि का स्वप्न

अनेक कवियों ने योगप्रदान किया। प्रस्तुत अध्याय में भगवती चरण वर्मा की काव्य कृतियों का संक्षिप्त अनुशीलन से पूर्व कवि की काव्य के प्रति धारणा की चर्चा कर लेना उत्तम होगा।

:- काव्य का स्वरूप :-
---x---x---x---

वर्मा जी ने काव्य के स्वरूप का अधिक व्यवस्थित विवेचन किया है। अमृत लाल नागर के "बूँद और समुद्र" शीर्षक उपन्यास की समीक्षा करते हुये उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि सफल साहित्य की रचना के लिये कृतिकार को स्वतंत्र दृष्टिकोण रखना चाहिये। वाद-विशेष के बंधन में आबद्ध होकर वह अपने भावों को सहज अभिव्यक्ति नहीं दे पाता है। " वादों का विरोध अथवा प्रतिपादन आज के दिन साहित्यिक कलाकारों की सबसे बड़ी कमजोरी बन गई है। "[1] जब कवि हृदय की सहज आस्था के साथ काव्य-प्रणयन करता है, तभी उसकी रचना युगान्तकारी तत्वों से सम्पन्न हो पाती है। " महान कलाकार युग का निर्माता हुआ करता है। "[2]

अत: कवि को जीवन के मूल्यों से उदासीन नहीं होना-चाहिये। वर्मा जी का विचार है कि कर्मरत मानव-जीवन की अभिव्यक्ति में सजीवता और स्वस्थता का तो अभाव हो ही नहीं सकता। वर्मा जी ने महादेवी जी की "यामा" की समीक्षा करते हुये इस तथ्य को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है -- "कला में ताजगी की बहुत बड़ी आवश्यकता है। उसी कलाकार की देन आज महत्त्व की समझी जायेगी जो जिन्दगी के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाल सके। "[3]

काव्य में जीवन की स्वस्थ, सजीव और प्रेरणादायक अभिव्यक्ति कवि मात्र के लिये आदर्श रही हैं। किन्तु कवि का महत्त्व उस बात में है कि वह इस सिद्धान्त कथन को स्वीकार करते समय मौलिक भाव की गरिमा को न भूल जायें। वस्तुत: " साहित्य का काम है सृजन और सृजन में नवीनता होनी चाहिये "[4] अत: यह स्पष्ट है कि जीवन की स्वस्थ्य, स्वाभाविक और मौलिक अभिव्यक्ति ही काव्य का आदर्श है।

---

1. मानव, भूमिका पृष्ठ- 7
2. मानव, भूमिका पृष्ठ- 9
3. विशाल भारत जनवरी 1940 पृष्ठ - 96
4. मानव, भूमिका पृष्ठ- 14

अनेक कवियों ने योगदान किया। प्रस्तुत अध्याय में भगवती चरण वर्मा की काव्य कृतियों का संक्षिप्त अनुशीलन से पूर्व कवि की काव्य के प्रति धारणा की चर्चा कर लेना उत्तम होगा।

:- काव्य का स्वरूप :-
---x---x---x---

वर्मा जी ने काव्य के स्वरूप का अधिक व्यवस्थित विवेचन किया है। अमृत लाल नागर के "बूँद और समुद्र" शीर्षक उपन्यास की समीक्षा करते हुये उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि सफल साहित्य की रचना के लिये कृतिकार को स्वतंत्र दृष्टिकोण रखना चाहिये। वाद-विशेष के बंधन में आबद्ध होकर वह अपने भावों को सहज अभिव्यक्ति नहीं दे पाता है। " वादों का विरोध अथवा प्रतिपादन आज के दिन साहित्यिक कलाकारों की सबसे बड़ी कमजोरी बन गई है। "[1] जब कवि हृदय की सहज आस्था के साथ काव्य-प्रणयन करता है, तभी उसकी रचना युगान्तकारी तत्वों से सम्पन्न हो पाती है। " महान कलाकार युग का निर्माता हुआ करता है। "[2]

अत: कवि को जीवन के मूल्यों से उदासीन नहीं होना-चाहिये। वर्मा जी का विचार है कि कर्मरत मानव-जीवन की अभिव्यक्ति में सजीवता और स्वस्थता का तो अभाव हो ही नहीं सकता। वर्मा जी ने महादेवी जी की "यामा" की समीक्षा करते हुये इस तथ्य को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है -- "कला में ताजगी की बहुत बड़ी आवश्यकता है। उसी कलाकार की देन आज महत्त्व की समझी जायेगी जो जिन्दगी के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाल सके। "[3]

काव्य में जीवन की स्वस्थ, सजीव और प्रेरणादायक अभिव्यक्ति कवि मात्र के लिये आदर्श रही हैं। किन्तु कवि का महत्त्व उस बात में है कि वह इस सिद्धान्त कथन को स्वीकार करते समय मौलिक भाव की गरिमा को न भूल जायें। वस्तुत: " साहित्य का काम है सृजन और सृजन में नवीनता होनी चाहिये "[4] अत: यह स्पष्ट है कि जीवन की स्वस्थ्य, स्वाभाविक और मौलिक अभिव्यक्ति ही काव्य का आदर्श है।

---

1. मानव, भूमिका पृष्ठ- 7
2. मानव, भूमिका पृष्ठ- 9
3. विशाल भारत जनवरी 1940 पृष्ठ - 96
4. मानव, भूमिका पृष्ठ- 14

वर्मा जी ने अनुभूति की सजीवता और मौलिकता के उपरान्त स्पष्टता को भी काव्य का तीसरा गुण माना है। अस्पष्टता का मूल कारण है अनुभूति की अपरिपक्वता वर्माजी ने इस गुण के निर्वाह को काव्य की प्रमुख विशेषता माना है। " मैं तो कभी भी उस काव्य को जिसमें भाषा तथा भाव की स्पष्टता न हो, सफल काव्य मानने को तैयार नहीं, क्योंकि ऐसी हालत में कला के ध्येय की भी हत्या हो जाती है।[1]" इसके अतिरिक्त वर्माजी ने स्वाभाविकता से युक्त कविता को साधारणीकरण में सहायक माना है। उनके अनुसार --- " कला का एक मात्र उद्देश्य संवेदना की सृष्टि है अपनी भावना में दूसरों को लय कर देना।"[2] जब कोई प्रतिभाशाली कवि समाधि की स्थिति प्राप्त होने पर मन में उठने वाली भाव-तरंगों को ज्यों का त्यों अंकित कर देता है तभी वह सच्ची कविता की रचना करता है। ऐसी कविता भावक के चित्त को अपने में बांध लेती है और वह रस के सागर में डूबने-उतराने लगता है। वर्मा जी ने प्रेम संगीत की भूमिका में स्पष्ट लिखा है- " जितनी सफलता के साथ एक कवि अपनी भावना को, उसी सम्मोहन, उसी प्रखरता, उसी प्रभाव के साथ जैसी उसमें थी, दूसरे पर व्यक्त कर देता है, दूसरे को अपने में तन्मय कर देता है, वह उतना ही सफल है।"[3]

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि भगवती चरण वर्मा काव्य में अनुभूति की तीव्रता, स्वाभाविकता, और स्पष्टता का होना आवश्यक मानते हैं। इस गुणों के अतिरिक्त उन्होंने अपने समकालीन कवि "दिनकर" की भांति भावना को वैज्ञानिक दृष्टि से संतुलित रूप से प्रस्तुत करने को भी काव्य की विशेषता माना है। जब कवि के चित्त में सजगता की स्थिति होती है, तब वह वस्तु -तत्त्व को अधिक निकट से परख पाता है। उसकी उक्ति में वैज्ञानिक स्पष्टता भी तभी आती है। वर्मा जी ने इस धारणा को इस प्रकार प्रस्तुत किया है- " इन कविताओं में मैंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखा है- हो सकता है कि इस दृष्टिकोण को काव्य की कमजोरी समझा जाय, पर मेरे मत से इस वैज्ञानिक युग में कविता को वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करके ही- सशक्त बनाया जा सकता है। "4" इस प्रकार वर्मा जी के विचार से काव्य में वैज्ञानिकता लाना कोई आपत्ति की बात नहीं है किन्तु

---

1. सरस्वती जून 1958 पृष्ठ - 195
2. सरस्वती मार्च 1958 पृष्ठ - 169
3. प्रेम संगीत, दो शब्द पृष्ठ - 14
4. त्रिपथगा, प्रस्तावना से उद्धृत

कविता की भावात्मक सत्ता को हानि नहीं पहुँचनी चाहिये। वर्मा जी की काव्य रचनाओं में उपरोक्त धारणाओं का समावेश हुआ है।

:- काव्य की आत्मा :-
----x----x-----

भगवती चरण वर्मा ने काव्य में रस की प्रधानता को काव्य की आत्मा माना है। किन्तु वे ध्वनि संगीत के महत्त्व के प्रति भी उतने ही सतर्क रहे हैं जहाँ उन्होंने "महाकाल" शीर्षक काव्य रूपक के लिये यह कहा कि-- "यह एक काव्य है और कविता होने के नाते इसमें रस का परिपाक है जो इसके सुगम होने में सहायक होगा।"[1] वहाँ "यामा" शीर्षक लेख में इससे सर्वथा विपरीत बात कह डाली है-- "हम यह मानते हैं कि कविता में अर्थ का होना आवश्यक है, पर यदि बिना अर्थ पर ध्यान दिये हुये ध्वनि और संगीत से ही कविता द्वारा एक भावना प्रकट हो सकती है तो अर्थहीनता का दोष क्षम्य हो जाता है।"[2]

स्पष्ट है कि प्रथम उद्धरण में रस के महत्त्व की घोषणा करने पर भी द्वितीय अवतरण में संगीत को प्रमुखता दी गई है। इस उक्तियों को समंजित करते हुये यही कहना ठीक होगा कि काव्य में रस प्रमुख है, किन्तु कवि को संगीत के प्रति भी सतर्क रहना चाहिये। काव्य में रस की महिमा अन्यत्र भी कवि ने वर्णित की है -- " कला में जो कृत्रिम है-- छंद भाषा आदि वह कला का शरीर है। उसका प्राण है कवि की भावना अथवा कवि का प्राण।"[3] भावना (रस) की तुलना में भाषा को महत्त्व न देकर यहाँ रीति-सिद्धांत की प्रमुखता का निषेध किया गया है, जो उचित ही है। वर्मा जी ने रीति का एकान्त तिरस्कार न कर उसे रस के सहायक धर्म के रूप में मान्यता दी है--" जितना ही अधिक रस उत्पन्न किया जा सके उतनी ही अच्छी कविता होगी ------ कविता को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, अन्तररूप और बहिरूप और कविता में रस उत्पन्न करने के लिये उन दोनों रूपों के सुन्दर निर्वाह की आवश्यकता है।"[4]

"मधुकण" व "प्रेम संगीत" में उपर्युक्त धारण का ध्यान रख कर कवि वर्मा ने कवि के रूप में अच्छी सफलता प्राप्त की है।

---

1. त्रिपथगा - पृष्ठ 95
2. विशाल भारत 1940 पृष्ठ 95
3. प्रेम संगीत दो शब्द - पृष्ठ 16
4. मधुकण भूमिका पृष्ठ 25

:- काव्य- हेतु :-
-----x-------

कवि वर्मा काव्य-हेतु की समीक्षा के प्रति पर्याप्त सजग रहे हैं। वर्मा जी के शब्दों में- "कला का स्त्रोत अन्तर्प्रेरणा में है।"[1] प्रतिभा को कवि का अर्जित गुण न मानकर उन्होंने उसे प्रकृत्ति प्रदत्त स्वाभाविक विशेषता के रूप में ग्रहणकिया हैं यथा-- "मेरा विचार है कि कवित्व प्रतिभा मनुष्य में एक प्राकृतिक गुण हुआ करती है। यह गुण अध्ययन से अथवा प्रयत्न से नहीं उत्पन्न किया जा सकता है।"[2]

इस युक्ति में अभ्यास के काव्य-हेतुत्व को अस्वीकार करने के साथ-साथ व्युत्पत्ति का भी तिरस्कार किया गया है। किन्तु यह भगवती बाबू की प्रतिनिधि मान्यता नहीं है। प्रयत्नपूर्वक रचित कविता की निंदा तो उन्हें अन्यत्र भी अभीष्ट रही है, किन्तु कवि की चेतना पर अध्ययन के प्रभाव को उन्होंने स्वीकार कर लिया है। प्रयत्नसाध्य कविता के प्रति उनकी निम्नांकित उक्ति से यही स्पष्ट होता है कि काव्य में निसर्ग सिद्ध प्रतिभा की दीप्ति ही प्रधान है।--

" कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि कोई व्यक्ति लगातार छंदकहते चले जाते हैं। उस स्थान पर वास्तविकता यह होती है कि लगातार परिश्रम करने के बाद लोग छंद बड़ी सरलता पूर्वक बना लेते हैं। पर ऐसी स्थिति में हमारा यह कहना कि कविता स्वयं ही प्राकृतिक है, अनुचित होगा।"[3]

इस कथन को स्वीकार करने के लिये प्रतिभा की दो कोटियां माननी होगी। शुद्ध प्रतिभा के बल पर रचित कविताओं में स्वाभाविक गरिमा होगी, क्योंकि प्रतिभा कवि के दिव्य चक्षुओं के उन्मीलन में सहायक होती है। इसके विपरीत प्रयास प्रेरित रचना मे बाह्य शोभा के विधायक अंग तो होंगे, किन्तु उनमें आन्तरिक औदात्य का उचित निर्वाह न हो सकेगा। "मैथिली शरण गुप्त" लेख जो कि भगवती चरण वर्मा ने 1958 में लिखा था। इस लेख की पंक्तियां इसी आशय से लिखीं गई हैं कि कवि उनकी रचनाओं के अध्ययन से प्रभावित है-- "मुझे कवि बनने की प्रेरणा मैथिलीशरण गुप्त से ही मिली, वे एक तरह से मेरे गुरू हैं।"[4]

---

1. सरस्वती अप्रैल 1958 पृष्ठ - 247
2. मानव भूमिका - पृष्ठ - 21
3. मधुकण भूमिका , पृष्ठ - 24
4. आजकल मई 1958 पृष्ठ - 27

उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी ने प्रतिभा की भाँति व्युत्पत्ति के महत्त्व को भी स्वीकार किया है। उन्होंने प्रणय के प्रेरणादायक स्वरूप को भी मान्यता दी है। प्रियतमा के प्रति कथित यह उक्ति इसकी प्रमाण है--

" पागल मैं, कहता हूँ अपने,
तुमने ये जितने गीत लिखे ।,"[1]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि भगवती चरण वर्मा की काव्य-हेतु विषयक मान्यतायें हरिवंश राय बच्चन की मान्यताओं से मेल रखती हैं। वर्मा जी की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने मत को बिना किसी संकोच के व्यक्त किया है।

:- काव्य- प्रयोजन :-
----x----x----

भगवती चरण वर्मा ने काव्य के प्रयोजनों का अत्यंत संक्षिप्त विवेचन किया है। इन्होंने काव्य के अंतरिक प्रयोजन के अतिरिक्त उसके वाह्य प्रयोजनों की भी चर्चा की है। उन्होंने यह- प्रतिपादित किया कि काव्य में रचयिता और प्रमाता को आनंद प्राप्त होता हैं। उदाहरणार्थ " नई कविता तथा साहित्य" शीर्षक लेख का यह अंश देखियें- " कविता का ध्येय आत्म-सन्तुष्टि ही नहीं है, कविता मुख्यता दूसरों के मनोरंजन के लिये लिखी जाती है। "2" यहाँ मनोरंजन से कवि का अभिप्राय मन में विशिष्ट उल्लास की सृष्टि से होना चाहिये। क्यों कि स्थूल रूचियों की सम्पूर्ति काव्य का लक्ष्य नहीं है। स्वांत: सुख को महत्त्व देने वाला कवि साधारण मनोरंजन को साहित्यकार का अभीष्ट मान भी नहीं सकता। यद्यपि उपर्युक्त उद्धरण में आत्म सुख की अपेक्षा पर-सुख को अधिक गौरव दिया गया है, किन्तु इस संबंध में वर्मा जी का मत एकरूप नही है। "साहित्य का स्त्रोत" शीर्षक लेख में स्वान्त: सुख को ही काव्य का फल माना गया है--

" मै बहुजन हिताय वाले सिद्धान्त को स्वीकार अवश्य करता हूँ पर इस बहुजन हिताय के सिद्धान्त को साहित्यका स्त्रोत मानने को किसी भी हालत में तैयार नहीं हूँ. केवल समाज द्वारा उस साहित्य की स्वीकृति बहुजन हिताय वाले तत्त्व पर निर्भर है।"[3]

---

1. मानव - पृष्ठ - 25
2. आजकल जुलाई पृष्ठ - 44 सन् 1956
3. सरस्वती ।1958 अप्रैल । - पृष्ठ - 248

यहाँ स्वान्तः सुख के प्रति आवश्यकता से अधिक आग्रह प्रदर्शित किया गया है। किन्तु इस पर भी कवि की पूर्ण आस्था नहीं है। इस अवतरण में लोक हित को स्वान्तः सुख के बाद स्थान दिया गया है, किन्तु साथ ही उन्हें यह भी विश्वास है कि "जो साहित्यलोक-हित और जन कल्याण की उपेक्षा करता है, वह निष्प्राण है। "[1]

स्पष्ट है कवि वर्मा ने इन धारणाओं के प्रतिपादन में अन्तर्वैषम्य का परिचय दिया है। काव्य में लोक हित के महत्त्व को भी स्वीकारा है। कवि वर्मा इस समस्या का समाधान करने में असफल रहे हैं। कि काव्य से आनंद की उपलब्धि मुख्य है अथवा लोक हित का विधान। वस्तुतः कवि को इन प्रश्नों में उलझना ही नहीं चाहिये था। तथ्य यह है कि यह दोनों ही काव्य के प्रयोजन हैं कवि इनमें से किसी की भी उपेक्षा नहीं कर सकता। स्वान्तः सुख के लिये रचित कविता का लोक मंगल से सहज संबंध होना चाहिये। जन हित के विधान में सहायक कृति केवल उपदेशात्मक न होकर आनंद भाव से युक्त होनी चाहिये।

भगवती चरण वर्मा ने अर्थ- मोह को भी साहित्यकार के लिये त्याज्य माना है, किन्तु स्वाभाविक रूप में प्राप्त होने वाली आर्थिक सुविधाओं का तिरष्कार उन्हें अभीष्ट नहीं। इस संबंध में उनका दृष्टि कोण अत्यंत स्पष्ट है-- " हरेक कला की भाँति साहित्य को भी अधिकांश में आजीविका का साधन मानता हूँ।"[2]

यह निर्विवाद है कि काव्य रचना का उद्देश्य केवल आजीविका की व्यवस्था नहीं है। अलौकिक आनंद और लोक संग्रह जैसे महत्तर लक्ष्य ही उसके स्वरूप विधायक हैं। धन की उपलब्धि तो काव्य का गौण फल है, उसकी सिद्धि युग धर्म के निर्वाह में है। वर्मा जी काव्य को आजीविका का साधन मानने पर भी उसके इस अन्तर्रहस्य के प्रति जागरूक रहे हैं। उदाहरणार्थ "साहित्य का प्रभाव" शीर्षक लेख में यह वाक्य देखिये--" कलाओं में केवल साहित्य ऐसा है जिसका उद्देश्य मात्र आजीविका नहीं होता, वह इस लिये कि बौद्धिक होने के कारण साहित्य में विचार नेतृत्व और युग निर्माण की क्षमता है।"[3]

---

1. सरस्वती जुलाई, 1958 पृष्ठ - 16
2. सरस्वती मई 1958 पृष्ठ 32।
3. आलोचना, अप्रैल 1953 पृष्ठ 66

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि वर्मा कवि-जीवन में अर्थ साधन मानते है न कि साध्य। वर्मा जी के मत से "कला के सृजन का एक गौण उद्देश्य अर्थ का उपार्जन होगा।"[1] उसे मुख्य काव्य फल मानने को वे स्वयं प्रस्तुत नहीं हैं।

काव्य से सम्पत्ति लाभ की उपेक्षा नहीं की जा सकती, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि "जो साहित्यकार सुख सुविधा के लिये बिक जाय, वह सृष्टा साहित्यकार नहीं।"[2] समाज के लिये उपयोगी अनुभूति और आंतरिक उल्लास के अभाव में काव्य-रचना का दम दम्भ के अतिरिक्त और कुछ नहीं। "मानप्राप्ति, आदर, धन, वैभव ये सब शारीरिक तत्त्व है, आत्मिक तत्त्व नहीं है और मेरे मत से इन चीजों को प्राप्त करने के लियें लिखा गया साहित्य स्वांतः सुखाय नहीं।

:= काव्य के तत्त्व :-
-----x-----x-----

भगवती चरण वर्मा ने काव्य के तत्त्वों का अत्यंत संक्षिप्त विवरण दिया है। उन्होंने अधिकांश कवियों की भांति अनुभूति को कविता का आंतरिक तत्त्वमाना है। उनके अनुसार - "अनुभूति का तत्त्व साहित्य का मूल तत्त्व है, क्योंकि इसी में आनंद का सृजन है। अनुभव प्रेरित रचना में जिस स्वाभाविकता और सहज स्निग्धता की स्थिति रहती है वह पाठक के चित्त को इस लोक में अवश्य ले जाती है। वर्मा जी ने हमेशा परिस्थितियों के चक्रव्यूह में पड़ कर ही अनुभव जनित रचनायें की है। जीवन को निकट से देखने वाला साहित्यकार कृत्रिमता का पोषक नहींहोता। उन्होंने अनुभव जनित आनंद को काव्य का तत्त्व मानकर उसे ज्ञान की बोझिलता से दूर रखना चाहा है --

" कला का संबंध मन से है, मन का क्षेत्र अनुभूति है ज्ञान नहीं।"[3] स्पष्ट है कि कवि ने चिंतन को अनुभूति से गौण माना है। वास्तव में वर्मा जी ने पंत की ही भांति सत्य (अनुभूति) और शिव (चिंतन) को सुन्दर में निहित मानकर अन्यत्र यही विचार व्यक्त किये है --" सुन्दर शब्द में सत्य और शिव की मान्यता को भी मैं निहित समझता हूँ। जो जो सत्य नहीं है या जो कल्याणकारी नहीं है, वह सुन्दर हो ही नहीं सकता।"[4]

---

1. सरस्वती दिसम्बर 1954 पृष्ठ 386
2. प्रसारिका अक्टूबर 1956 पृष्ठ 17
3. सरस्वती अप्रैल 1958 पृष्ठ - 249
4. सरस्वती अप्रैल 1958 पृष्ठ - 248
5. साहित्य के सिद्धान्त और रूप पृष्ठ - 46

उपर्युक्त से सिद्ध है कि सत्य शिव और सुन्दर की सहकारिता को ही वर्मा जी काव्य का लक्ष्य मानते हैं।

:- काव्य में वर्ण्य - विषय :-
----x----x----x-----

भगवती चरण वर्मा ने मानव-जीवन के अनुभूति जन्य उल्लेख को प्रमुख काव्य- वर्ण्य माना है। इस संबंध में प्रत्यक्ष उक्तियां काव्य के तत्त्वों की विवेचना करते समय उद्धृत की जा चुकी हैं। उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से भी यह प्रतिपादित किया है कि कवि को जग के अभावों का उल्लेख करना चाहिये "कवि का स्वप्न" और "कवि जी" शीर्षक कविताओं में प्रकृति और लौकिक प्रेम की कल्पनाओं में मग्न कवि को भौतिक अभावों की भूमि पर उतरने का संदेश दिया है। उदाहरण स्वरूप इन कविताओं से निम्न लिखित अवतरण देखिये-

1. " कविलिखने बैठा मधु वाला
जिसकी आँखों में भोलापन,
*   ×   ×   ×
कवि सहसा सिहरा, कांप उठा
सुन भूखे बच्चों का रोदन । .1.

2. " उस दिन मैं कुछ उखड़ा साथा
कुछ डटे हुये से थे कवि जी,
मैं सुनता था जग का रोना
वे कहने पर थे तुले निजी । .2.

इन अवतरणों में कल्पना के अतिरेक के स्थान पर सामाजिक अनुभूतियों की समृद्धि को कवि का धर्म माना गया है। यह दृष्टि कोण कवि पर प्रगतिवादी प्रभाव का फल है। काव्य में समाज- दर्शन को अभिव्यक्ति देने में तो कुछ भी आपत्ति नहीं हो सकती, किन्तु कल्पना का सन्तुलित आधार भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। कवि वर्मा ने उपर्युक्त अवतरणों में कल्पना की उपेक्षा की है। यथार्थ में अनुभूति प्रधान विषय को भी कल्पना के स्पर्श से आलोकित करना कवि के लिये स्वाभाविक है। यह कवि की अपनी इच्छा है कि वह जग

---

1. मानव - पृष्ठ - 40
2. रूपाभ - फरवरी - ।मानव । पृष्ठ - 52

ीवन के दैन्य की अभिव्यक्ति को विशेष महत्त्व दे, किन्तु कल्पना का एकान्त तिरस्कार हाँ भी नहीं हो सकता, कम से कम कवि भावी सांस्कृतिक स्वर्णोदय की कल्पना तो कर ही सकता है।

भगवती चरण वर्मा ने जीवन की स्वस्थ्य स्वाभाविक एवं भौतिक अभिव्यक्ति लगभग सभी काव्य रचनाओं में की है। उनकी प्रथम सशक्त काव्य रचना "मधुकण" में प्रणय अनुभूति के भी चित्र हैं तो सामाजिक यथार्थ के भी चित्र उकेरे है। किन्तु "प्रेम संगीत" में अधिकांशतः प्रणय - भावना को लेकर रस निरूपण करके काव्य में अन्तरंग सौन्दर्य का विधान किया है। कल्पना के स्थान पर अनुभूति की तीव्रता के प्रति वे "मधुकण" के काल से ही सजग रहे हैं "प्रेम संगीत" में मुख्यतः एकांतिक अनुभवों को स्थान देकर भी उन्होंने लोक संबद्ध-अनुभवों को अपनी कृति में स्थान दिया है। "मानव" की अनेक कवितायें भैंसागाड़ी, ट्राम, राजासाहब का वायुयान, विषमता आदि में भौतिक अभावों को महत्त्व देकर उन्हें वैज्ञानिक ढंग से निरूपित करने का प्रयास किया गया है। वर्मा जी की काव्य धारणा स्पष्ट हो जाने के बाद अब हम उनकी काव्य कृतियों का अनुशीलन एवं काव्य-सौष्ठव संक्षिप्त रूप से पृथक् पृथक् करेंगे।

:- रंगों से मोह :-

----x-----x---

भगवती चरण वर्मा को कवि से अधिक उपन्यासकार के रूप में जाना जाता है। किन्तु यह नितांत सत्य है कि उनका कवि हृदय 10 वर्ष लगातार सक्रिय रहा। उनका प्रथम संग्रह "मधुकण" 1932 में निकला था। उसके बाद "प्रेम संगीत" 1937 में प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् 3 वर्ष बाद एक सशक्त प्रगतिशील रचना "मानव" 1940 में साहित्यांगन में आई। इसके पश्चात् वर्मा जी प्रगतिशील रचना के सृजन में यथार्थ की भाव-भूमियों में विचारण करते करते सीधी अभिव्यक्ति के लिये उपन्यासों में आ गये। पद्य से गद्य में आने पर एक लम्बे अन्तराल के बाद भगवती बाबू 22 वर्षों के बाद पुनः काव्य

लेखन को उत्सुक हुये जिसके फल स्वरूप 1962 में इनकी "रंगों से मोह" काव्य कृति प्रकाशित हुई।

अपने अन्दर के कवि रूप को बिल्कुल मौन कर देना वर्मा जी के लिये संभव नहीं हुआ। 22 वर्षों के बाद वर्मा जी ने अनुपम कवितायें समाज को अर्पित करके हिन्दी काव्य जगत् का गौरव बढ़ाया। "रंगो से मोह" की लगभग एक दर्जन कवितायें किसी अवसर से संबद्ध न होकर कवि के चिंतन मनन की उपज हैं। मानव की समस्यायें हल नहीं हुई, उसका संघर्ष भी नहीं समाप्त हुआ, कुछ ऐसा परिवर्तन भी नहीं हुआ जिसे संतोष जनक कहा जा सके और कुछ ऐसी उपलब्धियां भी नहीं हुई जिन पर गर्व किया जा सके, पर अनुभव से भीग कर भारी हो जाने का भाव अवश्य उनमें आ गया है। इस भारी होने में एक झुकाव, एक विनम्रता आ गई है। जो प्राय: सभी प्रकार के संघर्षों की अंतिम परिणति है-

" अर्पित मेरा अस्तित्व इसे स्वीकार करो,
मां तू जाने तुझको अर्पित मेरा सारा जीवन है।
शत-शत असफलताओं से है,
अभिशापित मेरा मस्तक नत,
अपना सर नीचा कर मानव।"

भगवतीचरण वर्मा के समर्पण में मानवता के अनिवार्य भाग्य की एक ऐसी त्रासदी है जिसका कटु अनुभव आज के युग में पूर्व- पश्चिम सब ओर किया जा रहा है। यह सर्वविदित है कि विभिन्न देश कालों में कविता के संबंध में विभिन्न विरोधी स्थापनायें की गई फिर भी कविता कविता होने के कारण मान पाती है, पहचानी जाती है

"रंगो से मोह " कविता में भगवती बाबू बोली- ठोली के कवि और जीवन के दार्शनिक के रूप में उपस्थित हुये हैं -

" मुझको रंगो से मोह,
नहीं फूलों से।

मुझको धारा से प्रीति,
नहीं कूलों से।
मैं कलियों से भयगीत, नहीं शूलों से।
जो सीमा से संकुचित और लांछित हैं
मैं उसी ज्ञान से त्रस्त नहीं भूलों से। "1"

इस रचना में प्रेम काव्य के संयोग और वियोग रूपी उभय पक्षों को लेकर कई सुन्दर प्रगीत हैं। विनोद और व्यंग्य से भरी चुटकियाँ भी इस संग्रह में संकलित है। उनका काव्य-सौष्ठव जीवन की रंग-बिरंगी अनुभूतियों का सन्निकर्ष है।

" रंगों से मोह" की प्रस्तावना में वर्मा जी ने लिखा है--- " एक बहुत लम्बे अर्से के बाद मैं अपनी कविताओं का यह संग्रह प्रस्तुत कर रहा हूँ। वैसे मैने अपना साहित्यिक जीवन कवि की हैसियत से प्रारंभ किया है पर आज मैं भूल सा गया हूँ कि मै कवि हूँ। ----- मै पहले ही कह चुका हूँ कि यह युग कविता का नहीं है। कविता को अपने को पुनः स्थापित करना पड़ेगा, भावनात्मक अभिव्यक्ति के क्षेत्र में। मैं न इतना समर्थ हूँ न इतना सक्षम कि यह कर सकूँ। पर मुझे पूरा विश्वास है कि कविता को भावनात्मक क्षेत्र में पुनः स्थापित करने वाले कवियों की परम्परा मिटेगी नहीं। वह निकट भविष्य में आयेगी। पुनः स्थापना से पहले कविता को जैसेतैसे जीवित रखने का क्षीण प्रयत्न मैं कर रहा हूँ। इस बात को ध्यान में रखकर मेरी कवितायें पढ़ी जायें। मेरी केवल इतनी प्रार्थना है। "

------ भगवती चरण वर्मा जी की उपर्युक्त पंक्तियां उनके भावुक हृदय के प्रति समुदार दृष्टिकोण रखती है। कविता का पारखी कहेगा कि आज की कविता में जब तत्व या सार रह ही नहीं गया, तो क्यों वह उसके प्रति सहृदय हो। उत्तर में भगवती बाबू उपेक्षा की राख में दबी हुई भावना प्रधान कविता की चिनगारी के बारे में कहते हैं---

" नजर तुम्हारी जाली है
सिक्का तो टकसाली है।
इस सिक्के को गढ़ा प्रकृति ने है
इस धरती की माटी से।
इस सिक्के को गढ़ा पुरुष ने
अपनी ही परिपाटी से

---

1. रंगों से मोह - पृष्ठ- 25

इस सिक्के में दोष देखना
केवल खाम ख्याली है।

रंगों से मोहमेंबाह्य वस्तु के प्रति कवि ने जहाँ अपना कवि सापेक्ष दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। वहाँ वह अन्तर्बाह्य मानव-जागत् को एक इकाई मानकर सबकी ओर से पीड़ा का अनुभव करता है। आज जीवन यात्रा ही कुछ ऐसी हो गई है--

" चलना है बहुत कठिन, पिण्डली भर जाती है

बाहर आलोकित रवि है, शशि है, तारे हैं, हम अपने अंदर अँधियारे से हारे है।"

भगवती बाबू मानव की सामर्थ्य और सीमा को जानते हैं। सामर्थ्य के कारण विचार वाणी में उग्र और प्रखर तथा आचरण और मानवीय संबंधों में उदार और सहनु-शील हैं। कवि के नाते वे आस्थावान और आस्तिक हैं। नियति और प्रकृति को मनुष्य के खिलौने न मानकर वे मनुष्य को ही इनका खिलौना मानते हैं। अपने स्वभाव के अनुरूप वे मनुष्यों के अपने- अपने नियत कर्म और उद्योग के भी विश्वासी हैं इसी नाते वे अपने आपको तथा अन्य मानव बंधुओं का समझाते हैं --

" देखो, सोचो समझो,
सुनो, गुनो और जानो।
इसको उसको संभव हो
निज को पहचानो ।। "
लेकिन अपना चेहरा
जैसा है रहने दो।
जीवन की धारा में,
अपने को बहने दो। "

। रंगों से मोह ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कविता के प्रति मोह भंग होता देख स्वयं वर्मा जी ने कहा है कि-- ज्ञान-वर्द्धक, सूचना प्रधान, मनोरंजक और बहुत सा साहित्य आज पढ़ा जाता है पर कविता नहीं पढ़ी जाती। कविता और पाठक के बीच भावों का आदान-प्रदान

बहुत कम हो गया है। आज कविता जीवन से प्रभावित भले ही हो।जीवन को प्रभावित नहीं करती। कवि अपने समाज का उपयोगी सदस्य नहीं रह गया है। हमारे उपयोगिता वादी दर्शन का यह दूषण है। आज की कविता पर इसकी प्रतिक्रिया हुई है। अनेक संज्ञाशील कवियों को ऐसा लगता है कि जैसे कवि के नाते उनका अपमान हो रहा है। राज पुरूष राजनेता या सफल व्यापारी इनमें से किसी के कृपापात्र के रूप में भले ही वह विशिष्ट व्यक्ति बन जायें। परिणाम यह होता है कि कवि को अपने कवि कर्म में भी रूचि नहीं रहा जाती।" भगवती चरण वर्मा की यह पंक्तियां कवि की मनः स्थिति को प्रकट करती हैं।--

" जब तुम कहते हो मैं लिखूँ
मेरे कवि की कुचली आत्मा
भर कर ठंडा निःश्वास
तब हो जाती मर्माहत। "

। रंगों से मोह ।

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि वर्मा जी अपने खरे पन में गर्वीले और स्वाभिमानी व्यक्ति है। अपने भाव-कर्म और अस्तित्व को कवि ने आस्था और निश्चय के साथ महती शक्ति को अर्पित कर दिया है। किन्तु वह महती शक्ति के मंदिर में ही बंद होकर बैठ गये हों ऐसी बात नहीं प्रकृति के बल को भी वे पहचानते हैं--

" समर्थ जब मनुष्य कह उठा कि मान दो
मुझे महान मान दो।
प्रकृति पुकार तब उठी,
अरे कि शीश दान दो
समर्थ, शीश दान दो।"

"रंगों से मोह" कविता में भगवती बाबू बोली बोली के कवि और जीवन के दार्शनिक के रूप में उपस्थित हुये हैं। "मैं कलियां से भयभीत नहीं शूलों से" कहकर जीवन जगत् की वास्तविकता को उजागर करने में सक्षम रहे हैं। प्रेम काव्य के संयोग और वियोग रूपी उभय पक्षों को लेकर कई सुंदर प्रगीत इस संग्रह में हैं तथा विनोद और व्यंग्य से भरी अनेक चुटकियां भी "रंगोंसे मोह " काव्य कृति में संकलित हैं।

भगवती चरण वर्मा का साहित्यिक जीवन छायावादी युग से प्रारंभ हुआ था। अत: इनकी प्रारंभिक कवितायें "प्रेम की मस्ती" से परिपूर्ण हैं। परवर्ती युग में कवि समाज की दुर्दशा से पीड़ित है, अत: कविताओं में कटु- व्यंग्य की ध्वनि है। चूंकि "रंगो से मोह" रचना वर्मा जी की अंतिम काव्य कृति है यह 1962 में प्रकाशित हुई थी। अत: इस कृति में जीवन की अनेकानेक वास्तविकताओं का निरूपण व्यंग्य के माध्यम से किया गया है। इनकी व्यंग्यात्मक कविताओं में बिम्बों का प्रचुर मात्र में प्रयोग किया गया है। बिम्ब विधान की दृष्टि से "रंगो से मोह" काव्य कृति-महत्त्वपूर्ण है। वर्मा जी की व्यंग्यात्मक रचनायें फकीराना ठाठ लिये होती हैं जिसमें कवि व्यंग्य भी करता चलता है और अपने फक्कड़-पन को भी बनाये रखता है। "चहल पहल की इस नगरी में" दोस्त एक भी नहीं जहाँ पर" "उल्टी सीधी" नजर तुम्हारी जाली है। आदि वर्मा जी की कुछ ऐसी ही कवितायें हैं।

" दोस्त एक भी नहीं जहां पर" में जीवन की कटु सच्चाइयों को व्यक्त करते हुये मान और अपमान के घृणा हिंसा से दूषित सहमी सांसों और शैतान का बाना धारण किये हुये मनुष्य की विडम्बना को उभारने का प्रयत्न है। "रंगो से मोह" में एक कविता में माया मोह, धन वैभव में डूबे हुये प्राणियों की स्थिति पर व्यंग्य किया गया है। संचय लोलुपों के चित्र भी इस रचना में प्रदर्शित किये गये हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि "रंगो से मोह" काव्य कृति में वर्मा जी ने सादगी एवं व्यंग्य के माध्यम से गम्भीर बातों को एकदम सहजतासे व्यक्त किया है। हल्की बिल्कुल निरर्थक सी लगने वाली कवितायें भी अत्यंत अर्थवान एवं मार्मिक बन गई हैं जिसका अनुमान निम्न पंक्ति से लगाया जा सकता है।

> " जरा पहले तुम अपनी सीमा तो नाप लो
> अपने उर की गहराई तो देखलो । "
>
> । रंगों से मोह ।

:- मधुकण ।1932। :-

भगवती चरण वर्मा ने स्वयं लिखा है कि " कवितायें मैंने बहुत कम लिखीं। जहाँ तक मुझे याद है अधिक कवितायें लिखने की मुझे प्रेरणा भी नहीं

2. भगवती चरण वर्मा - मधुकण पृष्ठ - 2

हुई। संभवतः इसका कारण रहा हो मेरा बुद्धिवादी हो जाना। उपन्यास और कहानी के प्रति मुझे प्रारंभ से ही रूचि उत्पन्न हो गई थी फिर भी कविता लिखने की प्रेरणा कभी-कभी हो ही जाती है। इसलिए कवितायें समय-समय पर लिख लिया करता हूँ।

---- विस्मृति के फूल की भूमिका से। वर्मा जी के कुल चार काव्य संकलन प्रकाशित हुये मधुकण प्रेम संगीत, मानव रंगो, से मोह । इनमें से प्रथम तीन 1955 में "विस्मृति के फूल" के नाम से एक जिल्द में प्रकाशित हुये।

"मधुकण" में कवि ने एक ओर प्रणय के वियोग पक्ष के विषाद को चित्रित किया है और दूसरी ओर वह मृत्यु यातना और नियति के समक्ष समर्पित हो गया है। जीवन को क्षणभंगुर और अस्थाई मानने वाले कवियो में भगवती बाबू का नाम उल्लेखनीय है। आज के कवियों का अहं जहाँ एक ओर अत्यंत व्यक्तित्व से पूर्ण है वहीं दूसरी ओर जग से अपनापन पाने की प्रबल इच्छा रखता है। अतः स्वंय को वह जग भावना में विलय नहीं कर पाता है। मानव के अहं की भावना अत्यंत दयनीय दशा में है। अहं से प्रभावित कवि के मानस को ऐसा लगता है कि जैसे जग से अपनापन पाने की इच्छा मधुर भ्रम है ---

" सागर का प्रशान्त मधुकण
अपनापन है जग का भ्रम,
कलुष भरा यह काला भ्रम,
कितने दुःख कितनी करूणा से
घिरा हुआ है हाय अहम् ।"

। मधुकण पृष्ठ।1।

जग से अपनापन मिलना मधुर भ्रम है। यह जानते हुये भी मन उसके पीछे दौड़ता है। तभी तो अहम् आहत होता है। "पागल जग" के अंधकार पूर्ण जीवन में यह कवि अपने जीवन के मधुकण अर्पित करने का आग्रह करता है ----

अंधकार मय पागल जग है
अंधकारमय वहीं मरण
उसके जीवन में तुम भर दो
अपने जीवन का मधुकण
सत्यं शिवं सुन्दरम ।[2]

---

1. भगवती चरण वर्मा - मधुकण पृष्ठ - 1
2. भगवती चरण वर्मा - मधुकण पृष्ठ - 2

यदि कवि अपनी वेदना के मधुकणों को विश्व बंदना में विलीन कर सकता तो दुविधा तो क्या थी। एक ओर निर्लिप्त स्थित प्रज्ञ की भांति वह यह दावा करता है कि सुख दुःख से उसे प्रीति नहीं है। अतीत औरभविष्य का मोह छोड़कर वह वर्तमान से संघर्ष करता रहता है ---

" क्या भविष्य है नहीं जानता
मुझको ज्ञात अतीत नहीं
सुख से मुझको प्रीति नहीं
दुख से मैं भय भीत नहीं
लड़ता ही रहता हूँ प्रतिपल
बाधाओं से हार नहीं । "1"

दूसरों और उसकी सुख से प्रीति की इच्छा इन शब्दों से स्पष्ट हो जाती है।---

" अरे अधर के इस प्रदेश में
पतन नहीं उत्थान नहीं । "2"

कुंठा किस तरह भयंकर अग्नि को उद्दीप्त कर रही है इसका एक सांगरूपक देखिये ----

" निज उर की वेदी पर मैने महायज्ञ का किया विधान
जल उठ, जल उठ, अरी धधक उठ
महा नाश सी मेरी आग । "3"

उसका कुंठित युवक विरहाग्नि को विराटता प्रदान करते हुये यौवनोंमत्त प्रेयसी को उलाहना देता है कि जिस रूप के बल पर वह उसके प्रणय को चुनौती देदेती है वह अत्यंत अस्थाई तत्त्व है--

" रूप राशि से भरा हुआ है यह समस्त संसार
रूप राशि पर मत इतराना, रूप राशि है हार । "4"

---

1. भगवती चरण वर्मा - मधुकण पृष्ठ - 3
2. मधुकण - पृष्ठ- 4 ।3। मधुकण - पृष्ठ - 9 ।4। मधुकण - पृष्ठ - 11

रूढ़ियों से उत्पन्न हुई जीवन की विवशता को भगवती बाबू ने इस तरह स्पष्ट किया है---

" यहाँ प्रकृति है पाप, पुण्य आत्मा का दमन है,
स्वेच्छा है भ्रमनाश यहाँ पर, मुक्ति नियम बंधन है,,

किंतु इस नैसर्गिक मार्मिक भावनाओं के साथ स्थान-स्थान पर उनका आप्त दार्शनिक सिद्धान्तों को दोहराना टूटी कड़ी- सी लगता है। भाव की मार्मिकता के स्थान पर अव्यवस्था सी लगने लगती है ---

" यहाँ मिलेगी आग यहीं पर तुम्हें मिलेगा पानी
अरे मिलेगी स्वर्ग नरक की
तुमको यहीं निशानी ।"[1]"

वर्मा जी में प्रणय-भावना के प्रति भौतिक मोह तो है किन्तु वह उसको स्थूल रूप से प्रस्तुत करने में हिचकते रहे हैं। छायावादी कवियों की भाँति सूक्ष्मी करण का उन्हें आग्रह रहाहै --

" आज मेरे जीवन का प्यार
देवि, मेरे जीवन का प्यार
कसक-सा कोमल, दु:ख-सा मौन
विस्मरण सा भूला उद्गार ।"[2]"

दूसरी तरफ उनकी प्यास शुद्ध शारीरिक रूप-मोह की प्यास है जो वर्तमान की तृप्ति चाहती है.भविष्य के स्थायित्व से उसका संबंध नहीं है ---

" है आज उमंगों का युग,
तेरी मादक मधुशाला।
पीने दे जी भर रूपसि,
अपने पराग का हाला । "[3]"

एक ओर रूप मोह का प्रबल उफान और दूसरी ओर दुराव की प्रकृति इस युग के युवक की दमित इच्छाओं के फलस्वरूप कही जा सकती है। मधुर हास्य में अनंत वेदना छिपाये और चाह को नेत्रों में लिये हुये कवि का उन्माद उसे किस दिशा में ले जायेगा यह वह स्वयं भी नहीं जानता। "किस ओर" शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियां देखिये।---

---

1. मधुकण -- पृष्ठ - 16
2. मधुकण पृष्ठ 24
3. मधुकण -- पृष्ठ- 25

" कहाँ, स्वयं ही नहीं जानता,
यह पथ अनजान।
इस भविष्य के अंधकार का,
कहाँ किसे है ज्ञान ।"1

किन्तु उसके सामने इतना स्पष्ट है कि प्यार की एक बूंद पर जीवन का सारा महत्त्व न्योछावर हो सकता है --- " एक बूंद पर ही कर दूंगा ममत्व का दान , कह कर प्रेम की पराकाष्ठा को प्रतिपादित करने में वर्मा जी सफल रहे हैं।

छायावादी काव्य का जहाँ एक आध्यात्मिक पक्ष था वहाँ उसका एक लौकिक पक्ष भी था जो जीवन की स्वाभाविक माँगों पर बल देता था और मध्ययुगीन निवृत्ति-मुखी बंधनों से निकल कर प्रवृत्ति मुखी होने के लिये मचल रहा था। उसका प्रथम सशक्त स्वर बालकृष्ण शर्मा नवीन की रचनाओं में पढ़ा गया था पर एक दीर्घ काल तक अपने प्रकाशन की ओर से उदासीन रहने के कारण न उस प्रवृत्ति को महत्त्व दिया गया न आलोचकों द्वारा उसकी चर्चा की गई। भगवती चरण वर्मा "नवीन" के अधिक निकट थे। वे छायावादी कला से प्रभावित अवश्य हुये थे पर छायावादी अध्यात्म से अभिभूत नहीं थे। वर्मा जी का अहं अधिक जाग्रत था। वे मानव के ऊपर किसी पराशक्ति की चेतना तो रखते थे पर उसमें मिलने अथवा उसमें पूर्णत: समर्पित हो जाने की क्षमता उनमें नहीं थी। इस चेतना का परिणाम यह था कि मानव की लघुता, सीमा, असमर्थता, विवशता, उन्हें बराबर खटकती थी। फिर भी यह अहं का उपासक मनुष्य की नगण्यता से समझौता करने को तैयार न था। वह मानव को चिरअभिलाषी, महत्त्वाकांक्षी चुनौती को स्वीकार करने वाले विद्रोही के रूप में ही देखता था ---

" एक एक के बाद दूसरी-
तृप्ति प्रलय पर्यन्त नहीं,
अभिलाषा के इस जीवन का
आदि नहीं अंत नहीं ।"2

---

1. मधुकण -- पृष्ठ - 27
2. मधुकण -- पृष्ठ - 31

छायावादी काल में वर्मा जी की यह विशेषता देख ली गई थी। ऐसे ओजपूर्ण स्वरों में अहंकार ऐसा प्रस्थापन उनके किसी समकक्षी में नहीं था। मधुकण में वर्मा जी ने प्रेम भावना में उसके प्यार की गहराई से अधिक उसकी उद्दामता ही अधिक परिलक्षित की है।

..क्षणवाद का पुजारी-----

नियतिवादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण वर्मा जी क्षणवाद के भी पुजारी थे। 'मधुकण' में अनेक पदों में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वह भविष्य का आराधक नहीं है। प्रियतमा के समीप वह प्रणय संबंध में उत्पन्न क्षणिक प्यास की स्थूल तृप्ति का आकांक्षी है। उनका विरह- भाव शुद्ध स्थूल रूप मोह है, उनमें अतीन्द्रिय, जन्म-जन्म के गठबंधन की बात सोचने का यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता ---

" आया हूँ फिर से भड़काकर
अपनी प्यास पुरानी।
सूखे होठों पर आशा की,
लेकर एक कहानी । "1"

उसकी प्रियतमा भी उन दोनों के क्षणिक मिलन में "लाज" बाधा बन गई । इसी विरह की ज्वाला से तड़पती है। तब "लाज" को उपालम्भ देती हुई कहती है ---

" प्रियतम अपनी प्यास बुझाने
घर आये जब आज
बैरिन बनी निगोड़ी लाज। "2"

"अपने असफल जीवन की भाँति वर्मा के प्रेमी भावुक को समस्त संसार का जीवन असफल दृष्टि गोचर होता है। भूधर आकाश की ओर निर्निमेष देखते हुये निःश्वास भरा करते हैं--

" अरे युगों का भार लिये
हिम आवृत सिर पर,
असफलता का अश्रु बहाते
हुयें निरंतर
यह मौन निःश्वास भरा करते हैं भूधर । "3"

---

1. मधुकण --- पृष्ठ - 28
2. मधुकण ---पृष्ठ - 29
3. मधुकण --- पृष्ठ - 32

जीवन का सतत सुख-दुख उसे सागर की छाती पर उत्पन्न पानी के बुलबुले के समान लगता है। मधुकण में वैयक्तिक जीवन की असफलताओं और अभावों से उत्पन्न गहरी निराशा, वेदना, नियतिवादिता और मृत्यु कामना की अभिव्यक्ति सी दिखाई देती है। व्यक्ति का निराशमन सर्व प्रथम असामाजिक एकाकीपन के रूप में मधु चर्या की अभिव्यक्ति में प्रवृत्त होता है।

मानव मन में अगाध इच्छायें एवं अनंत समस्यायें सर्वत्र विधमान हैं। वह निरंतर अपनी समस्त आकांक्षाओं की पूर्ति एवं समस्या के समाधान का प्रयास करता रहता है। लेकिन उसका दुर्भाग्य है कि उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पराजय का ही वरण करना पड़ता है। उसकी यही परिणति उसके जीवन में विरक्ति की भावना को आश्रय प्रदान करती है 'मधुकण' मेंसभी मनुष्य नश्वर हैं। मृत्यु अपना मुंह खोले मानव की प्रतीक्षा कर रही है। वह कह उठते हैं ---

" किस लिये यहा जन्म का क्रम
किस लिये अस्तित्व का भ्रम?
किस लिये फिर किस लिये यहां
सृष्टि के पीले अधर पर
मृत्यु का विकराल चुम्बन । "1"

वास्तव में संसार के बाह्य रूप पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मानव उसी प्रकार की रचनायें पढ़ते-पढ़ते ऊब गया था। वह एक नवीन भावात्मक पद्धति की आवश्यकता अनुभव करने लगा था। कवि वर्मा भी बाह्य स्थूल विश्व का परित्याग कर आत्माभिव्यक्ति के लिये लिखने को व्याकुल हो उठे। हृदय सागर में तरंगित होती भाव तरंगों की अवहेलना करना उनकी सामर्थ्य के बाहर हो गया। अत: कवि वर्मा जी ने अपने हृदय की तड़प को प्रकृति के आवरण में व्यक्त करने का भी प्रयास किया ----

" मैंने सूरज से ताप लिया,
मैंने बादल से विद्युतसी
अपने स्वर में भर लिये यही
पर मैंने कितने ही विभ्रर। "2"

---

1. मधुकण - भगवती चरण वर्मा -- पृष्ठ , 34
2. मधुकण - भगवती चरण वर्मा --- पृष्ठ, 102

इस प्रकार "मधुकण" में विभिन्न भावों को, सुप्त आकांक्षाओं को, नियति दर्शन को, एवं विभिन्न मानवीय व्यवहारों को सामाजिक चेतना को दर्शा कर अत्यंत मनोरम भूमि निर्मित की गई है।

:- प्रेम संगीत (1937) :-

वर्मा जी की 1937 में " प्रेम संगीत" काव्य रचना प्रकाशित हुई। इस काव्य संकलन में संयोग और वियोग दोनों को ही अपने प्रगीतों का विषय बनाया। प्रणयानुभूति के मार्मिक एवं सुन्दर हृदय ग्राही चित्रों से इस संकलन को कवि की मृगनयनी, पिकबयनी भी कहा जा सकता है। संयोग की रात में बतर्ज बच्चन के भगवती बाबू कह उठते हैं ---

" तुम अपनी हो जग अपना है
किसका किस पर अधिकार प्रिय,
इस दुविधा का क्या काम यहाँ
इस पार या कि उस पार प्रिय। "1.

वर्मा जी के प्रगीतों की यह विशेषता है कि इन प्रगीतों में न तो उत्कृष्ट वासना है और न ही विरह विदग्धता की भाव विह्वलता बल्कि वर्मा जी की आत्मकेन्द्रित आसक्ति से इस संकलन के प्रगीतों का प्रेमालय तन्मयता की स्थिति उत्पन्न कर देता हैं। एक गीत देखिये-- कवि को प्रिया की स्मृति रात्रि के अंतिम पहर तक बनी रहती है। वह प्रश्नित होता है-- " क्या जाग रही होगी तुम भी" और नींद लगने पर स्वप्न में भी प्रिया आहिस्ते से कवि को अपनी व्यथा से परिचित करा देती है ---

" कल तुम सपने में आई
सकुची सी मुरझाई सी।
मेरी आकुल पीड़ा में,
सिहरी सी कुम्हलाई सी । "2.

---

1. प्रेम संगीत ----- पृष्ठ , 132
2. प्रेम संगीत ----- पृष्ठ , 143

कवि ने एक ओर प्रणय के वियोग पक्ष के विषाद को चित्रित किया है और दूसरी ओर वह मृत्यु यातना और नियति से प्रभावित होकर उसके प्रति समर्पित हो गया है।

" उदधि के वक्षस्थल में व्याप्त

बुल बुले का यह क्षणिक उभार "

उपरोक्त पंक्ति से स्पष्ट होता है कि वर्मा जी घोर क्षणवादी भी हैं। समझदार मनीषी की भाँति यद्यपि "मधुकण" में उन्होंने स्थान-स्थान पर जीवन को गम्भीर दार्शनिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया हैं। किन्तु वे केवल शब्द मात्र हैं। जीवन और सुख का भयंकर मोह उसकी प्राप्ति के अभाव में अत्यंत वेदना ही उनके काव्य में मिलती है। लेकिन कहीं कहीं उन्होंने प्रेम- अनुभूति की गहराई का खुल कर वर्णन भी किया है जो संयोग की प्रस्तुतीकरण का अनूठा चित्र है---

" मधु छलक रहा था उर में

मैं था सुख का दीवाना

असतायी सी आँखों में

झूल रहा था मैखाना। "1"

इन्हें प्रिया क्रीड़ा की उत्सुकता सी, रति की तन्मयता सी लगती हैं। और फिर रति की तन्मयता प्रेमालाप करते दिखाई पड़ते हैं-----

" घुल गये आज प्राण से प्राण

गहन है गहन प्रेम की चाल। "2"

भगवती चरण वर्मा ने प्रणय-पथ में आने की विवशता को "प्रेम संगीत" की प्रस्तुत पंक्तियाँ मे मार्मिकता से व्यक्त किया है ---

" उस पार अरे उस पार कहाँ,

अंतहीन इस पार प्रिये।

पैरों में ममता का बंधन,

सिर पर वियोग का भार प्रिये। "3"

---

1. मधुकण ----- पृष्ठ , 190
2. मधुकण ----- पृष्ठ , 193
3. प्रेम संगीत --- पृष्ठ, 61

" है एक विवशता से प्रेरित

जीवन सबका जीवन मेरा,,

वर्मा जी का विचार है कि प्रेम के मार्ग में आने वाली विवशता से नहीं घबड़ाना चाहियें। इसी प्रकार हृदय की पुलकन का एक चित्र भगवती चरण वर्मा ने "प्रेम संगीत " की इन पंक्तियों में व्यक्त किया है। ----

" अरूण कपोलों पर लज्जा की भीनी सी मुस्कान लिये

सुरभित श्वासों में यौवन के, अलसाए से गान लिये

बरस पड़ी हो मेरे मरू में, तुम सहसा रसधार बनी

तुम में लय होकर अभिलाषा, एक बार साकार बनी

इसी प्रकार दर्शन के लिये सहज उत्सुकता और दर्शन के पश्चात् रोमांचित होने का प्रस्तुत चित्र भी दृष्टव्य है ----

" आकुल नयनों में छलक पड़ा,

जिस उत्सुकता का चंचल जल।

कम्पन बन कर रही गई वहीं,

तन्मयता की बेसुध हलचल। .2.

अनुभूति की गहराई का एक अन्य उदाहरण भी दृष्टिटव्य है। प्रेमी के आगमन पर, वेदना शांत हो गई तथा चेतना भी उसी में लीन हो गई। दर्शन से उत्पन्न लाज के कारण प्रेयसी प्रेमी को ठीक से देख भी नहीं पाई है----

" किन्तु पलक झुकगये न सहकर वह सुख भार

नयन ढूढ़ने लगे भूमि पर अपना खोया ज्ञान।

पलभर भी मैं देख न पाई, अपने प्रिय को आज।

जल न गई क्यों हाय सखी री, आज निगोड़ी लाज ।" .3.

उपर्युक्त पद में वर्मा जी ने प्रिय दर्शन के अपूर्व उल्लास को साकार किया है। सुख के असह्य भार के कारण झुक जाने वाले नयनों ने बहुत हानि उठाई है।

---

1. प्रेम संगीत ----- पृष्ठ 27
2. प्रेम संगीत ------ पृष्ठ 19
3. प्रेम संगीत------ पृष्ठ 27

जहाँ प्रेमी की प्रणयानुभूति में लालसा का उद्दाम वेग और चंचलता दृष्टिगत होती है वहाँ प्रेयसी की प्रणयानुभूति भारतीय नारी सुलभ लज्जा और मर्यादा से संयमित होकर अभिव्यक्त हुई है। लज्जा और लालसा के अन्तर्द्वन्द्व में व्यक्त होने वाली प्रणयानुभूति के कुछ चित्रण वर्मा जी के काव्य में निःसंदेह सुन्दर बन पड़े हैं। वर्मा जी ने कुशल मेधा के कारण प्रणयानुभूति के जीवन्त चित्र बड़ी कुशलता से आँके है, जिससे उनका काव्य- सौष्ठव समृद्ध बन गया हैं। उनका "प्रेम संगीत" ही प्रणय-निवेदन है। इस कृति में प्रणय-निवेदन को अभिव्यक्त करने वाले अनेक उत्कृष्ट प्रसंग हैं। वर्मा जी का विचार है कि इस क्षण भंगुर जीवन का कोई भरोसा नहीं है, इसी लिये प्रेमी प्रेमिका से गिने-चुने क्षणों का पूरा-पूरा उपयोग करने के लिये कहता है देखिये ----

" हम तुम जी भर कर खुलकर मिललें
जग के उपवन की मधु श्री,
सुषमा का सरस वसन्त प्रिये।
दो साँसो में बसजाय, और
ये सासें बनें अनन्त प्रिये। "1"

उपर्युक्त पंक्तियों में छायावादी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। एक स्थल पर वर्मा जी प्रेमी की अधीरता का भी मार्मिक चित्र उपस्थित कर देते है ----

" होठों पर हो मुस्कान तनिक,
नयनों में कुछ पानी हो ;
फिर धीरे से इतना कह दो,
तुम मेरी ही दीवानी हो। "2"

अभिधा शैली में कवि ने अपने मन की बात उपर्युक्त पंक्तियों में कितनी सहजता से चित्रित की है यह वर्मा जी की गम्भीर एवं सूक्ष्म दृष्टि की ही परिचायक है। स्वप्न में प्रेयसी जिस आनंद की सृष्टि कर गई है उसकी याद करते हुये कवि आज भी पुलकित हो उठता हैं। "प्रेम संगीत" की प्रस्तुत पंक्तियों में वर्मा जी ने ऐसी ही स्मृति का अंकन किया है---

---

1. प्रेम संगीत ----- पृष्ठ - 25

2. प्रेम संगीत — पृष्ठ 29

" कल तुम सपने में आई,
सकुची सी, सरमाई सी।
कल तुम रो दी थीं अब तक
मेरे कपोल भीगे हैं। "1"

स्मृति का यह अंकन संयोग की लालसा और प्रगाढ़ता के साथ-साथ वियोग दशा की अथाह पीड़ा को भी प्रकट करता है। वर्मा जी ने प्रेयसी को संबोधित करते हुये "प्रेम संगीत" की निम्न लिखित पंक्तियों में अपनी वेदना को प्रकट किया है ---

" तुम सुध बन बन कर बार बार,
क्यों कर जाती हो प्यार मुझे।
फिर विस्मृति बन तन्मयता का
दे जाती हो उपहार मुझे। " 2 "

उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर यह स्पष्ट है कि विविध संस्कारों और विभिन्न-परिस्थितियों में विकसित होने वाले, भगवती चरण वर्मा की स्वानुभूति की अभिव्यक्ति "प्रेम संगीत" काव्य कृति में हुई है यह रचना छायावादी काव्य शैली की अनुपम कृति है। आत्माभिव्यंजन के उपर्युक्त अंश स्वानुभूति की सूक्ष्मता और व्यापकता को व्यक्त करते हैं। प्रणयानुभूति में, प्रणय लालसा से उद्दीप्त प्राणों की सिहरन और प्रिय के संसर्ग से होने वाली मादक स्थिति का चित्रण प्राप्त होता है। प्रिय के मुग्धकारी सौन्दर्य और पुलकित करने वाले प्रणय की जिस स्मृति को प्रेमी जन प्राणो में बसाये रहते हैं उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति जहाँ वर्मा जी ने की है। वहीं जन जीवन की व्यापक हलचल को भी अपने काव्य का विषय बनाया।

स्वप्न और कल्पना की दृष्टि से विश्व को देखने का अभ्यस्त छायावादी कवि वर्मा भी यथार्थ की विषमता और कटुता से अछूता नहीं रह सका। अस्तित्व के लिये चलने वाले अनिवार्य संघर्ष के अच्छे बुरे परिणामों ने उन्हें भी उद्वेलित किया और अपेक्षाकृत अधिक संवेदन शील होने के कारण उसको अन्तर्मंथन के चक्र में पिसना पड़ा। जनजीवन में व्याप्त दीनता, हीनता, अन्याय और अत्याचार उनकी दृष्टि को बरबस आकृष्ट कर ही लेते हैं। "नहि मनुष्यात श्रेष्ठतम के शाश्वत सिद्धान्त, रूढ़िरीतियों के जंजाल में फंसकर भुला देने वाले

---

1. प्रेम संगीत ------ पृष्ठ, 40
2. प्रेम संगीत ------ पृष्ठ, 59

इन लकीर के फकीरों पर भगवती चरण वर्मा ने मधुकण की निम्न पंक्तियों में व्यंग्य किया है----

" भेद भाव के दास धर्म के अविकल साधक,
विधवाओं के काल और गायों के पालक,
पशुओं पर है दया मनुष्यों पर है अत्याचार,
× × × × ×
अरे ये इतने कोटि अछूत, तुम्हारे वे कौड़ी के दास,
दूर है छूने की ही बात, पाप है आना इनके पास। "।"

देश में जातिवाद, अछूत भावना, अज्ञान का कुहासा आदि अनेकों समस्यायें वर्मा जी का हृदय विदीर्ण कर रही थीं। अंधकार को ध्वस्त कर आलोक विकीर्ण करने के अतिरिक्त अज्ञान, भ्रम और द्विविधाओं के कुहासे से मानव की मुक्ति का द्वार खोलने में वर्मा जी ने भरपूर कोशिश की है।

:- मानव । 1948 । :-
----×------×----

भगवती चरण वर्मा की सामाजिक यथार्थ परक रचना एक मात्र "मानव है। इस काव्य- संकलन में उन्होंने समाज का सच्चा चित्रण किया है। और अपनी अभिव्यक्ति को विश्वसनीय बनाने के लिये यथार्थ- बोध का सहारा लिया है। यथार्थ वाद का उद्देश्य मात्र फोटोग्राफी नहीं है बल्कि उन्होंने अपनी रचना में दुःख, अवसाद, कष्टों के भीतर से ऐसे मानव का चयन किया है जो जीवन से परिपूर्ण है।

सन् 1935- 40 के मध्य विश्व के राजनैतिक मंच पर कुछ ऐसी घटनायें घट रही थी जिनकी ओर से साहित्यकार अपनी आँखे मूंद कर नहीं रह सकता। आर्थिक मंदी के विश्व व्यापी संकट के कारण सहस्त्रों व्यक्ति आजीविका खो बैठे थे। इस भयानक आपत्ति ने लोगों के मन में पूंजीवादी व्यवस्था के विषय में अनेक शंकायें उपस्थित कर दी थीं। वर्मा जी की जूनियर हाई स्कूल की शिक्षा काल से ही सामाजिक परिवर्तन तेजी से चल रहे थे। नारी शिक्षा, पर्दाप्रथा, अछूतोद्धार आदि अनेक समस्याओं से देश टकरा रहा था

---

1. मधुकण ------ पृष्ठ , 52

जिसका प्रभाव वर्माजी के बाल मन पर भी पड़ा था जो आगे प्रौढ़ होकर उनकी रचनाओं के माध्यम से उजागर हुआ। "वर्ग भेद मिटाना चाहिये" जिस पर उन्होंने खुल कर कहा जिससे "मानव" में संकलित अनेकों कवितायें प्रगतिवाद का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रतीत होती हैं। वर्मा ने जीवन से आंख बचाकर नहीं बल्कि जीवन को उसकी समग्रता में शब्दित किया हैं। "मानव में कवि अन्तर्मुखी होने का प्रयत्न भी करता है फिर भी सामाजिक यथार्थ परक चित्र स्वतः ही उभर कर आ गये हैं। यद्यपि वर्मा जी ने स्वयं को तत्कालीन तथा कथित प्रगतिशील आन्दोलन से परे रखा है क्योंकि मूलत: वे भोग, नियति व मृत्यु-दर्शन के कवि हैं---- " मुझे प्रयोगों पर विश्वास है, मुझे प्रगति पर विश्वास है। पर प्रयोगवाद या प्रगतिवाद पर मुझे विश्वास नहीं। वैसे इस संग्रह की कुछ कविताओंमें लोगों को आज भी प्रगतिशीलता की परिभाषा वाली कवितायें मिल सकती है। पर प्रगतिशील लेखक संघ के विद्वान उन्हें प्रगतिशील कवितायें नहीं मानेंगे। -1-

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि वर्मा जी प्रगतिवादी नहीं थे। हाँ, उनकी रचनाओं में प्रगति चेतना के तत्त्व निरंतर विद्यमान है, यह सत्यहै। " भैसा गाड़ी" नामक कविता में उन्होंने जो समाज का सच्चा चित्र उपस्थित किया है वह तत्कालीन सामाजिक शोषण का एक कारुणिक चित्र का मार्मिक उदाहरण है----

" बीवी बच्चों से छीन बीन,
दाना दाना अपने में भर,
भूखे-तड़पें या मरें, भरों
का तो भरना है उनको घर। -2-

शोषितों के प्रति उनके मन में असीम सहानुभूति है ---

" वे मांसहीन, वे रक्त हीन,
वे अन्नहीन, वे वस्त्र हीन,
वे सड़कों पर सोने वाले
वे धूल धूसरित अति मलीन, । -3-

---

1. भगवती चरण वर्मा ------ विस्मृतिके फूल की भूमिका।
2. भगवती चरण वर्मा ------ मानव , पृष्ठ 53

पर जैसा कि भगवती बाबू ने स्वयं स्वीकार किया है कि वे प्रगतिवादी नहीं हैं। यद्यपि उनके कुछ प्रगीतों में उसके बीज अवश्य मिलते हैं। यही कारण है कि वे इस विषमता का समाधान शोषितों की क्रांति में न ढूँढ़ कर गांधीवादी अथवा परम्परागत मानवतावादी दृष्टिकोण में तलाशते हैं।------

" अपनी मानवता से आओ,
हम उनकी पशुताको जीतें ।"[1]

अहंवादी होने के साथ-साथ कवि अपने आपको बुद्धिवादी भी घोषित करता है। उन्होंने लिखा है-- "मै बुद्धिवादी हूँ, मेरा देवता है ज्ञान और इस देवता के अलावा मुझे किसी देवता पर विश्वास नहीं। न मुझे धर्म पर विश्वास है न उपासना पर किन्तु मैं समझता हूँ कि मनुष्य केवल बुद्धि के द्वारा पूर्णता प्राप्त करेगा।"[2] यहाँ पर यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि कवि जिस बुद्धिवाद का आश्रय ग्रहण करता है वह उसे समस्या के समाधान तक न ले जा कर बीच में ही अनास्था की स्थिति में छोड़ देता हैं। आर्थिक विषमता दैन्य और शोषण से वह मर्मान्तिक आहत होता है किन्तु इस अनाचार का मूल कारण पूंजीवादी व्यवस्था में नहीं बल्कि व्यक्ति के अहं में खोजता हैं फलत: इसके परिष्कार का उपाय वह सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन में नहीं बल्कि अहम् को असीमत्व प्रदान करने में मानता है। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि अहम् को असीमत्व कैसे प्रदान किया जाय। केवल असीमत्व की भावना ग्रहण कर लेने से ही पूंजीपति न तो, जनता का शोषण ही करना बंद कर देंगे और न ही अपनी सत्ता छोड़ सकते हैं। अत: जिसे वह समस्या का समाधान कहता है वह वास्तव में एक बहुत बड़ी समस्या है। उनकी बुद्धिव अवस्था उन्हें किसी ओर ले जाने नहीं देती है वह गांधीवाद में भी अपनी अनास्था सी व्यक्त करते दिखाई देते हैं ----

" जग के उत्पीड़न का बोलों
गांधी का यह धीमा सा स्वर,
निज प्रेम और मनवता से
क्या, यहाँ दे सकेगा उत्तर ।"[2]

---

1. मानव ------- मैं और मेरा युग , पृष्ठ - 4
2. मै और मेरा युग --------- --, पृष्ठ - 9

साथ ही क्रान्ति के सिद्धान्तो में भी उसकी आस्था नहीं है। उसके कथनानुसार विश्व का इतिहास हिंसा द्वारा परिवर्तन लाने के प्रयोगों से भरा पड़ा है और हर जगह असफलता ही नजर आई है। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी रचनायें शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति तथा शोषण के यथार्थ परक चित्रण तक ही सीमित होकर रह गई है। समस्या के समाधान के लिये मार्क्सवाद के क्रियात्मक स्वरूप को ग्रहण करने में उनकी बुद्धिवादी अनास्था बाधक सिद्ध होती दिखाई दे रही है। "मानव" में संकलित अनेक कवितायें मध्यवर्ग की वास्तविक स्थिति का यथार्थ परक चित्रण बन कर रह गई हैं।

:- उपसंहार :-
--x--x--

भगवती चरण वर्मा ने काव्य की धारणाओं का स्वस्थ एवं स्पष्ट विवेचन किया है। उनका मत है कि कला का एक मात्र उद्देश्य संवेदना की तृप्ति है अपनी भावना में दूसरों को लय कर देना ही कवि की सफलता है साथ ही भगवती बाबू काव्य में अनुभूति की तीव्रता, स्वाभाविकता तथा मौलिकता का होना आवश्यक मानते हैं। काव्य के प्रयोजन में वह बहुजन हिताय वाले पक्ष को महत्व देते है। इसके बाद काव्य के वर्ण्य विषय की चर्चा करते समय वे लिखते हैं कि कवि को जग के अभावों का उल्लेख करना चाहिये सामाजिक अनुभूतियों की समृद्धि को कवि का धर्म माना है।

उपर्युक्त काव्य धारणाओं के अनुरूप ही कवि वर्मा ने अपनी कुछ काव्य कृतियाँ साहित्यांगण में दीं। उसकी प्रथम काव्य रचना "मधकण" में प्रणय अनुभूत चित्र हैं तो साथ-साथ समाजिक यथार्थ के चित्र में उपस्थित हुये हैं। और "प्रेम संगीत" में प्रणय भावना को लेकर अंतरंग सौन्दर्य का विधान किया है। तत्पश्चात रचना "मानव" में भौतिक अभावों को महत्त्व देकर उन्हें वैज्ञानिक ढंग से निरूपित करने का प्रयास किया गया है। इनकी "रंगो से मोह" काव्य रचना में जीवन के स्वस्थ, स्वाभाविक एवं जीवन के एकांतिक अनुभवों की छाप है "रंगों से मोह" कविता में कवि वर्मा भोली शैली के कवि और जीवन के दार्शनिक के रूप में उपस्थित हुये हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्मा जी की सम्पूर्ण काव्य कृतियों में सादगी, व्यंग्य, गाम्भीर्य, सहजता सभी गुण एक साथ समाहित हो गये हैं।

:- काव्य में व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति :-

-----x-----x-----x---x-----

काव्य जीवन के सत्यात्मक सौन्दर्य की भावात्मक अभिव्यक्ति होने के कारण उसमें एक ओर जीवन की सभी आकांक्षायें सभी अनुभूतियां सभी चित्र और सभी घटनायें मिलती हैं तो दूसरी ओर जगत् के द्वन्द्व एवं सारे दृश्य प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ते हैं। यथार्थ का तीखा प्रहार तथा प्रखर बोध हमें भगवती चरण वर्मा के काव्य में मिलता है। भगवती बाबू ने व्यंग्यात्मक के उपयोग से बड़ी कुशलता के साथ धर्म, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था सभी क्षेत्रों में व्याप्त विकृतियों का पर्दाफाश किया है।

काव्य में व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति को पिछले युगों में लगातार एक विशिष्ट मान्यता प्राप्त रही है। व्यंग्य मानव जीवन के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करता है क्योंकि वह मिथ्याचार, भ्रष्टाचार विसंगति आदि पर चोट करके व्यंग्यास्पद के रास्ते में रूकावट पैदा करता है उसके निहित स्वार्थों को चुनौती देता है तथा उसे संसार की दृष्टि में घृणित अथवा हास्यास्पद भी बना देता है उसे अनुभव होता है कि कहीं कोई है जो उसकी पीड़ाओं एवं कष्टों का उपभोक्ता है, उन्हें समझता है तथा उसके कष्ट दाता एवं पीड़क पर व्यंग्य प्रहार कर रहा है।

जिस प्रकार मार्क्स ने अपने विषम युग के चित्र प्रस्तुत किये थे और उसके समाधान रूप में वैज्ञानिक समाजवाद का प्रतिपादन किया गया था उसी प्रकार हिन्दी के यथार्थ-वादी कवियों ने अपने युग की विषम परिस्थितियों का व्यंग्य के माध्यम से सजीव चित्रण किया है। भगवती चरण वर्मा ने अपनी काव्य कृति "रंगो से मोह" में संगीतज्ञ, कलापारखी, नेता, वेदान्ती आदि को उल्टी सीधी सुनाकर व्यंग्य किया गया है नेता पर किये गये व्यंग्य की छटा देखिये ---

" कल पढ़ा तुम्हारा था मैंने वक्तव्य,
अब मैंने देखी मूर्ति तुम्हारी भव्य,
तुम नेता हो तुम अभिनेता हो मित्र,
तुम में जग के अधिकार और कर्त्तव्य।
तुम तप की ऐसी अग्नि,
कि जिसमें सुख वैभव है हव्य,

" तुम बुरा न मानों तो मैं कह दूँ साफ,
हो रहा मुझे है तुझे बेहद रश्क।
इसको मत खींचो,
इस थैली में है थोड़ा ही द्रव्य !"[1]

इस सहज नाटकीय अंदाज में नेता की वक्तव्य प्रवणता और द्रव्य प्रियता की धज्जियाँ इस कविता में उड़ाई गई हैं। इसी प्रकार" कुत्ते की दम" कविता में कलुआ कुत्ते की टेढ़ी दुम से संसार की तुलना करते हुये कवि वर्मा ने अनेक विसंगतियों कोउभारा है।

देश के स्वतंत्र होने से पूर्व हिन्दी कविता में विभिन्न धाराओं के कवि रचना-रत थे। एक ओर देश भक्ति, नवीन राष्ट्र के उत्थान की कामना और विदेशियों को भारत से उखाड़ फेंक देने की कामना से ओत प्रोत राष्ट्रीय धारा के मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल, चतुर्वेदी, नवीन, हरिकृष्ण प्रेमी थे तो दूसरी ओर विश्व मानवता का स्वर मुखरित करते हुये प्रसाद पंत, निराला, महादेवी आदि। इनके अतिरिक्त वर्ग संघर्ष की भावना को प्रमुख स्थान देने वाली और गरीब शोषित जनता के प्रति सहानुभूति शील प्रगतिवादी को दिनकर, सुमन नागार्जुन तथा भगवती चरण मुखरित कर रहे थे।

आज का जीवन निश्चय ही विभिन्न प्रकार की विसंगतियों और विषमताओं द्वारा विखंडित किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में इस जीवन के उपभोक्ता मनुष्य की अभिव्यक्ति में कडुवाहट औरकसैलेपन का आ जाना अस्वाभाविक नहीं है। बहुत गहरे चोट खाया हुआ मनुष्य जब बोलेगा तब व्यंग्य ही बोलेगा, जब कुछ करेगा तो प्रहार ही करेगा। यही कारण है जब भी रचनाकार, कृतिकार, कलाकार ने स्वयं को भीतर बाहर से आहत अनुभव किया है। वह व्यंग्यशील हो उठा है।

जहाँ तक भगवती चरण वर्मा की कविता की बात है तो वह आकस्मिक नहीं है। उसमें जीवन की, जगत् की, राजनीति की, समाज की, व्यक्ति की विसंगतियों को व्यक्त करने के लिये यत्र तत्र व्यंग्य का पूर्ण सहारा लिया गया है युवा कवि असभ्यता पर व्यंग्य करता है तो उसे सभ्यता पर भी, शरारत पर व्यंग्य करता है तो शराफत पर भी, उसने

---

*1 रंगो से मोह ----- पृष्ठ , 57

बेईमानी को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है तो तथाकथित ईमानदारी पर प्रहार करने से भी नहीं चूका है, जनता को बेबकूफ बनाकर बोट लेने वाले, और बोट पुन: लेकर मूर्ख बनाने वाले नेताओं पर व्यंग्यात्मक आक्रमण किया है, तो धोखे में आ जाने वाली जनता की बेबकूफियों को व्यंग्य का बिंदु बनाया है। कोई भी विसंगति ऐसी नहीं है जिस परवर्मा जी ने दृष्टि न डाली हो। वर्मा जी के काव्य में व्यंग्यात्मक तथ्यों का अवलोकन करने से पूर्व व्यंग्य का अर्थ एवं साहित्य में उसकी स्थिति जान लेना अनावश्यक न होगा वैसे साहित्य में व्यंग्य का उद्देय व्यक्ति या समाज में सुधार करना होता है।

:- व्यंग्य का अर्थ :-
----x----x----

किसी भी शब्द का परतदार अर्थ या वृत्तानुगामी झंकारमय व्यंजना व्यंग्य होती है अंग्रेजी के सेतायर के आधार पर किसी व्यक्ति या समाज की बुराई या न्यूनता को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढ़े शब्दों में व्यक्त किया जाना व्यंग्य है। बोलचाल में इसे चुटकी भी कहा जाता है।

व्यंग्य की व्युत्पत्ति वि॰ अंग । व्यंग्य का मतलब ऐसी अर्थ- व्यंजना जिसमें सत की आत्मा है, निर्भीकता की काया है, हास्य का झीना वस्त्र है और असत्य पर प्रहार करने की तत्परता है। वाक् वैदग्ध्य और विलक्षणताकासा पुट है "व्यंग्य का वास्तविक उद्देश्य समाज या सोसाइटी की बुराइयों, कमजोरियों और त्रुटियों को हंसी उड़ाकर पेश करना है, मगर इसमें तहजीब का दामन मजबूती से पकड़े रहने की जरूरत है वरना व्यंग्यकार मंडेती की सीमा में प्रवेश कर जायेगा।" ।तंजो मजाह।

कई भारतीय विद्वानों ने व्यंग्य को हास्य के ही एक प्रभेदके रूप में स्वीकार किया है किन्तु हमारे अभीष्ट अर्थ में व्यंग्य मात्र हास्य की ही पुष्टि नहीं करता, वह करूणा और अमर्ष जैसे भाव का संचार भी करता है। हास्य निष्प्रयोजन मुक्त, एवं संवेदन शील होता है। उसका प्रयोजन यदि कोई है तो वह हास्य ही है, कुछ और ऐसी बहुत सी श्रेष्ठ रचनायें और हास्य- कृतियाँ सर्वत्र उपलब्ध हो जाती हैं जिनमें हास्य ही हास्य होता है। महाकवि रवीन्द्र नाथ का नाटक "चिरकुमार सभा" हास्य के लिये हास्य रचना का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसी प्रकार भगवती बाबू के उपन्यासों को ही लें तो उनका "अपने खिलौने" हास्य रस की रचना है जब कि प्रश्न और मारीचिका व्यंग्य की अनूठी कृति है। हास्य और व्यंग्य का सबसे बड़ा अंतर यही है कि हास्य निष्प्रयोजन होता है और यदि उसका कोई प्रयोजन होता भी है तो वह निश्चय ही विशिष्ट नहीं होता, जबकि व्यंग्य

निष्प्रयोजन नहीं होता और उसका प्रयोजन वास्तव में गूढ़ और मार्मिक ही होता है। इसके अतिरिक्त यह आवश्यक नहीं है कि व्यंग्य में हास्य की सृष्टि हो ही, जब कि हास्य में ऐसा होना अनिवार्य है।

व्यंग्य को जन्म देने वाली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थिति होती है "विसंगति" अर्थात् कहा कुछ जाय और किया कुछ जाय। कहने का तात्पर्य यह कि श्रद्धास्पद जन हास्यास्पद कार्य कर रहे हों और हास्यास्पदों को श्रद्धा की गद्दी सौंप दी गई हों इस प्रकार की विसंगतियाँ अर्थवा बिडम्बनायें बुद्धिजीवी कलाकार को व्यंग्य की प्रेरणा देती है। असमंजस्य, अनुपातहीनता विसंगति हमारी चेतना को छेड़ देते है तब हंसी भी आ सकती है और हंसी नहीं भी आ सकती है--- चेतना पर आघात पड़सकता है। [1]

चेतना पर पड़ने वाला यह आघात ही व्यक्ति को व्यंग्य करने पर विवश करता है। सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक वैयक्तिक समस्याओं में निहित असंगतियों को जांचने परखने से बहुत सी व्यापक-स्थितियाँ अपने आप उजागर हो जाती है। इस प्रसंग में फ्रायड ने व्यंग्य लेखक लिखटन वर्ग के संबंध में गेटे का हवाला देते हुये ठीक ही कहा है कि "जहाँ वह मजाक करता है वहाँ कोई समस्या छिपी पड़ीहोती है। [2]

:- वर्मा जी का व्यंग्य वाला हास्य अधिक बौद्धिक :-

-----x-----x-----x-----x-----x-------

एक दीर्घ रचनावधि के बावजूद वर्मा जी ने कवितायें बहुत नहीं लिखी बल्कि उपन्यास रचना की ओर उन्मुख हो गये इसके बावजूद वर्मा जी की कवितायें कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उन्हें हिन्दी की लोकप्रिय कविताओं में स्थान दिया गया। भगवती बाबू के काव्य में मस्ती है, फक्कड़पन और निश्छल लापरवाही है। व्यंग्य के संबंध में उनके विचार इस प्रकार हैं:- ----

" व्यंग्य वाला हास्य अधिक बौद्धिक है और वर्तमान बौद्धिक युग में वही व्यंग्यात्मक हास्य श्रेष्ठ समझा जाता है पर व्यंग्य वाले हास्य में कटुता आ जाने का खतरा रहता है और अधिकांश लेखक कटुता को व्यंग्य से दूर नहीं रख पाते। व्यंग्य स्वंय में कटु होता है।

---

1. हरि शंकर परसाई -------- सदाचार का ताबीज , पृष्ठ - 8

2. मनोविश्लेषण --------पृष्ठ 23

और व्यंग्य से कटुता को इस प्रकार गौण बना देना कि साधारण पाठक को ऐसी कटुता का आभास भी न हो, बहुत थोड़े से कलाकार कर पाते है। .1.

अपने उक्त कथन कोअपनी रचनाओं पर चरितार्थ करने का वर्मा जी ने प्रयत्न भी किया है उनका व्यंग्य प्रगतिवाद अर्थात् गरीबों, श्रमिकों के प्रति सहानुभूति की छाया लिये हुये है। अत: उनका सामन्तों एवं राजाओं के प्रति व्यंग्यशील होना अस्वाभाविक नहीं है। "राजा साहब का वायुयान" कविता में उन्होंने राजा साहब को निम्न लिखित रूप में देखा हैं।-------

" राजा साहब हैं दानशील,
राजा साहब हैं दयावान,
राजा साहब के पैसों से,
पलते हैं कितने ही नेता।
पलते हैं कितने ही कवि लेखक
पलते हैं कितने ही गुन्डे
पलते हैं कितने ही महन्त। .2.

उक्त कविता के कथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि नेता, कवि, लेखक, गुंडे, महन्त पलते नहीं अपितु पाले जाते हैं। वर्मा जी की व्यंग्यात्मक कवितायें फकीराना ठाठ लिये होती हैं जिनमें कवि व्यंग्य भी करता है और अपने फक्कड़पन को बनाये रखता है। "चहल पहल की इस नगरी में कविता में माया मोह, धन-वैभव में डूबे हुये प्राणियों की स्थिति पर व्यंग्य किया गया है संचय लोलुपों की मानसिकता पर भी प्रहार करके सुव्यवस्थित सामाजिक स्थापना का प्रयास किया है। -----

" हम फकीर युग युग के हमको
बंधन से क्या यहाँ काम है ?
कैसा संचय? खाली हाथों,
आना और चले जाना है।
धन-वैभव हो तुम्हें मुबारक
अपना दाता दोस्त राम है । .3.

---

1. साहित्य की मान्यतायें --- भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ - 14
2. विस्मृति के फूल --- पृष्ठ , 64
3. मेरी कवितायें ---- पृष्ठ , 50

वर्मा जी के व्यंग्यो में सादगी के माध्यम से प्रहार करने की क्षमता है उनकी हल्की फुल्की भी बिल्कुल निरर्थक सी लगने वाली कवितायें भी कितनी अर्थवान एवं मार्मिक हैं इसका अनुमान "वर्मा जी ने मारी लात" वाली कविता से लगाया जा सकता है। पूर्णत: लापरवाह शैली में कवि ने स्वाभिमान द्वारा सेठ किरोड़ी की नौकरी पर लात मारने का वर्णन किया है। कवि ने वहाँ वहाँ लात मारी है जहाँ कवियों को भांड आदि का दर्जा दिया गया। पर अंत तक पहुंचते पहुंचते यह कविता लात मारने वाले को लात खाने वाला बनाकर एक गहरी विडम्बना को प्रकट कर देती है ----

" डटा करोड़ी जा मोटर पर
वर्मा जी से बोला हंस कर ,
यहीं पास तो है पैदल ही
कवियों को ले चल मेरे घर,
वर्मा जी के वक्षस्थल पर हुआ एक गहरा अघात ।
वर्मा जी ने कहा कड़क कर
तू मेरा अपमान कर रहा,
इसी लिये जो मैं हूँ नौकर,
तुच्छ नौकरी तेरी यह लो इस पर मैंने मारी लात !
आज साल भर की बेकारी
दर-दर घूम रहे वर्मा जी,
हर मालिक है यहाँ करोड़ी
और नौकरी, सदा नौकरी,
हम कहते हैं ताल ठोंक कर वर्मा जी ने खाई लात ।"[1]

वर्मा जी के व्यक्तित्व एवं लेखन दोनों में ही हास्य व्यंग की एक अद्भुत झलक है। उनकी आंखों से छलकता हास्य और होठों पर फूटती हंसी जैसे जीवन और जगत् की निस्सारता और निरर्थकता की ओर संकेत करते हैं। हास्य और व्यंग्य करने की उनमें एक स्वाभाविक प्रवृत्ति भी है। जीवन के जिन संघर्षों से वे गुजरे हैं उनमें यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता टूट जाता, बिखर जाता पर वर्मा जी ने वह सब हंसी में उड़ा दिया। गंभीर बात को हास्य व्यंग्य मे उड़ा देना और हल्की फुल्की बात को गम्भीर रूप दे देना वर्मा

---

1. रंगों से मोह ------- पृष्ठ , 94-95

जी की आदत बन गई थी।

1940 तक लेखक वर्मा जी हिन्दुस्तान के उन सभी प्रमुख नगरों में घूम फिर चुका था जो नये युग, नई सभ्यता और शिक्षा से पूर्णत: अभिभूत हो गये थे। इसी समय प्रकाशित उसकी काव्य कृति "मानव" में जीवन के विकृत रूप की हल्के फुल्के ढंग से ऐसा व्यंग्य प्रच्छन्न वर्णित किया गया है कि पाठकों को एक विशेष प्रकार की अनुभूति होती है ऊपर से जगमगाते इस समाज के खोखलेपन पर पाठको को हंसी भी आती है और वितृष्णा भी होती है। वास्तव में वर्मा जी का ऐसा ही व्यक्तित्व था जिसका प्रभाव हमारे मन और आस्था को हिला देता है। जीवन की कटुता को ऐसे हल्के फुल्के ढंग से उड़ा देना या परोक्ष में उसका अनुभव करा देना वर्मा जी के अपने ही व्यक्तित्व का परिचायक है।

भगवती चरण वर्मा ने सामाजिक दाय को जबाब देही के साथ निभाया और वे व्यक्ति न रह कर शक्ति बन गये। समाज की अदालत में एक तरफ से राजनीतिज्ञों के प्रवक्ता थे तो दूसरी तरफ उपेक्षितों के अपेक्षित मार्ग पर लाने वाले आकाशदीप थे। उनका दृष्टिकोण समाज की उपेक्षा नहीं सह सकता था। उनका विचार था कि समाज में आर्थिक समानता की जोरदार बकालत और पूंजीवाद का विरोध किये बिना समाज का उद्धार संभव नहीं। संसार में जितना अन्याय और अत्याचार है जितना द्वेष और मालिन्य है जितनी मूर्खता और अज्ञानता है उसको मूल रहस्य विष की गांठ पूंजीवाद है। पूंजीवाद और पूंजीपतियों के आश्रय में पलने वाले औद्योगीकरण पर वे व्यंग्य कटाक्ष ही करते हैं। उन्होंने अपनी काव्य कृतियों में सामाजिक नियमों और प्रतिबधों की रक्षा व्यंग्य के माध्यम से कहने में काफी सफलता प्राप्त की है।

व्यंग्य की साहित्यिक आधार शिला भाव और भाषा के सुदृढ़खम्भो पर खड़ी होती है। मन में उत्पन्न होने वाले ऐसे विचार जो या तो किसी सामाजिक वैयक्तिक दोष को पकड़ते है, कुछ ऐसे अभिप्राय जो किसी उत्पीड़न की अभिव्यक्ति को आतुर रहते हैं, कुछ ऐसी भावनायें जिन्हें कवि बहुत आसान किन्तु कुछ व्यंजक अर्थों में सम्प्रेषित करना चाहता है व्यंग्य का भाव आधार होते है व्यंग्य में कवि अपने सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक, वैयक्तिक भावबोध को ऐसी भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है, जो प्राय:

सीधी नहीं होती, बल्कि जिसके अर्थ, अक्षरों की न्यूनता के बावजूद व्यापक और प्रहारात्मक होते हैं। किसी को मूर्ख, अश्लील, घटिया कह देना बहुत सरल है, पर बिना इन शब्दों के प्रयोग किये यदि वह व्यक्ति भाषा के विपरीत अर्थ के बोध से ऐसा सिद्ध हो जाय, तो यही व्यंग्य का कौशल माना जाता है। भगवती चरण वर्मा की रचनाओं में इस कौशल का पूर्णत: निर्वाहहुआ हैं।

भगवती चरण वर्मा ने वास्तविकता को सही ढंग से आत्मसात करके कला के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति व्यंजना मिश्रित शब्दों में अधिकांशत: की है। अब हम वर्मा जी के तद्‌युगीन विभिन्न परिस्थिति में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक धार्मिक पृष्ठ भूमि में व्यंग्य की दृष्टि पर अलग अलग संक्षेप में आवलोकन करेंगें। जो कितद्‌युगीन विकृत स्थितियों को बदल डालने का एक कदम था।

:- भगवती चरण वर्मा के युग में व्यंग्य की पृष्ठभूमि :-

-----x-----x-----x-----x-----x--------

भगवती चरण वर्मा का काव्य लेखन 1930 से प्रारंभ माना जाता है। इस समय हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि में विभिन्न प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विसंगतियां एक साथ कार्य करती रही है। इन्हीं विसंगतियों और अवरोधी ने व्यंग्य की पृष्ठभूमि तैयार की और उसे युगीन सत्यों एवं कुंठाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया।

:- सामाजिक पृष्ठभूमि :-

----x----x---x----

स्वतंत्रता से पूर्व 1925 - 1950 में सर्वाधिक प्रभाव कारी समाज व्यवस्था थी- वर्ण-व्यवस्था। इस व्यवस्था कासर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई ब्राह्मण और सबसे निचली इकाई शूद्र थे। इस व्यवस्था में मनुष्य को खांचोमें बांट रखा था जिसके कारण भारतीय जीवन की एकता नष्ट हुई। लोकतंत्र के विकास में बाधा पड़ी। छुआछूत के अतिरिक्त नारी की शोचनीय स्थिति भी भारतीय समाज में विद्यमान थी। नारियों की दीन हीन अवस्था के अतिरिक्त बाल-विवाह दहेज-प्रथा, वृद्ध विवाह एवं बहु-विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों ने भारतीय समाज को आच्छादित कर दिया था।

समाज में जातीय दुरवस्था तथा दासता की भावना ने जब जागरण की स्थिति में प्रवेश किया तो साहित्यकार का सामाजिक मान्यताओं से संघर्ष उत्पन्न होना स्वाभाविकथा। जहाँ समाज व्यक्ति के विकास में सहायक हो सकता है वहाँ वह बाधक भी हो सकता है। समाज द्वारा खड़ी की जाने वाली बाधायें ही रचनाकार को व्यंग्य करने के लिये बाध्य करती हैं जाति प्रथा, ऊंचनीच प्रथा और इन प्रथाओं द्वारा प्रसूत अन्य ऐसी मान्यतायें जो समाज के संवेदन शील प्राणी को मनवीयता की भावना के प्रतिकूल लगती है, व्यंग्य के माध्यम से तिरस्कृत हुई।

भगवती चरण वर्मा के व्यंग्य में इसी पृष्ठभूमि के कारण नितांत कटुता की भावना रही है देखिये इनकी "हिन्दू" कविता से उद्धृत कुछ पंक्तियां ----

" भेद भाव के दास, धर्म के अविकल साधक,
विधवाओं के काल, और गायों के पालक
पशुओं पर है दया, मनुष्यों पर है अत्याचार,
व्यंग मात्र हैअरे पतित यह सब तेरा आचार ।

× × × ×

दूषितांग को काट फेंकना
मत करना उपचार ----
मिटने वाले मिटने का हैं
बस इतना ही सार । "1"

हर युग के समाज की अपनी अलग-अलग विशेषतायें होती है इसलिये यह आवश्यक नहीं कि किसी दूसरे युग में उन्हीं सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार किया जाय जो कि उससे पूर्व के युग में प्रचलित थीं। सभ्यता के विकास के साथ-साथ सामाजिक मान्यतायें बदलती रहती हैं। एक समय ऐसा था जब पर्दा प्रथा प्रचलित थी किन्तु आज के आधुनिक समाज में उसे हास्यास्पद प्रथा के रूप में देखा जाता है भगवती बाबू ने युग की बदलती मान्यताओं के बारे में जोर दार वकालत की है---

" कल समाज के नियम श्रेष्ठ थे,
किन्तु आज वे निस्सार ।

---

1. मेरी कवितायें ------ भगवती चरण वर्मा , 132

" सदा परिस्थिति के चक्कर का

परिवर्तन ही है आधार । "1"

कवि समाज में तो जीता मरता है इसलिये वह समाज में रहते हुये उसका सड़ी गली मान्यतायें और कुरीतियों के दंश को भोगता हुआ उन पर व्यंग्य अपनी रचनाओं के माध्यम से करता है नर-नारियों की हीन दशा को देखकर वर्मा जी ने कितना कारूणिक व्यंग किया है देखिये--

असफलता की सुबह-शाम

पशुबन कर नर पिस रहे जहाँ,

नारियाँ बन रही हैं गुलाम ,

पैदा होना, फिर मर जाना,

बस यह लोगों का एक काम । "2"

----नियति की दारूणता को दर्शाने वाला व्यंग्य-----

वर्मा जी ने निर्वैयक्तिक व्यंग्य में ऐसी देवी देवताओं एवं नियति की दारूणता को दर्शाया है। जिन पर मानव मन का कोई वश नहीं होता परन्तु मानवीय करूणा जिसके मूल में होती है नियति की विडम्बनाओं से आहत व्यक्ति की दयनीयता के दर्शन इस प्रकार के व्यंग्य में स्पष्ट हो जाते हैं। देखिये -----

" कितनी घुटन, कितनी व्यथा,

कितनी विवशतायें लिये

× × ×

कैसी झिझक? कब सत्य को

कोई यहाँ पर पा सका?

इसलिये अपने आपको

मैं छल रहा, बस छल रहा । "3"

कवि कहना चाहता है कि नियति का क्रम तो निरंतर चलता रहेगा और व्यक्ति

---

1. मेरी कवितायें ------- भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ - 133
2. मेरी कवितायें-------- भगवती चरण वर्मा पृष्ठ - 172
3. मेरी कवितायें ------- भगवती चरण वर्मा पृष्ठ - 41

अपनी उर में असीमित दाह लेकर जलता रहेगा वह घुटन और व्यथाओं से जूझता हुआ परिस्थिति चक्र में पड़ कर छला जाता रहेगा। वर्तमान युग की अनास्था, निराशा और घुटन को व्यक्त करने के लिये व्यंग्य का माध्यम लिया गया है। इस प्रसंग में व्यंग्य में विनोद नहीं अमर्ष है, उत्फुल्लता नहीं वेदना है, हल्कापन नहीं गाम्भीर्य है। प्रस्तुत प्रश्नों की तटस्थता से समाज का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

:- राज नैतिक पृष्ठ भूमि :-
---x---x---x---x---

स्वातंत्र्योत्तर राजनीति स्वतंत्र देश की अपनी स्वतंत्र लोक तांत्रिक राजनीत थी। विदेशी शासन और राजनीति के शिकंजो में कैद देश तो फिर भी राजनीति की आलोचना मुक्त भाव से नहीं कर पाता, फिर जब देश स्वाधीन हो और देश में लोकतंत्र हो तब तो राजनीति का भाव बहुत अधिक हो जाता है। जनता अपने चुने हुये प्रतिनिधियों से बहुत आशा करती है तथा उनके आचरण पर भी पूरी निगरानी रखती है। हर मतदाता अपने को कहीं छोटा-मोटा नेता भी समझने लगता है। राजनीति अथवा संसद, विधान सभाओं की उपद्रव पूर्ण हास्यास्पद लीडरों की चरित्रहीनता, नौकरशाही, सौदेबाजी सिद्धान्त हीन, दलबदल, जनता के हितों के प्रति पूर्ण उदासीनता, साम्प्रदायिक दंगे, विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा अपने-अपने प्रदर्शन के लिये किराये के प्रदर्शनकारियों को बुलाकर रैली निकालना आदि यह सब ऐसी राजनैतिक स्थितियां हैं जिन्होंने स्वातंत्र्योत्तर रचनाकार को व्यंग्य लिखने के लिये प्रेरित किया।

भगवती चरण वर्मा के युग में ऊपर राजनैतिक स्थिति ही थीं। राजनीति में राजनैताओं ने गांधी के आदर्शों को भुला दिया था। देश का एक सीधा साधा सामान्य व्यक्ति राजनीतिक नेताओं से आतंकित हो गया। कोई भी राजनैता हो व्यक्ति उसके चेहरे पर एक मुखौटा देखने लगा। उसे महान कहकर भी महान मानने को इन्कार करने लगा क्योंकि आज का राज चंद सिक्कों में बिक रहा है--

" बिक रहे विधायक नकद पार्टियां
जो सबल, मचाये लूट वही खुल्लम

" वेदान्त पढ़ो या भजन करो, पर मौन

उठकर दब जाया करता है हल्ला

राजनीति और राजनीतिज्ञों से तंग आकर व्यक्ति राजनेताओं को मनुष्य जैसा दिखना आश्चर्य की वस्तु समझने लगा, यह कोई अच्छी और सुखद स्थिति नहीं थी। इस गंम्भीर समस्या को कवि ने अपने व्यंग्य के माध्यम से नेताओं पर वाणी प्रहार करके कुछ समस्याओं को हल करना चाहा है।--

जन तंत्र की उपज विधायकों की भारी भीड़ यह घोषणा भी करती है कि विधायक विधाता से कम शक्ति वान नहीं रह गया है क्योंकि उसने तमाम मौसम बदल दिया है। कहीं भी योग्यता-ईमानदारी निष्ठा की चिंता नहीं की जाती है सब ओर दिखाई पड़ते हैं। देखिये वर्मा जी की पंक्तियां ---

" यह क्या? नयनों के आगे के

वे नाच उठे मरियल किसान

जिनकी पशुओं की सी मेहनत

बन जाया करती है लगाम

वे रोयें अथवा चिल्लायें

उनको भूखों मरना होगा,

हैं राजा साहब शक्तिवान

उक्त कविता में नेताओं के अकलीफन एवं किसान मजदूरों के प्रति निर्दयतापूर्ण बर्ताव को उजागर किया गया है। कवि का कहना है कि मात्र आकाश में उड़ लेने धान से कोठरी भर लेने, जोर से पोथी पढ़ लेने अथवा मनमोहक भाषण दे देने से ही यदि राजनेता सभ्य हो गये तो यह सभ्यता उन्हीं को मुबारक हो इन सभ्यताओं की ओट में मनुष्य की मनुष्यता का लोप हो गया है। इस प्रकार की कविताओं में सुप्त मानवता को जगाने का भी प्रयास किया गया है -----

" जग के उत्पीड़न में पाया

मैने अपना अस्तित्व नया।

मै देख रहा हूँ मौन विवश,

---

1. मेरी कवितायें------- भगवती चरण वर्मा - पृष्ठ , 244
2. मेरी कवितायें ------ भगवती चरण वर्मा - पृष्ठ , 19

" जग की बर्बरता अभया
कायर न बनो कुछ काम करो,
सुनता हूँ प्राणों की रट
मेरी मानवता बदल रही।
उलझन से भरी हुई करवट,
मैं जलूँ, किंतु जग को प्रकाश दें
मेरे उर के अंगारे ।"1.

भगवती चरण वर्मा का विचार है कि वर्तमान राजनैतिक परिस्थितियां विकट रूप से जटिल हैं। उन्हें विवेक व समझदारी से ही सुलझाया जा सकता है। मात्र असन्तोष व्यक्त कर देने, निराश हो जाने या कुंठाग्रस्त हो जाने, केवल सामाजिक यथार्थ को ग्रहण कर लेने अथवा आशा उल्लास और उद्‌बोधन की गुहार से संतोष पा सकना आज के कलाकार के लिये संभव नहीं है। उसे तो युगीन विसंगतियों बेईमानियों, जालसाजियों को समझकर कुछ इस प्रकार व्यक्त करना कि जिससे उनका पर्दाफाश हो जाये एवं इसका प्रभाव पाठकों की चेतना पर भी पड़े तथा इसी चेतना के माध्यम से युगीन समस्याओं और विडंबनाओं को दूर करने की ललक पैदा हो देखिये----

" लेकिन, यह हिम्मत का उबाल, यह लूटपाट
है नहीं बपौती इने- गिने इन्सानों की,
चेतना और विद्रोह सदा से एक रूप
बढ़ती जाती तादाद रोज दीवानों की ।"2.

वर्तमान जीवन की तिक्त स्थितियों, कचोटने वाली परिस्थितियों ने तमाम सच्ची कविता को व्यंग्यात्मक बना दिया हैं। किसी प्रसन्नता, आनंद एवं उल्लास की भावना में डूब कर नहीं, अपितु अपनी आहत आत्मा से यथार्थ का विश्लेषणकरने के लिये व्यंग्य का सहारा लिया जाना आवश्यक हो गया है। वास्तव में यह व्यंग्यात्मकता वर्मा जी के काव्य में स्वयं उभर कर आई है उनके लिये रचनाकार को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। एक नेता जी के भाषण पर उनकी टिप्पणी ---

---

1. मेरी कवितायें ------- भगवती चरण वर्मा पृष्ठ, 203
2. रंगो से मोह -------- भगवती चरण वर्मा पृष्ठ, 80

" कल पढ़ा था मैंने तुम्हारा वक्तव्य
अब मैंने देखी मूर्ति तुम्हारी भव्य।[1]
तुम तप की ऐसी अग्नि कि जिसमें सुख वैभव है हव्य।"

:- आर्थिक पृष्ठभूमि पर व्यंग्य :-

व्यक्ति और समाज के लिये अर्थ का अत्यधिक महत्त्व है। आर्थिक परिस्थितियां निश्चय ही समाज के मानस को बहुत गहरे में प्रभावित करती है पराधीन राष्ट्र में देश को विभिन्नप्रकार के संकटों से सामना करना पड़ा था। किसी भी देश में आर्थिक प्रगति ही देश की प्रगति की रीढ़ होती है। भारत आर्थिक दृष्टि से पतन की ओर उन्मुख हो रहा था क्यों कि अधिकांश धन महाजनों और धनिकों की बैंको में जा रहा था. किसान मेहनत करने वाले मजूरों की आर्थिक दशा बड़ी कारूणिक हो गई थी।

भगवती चरण वर्मा के समय नौकरियों की स्थिति भी उत्साह बर्द्धक नहीं थी। इस संबंध में भोलानाथ तिवारी लिखते हैं ----" जब आदमी के पास करने के लिये न खेती हो, न व्यवसाय हो, न कोई अन्य साधन हो तो विवश होकर वह आजीविका के लिये एक ही मार्ग का सहारा लेता था वह मार्ग है नौकरी। -------- हमारे यहाँ नौकरी की हालत यह थी कि बेचारे नौकर को माह भर में जितना वेतन मिलता था उसका कई गुना अधिक धन साहब के कुत्ते पर व्यय हुआ करता था। [2]

उपरोक्त कथन से भारत की आर्थिक स्थिति का एक सच्चा चित्र सामने आ खड़ा होता है। इस संबंध में डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा हैं ------- " आर्थिक दृष्टि से अंग्रेजी शासन काल भारत के इतिहास में अत्यंत दुर्व्यवस्था का काल कहा जा सकता है। इतना ही नहीं भारत "गरीबी" शब्द का पर्याय बन गया।[3]

संक्षेप में यही आर्थिक पृष्ठभूमि थी भगवती बाबू के सृजन काल में। जिसने कवि वर्मा को व्यंग्योन्मुख करके देश की यथा-स्थिति का चित्रण करने के लिये बाध्य किया। व्यक्ति व्यक्ति के बीच आय का बहुत बड़ा अंतर, मुट्ठी भर लोगों द्वारा देश समूची अर्थ

---

२. आधुनिक हिंदी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ----- भोलानाथ पृष्ठ , 22।
3. ऐतिहासिक सिंहावलोकन ----- डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा , पृष्ठ 189
1. मेरी कवितायें -------- भगवती चरण वर्मा - पृष्ठ , 235

व्यवस्था को हथियाये रखना और हृदय विदारक गरीबी के कारण ही व्यंग्यकार वर्मा में भी इन स्थितियों के प्रति आक्रोश जागा।

" वह राजपाट जो सधा हुआ
है उन भूखे कंकालों पर
इन साम्राज्यों की नींव पड़ी
है तिल तिल मिटने वालों पर।
वे व्यापारी, वे जमींदार,
वे हैं लक्ष्मी के परम भक्त,
वे निपट निरामिष सूदखोर
पीते मनुष्य का उष्ण रक्त । "1"

आर्थिक पृष्ठभूमि में निहित शोषण, भ्रष्टाचार और असमानता ने निःसंदेह ही बुद्धिजीवी को व्यंग्य की दिशा में प्रेरित किया। इस प्रकार की स्थितियों पर प्रहार करने वाला व्यंग्य प्रगति शील कवियों ने यथेष्ट परिमाण में लिखा है। वर्मा जी भी युग के प्रभाव से न बच सके उन्होंने भी प्रगति शील कविता की सृष्टि में कदम रख कर अनेक स्थलों पर यथार्थ चेतना को मुखरित किया। महाजन लोगों ने किसान गरीब लोगों का खूब शोषण किया। प्रगति-वादी रचनाकारों की रचनाओं में इस शोषण के प्रति पर्याप्त आक्रोश एवं व्यंग्य भी मिलता है। वर्मा जी की निम्न पंक्तियों में राजनेताओं, जमींदारों धनियों के रास रंग के पागलपन में गावों का क्रंदन देखिये ------

" उस बड़े नगर का रास रंग
हंस रहा निरंतर सा पागल सा,
उस पागल पन से ही पीड़ित
कर रहे ग्राम अविकल क्रंदन । "2"

" कर रहे ग्राम अविकल क्रंदन, में कितनी करुणा भरी आह है उन धनिकों के पागल पन पर कितना तीखा व्यंग्य किया गया है यह हृदय-भेदी वाक्य वर्मा जी की अपनी विशेषता है। साहित्यकार अपेक्षाकृत अधिक संवेदन शील होता है। अत: वह समाज के पिसने वाले वर्ग की

---

1. मानव ------ भगवती चरण वर्मा (भैंसा गाड़ी कविता)
2. मानव ------ भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ - 55

और से आवाज उठाता है जिसमें सम्पन्न लोगों की आलोचना के साथ-साथ विपन्न वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त की जाती है।

आर्थिक असमानताओं के प्रति असंतोष और व्यंग्य का सर्वाधिक गहरा रंग प्रगतिशील आन्दोलन के साथ उभर कर आया है इस युग में कवियों ने युगों-युगों से शोषित मजदूरों, किसानों, गरीबों के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुये पूंजीपतियों, मिल मलिकों, सूदखोरों, धन को पानी की तरह बहाने वालो पर व्यंग्य किया है।

:- धार्मिक दुराग्रहों एवं परम्परागत नैतिक मूल्यों के प्रति व्यंग्य :-
-----x-----x-----x-----x-----x-----x-----x-----

देश के विभाजन के समय हुये साम्प्रदायिक दंगों में धर्म ने जो काले, अमानुषिक और पाशविक करतब दिखाये वे किसी से छिपे नहीं है। धर्म की आड़ लेकरहुये हिन्दू मुस्लिम संघर्ष को देखकर विश्व मानवता कराह उठी। विभाजन की दारूण परिस्थितियों पर कई रचनायें लिखी गईं जिनका व्यंग्य तीखा और करूणपूर्ण वर्मा जी की हिन्दू मुसलमान शीर्षक रचना में बेगुनाह, निर्दोष अनजाने, मासूम की हत्या कर डालने की उत्तेजक स्थिति को अत्यंत करूण और हृदय विदारक व्यंग्य के माध्यम से कहा गया है। इस कविता में दो चित्र हैं। एक चित्र में हिन्दू बाला है, जो अपने पति मोहन को मार दिये जाने और स्वयं को गुंडों द्वारा भ्रष्ट किये जाने की स्थिति का वर्णन करती है। दूसरे चित्र में एक बुढ़िया अपने पुत्र जुम्मन की, जो किसी का दुश्मन नहीं था, हत्या पर विलाप करती है। ये दोनों चित्र करूणा का अजस्त्र स्त्रोत है और सच्चा आक्रोशमय व्यंग्य भी ---

" थे मुसलमान-हिन्दू वे जुम्मन मोहन,
पर इनसे पहले वे थे निश्चय मानव।
दोनों के मजहब अलग-अलग माना पर
मानवता के विकास का साधन मजहब,
जो नफरत की बुनियादों पर कायम है
वह नहीं खुदा का, वह शैतां का करतब । "1"

---

1. रंगो से मोह -------- पृष्ठ , 82

धार्मिक दुराग्रहों और निरंतर कट्टर पन के नग्न नृत्य के विरुद्ध लिखी गई कविताओं में प्राय: धर्म पर नहीं, धर्म के अंध एजेन्टों पर व्यंग्य किया गया है, क्योंकि अपने मूल रूप में कोई भी धर्म बुरा नहीं होता। उसके अनुयायी और विश्वासी ही उसमें खोट पैदा कर देते हैं। कवि का आशय है कि सच्चा मार्ग या धर्म वही है जो किसी को भटकाता नहीं, भरमाता नहीं। गिर्जाघर गुरुद्वारा, मसजिद, मंदिर सभी ईश्वर के आवास स्थल हैं तथा उनमें परस्पर कोई तकरार नहीं है किन्तु इनके संरक्षक पादरी, मुल्ला, ग्रंथी पंडित सभी स्वार्थ साधन में लगे हैं और उनकी कोशिश यही रही है कि लोगों में परस्पर सौहार्द न हो, क्योंकि इससे उनके स्वार्थों पर आंच आयेगी।

वर्तमान वैज्ञानिक तथा सभ्य समाज में यद्यपि धर्म के सही रूप को ही ग्रहण किये जाने की प्रवृत्ति विकसित हो रही है, तथापि ऐसे समुदायों की कमी नहीं है जो धर्म के बहाने अपना धंधा चला रहे हैं। हिन्दी कविता में धार्मिक दुराग्रहों और परंपरागत नैतिक मूल्यों के प्रति किये गये व्यंग्य से यह स्पष्ट है कि सभी कवियों की दृष्टि प्राय: स्वच्छ और अमलिन रही है, सभी में धर्म के प्रति श्रद्धा होते हुये भी उसकेक कूपमंडूक के संरक्षकों की निरंकुशता के प्रति आक्रोश है। भगवती बाबू ने परम्परागत नैतिक मूल्यों को नकार कर नये नैतिक मूल्यों का समर्थन किया ।

:- युगाभिव्यक्ति और व्यंग्य :-

------x------x------x----

वर्मा जी की रचना में आने वाले व्यंग्य में मनुष्य के प्रत्येक आंतरिक और वाह्यसंकट को समझने का प्रयासहै मानवीय विसंगतियों को व्यक्त करने की कोशिश है। वर्मा जी के रचनाकाव्य की कविता में करुण हास्य एवं प्रहारात्मक व्यंग्य एवं वैयक्तिकविडम्बनाओं को दर्शाने बोले व्यंग्य की अभिव्यक्ति हुई है उसमें युग की समस्त मनोदशा सत्यों एवं तथ्यों का उद्घाटन आंकलन विद्यमान है। इस समूचे व्यंग्य-प्रयत्न में कवि की तटस्थता, जागरूकता बौद्धिकता, संवेदन शीलता का तालमेल इतने कौशल के साथ हुआ है कि इसकी रचनाओं से तद्युगीन सामाजिक राजनैतिक आर्थिक विसंगतियों को एवं व्यक्ति के परस्पर संबंधो को आसानी से समझ सकता है।

भयंकर रूप से दहला देने वाली अर्थ-व्यवस्था, धनवान और निर्धन के बीच बढ़ती हुई गरीबी- अमीरी की खाई अकल्पनीय मंहगाई, बेरोजगारी आदि समस्याओं पर कवि वर्मा ने अपने काव्य में खूब सामग्री जुटाई है। बुद्धिजीवियों की कुर्सीपरस्ती सफेद पोशी,

अवसर वादिता आदि पर खुलकर प्रहार किया है। वह तो सोई हुई चेतना को झकझोरने तथा सांस्कृतिक एवं मानवीय चेतना में जागरूकता उत्पन्न करने का कार्य करते हैं। इससे अधिक प्रत्याशा किसी कवि या लेखक से करना उसके प्रति अन्याय ही होगा।

:-व्यंग्य की अभिव्यक्ति में कवि का व्यक्तित्व :-

व्यंग्य रचना लिखते समय रचनाकार का व्यक्तित्व रचना में समाविष्ट हो जाता है। व्यक्तित्व रचना को किसी न किसी प्रकार प्रभावित भी करता है। प्रत्येक व्यंग्य का आक्रमण सामाजिक, राजनैतिक परिप्रेक्ष्य से सम्पृक्त होते हुये भी व्यंग्यकार की निजी प्रति क्रिया के रूप में ही व्यक्त होता है। व्यंग्य रचनाकार की जीवन-दृष्टि पर बहुत कुछ निर्भर करता है। अत: यह स्वीकार्य है कि व्यंग्य की अभिव्यक्ति में व्यक्तित्वका प्रक्षेपण लगभग अनिवार्य है।

जिस प्रकार व्यंग्य रचनायें अपने परिवेश का बखान स्वयं ही करती चलती हैं, उसी प्रकार व्यंग्यकार के व्यक्तित्व की उद्घोषणा सर्जित अथवा किया गया व्यंग्य अवश्य करता है। सत्य तो यह है कि व्यक्तित्व के प्रक्षेपण के कारण ही रचना में गाम्भीर्य, सार्थकता, सच्चाई आदि काव्यगुण उत्पन्न होते हैं, अन्यथा पूर्णत: तटस्थ भाव से किया गया व्यंग्य कथ्य की सच्चाई पर भी प्रश्न चिह्नलगा सकता है।

भगवती चरण वर्मा ने अपने प्रगतिशील एवं गांधीवादी व्यक्तित्व के कारण ही उन प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया जो प्रगति विरोधी या गांधी मार्ग में बाधक थीं। कवि वर्मा ने अपनी रुचि से उन मुद्दों को व्यंग्य का निशाना बनाया जिन्हें सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्वास्थ्य के लिये वे घातक समझते थे। व्यंग्यकार के व्यक्तित्व का वही पक्ष प्रक्षेपित होना उचित है जो सार्वभौम एवं कल्याण कारी होता है।

:- उपसंहार :-

आज का युग निश्चय ही अनेकों विसंगति एवं विषमताओं से भरा हुआ है। ऐसी स्थिति में मनुष्य की अभिव्यक्ति में कडुवाहट आ जाना

स्वाभाविक ही है। यही कारण है जब भी रचनाकार ने स्वयं को भीतर बाहर से आहत अनुभव किया तो वह व्यंग्यशील हो उठा।

भगवती चरण वर्मा के साथ भी यही हुआ कवि वर्मा ने जीवन की, जगत् की, राजनीतिक नेताओं की, समाज की अनेकानेक विसंगतियों का पर्दाफाश करने के लिये व्यंग्य का सहारा लिया। सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, वैयक्तिक समस्याओं में निहित असंगतियों को जांचने-परखने से बहुत सी व्यापक स्थितियाँ अपने आप उजागर हो जाती जो कलाकार को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करने को मजबूर कर देती हैं। कहने का तात्पर्य यह कि श्रद्धास्पद व्यक्ति हास्यास्पद कार्य कर रहे हों तो इस प्रकार की विडंबनायें कवि को व्यंग्य की प्रेरणा देती हैं। भगवती चरण वर्मा ने अपने काव्य में कवि, नेता अभिनेता, डाक्टर, अध्यापक सभी पर खूब व्यंग्य किया है जो उनकी बौद्धिकता का परिचय देने में समर्थ है। गंभीर से गंभीर बात को हास्य- व्यंग्य में उड़ा देना. और हल्की फुल्की बात को गम्भीर रूप दे देना वर्मा जी की विशेषता है।

=======xxxxxxx======

:- वर्मा जी का नियतिवादी जीवन दर्शन :-

-----xx-----xx-----xx----xx----

ईश्वर विश्वास हमारे जीवन का स्वाभाविक नियम है। उससे किसी प्रकार हम मुक्त नहीं हो सकते। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में ईश्वर को मानता ही है। कोई उसे शक्ति के नाम से,कोई सत्य के नाम से, कोई एकता के नियम के रूप में, कोई महादेव के रूप में, कोई कर्म के नाम से,तो कोई विधि के विधान के रूप में। पर मानते हैं। सभी उसे ही। एक ही तत्व है जिसे ज्ञानी लोग नियति कहते हैं। इसी "नियति" को भाग्य, विधाता, अदृश्य, ईश्वर भी कहते हैं क्यों वही कर्मानुसार प्रत्येक प्राणी को भाग्य का फल देने वाला माना गया है। विभिन्न युग के विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी भावनाओं और जीवनानुभवों के आधार पर विधि के विधान की चर्चा की है। वर्मा जी अपने बचपन में गर्वीले और स्वाभिमानी व्यक्ति रहे हैं। अत: इसका नियति-दर्शन कर्म से प्रभावित रहा।

मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुरूप आचरण क्यों करता है? इसमें वर्मा जी का नियति वादी दर्शन निहित है वे कहते है--- " मनुष्य पर तंत्र है, वह परिस्थितियों का दास है। वह लक्ष्यहीन है। एक अज्ञात शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को चलाती है मनुष्य की इच्छा का कोई मूल्य नहीं। मनुष्यस्वावलंबी नहीं है, कर्त्ता भी नहीं वह साधन मात्र है। "1. अत: वह जो कुछ आचरण करता है वह परिस्थिति जन्य प्रेरणा से अनुप्राणित होकर फिर भी वर्मा जी वह व्यक्ति का आचरण श्रेष्ठ मानतें है जो कष्ट या मुसीबतों में धैर्य के साथ पथ पर अग्रसर रहे। आगे कहते हैं---" मनुष्य की विजय वहीं संभव है जहाँ वह परिस्थितयों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाये परन अपने कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखते हुये उस पर विजय पायें। -.2.

स्पष्ट है कि वर्मा जी परिस्थिति और नैसर्गिक इच्छाओं के सहयोग पर बल देते हैं। अतएव वर्मा जी का नियतिवाद किसी भ्रांतिमूलक अंध विश्वास पर आश्रित नहीं है उसमें मानव जीवन के स्वस्थ्य विकास की समस्त सम्भावनायें निहित हैं। वर्मा जी के नियतिवादी व्यक्तित्व के विषय में स्वयं वर्मा जी के शब्दों में ही देखिये ---" मेरे ऊपर यह आरोप लगाया जा सकता है कि मैं नियतिवादी हूँ। जो नियतिवादी है वह जिस तरह जीवन

---

1. चित्रलेखा ----- भगवती चरण वर्मा --- पृष्ठ , 92

के उद्देश्य एवं भावना के उदात्तीकरण की बात कर सकता है ? यह कुछ लोग पूछेंगे। नियतिवाद में दु:खवाद के अवयव हैं, अनेक पाश्चात्य दार्शनिकों का यह मत है। मेरा नियतिवाद इस दु:खवाद से शासित नहीं है। यह समस्त रचना विकास के नियमों पर आधारित है। मनुष्य में गुण सक्रिय हैं-- वह दया, प्रेम, त्याग आदि गुणों से युक्त होकर ही मनुष्य सामाजिक प्राणी बना है और इन्हीं गुणों पर वह निरंतर विकास करता रहता है। नियतिवाद का दृष्टिकोण एक स्वस्थ दृष्टिकोण है, मेरा ऐसा विश्वास है जो"[1] मेरे निजी अनुभवों से मुझे प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार वर्मा जी के नियतिवादी व्यक्तित्व में अकर्मण्यता, निराशा के लिये कोई स्थान नहीं है। नियतिवाद प्रकृति का नियम और जीवन-सत्य है। इसकी अवहेलना हम नहीं कर सकते। इसको स्वीकार कर अपना स्वस्थ विकास करना ही श्रेयष्कर है। इस प्रकार वर्मा जी का नियतिवाद - ——————

———— गीता के कर्मयोग का समर्थन करता है। वे कहते हैं--- " मैं गीता को भी नियतिवाद का प्रतिपादन मानता हूँ जहाँ कि निराशावाद से भरी अकर्मण्यता के स्थान पर आशावाद युक्त कर्मवाद को नियति का रूप माना गया।"[2] वहीं कहीं मिलती है छांव कविता की कुछ पंक्तियां देखिये ------

" नहीं यहाँ पर ठौर-ठिकाना।
सुख अनजाना, दुख अनजाना।
पग पग पर बुनता जाता है
कालनियति का ताना बाना ।
मेरे आगे है मरीचिका,
मेरे अन्दर है विश्वास।
जो कि मृत्यु पर चिर-विजयी है,
वह जीवन है मेरे पास । "[3]

मनुष्य के कर्म उसके आधार मूलत व्यक्तित्व के आधार पर होते हैं। इसे हम जन्म जात गुण भी कह सकते हैं। वर्मा जी जन्म से ही नियति से प्रभावित और कर्म के प्रति आस्थावान

---

1. भगवती चरण वर्मा ----- रंगों से मोह (प्रस्तावना)
2. त्रिपथगा---- भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ - 70
3. मेरी कवितायें ------ भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ, 25।

मनुष्य के कर्म उसके आधार भूत व्यक्तित्व के आधार पर होते हैं। इसे हम जन्मजात: गुण भी कह सकते हैं। वर्मा जी जन्म से ही नियति से प्रभावित और कर्म के प्रति आस्थावान रहे थे। उन्होंने मानव समाज को कर्मनिष्ठ, ध्येय निष्ठ और धैर्यनिष्ठ बनने का संदेश देकर जन-जन की शक्ति जगाई हैं।------

" जीवित है संसार आत्मा-बल से भुजबलसे,
लड़ना ही है इष्ट परिस्थिति चक्र प्रबल से।
सकल विश्व है, युक्त नीति से बलसे छलसे,
साहस ही बस पार पा सकेगा रिपु दल से। "

वर्मा जी ने जिस त्याग और बलिदान की, गुहार की वह वैराग्य जन्य नहीं, वरन् अनुरागजन्य कर्मयोग के पथ की ओर ले जाने वाला है। मृत्यु पर्यन्त कर्ममार्ग पर डटे रहना ही कर्मयोग है। वर्मा जी ने भी अधिकांशत: अपने साहित्य में इसी कर्म योग का समर्थन किया और स्वयं अभावों और मुसीबतों का सामना करते हुये भी सांसारिक धर्मों को निभाते हुये इसी कर्म पथ पर दृढ़ता से डटे रहे। उनका कहना है --- " विश्व व्यक्तियों का है, जीवन है कर्मों का नाम।" विस्मृति के फूल" की कुछ पंक्तियाँ देखिये ---

" जीवन तो है कर्म, कर्म है जग में होना लीन,
जिसे युक्ति कहते हो, वह है अकर्मण्यता, पाप।, "1"

जीवन की क्षणभंगुरता की ओर दृष्टि :-
------xxx-------xxxx--------

हिन्दी साहित्य के तृतीय उत्थान काल में ही सर्वत्र निराशा की भावना का विस्तृत साम्राज्य विद्यमान था। रहस्यवादी कवियों के अनुसार जीवन और जगत् दोनों ही नश्वर हैं, और उनके इस कथन के पीछे काम कर रही है उनकी धार्मिक भावना। हमारे प्राचीन, धार्मिक ग्रंथों में जीवन और जगत् को नश्वर व मिथ्या कह कर जीवन की एक भव्यअवस्था निर्देशित थी जिसे जीवन की मोक्षावस्था कहते हैं। जो सांसारिक वस्तुओं से बहुत दूर है जो नित्य, अनश्वर, एवं सत्य है। लेकिन मानव जब उस अवस्था को प्राप्त नहीं कर सका तो वह संसार की नश्वरता, अनित्यता, क्षणिता, एवं परिवर्तन शीलता को देखकर तड़प उठा। इसके उपरान्त जब उसे संसार में पग पग पर विपत्तियों एवं दुःखों

1.. मधुकण ----- भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ 30

का सामना करना पड़ा, दैवीय शक्ति पर, भाग्य पर उसका कोई वश न पड़ा तो वह संसार को नश्वर क्षणिक कह कर संतोष कर लेता है।

पल-पल परिवर्तित संसार को देखकर अनायास ही कवि व्यग्र हो उठता है, जहाँ प्रत्येक वस्तु का ऐश्वर्य, मदकता, श्रृंगार केवल कुछ समय के लिये है और उसके पश्चात् केवल मृत्यु ही दृष्टिगोचर होती है उसी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति वर्मा जी ने अनेक स्थानों पर की है। जिस प्रकार एक लहर, जो जा चुकी है, उसका पुन: आकर अन्य लहरों से मिलन असंभव है उसी प्रकार- यह जीवन और संसार तो जहाँ प्रत्येक वस्तु का मिलन एवं संयोग क्षणिक हैं और उसके पश्चात् न जाने सब किस अज्ञात प्रदेश में पदार्पण कर जाते हैं, इस भाव की झलक देखिये.-

" जीवन सरिता की लहर लहर,
मिटने को बनती यहाँ प्रिये।
संयोग क्षणिक फिर क्या जाने,
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिय। "1"

कहने का आशय है-- कि संसार में प्रत्येक वस्तु क्षणिक है, कुछ क्षण के लिये उसका आगमन होता है और पुन: न जाने किस अंधकार में विलीन हो जाती है। उपरोक्त पंक्ति में वर्मा जी ने तरंगों के माध्यम से जीवन की क्षणिकता का अत्यंत मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। इस नित्य जगत मे हास के विनिमय में आंसू मिलते हैं। जीवन की एक एक सांस मृत्यु को बुलाती है। इस प्रकार विश्व विनश्वरता का चिरंतन राग और जीवन क्षणभंगुरता का इतिहास ही, दीन मानव को मृत्यु के मूल्य में जीवन देना पड़ता है। संसार की इस क्षणिकता को देखकर कवि किसी भी वस्तु को प्राप्त करने का प्रयास न कर भाग्य पर भरोसा करके नियति पर विश्वास कर लेता है। देखिये --------

" मेरी अभिलाषाओं पर है,
असफलता का परिधान प्रिये ।
फिर यहाँ किसी का दोष कहाँ,
कुछ विधि का यही विधान प्रिये। "2"

---

1. मधुकण --------- भगवती चरण वर्मा पृष्ठ , 30
2. मेरी कवितायें --- भगवती चरण वर्मा पृष्ठ , 95

वर्मा जी नियति से प्रभावित बाल्यकाल से ही रहे थे। एक के बाद एक बड़ी बड़ी मुसीबतों की गाज उन पर पड़ी फिर भी वह घबड़ाये नहीं किन्तु विधि का विधान मान कर संतोष कर लेते रहे जिससे उनका दृष्टिकोण भी नियति से प्रभावित हो गया। उन्होंने अपने जीवन के बारे में लिखा है----- " कभी कभी सोचने लगता हूँ कि अगर मुझे संगीतज्ञ होने की परिस्थितियां मिली होती तो शायद मैं संगीतकार हो गया होता लेकिन नियति का विधान कुछ और था। "1" स्पष्ट है वर्मा जी वर्मा जी भाग्य पर पूरा विश्वास रखते हैं। संसार की नश्वरता पर विश्वास करने का प्रमुख कारण यह रहा कि उन्होंने जीवन में निराशायें असफलतायें ही हासिल की थीं।

मानवीय भावनाओं को विकसित करने का जितना श्रेय आधयात्मिक वृत्तियों को है, उतना ही तद्युगीन परिस्थितियों को भी। मानवीय शक्तियां प्राय: तद्युगीन परिस्थितयों के अनुकूल ही परिवर्तित होती रहती हैं। निरंतर अभाव, व्याकुलता, असफलता, एवं तिरस्कार के कारण उसके आत्माभिमान को ठेस लगती है जिस कारण दु:खानुभूति होती है। निरंतर दु:खानुभूति के कारण वह जीवन के सुखात्मक पक्ष से विमुख हो जाता है वह जीवन को एवं सुख को भी क्षणिक एवं मिथ्या अनुभव करने लगता है। एक चित्र देखिये ----

" जीवन क्या है? केवल एक पहेली,
यह यौवन क्या है? विस्मृति की रंगरेली,
यह आत्म ज्ञान तो भ्रम है, भ्रम है, भ्रम है,
ममता रहती है निशिदिन यहाँ अकेली।
जी भर कर मिल लो आज, ठिकाना कलका ?
युग का वियोग, संयोग एक ही पल का । "2"

मानव की सदैव से यही प्रवृत्ति रही है कि वह अपने वर्तमान से प्राय: असंतुष्ट रहता है जिन अभावों के कारण वह असंतुष्ट रहता है उन असंतोषों के निराकरण का मार्ग खोजने का भी यथाशक्ति प्रयास करता है । उस क्षण उसे ऐसी अनुभूति होती है कि इस अलौकिक जगत से परे अवश्य ही कोई महान एवं परमसत्ता है जो उसके समस्त कार्य को पूर्ण करने की क्षमता रखता है। उस अलौकिक सत्ता की कल्पना मात्र से ही कवि के अधीर मन को

---

1. सविनय और नाराज कविता --- भगवती चरण वर्मा

2. मेरी कवितायें ------ भगवती चरण वर्मा -- पृष्ठ , 35

कुछ धैर्य मिलता है लेकिन इस पर भी उसकी विचारधारा उसका दामन नहीं छोड़ती है। वर्मा जी बौद्धिक प्राणी होने के फलस्वरूप चिंतन ग्रस्त रहते है वह यह सोचने पर विवश हो जाते हैं कि वह अलौकिक सत्ता कौन है? जग क्या है ? उस परम सत्ता का रूप क्या हैं ? मैं क्या हूँ । समस्त संसार का संचालन कैसे होता है ? परन्तु कवि के पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं और एक समस्या उसके मस्तिष्क को झकझोरती रहती है ----

" जग क्या है ? उसको जान नहीं पाता हूँ,
मै निज को ही पहचान नहीं पाता हूँ, "1"

उस अलौकिक शक्ति से साक्षात्कार करने में आजतक कोई भी प्राणी सफल नहीं हुआ। सृष्टि के आदि से अब तक मानव उसकी अलौकिकता की कल्पना कर अपने आतुर मन को धैर्य देते रहे हैं। रवीन्द्र ने भी अपनी "गीतांजलि" में कुछ इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं। -----

" विश्व भर में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं।
जिसने कभी उसके प्रत्यक्ष दर्शन कियें। "2"

यद्यपि उस अलौकिक सत्ता को किसी ने भी देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं किया है तथापि वह अदृश्य सत्ता संसार में सर्वत्र व्याप्त है और प्रत्येक कार्य उसी के द्वारा संपादित होते हैं। कवि वर्मा की निम्न पंक्तियाँ देखिये ----

" किस का आलोक गगन से
रवि शशि, उडुगन बिखराते ?
किस अंधकार को लेकर
काले बादल घिर आते ?
उस चित्रकार को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूँ ! "3"

---

1. मेरी कवितायें -------- भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ, 35
2. गीतांजलि ----------- कवीन्द्र , रवीन्द्र

यह भावाभिव्यक्ति वर्मा जी ने प्राचीन दार्शनिक ग्रंथो से प्रभावित होकर लिखी हैं। अलौकिक सत्ता सर्वत्र व्याप्त है प्रत्येक कार्य उसी के द्वारा तो सम्पन्न होते है। प्रकृति के कण कण में अर्थात् अपनी चतुर्दिक बातावरण में जब कवि प्रत्येक बस्तु को किसी अदृश्य सत्ता के निर्देशन में कार्य करते देखता है। तो उसे ऐसा अनुभव होता है, मानों वह स्वयं भी प्रत्येक कार्य स्वयं न करके किसी अन्य के द्वारा निर्देशित होकर करता है। जिस समय वह स्वयं को किसी अलौकिक सत्ता के पराधीन अनुभव करता है उस क्षण वह अपने विलग अस्तित्व का परित्याग कर उसी अदृश्य, अगोचर सत्ता में समाविष्ट हो जाता है। वर्मा जी का कथन है कि मानव केवल उसी का एक अंश मात्र हैं। उसी ईश्वर की शक्ति का वितरण ही सम्पूर्ण मानव जाति में होता है और मनष्य कार्य करके उसी को अर्पणकरता है। यही विचार कर प्रत्येक मनुष्य अपने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास करते हैं -----

" जग है तो मैं हूँ, मैं हूँ तो यह जग हैं,
जग मुझमें, मै भी जग में मिल जाता हूँ। "1"

" कब से ढूंढ़ रहा हूँ, कविता की निम्न लिखित पंक्तिया भी इसी भाव को व्यक्त करती हैं---

" मैं कब से ढूढ़ रहा हूँ,
अपने प्रकाश की रेखा।
तम के तट पर अंकित है,
नि: सीम नियति का लेखा । "2"

:- ब्रह्म जीव, जगत् के प्रति कौतूहल :-
-----x-----x-----x-----x----

भगवती चरण वर्मा के युग में सर्वत्र दु:ख, दैन्य एवं क्षोभ का साम्राज्य विद्यमान था । इस दु:ख का मूल कारण था भारतीय राष्ट्र का पराधीन होना। राजनैतिक पराधीनता के कारण व्यक्ति को पग-पग पर अवहेलना एवं तिरस्कार सहन करना पड़ता था जिससे उसका दु:ख उत्तरोत्तर उग्र रूप धारण करतागया जीवन में सर्वत्र दु:ख व निराशा के दर्शन होने पर संसार एवं जीवन के प्रति उपेक्षित भावना का उदय होना स्वाभाविक ही है, लेकिन जहाँ तद्युगीन कवियों के हृदय में संसार व जीव की क्षणिकता नश्वरता एवं अनित्यता के विचार उद्दीप्त होते है, वहीं इनके साथ ही साथ

---

1. मेरी कवितायें -------- भगवती चरण वर्मा पृष्ठ , 35
2. मेरी कवितायें -------- भगवती चरण वर्मा पृष्ठ , 12

इस संसार के रचयिता के प्रति उत्सुकता भी विद्यमान दृष्टिगत होती है। इस विशाल सृष्टि का उत्पादक, संचालक, संहारक कौन है? तथा किसके कठोर अनुशासन के कारण सृष्टि के समस्त कार्य अपने पूर्व निश्चित कार्य क्रम के अनुसार होते हैं? आदि प्रश्नचिह्न कवि के मस्तिष्क में रहते हैं। वास्तव में यह भावना तो आदि काल से ही मानव मस्तिष्क में रही है। ब्रह्मजीव, जगत् को जानने के लिये हर युग के मानव की भावना उत्सुक रही हैं। और इस रहस्य का उद्घाटन न तब हो पाया था और न आज वर्मा जी की पंक्तियां देखिये। ------

" मेरे आगे जो अनजाना-सा संसार है,
इसमें किसकी सत्ता? किसका अहंकार?
टेढ़े मेढ़े अगणित पथ, अगणित लोगों के,
किन्तु निगल लेता प्रतिपथ को अंधकार। "1"

प्राचीन काल से ही मानव ब्रह्म जीव, जगत् के रहस्य को जानने के लिये उत्सुक प्रतीत होता है। साहित्य में रहस्यवाद के नाम से जिस भावना की अभिव्यक्ति होती है उस रहस्य की भावना को बहुत समय पूर्व हम अपनी आध्यात्मिक भावना में विद्यमान पाते हैं। इसका शुभारंभ हमें ऋगवेद में मिलता है। प्रत्येक युग में लगातार इन गंभीर समस्याओं पर चिंतन होता आया है। आधुनिक युग जो कि प्रगतिवाद नवमानववाद एवं नव जागरण काल के नाम से विख्यात रहा , इसमें भी विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी बुद्धि एवं भावना के अनुरूप उस अलौकिक सत्ता की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की है चंद्र, सूर्य नक्षत्र, हिम, शिखर, सरिता, ऋतुएँ आदि किसकी आज्ञानुसार कार्य करती हैं या इनका नियंत्रक कौन हैं? कवि का मन आज भी इन प्रश्नों से आच्छादित है। अतः कवि वर्मा जी के मन में भी यह जिज्ञासा धीरे-धीरे एक समस्या का रूप धारण कर लेती है और वे विश्व के नियंत्रक के रहस्योद्घाटन का प्रयास करते है ----

" सत्य और भ्रम मैं क्या जानूँ
जब मैं ही हूँ अनजाना।
तुम कर्त्ता हो, तुम ही कृति हो,
तुम तो हो अन्तर्यामी।
कण कण में अस्तित्व तुम्हारा
श्वास-श्वास में तुम ही अंकित। "2"

---

1. मेरी पहचान कविता-- भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ, 16 ।2। मेरी कविता, भगवती पृष्ठ, 44

और अंत में कवि वर्मा उस असीम सत्ता से प्रभावित होकर--- "आत्म समर्पण में कर रहा यह अपना दीवाना" कह कर आत्म संतुष्टि का अनुभव करते हैं।

नियत्ति ने मनुष्य को विवशता के कठोर पाश में बांध रखा है। कवि की दृष्टि जिस ओर भी उठ जाती है वहीं उसे जग की नश्वरता नजर आती है इस सम्पूर्ण विश्व का आदि और अंत समझ में नहीं आता हैं कवि वर्मा कह उठते हैं -----

" नित्य नये इतिहास बन रहे
फटते पन्ने नित्य पुराने-
आदि कहाँ है, अंत कहाँ है?
कौन आज तक जान सका।
मृत्यु लिये निज सर पर जीवन,
क्या है सत्य, कौन क्या जाने । "1"

यह सत्य है कि मानव अपने समीप सदैव किसी अलौकिक, अज्ञात महान सत्ता का अनुभव करता है और वह उससे एकाकार होने का भी असीम प्रयास करता है। वास्तव में नियतिवाद का मूलाधार भी यहीहै जैसा कि भगवती चरण वर्मा ने अभिव्यक्त किया है।

मनुष्य न तो कभी पूर्णता का दावा कर सकता है और न सदा सफलता को अपनी मुट्ठी में बंद रखने का अभिमान ही कर सकता है। अत: विफलता के क्षणों में निराशा से बचने के लिये उसका दायित्व किसी बाह्यसहृदय सत्ता पर छोड़ना लोक मंगल की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है। वर्मा जी लिखते हैं ------

" कांटों से निज राह बनाकर
मैंने उस पर चलना सीखा,
मुझे नियति ने दे रखी है,
पागल पन से भरी जवानी,
मेरी भूलों से मत उलझो,
जनम जनम का मैं अज्ञानी । "2"

---

1. मेरी कवितायें ----- भगवती चरण वर्मा , 44
2. मेरी कवितायें ----- भगवती चरण वर्मा , 46

:- क्षणिक सुखों पर विश्वास :-
----x----x----x-----

जीवन क्षणिक एवं क्षणभंगुर है और जीवन की यह क्षणिकता ही कदाचित मानव को उपयोगी बनने के लिये प्रेरित करती है। वह समस्त सुखों का अर्जन एवं उपभोग वर्तमान में ही करने की कामना करता है। वह केवल भूत एवं भविष्यत् का ही परित्याग नहीं करता वरन् वर्तमान की यथार्थता की अवहेलना कर उसके कटु सत्य से आखे मूंद हाला-प्याला की शरण ग्रहण करता है। और सुख दु:ख को नियति का चक्र मान कर संसार के समस्त ऐश्वर्य, उल्लास एवं आनंद को अपनी झोली में समेटने की आकांक्षा करता है। यह सुख भले ही क्षणमात्र के लिये हो, कवि इसी पल भर के सुख को अपनापन सा महसूस करता है। कवि वर्मा की उक्ति देखिये ----

" आओ मिलि लें हम तुम पल भर,
पल भर कर लें प्यार,
वह अक्षय विस्मृति का
पल ही बने सकल संसार।"[1]

कवि वर्मा इस नश्वर संसार के दारूण दुखों से अत्यंत संतप्त है और जीवन के कुछ क्षण सुखमय व्यतीत करने की कामना करते हैं जहाँ इस दु:खमय वातावरण की कालिमा परिलक्षित न हो। वे किसी भी मूल्य पर क्षणिक सुखों का परित्याग करने को प्रस्तुत नहीं हैं।-----

" जीवन सरिता की लहर लहर,
मिटने को बनती यहाँ प्रिये,
संयोग क्षणिक! फिर क्या जाने,
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिय।"[2]

वे अपने सुखमय क्षणों को अपनी इच्छानुसार भोग विलास व सुख शांतिमय व्यतीत करने की कामना करते हैं। वास्तव में जीवन है भी क्षणभंगुर मानव का अस्तित्व इस संसार में जल में बुलबुले के समान है, जो पल में विकसित हो पल में विनष्ट भी हो जाता है। बुलबुले के समान ही उसके जीवन का न जाने कब अंत होजाये। "क्या जाने है कौन यहाँ पर" कविता में वर्मा जी लिखते हैं------55

---

1. विस्मृति के फूल ------ भगवती चरण वर्मा पृष्ठ 101
2. आज के लोकप्रिय कवि भगवती चरण वर्मा ------ अमृत लाल नागर

" यह अनजानी राह अटपटी
इस पर चलते रहना बरबस,
पानी का सा क्षणिक बुलबुला
ऊँचे नीचे का सा जस अपयस ।"[1]

भारतीय इतिहास का एक समय ऐसा था जब इस बात का खूब प्रचार हुआ कि जीवन क्षण-भंगुर है, अनित्य है, मिथ्या हैं। समस्त धार्मिक हिन्दुओं के सामूहिक मन पर स्थाई रूप से यह भावना बैठ गई। प्रत्येक युग में इस धारणा के प्रति कुछ बदलाव आया लेकिन जीवन की क्षणभंगुरता और ईश्वर ही समस्त संसार का कर्त्ता है, मनुष्य तो परिस्थितियों का दास है "यह" भावना ज्यों की त्यों आधुनिक युग में भी लोगों की बनी रही। चूंकि वर्मा जी भी बैष्णव भक्त थे, हिन्दू धर्म से प्रभावित थे। ———

——— वह नियति पर पूरा विश्वास रखते थे। बाल्यावस्था से ही भाग्य ने वर्मा जी का साथ नहीं दिया था उन पर बहुत मुसीबतें आईं जिनका सामना वर्मा जी ने अकेले ही किया। वर्मा जी के पिता की मृत्यु अकस्मात् हो जाने से उनके मन पर यदि संसार की असारता और जीवन की क्षण भंगुरता स्थाई रूप से बैठ गई तो क्या आश्चर्य, आश्चर्य तो इस बात का है कि उनके एकान्त क्षणों की नियतिवादी धारणा अनन्य होती हुई भी न तो कहीं उत्साहहीनता पैदा करती है और न ही कहीं निराशा----

" मेरी करुणा में आज मिल गया
जग के आँसू का बहाव।
प्रिय, तुममें ही पाया मैंने,
पीड़ित जग का दारूण अभाव। "[2]

वास्तव में आधुनिक युग के कवि भगवती चरण वर्मा की क्षणिक सुखों पर विश्वास वाली साधना अत्यन्त सीमित रही जो उसकी साहित्य साधना के दूसरे पहलू प्रवृत्ति मूलकता को आसक्ति वाली एकांगिता के दोष से बचाती रही। कवि वर्मा यदि अन्तर्मन से जीवन को अस्वीकार करते तो वे अपनी काव्य रचना में सफल न होते। अपनी एकान्तिक साधना

---

1. मेरी कवितायें------ भगवती चरण वर्मा ----- पृष्ठ, 46
2. मेरी कवितायें ----- भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ, 169

में वे नियतिवादी होते हुये भी कर्मवाद और प्रगतिशीलता के प्रबल समर्थक थे। वस्तुतः उनकी दृष्टि सन्तुलन की थी उनकी नियतिवादी भावना संसार का पलायन करने के दोष का प्रक्षालन करने वाली थी। नियति ने वर्मा जी को बहुत आघात दिये थे जिस पर वर्मा जी ने कहा था -- "जीवन के आघात से ही जीवन की स्फूर्ति होती है

:- जीवन में नियतिवादी भावना के प्रादुर्भाव के कारण :-
-----x-----x-----x-----x-----x-----x------

वैयक्तिक जीवन की असफलताओं और अभावों से उत्पन्न निराशा, वेदना ही नियतिवादिता की अभिव्यक्ति है। मानव मन में अगाध इच्छायें एवं अनंत समस्यायें सर्वत्र विद्यमान रहती हैं। वह निरंतर अपनी समस्त आकांक्षाओं की पूर्ति एवं समस्याओं के समाधान का प्रयास करता रहता है लेकिन कभी कभी उसका दुर्भाग्य उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पराजय का ही वरणकराता है। यही पराजित मनोवृत्तियां व्यक्ति को भाग्यवादी बना देती हैं जो नियति की भावना को आश्रय प्रदान करती हैं। जीवन में अनेकानेक संघर्षों से थके हारे वर्मा जी जब पल पर विश्राम एवं शांति की कामना करते हैं तब वह कोलहल मय संसार से अलग कल्पना लोक में विचरण करने लगते हैं। देखिये -----

" उर शंकित है पग डगमग है
तुम मुझसे कितनी दूर प्रिये।
एकाकीपन ही अपनापन है,
मैं अपने से मजबूर प्रिये।"[1]

वास्तव में मनुष्य परिस्थितियों का गुलाम है। मानव वैसा होता नहीं जैसा उसेबनने केलिये उसकी परिस्थितियां उसे विवश कर देती हैं भारतीयों के हृदय में भाग्यवादिता की जो परंपरा चली आ रही हैं उसने तो इनकेहाथ पैर अपने बंधन में बांध दिये हैं। आध्यात्मिकता की परार्थता ने ईश्वर की काल्पनिक और मन मानी व्याख्या अधिक साकार करके हमारे हाथ- पैर जकड़ दिये हैं। भारतीयों की यह धारण रही है कि वह अपनीजीवन का संचालन स्वयं नहीं करता है उसको संचालित करने वाली कोई अदृश्य शक्ति है और व्यक्ति

---

1. प्रेम संगीत ------- भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ , 68

व्यक्ति उसकी इच्छानुकूल ही कार्य करने को विवश है।----

" ये ज्ञान और भ्रम की बातें
तुम क्या जानों, मै क्या जानूँ।
है एक विवशता से प्रेरित
जीवन सबका, जीवन मेरा। "1.

वर्मा जी की अन्तरात्मा उस अदृश्य शक्ति के प्रहारों से विक्षुब्ध हो जाती है उनमें इतना साहस नहीं कि उसका विरोध कर सकें। वर्मा जी का मत है कि मनुष्य स्वाभाव से असमर्थ नहीं होता वरन् जीवन में बार बार उसकी असफलता उसकी शोचनीय दशा पर आंसू बहाने को विवश कर देती है। वह अपनी समस्त सफलताओं एवं असफलताओं का आरोपण भाग्य पर करके संतोष कर लेते हैं। वर्मा जी का कहना है मनुष्य के जीवन के चारों ओर" परिस्थितियों की विस्तृत परिधि" है जिसमें वह चक्कर लगाता रहता है। उनके अनुसार दैवीय विश्वासों पर यह दुनियां टिकी है -------

" पल में रोना, पल में हंसना, यह दुनियां तो सहज सरल,
उत्सुकता अस्तित्व यहां पर, जीवन तो है कौतूहल।
स्वप्न सत्य है, सत्य स्वप्न है, इन दोनों में अंतर क्या,
इने गिने विश्वासों पर ही, इस दुनियां की चहलपहल, "2.

लेकिन वर्मा जी जब निराशा और विषाद की पराकाष्ठा पर पहुंच जाते हैं तो उन्हें यही अनुभूति होती है कि ईश्वर ने उन्हें इस संसार में आने से पूर्व अपनी संचित पूंजी में से मुसीबतें ही प्रदान की हैं जिन्हें प्रत्येक दशा में उन्हें सहन करनी ही पड़ेगी वास्तव में वर्मा जी के जीवन में भी भीषण मुसीबतें आई लेकिन उन्होंने उन मुसीबतों का हंस झेल लिया। उनकी मुसीबतों ने ही उन्हें भाग्य वादी और नियतिवादी बना दिया था इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु उनका भाग्य और नियति वादी दृष्टि कोण उन्हें हाथ पर हाथ धर कर बैठने की अनुमति कभी नहीं देता वह कह उठते हैं -----" कायर न बनों कुछ काम करो सुनता हूँ प्राणों की रट । आगे कहते हैं----

---

1. मेरी कवितायें -------- भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ 108
2. मेरी कवितायें -------- भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ 246

" मेरी मानवता जाग उठी

पाकर यह मेरा चिर अभाव।

हो तुम्हें मुबारक यह मेरे

दिल का नन्हा सा हरा घाव। "1"

वर्मा जी अपने नियतिवादी व्यक्तित्व के विषय में स्वयं लिखाते हैं कि ग्रहस्थ जीवन की अनेकों समस्याओं ने उन्हें नियतिवादी बना दिया था किन्तु मेरा नियतिवाद दु:खवाद से शासित नहीं है। समस्त रचना विकास के नियमों पर आधारित है। मनुष्य में गुण सक्रिय हैं, वह दया, प्रेम, त्याग आदि गुणों से युक्त होकर ही मनुष्य सामाजिक प्राणी बना है और निरंतर विकास करता रहता है। नियतिवाद का दृष्टि कोण एक स्वस्थ्य दृष्टि कोण है, ऐसा मेरा विश्वास है जो मेरे निजी अनुभवों से मुझे प्राप्त हुआ है। "2"

इस प्रकार वर्मा जी के नियतिवादी व्यक्तित्व में दु:ख, अकर्मण्यता, निराशा के लिये कोई स्थान नहीं।

:- जीवन की क्षण भंगुरता में भी आशा का संचार :-

------x-------x-------x-------x---------

छायावादोत्तर काल के लगभग सभी कवियों का जीवन दर्शन प्रारंभ में अभावात्मक रहा परन्तु परिस्थितियों से ज्यों ज्यों उनका समझौता होता गया, जीवन दर्शन भी अभावात्मक से भावात्मक होता गया। वर्मा जी के साथ भी यही हुआ। उनके काव्य - जीवन में प्रारंभ से ही हृदय और मस्तिष्क का द्वन्द्व चलता, रहा है, इस द्वन्द्व की प्रतिक्रिया प्रारंभ में निराशा मूलक रही, जिसने कवि को कुछ काल के लिये निवृत्ति केगहर मे फंसा दिया था। नाश, मृत्यु और क्षणभंगुरता के आतंक से कवि सहम सा गया था ---

" यह पथ अंजान कठोर है,

दिखता न ओर छोर है

रंजित अनिश्चय से यहीं

हर सांझ है, हर भोर है।

हर दृष्टि कुछ सहमी हुई

हर सांस में कुछ शोर है। "3"

---

1. मेरी कवितायें -- भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ, 170 ।2। रंगों से मोह प्रस्तावना, भगवती चरणवर्मा
3. मेरी कवितायें -- भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ, 39

कहने का आशय यह है कि यह संसार सागर बड़ा दुर्गम है जिसमें आकर मनुष्य परिस्थितियों का दास बन जाता है इस महान चेतन अदृश्य की सत्ता ही चतुर्दिक कायम हैं। मनुष्य की विजय वहीं संभव है जब वह परिस्थिति चक्र में फंसे नहीं बल्कि अपने विवेक सेउक्त सत्य को पहचानने का प्रयास करे। वह आगे कहते हैं ---

" यह एक इकाई सत्ता की,
बस जन्म मरण है इसका क्रम
तू नहीं आज तक जान सका,
क्या सत्य और क्या है विभ्रम। "1"

कवि वर्मा ने बुद्धिवाद की निश्चल ज्योति जगाई और आधुनिक नवोत्थान को पूर्ण प्रकाश प्रदान किया। उन्होंने वैदिक परंपरा को जगाकर भारत वासियों में अतीत के प्रति अभिमान की भावना भरी, परन्तु उन्होंने इस बात को खूब अच्छी तरह समझा कि केवल अतीत-चिंतन मनुष्य को निष्क्रिय ही बनाता है इसलिये उन्होंने भूत की संजीवनी शक्ति को ग्रहण करके उसे वर्तमान की धारा में डाल कर देश में पुनरूद्धार और नव निर्माण का मंत्र फूंका। वर्मा जी ने भाग्य पर विश्वास करके भी कर्मशीलता और कर्मठता को ही जीवन का चरम सत्ता माना। जीवन की क्षणभंगुरता में भी आशा का संचार किया उन्होंने कहा -----

" जीवन की गति में लय होकर
तू सत्ता का श्रेष्ठतर मानव । "

भटकी हुई मनुष्यता के कदमों के लिये सही मार्ग दर्शन करने वाले प्रकाश पुंज वर्मा जी की विचार धारा बहुमुखी थी। उनका विचार था कि मनुष्य का जीवन ईश्वर के आधीन है फिर भी वह संसार में सर्वसमर्थ है। अपने कर्म पथ पर अडिग होकर वह संसार से वैमनस्य कुरीतियां आदि अप्रियबातों को समाप्त करने की शक्ति भी रखता है। वह प्रेरणा देते हैं---

" जीवित है संसार आत्म बल से भुजबल से,
लड़ना ही है इष्ट परिस्थिति चक्र प्रबल से,

" सँकल विश्व है युक्त नीति से बलसे, छलसे,

सहस ही बस पार पा सकेगा रिपुदल से। "1"

वर्मा जी का नियति-वादी दर्शन मानवता का दर्शन है और इस दर्शन के द्वारा मानवता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है। वर्मा जी यद्यपि यह मानते रहे कि ईश्वर अनित्य है, जीवन उसी केअधीन है फिर भी वह निषेधात्मक निवृत्ति वादी दार्शनिक सिद्धान्तों का खंडन करते हैं उन्होंने मानवीय मूल्यों को प्रश्रय दिया। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति में गुण सक्रिय हैं वह दया प्रेम, त्याग सहानुभूति के द्वारा जीवन को आनंदमय बना सकता है। उनका नियतिवादी दर्शन संसार को मानव के उत्थान और विकास का मार्ग दिखाने वाला है। माउन्ट एवरेस्ट पर प्राप्त विजय, चंद्रमा पर मानव का अवतरण, सागर की छाती पर दौड़ते जलपोत, विशालकाय कारखाने आदि सब मनुष्य की बुद्धि और कर्म की ही गाथा गा रहे हैं। यदि मनुष्य बिना परिश्रम के केवल "नियति" ।भाग्य। के भरोसे ही बैठा रहता तो दुनियां आज भी जंगली अवस्था में होती

वर्मा जी के व्यक्तित्व पर गांधी-दर्शन और साम्य- दर्शन का भी प्रभाव पड़ा था। दुनियां का जो सत्य है, जिस सत्य के सहारे दुनियां टिकी हुई है उसी सत्य को तटस्थ दृष्टि से पकड़कर कवि ने व्यक्त करनेका प्रयास किया है। वस्तुतः वर्मा जी स्वयं को जिस धरातल पर पाते हैं वह एक भार मस्तिष्क की परिपक्वता का धरातल कवि की जीवन आस्था रूपी रीतियों भी टक्करलेती है और व्यक्ति और समाज के बीच के उन समस्त व्यवधान को तोड़ देते है जो उन्हें विकास में एक होने से रोकते हैं इसलिये जगत् और शोषित समाज के समीप आते है और कठोर सत्यों में से जीवन की शक्तिप्रदान करने का प्रयास करते हैं -- वह मानव को ललकार कर कहते हैं कि तू सम्म है, तू ही सृष्टा है, तू पतितों के उद्धार के लिये दया धर्म भी रखता है फिर अपनी शक्ति से विश्व को अभय प्रदान कर दे । निम्न लिखित पंतियों में उनका नियतिन्दर्शन मानवतावाद में बदल जाता है ---

---

1. मेरी कवितायें ----- भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ 134

" सुधा पात्र तू लिये हुये है
विश्व लिये है, यहाँ गरल,
जग में है विकराल अनल
मुझ में है सुख सुषमा कोमल।
पतितों के लिये मिला है
मुझे यहाँ पर दया, धरम
अरे लुटा दे सुधा
अमरता का प्यासा है विश्व विकल। "1.

आधुनिक युग के चिन्तकों एवं मनीषियों ने यह मत प्रतिपादित किया कि युग को न तो प्राचीन पारंपरिक स्वस्थ तत्वों का विसर्जन ही करना है और न नवीन जीवन पोषी तत्वों के कल्याण कारी स्वरूप की अवहेलना ही। छायावादी काव्य के अवसान काल में कवि वर्मा जी भी नवयुग की इस चिंतन-धारा से प्रभावित हुये उन्होंने अपने जीवनानुभवों से स्वयं प्राचीन भारतीय दर्शन की विचार धारा में डुबकी लगाकर जीवन पोषी तत्त्व ढूँढ निकाला। धीरे-धीरे विवेक शक्ति के बल पर उन्होंने निषेधात्मक नियतिवादी प्रवृत्तियों का बहिष्कार कर केवल उन्हीं तत्वों को चुना जो जीवन के लिये उपयोगी थे। जहाँ कहीं उनकी काव्य साधना ने जीवन को क्षण भंगुर, अढ़ाई दो दिन का मेला कहा है तो वह केवल प्रकृति चिंतन को जीवन- रस प्रदान करने के लिये कहा गया है उसे सुखाने के लिये नहीं। स्पष्ट है कि वर्मा जी के काव्य पर परमात्मवादी चिंतन प्रणाली का स्पष्ट प्रभाव है जिन्हें लोग क्षणवाद का पुजारी भी कह देते हैं।

यह सत्य है कि भगवती चरण वर्मा अनेक मनीषियों की भाँति अपने समीप किसी अदृश्य अलौकिक सत्ता का अनुभव करते हैं और वह उससे साक्षात्कार कर उसमें एकाकार होने का भी असीम प्रयास करते हैं। लेकिन इस ऐक्य और सानिध्य के पीछे वर्मा जी की नियति वादी भावना ही अवगत होती है। इस वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिक खोजों के प्रतिरूप ही मानव की इच्छाओं को भी असीम वृद्धि होती जाती है जिसको पूर्ण करना उसकी सामर्थ्य के बाहर है। अत: वे उन अपूर्ण कार्यों के लिये स्वयं को दोषी सिद्ध करने के लिये कदापि प्रस्तुत नहीं होते है। उसका विह्वल एवं व्यग्र मन उन त्रुटियों से मुक्ति पाने

---

1. मेरी कवितायें ------ भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ-- 16

के लिये किसी अगोचर सत्ता को खोजने का प्रयास करता है जिस पर अपने दोषों, अभावों, असंतोषों को आरोपित कर सके।

" मनुष्य न तो कभी पूर्णता का दावा कर सकता है और न सफलता को अपनी मुट्ठी में बंद रखने का अभिमान ही कर सकता है अत: विफलता के क्षणों में निराशा से बचने के लिये उसका उत्तर दायित्व किसी बाह्यसत्ता पर छोड़ना लोक मंगल की दृष्टि से आवश्यक भी है।

वास्तव में उपरोक्त मत उचित ही प्रतीत होता है। वर्मा जी ने भी अपनी मुसीबतों, कष्टों अभावों का उत्तरदायित्व किसी अगोचर सत्ता पर सौंपा था उनका कहना था---" कि यदि मानव अपनी विफलताओं के कारण निराश होकर उसी का दामन पकड़े रहेगा तो उसकी कार्य क्षमता, विचारशीलता एवं साहस साथ छोड़ देगा। "

स्पष्ट है कि वर्मा जी का नियतिवादी दर्शन एक शुद्ध भारतीय दर्शन है वह किसी भ्रांति मूलक अंध विश्वास पर आधारित नहीं है वरन् विकास के नियमों पर आधारित है।

=====xxxxxx======

:- वर्मा जी के काव्य में प्रगतिचेतना के विविध आयाम :-

=====xxx=====xxx=====xxx=====xxx========

छायावाद के विरुद्ध मार्क्सवादी विचारधारायें प्रभावित जो प्रथम प्रतिक्रिया साहित्यिक जगत् में देखी गई वह प्रगतिवाद के नाम सेजानी जाती है। प्रगतिवाद के प्रादुर्भाव के बारे में अज्ञेय ने "संक्रांति काल की कुछ समस्यायें" शीर्षक निबन्ध में लिखा है--" इस साहित्य में प्रगति पैदा हुई इस लिये प्रगतिशील साहित्य है। " वैसे प्राय: प्रत्येक युग में कवि प्रगति की चेतना से सम्पन्न रहे हैं गोस्वामी तुलसीदास ने भी साहित्य के संबंध में जो धारणा व्यक्त की है वह प्रगति शीलता की ही पुष्टि करती है -----

" सरल कविता की रीति विमल,
जेहि आदरहिं सुजान।
सहज वयर विसराय रिपु,
जो सुनि करहिं बखान।।

अत: प्रगतिशील काव्य साहित्य के लिये नई देन नहीं है। वह प्रत्येक युग में रचा जाता है अंतर केवल इतना है कि एक युग का प्रगतिशील काव्य दूसरे युग के लिये मान्य नहीं होता है। हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का प्रभाव बीसवी शताब्दी के चौथे दशक में होता है। सन् 1935 में पेरिस में प्रगतिशील लेखकों की अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी हुई थी, जिसमें भारत के भी कुछ साहित्यकार सम्मिलित हुये थे। तदनुरूप इन साहित्यकारों में सन् 1936 में लखनऊ "प्रगतिशील लेखक संघ" का प्रथम अधिवेशन किया गया जिसके अध्यक्ष उपन्यास सम्राट प्रेम चंद थे। उन्होंने साहित्य को उद्देश्यपूर्ण बनाने पर बल दिया तथा साहित्य और समाज के घनिष्ठ संबंध की पुष्टि की। तब से साहित्य में प्रगतिवाद का आरंभ माना जाता है। हिन्दी साहित्य के अनेक महत्त्वपूर्ण कवियों साहित्यकारों ने प्रगतिचेतना के अनुरूप साहित्यसर्जना की थी। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के आधार पर की जाने वाली काव्य की व्याख्या प्रगतिवादी समीक्षा कहलाती है।

रामधारी सिंह दिनकर, भगवती चरण वर्मा, बच्चन, रामविलास शर्मा, सुमित्रा नंदन पंत आदि अनेक कवियों की रचनाओं में प्रगतिशीलता दृष्टिगोचर हुई है। निराला की कुकुरमुत्ता पंत की युगवाणी भगवती चरण वर्मा की "मानव" और "मधुकण"

में प्रगतिशीलता के तत्त्व विद्यमान हैं। अन्य प्रगतिशील कवियों की भांति भगवती चरण वर्मा भी काव्य को जन मुखी बनाना चाहते थे, ताकि काव्य की संजीवनी शक्ति का उपयोग जनकार्य के निमित्त किया जा सके। वह समाज में श्रम और पूंजी का समान विभाजन चाहते थे। वर्ग-भेद मिटाना चाहते थे। अनेक स्थलों पर उन्होंने समाज के ठेकेदारों पूंजीपतियों के काले कारनामों की धज्जियों अपनी पैनी कलम से उड़ाई हैं-----

" सोच रहा हूँ मानव बन कर,
पशु से भी हम हीन बने क्यों ?
हम समर्थ सम्पन्न किस लिये
फिर यह इतना उत्पीड़न ।"[1]

दो विश्व युद्धों से प्रसूत विकट सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियाँ महंगाई के कारण भूख से मरते लोगों के दु:ख को अभिव्यक्ति देने के लिये कलाकारों की दृष्टि कल्पना लोक से उतर कर यथार्थ परक हो गई। भगवती चरण वर्मा ने समग्र जीवन के यथार्थ रूप में देखा और खुल कर अभिव्यक्ति दी। जब देश दु:ख दैन्य से पीड़ित हो चारों ओर हाहाकार उत्पीड़न तब क्या कोई कवि कल्पना के रंगीन दुलीचे पर बैठा रह सकता है। वर्मा जी ने "मानव" में अपनी इस संदेहात्मक मनः स्थिति को इस प्रकार चित्रित किया है ------

" जग की पीड़ा में पाया, मैंने अपना अस्तित्व नया,
है उत्पीड़न की आह कहीं, है कहीं भूख का दर्द कठिन।
मैं देख रहा हूँ मौन विवश, जग की बर्बरता अभया।
कायर न बनो कुछ काम करो, सुनता हूँ प्राणों की रटा।"

और अंत में कवि वर्मा भावुक हो उठते हैं आगे कहते हैं ---" मैं जलूँ किंतु जग को प्रकाश दूँ, मेरेउर के अंगा भगवती चरण वर्मा ने सामाजिक, आर्थिक विकृतियों के सूक्ष्म पक्ष को पकड़ा और उस पर खूब खुल कर कहा है। देश में पैर जमाते हुये पूंजीपति का व्यंग्य एवं यथार्थ चित्रण वर्मा की एक अनोखी उपलब्धि है। इन्होंने व्यक्ति समाज की भावनाओं विचारों, मनोवृत्तियों के बने बिगड़ते रूप ही अपनी लेखनी से उतारे हैं। वर्मा के काव्य में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में प्रगति चेतना स्पष्ट परिलक्षित हुई है,

---

1. भगवती चरण वर्मा ----- मेरी कवितायें, पृष्ठ 184

:- सामाजिक चेतना :-
----x-----x---x--

साहित्य लोक मंगल की साधना है। जिसका साधक साहित्यकार कहलाता है। भगवती चरण वर्मा ने अपनी काव्य कृतियों में, उपन्यासों में जन चेतना के नव जागरण काल से लेकर अद्यतन समय के भारतीय समाजिक जीवन के बहुमुखी चित्र हैं। भगवती चरण वर्मा के काव्य की यह प्रमुख विशेषता है कि उसमें वे न तो उपदेशक बन कर आये हैं। और न आदर्शवादी नेताओं की भांति उन्होंने आदर्श की बाढ़ में समस्याओं का हल खोजने का प्रयास किया है। उन्होंने तो समाज को उसकी यथार्थ स्थिति से अवगत कराते हुये भलाई-बुराई, सुख दुःख का चित्रण कर मानव मन की गहराईयों को यथातथ्य अपनी कृतियों में उतारा है। भगवती बाबू ने "भैंसागाड़ी" नामक कविता में "चूँ चरर मरर चूँ चरर मरर " के द्वारा भैंसागाड़ी पर सवार कुंठित जीवन को साकार किया है निम्न लिखित पंक्तिया द्रष्टव्य हैं------

" उस ओर क्षितिज के कुछ आगे,
कुछ पांच कोस की दूरी पर।
झुकी छाती पर फोड़े से हैं,
उठे हुये कुछ कच्चे घर।
पशु बन कर नर पिस रहे,
जहाँ नारियाँ जन रहीं गुलाम
पैदा होना फिर मर जाना।
यह लोगों का एक काम।"[1]

उपरोक्त पंक्तियों में समाज का यथार्थ रूप ग्रहण कर वर्मा जी ने प्रगतिशीलता की व्यापक अभिव्यक्ति दी समाजवादी यथार्थ की यह मान्यता है वह न केवल वर्तमान को ही देखता है बल्कि भविष्य पर भी अपनी दृष्टि रखता है " जहाँ नारियाँ जन रहीं गुलाम" कहकर भविष्य की ओर स्पष्ट संकेत दिया है कि समाज में अभी भी यदि चेतना न आई तो प्रत्येक बच्चा गुलाम ही रहेगा। वर्मा जी शोषित पक्ष को लेकर चले और जन मानस में शोषण को मिटा देने के लिये संघर्ष की स्थिति पैदा करने का प्रयास किया ----

---

1. भगवती चरण वर्मा ------ मानव, 40

" वे व्यापारी वे जमींदार,
वे हैं लक्ष्मी के परम भक्त,
वे निपट निरामिष सूदखोर,
पीते मनुष्य का उष्ण रक्त। "1"

वर्मा जी का कहना है कि बाधाओं, सामाजिक कुरूपताओं से बिना लड़े ही हार मान कर बैठ जाना कायरता है। उनसे लड़ना तो चाहिये ही। असफल होने पर भी सिर तो ऊँचा रहेगा ही। जीवन को सतत् आलोकित करने वाले ये विचार भगवती चरण वर्मा ने "मधुकण" की इन पंक्तियों में व्यक्त किये है---

" जीवित है संसार, आत्मबल से, भुजबल से।
लड़ना ही है इष्ट, परिस्थिति चक्र प्रबल से। "2"

:- शोषण के विरुद्ध आवाज :-
----x-----x-----x----

" प्रगति" का जीवन स्त्रोत सदैव सामाजिक संघर्ष में रहा है। प्रगतिशील काव्य प्रणेता भारत की उन्नति ग्रामों के विकास में देखता है। उसे भारत का सही जीवन ग्रामों के लहलहाते- खेतों, खिले हुये फूल, उगते हुये सूर्य की लालिमा एवं फैली हुई हरियाली में दिखाई देता हैं। विगत शताब्दी से पाश्चात्य सभ्यता भारत वासियों को जकड़े हुये थी। पाश्चात्य सभ्यता की प्रमुख देन पूँजीवादी प्रणाली ही थी। भारत का जन समूह उद्योगपतियों, धनिकों, एवं भूमि-पतियों के द्वारा शोषित किया जारहा था। प्रगति-वादी कवि इस सामाजिक आर्थिक अन्याय के प्रति सचेत थे।जन साधारण की मुक्ति का स्वर्ण संदेश उनकी रचना के माध्यम से निकल पड़ा -----

" वे भूखे अधखाये किसान
भर रहे जहाँ सूनी आहें,
नंगे बच्चे चिथड़े पहने
मातायें जर्जर डोल रहीं,
है जहाँ विवशता नृत्य कर रही
धूल उड़ाती हैं राहें। "3"

स्वस्थ्य सामाजिकता के लिये वर्मा जी मात्र गायों, किसानों का ही वर्णन नहीं करते अपितु शोषकों के विरुद्ध क्रांतिकारी भावना भी उत्तेजित करते हैं तथा समाज में

---

1. भगवती चरणवर्मा- मानव, पृ- 40 (2) भगवती चरणवर्मा - मधुकण - 54

व्याप्त विषमता को मिटाने के लिये शोषितों का पक्ष ग्रहण करते है। भगवती बाबू अपनी पुस्तक में एक स्थल पर लिखते हैं--- " अपने दार्शनिक पक्ष से अलग प्रगतिवाद के कुछ सिद्धान्त आज दुनियां ने अपना लिये हैं। उत्पीड़न और शोषण को आज कोई उचित नहीं कह सकता वर्ग भेद मिटाना चाहिये इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता ह".1.

जिन सिद्धान्तों को आदर्शवादी शाश्वत कह कर वर्ग विशेष की स्वार्थपूर्ति में सहायता देते हैं, वे सभी सामाजिक परिस्थितियों की देन है। जैसे "अति व्यभिचार, कोढ़ी और क्रूर, पति की पूजा करना प्रत्येक पतिव्रता स्त्री का धर्म है किसी समय का यह सामाजिक सत्य आज स्त्रियों के उत्पीड़न और शोषण में ही दिखता है।".2.

भगवती चरण वर्मा लिखते हैं---" व्यक्ति के विकास के साथ-साथ विश्वास और प्रतिबंध से युक्त समाज की मान्यतायें बदलती रहती हैं इसीलिये इस सामाजिक सत्य का रूप भी बदलता रहता है। यदि सामाजिक व्यवस्था ऐसी हो जाये जिसमें व्यक्ति मजबूर होकर अपनी शक्तियों का ह्रास न करे तो निश्चय ही वह अपने अंधविश्वासों और रूढ़ियों को त्याग करके अपने महान उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगा ----

" पथ भ्रष्ट हमें कर रहीं यहाँ
अपनी अनियंत्रित चाल अरे।
डस रही व्याल बनकर हमको
यह अपनी ही जयमाल अरे।
दोनों तृष्णा की ज्वालामें
जीवन को होते क्षार यहाँ । ".3.

मनुष्य स्वयं अपने ही बनाये नियमो में फंस कर महत्वाकांक्षाओं के चक्रव्यूह में फंस कर दुःखी है। वर्मा जी के " मानव" में समाजवादी विचार मिलते हैं किन्तु वास्तव में आप स्वच्छंदता प्रिय कवि किसी वाद विशेष में पड़कर आप कविता नहीं लिखते । आपके विचारों में मौलिकता, शैली में ओज और सच्चाई है। आपको भाषा सरल और सीधी है परन्तु अव्यवस्थित। व्यक्तिवादी कवि वर्मा जन जीवन की प्रगति के लिये भी उत्सुक हैं।

भगवती चरण वर्मा ... साहित्य के सिद्धान्त और रूप

" मैं देख रहा दानवता के
दु:साहस के विकराल कृत्य,
मैं देख रहा बर्बरता का
भू की छाती पर नग्न नृत्य,।

वर्मा जी की मान्यता है कि अभी तक गरीबों का जितना शोषण हुआ है वह धर्म एवं ईश्वर के कारण है। गरीबों की गरीबी ईश्वर प्रदत्त या भाग्यवश नहीं है। यह तो इसी समाज में पूँजीपतियों द्वारा थोप दी गई है। समाज के इन तत्त्वों को मिटाने के लिये कवि युयुत्स का संदेश देता है। ईश्वर की सत्ता मनुष्य की इच्छानुसार बनती व मिटती है। शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति मार्क्सवाद की देन है। भगवती चरण वर्मा की " भैंसा गाड़ी" नामक कविता में इसी प्रकार का कुंठा ग्रस्त ग्रामीण चित्र मिलता है ------

" चांदी के टुकड़ों को लेने
प्रतिदिन पिस कर भूखों मरकर,
भैंसा गाड़ी पर लदा हुआ
जा रहा चला मानव जर्जर,
है उसे चुकाना सूद कर्ज
है उसे चुकाना अपना कर,।"[2]

मार्क्स के अनुरूप वर्मा जी ने भी विश्व की अशांति भुखमरी, शोषण, युद्ध, बेरोजगारी, आदि का कारण पूंजीवाद को ठहराया। पूँजीवाद श्रम और अधिकार के शोषण का दूसरा नाम है। श्रम कोई करे और उससे लाभ कोई और उठाये वस्तु का उत्पादन कोई करे और उसका उपयोग बिना उचित मूल्य दिये कोई और करे यहाँ पूँजी है। किन्तु प्रगतिशील कवियों ने अपनी वाणी के तीखे व्यंग्यों द्वारा पूँजीपतियों के खोखले व्यवहार की धज्जियाँ उड़ाई थी। यही नहीं उन्होंने मनुष्य को अपनी मानवता से जीने का रास्ता भी बताया था---

---

1. भगवती चरण वर्मा ------ मेरी कवितायें , । भैंसागाड़ी। , 174

" अपनी मानवता से आओ
हम उनकी पशुता को जीतें,
घृणित लाश वह आज कह गई, ।"1"
प्रेम घृणा के है ऊपर ।

वर्मा जी के दृष्टिकोण की यही विशेषता है कि वह जगत को और मानव-जीवन को शोषण से मुक्त, इसकी संपदा को सर्वजन सुलभ और समाज को समृद्ध और प्रगतिशील बनाने के लिये इसके वर्तमान आर्थिक, सामाजिक संबन्धो, नैतिकमान्यताओं सौन्दर्य मूल्यों को बदलने का लक्ष्य और मार्ग बताया हैं। वर्मा जी पूँजीवाद के खिलाफ पूर्णरूपेण भर्त्सना करते हैं। इन्होंने पूँजीवादी सभ्यता को नितांत स्वक्रूर एवं अमानवीय स्वीकार किया है। पूँजीवादी समाज को मूल रूप से नष्ट करने की आकांक्षा कवि में विद्यमान है इसलियें वह उसके घृणित रूप को प्रत्यक्ष शब्दों में व्यक्त करते हैं----

" उनका कुटुम्ब था भरा पूरा
"आहों" से हाहाकारों से।
फाँकों से लड़ लड़ कर प्रतिदिन,
घुट-घुट कर अत्याचारों से।
भूखे तड़पे या मरें भरों,
का तो भरना है उनको घर।
धन की दानवता से पीड़ित,
कुछ फटा हुआ कुछ कर्कस स्वर। "2"

यदि हम आधुनिक हैं तो हमें आधुनिक अन्याय और निर्दयता का सामना करना पड़ेगा उससे हम बच नहीं सकते। हर पीढ़ी का यह तकाजा होता है कि वह अपने संसार को अपने युग के अनुरूप परिवर्तन करे। हर विवेक शील बुद्धिवादी व्यक्ति घृणा और शोषण का अनुचार होने से इन्कार कर दे। इस स्थिति में साहित्यकार शोषित व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति सजग होने की प्रेरणा अपने साहित्य के माध्यम से देता है।

यह नितांत सत्य है कि साहित्य प्राचीन काल से ही जन कल्याण की भावना से अनुप्राणित रहा है। उसमें अपने अपने बंधनों के अनुरूप शोषित वर्ग की हिमायत की गई

---

1. भगवती चरण वर्मा ----- मेरी कवितायें , पृष्ठ- 187
2. भगवती चरण वर्मा ------- मानव, पृष्ठ - 47

हैं। " कबीर ने जाति प्रथा का विरोध किया था। मीरा ने नारी की उन्नति का द्वार प्रशस्त किया था। संतों ने वर्णाश्रम के शोषण का विरोध किया। पुनरूत्थान वादी तुलसी ने मुस्लिम साम्राज्यवाद का विरोध किया था।

केशव और देव ने रीतिकाल में नायिका भेद के युग में भी स्वकीया के गुण गाकर स्त्री की मर्यादा उठाई थी। भारतेन्दु, प्रसाद, निराला, पंत ने मानवता की परम्परा निभाई। और आगे प्रगतिशील साहित्य की परम्परा ने राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ विकास किया है, उसने रोते हुये मानव समाज को विद्रोह का स्पष्ट स्वर दिया।"[1] प्रगतिशील आन्दोलन का मुख्य मानदण्ड था समस्त साहित्यिक जगत् में वर्गहीन समाज की स्थापना।

भगवती चरण वर्मा ने भी इस आन्दोलन के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं----- " इस आन्दोलन में वैयक्तिक चेतना के स्थान पर सामाजिक चेतना को स्थापित किया गया। वैयक्तिक चेतना को समाजिक चेतना का ही एक अंग माना गया। इस चेतना की स्थापना का माध्यम था घृणा और आक्रोश। व्यक्तिवादी समाज के प्रतिनिधि ही तो थे वे शोषक और उत्पीड़क। उनके प्रतिघृणा और आक्रोश ही इस वर्ग को नष्ट कर सकता था।"[2]

" साहू कारों का भेष धरे
हैं जहाँ चोर और गिरहकट,
है अभिशापो से घिरा जहाँ
पशुता का कलुषित ठाट-वाट।"[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में वर्मा जी ने उस समय गरीब किसानों पर हो रहे अन्याय एवं शोषकों के ठाट-वाट को नरक का राज्य घोषित करते हुये समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित कर दिया है। वर्मा जी को इस प्रकार की बौद्धिक क्षमता और भावुक प्रतिभा जन्म से विरासत में मिली थी। ये न तो दुराग्रही हैं और न मताग्रही जो आँख मीच कर अविरत्व रूप में उन्हें ग्रहण कर लें। वस्तुतः उनकी चिंता धारायें समग्र सामाजिक जीवन के आंशिक सत्य है। वर्मा जी साहित्य में यथार्थ चित्रों को उपस्थित करना अधिक श्रेयष्कर मानते हैं, साथ ही यह यथार्थ चित्र आदर्श से परिपूर्ण हो तो ज्यादा अच्छा। कहते हैं ---
" मैं यथार्थवाद को वह आदर्शवाद समझता हूँ जो काल और परिस्थिति से अनुशासित हैं।"[4]

---

1. रांगेय राघव-- प्रगतिशील साहित्य के मानदंड- 17 2. भगवती चरणवर्मा साहि0केसि0औररूप। 2(

चूँकि भगवती चरण वर्मा की साहित्य जगत में काव्य कृतियाँ अल्प संख्या में ही उपलब्ध होती हैं। उपन्यास ही अधिक हैं किन्तु जो भी काव्य कृतियां साहित्य प्रांगण में आई वह बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में नरलोक से किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हल की वंशी बनाकर विश्व को एक सूत्र में पिरोने का आग्रह किया है। उनका यह राग कोरा भावात्मक अथवा आदर्शपरक नहीं है बल्कि उसे मानव समाज के अधिकारों के प्रति एक दृढ़ आवाज। घृणा और द्वेष के स्थान पर प्रेम क एक छत्र राज्य हो ----

" मैं अपने रसमय गानों से,
जग की पीड़ा को हरता हूँ,
मैं पिला रहा हूँ अगजग को,
नव मधुर प्रेम रस का प्याला। "1"

समष्टि हित का भाव :-

वास्तव में साहित्य वही है जिसमे समष्टि हित का भाव हों। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है--- "जिस पुस्तक से यह उद्देश्य पूरा नहीं होता, जिससे मनुष्य का अज्ञान कुसंस्कार, अविवेक दूर नहीं होता, जिससे शोषण और अत्याचार के विरुद्ध सिर उठा कर खड़ा नहीं हुआ जा सकता, जिससे छीना झपटी, स्वार्थ परिता और हिंसा के दल दल से उतर नहीं पाता वह पुस्तक किसी की नहीं। "2" वास्तव में प्रगतिशील साहित्यकारों में वर्मा जी को भी जन चेतना का जाग्रत करने में काफी सफलता मिली है वर्मा जी बादलों को संबोधित करते हुयेशोषित वर्ग से कहते है"----

1." उमड़ पड़ो तुम उत्पीड़न पर बनकर उल्कापात बनों
प्रतिहिंसा के प्रतिघात।"

2. जीवित है संसार आत्मबल से भुजबल से,
लड़ना ही है इष्ट परिस्थिति चक्र प्रबल से,
साहस ही बस पार पा सकेगा रिपु दल से। "3"

---

1. भगवती चरण वर्मा --- मेरी कवितायें, पृष्ठ 65
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी-- विचार और वितर्क पृष्ठ 62
3. भगवती चरणं वर्मा ---- मेरी कवितायें -- पृष्ठ, 134

अंग्रेजों के द्वारा भारतीयों पर निरंतर हिंसात्मक रवैया देखकर वर्मा जी जन चेतना को चेतावनी देता है। उनका नवीन दृष्टिकोण देखिये-----

" किन्तु तुम हो पशुओं से हीन,
तुम्हारा नित होता है ह्रास,
सदा अविकल हिंसा के लक्ष्य,
अहिंसा पर कैसा विश्वास।

आगे कहते है-- पाप है रक्त पात का नाम
अरे तुम कायरता के दास।
बर्बरता है घृणित, सदा तुम रोते रहे निराश।"[1]

वर्मा जी का "मानव" मात्र प्रचार का साधनसबन कर गम्भीर युग प्रेरक काव्य बन गया था क्योंकि इसमेंसामूहिक दुखदर्द, आशायें, समस्यायें, पूँजीपतियों द्वारा शोषण आदि यथार्थ रूप में मुखरित हो रहे थे। और अपने क्रांतिकारी स्वरों में भारतीय समाज को बदल देने की घोषणा भी करते है---

" अरे हिन्दुओं आंखें खोलो
बढ़ता है संसार।"[1]
उठों सम्हालो, तुम बनो मनुष्य
व्यर्थ है व्यर्थ तुम्हारा रुदन।

वर्मा जी ने और उनके सहयोगियों ने काव्य में उस आधुनिक चेतना का बीज बोया जोकालान्तर में नये-नयें रूपों में सामने आई। वर्मा जी में राज भक्ति भी है और देश भक्ति भी उनमें गहरी आदर्शवादिता भी है और प्रखर यथार्थ बोध भी, उनमें रूढ़ियों और अंधविश्वासों के प्रति बड़ी वित्तृष्णा दिखाई देती है वर्मा जी एक बहुत गम्भीर चिंतन शील व्यक्ति थे वह मनुष्य में वर्ग-भेद देखकर चिंतित हैं ----

" मैं सोच रहा था मानव को
हैं दाने दाने के लाले,
वे आसमान पर उड़ते थे
अपने वैभव में मत वाले।"

---

1. भगवती चरण वर्मा ... [illegible]

समाज में यही विषमता देखकर ही तो वर्मा जी विचलित हो गये थे। जिसके फलस्वरूप छायावादी रंगीनी, मखमली श्रृंगारमयी गद्दों से बाहर आकर वर्मा जी यथार्थ की नंगी चारपाई पर खड़े हो गये। देश के सामाजिक संकट को देखकर क्या कोई कवि कल्पना के गलीचे पर बैठा रह सकता है ? देश का दुःख दैन्य, चारों ओर हाहाकार उत्पीड़न को देखकर वर्मा जी ने अपनी लेखनी के साथ खूब संघर्ष किया अर्थात् यथार्थ जीवन की संघर्ष भरी भाव भूमियों की अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी काव्य कृतियों देनी प्रारंभ कर दी जो प्रगतिशील बन गई ।

:- यथार्थ की अभिव्यक्ति :-

----x----x----x----

सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चलाया गया आन्दोलन वस्तुतः उन्तर छायावादी काल में विकसित हुआ। इसे प्रगति की ओर अग्रसर होने के कारणप्रगतिवादी युग कहा गया। प्रगतिवाद ने ही सर्वप्रथम साहित्य को यथार्थ वाद की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी। इसका उद्देश्य पतनोंन्मुख छायावादी विकृतियों को समाप्त करके नये साहित्य और नये मानव को प्रतिष्ठित करना था। प्रगतिवाद की मूल प्रेरणा मार्क्सवाद से विकसित हुई जिसकी पृष्ठभूमि अर्थिक दैन्य श्रमिकों का शोषण और सामाजिक पिछड़ापन था।

श्रमिक वर्ग के प्रति सहानुभूति और शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह की अभिव्यक्ति निराला, पंत, भगवती चरण वर्मा और दिनकर, आदि कवियों ने छायावाद के अंत के पूर्व ही अपनी रचनाओं में आर्थिक वर्ग वाद की चेतना को अभिव्यक्ति दी थी। सन् बयालीस में बंगाल में पड़ने वाले अकाल ने तत्कालीन मनुष्य, विशेषकर कवियों की अन्तश्चेतना को बुरी तरह झकझोर डाला था। एक ओर कलकत्ता के गोदामों में अनाज सड़ता था और दूसरी ओर अन्न के अभाव में दम तोड़ने वालों की लाशें थी। यह स्थिति भी अत्यंत करूण और मार्मिक थी।

यथार्थ को अभिव्यक्ति देने की होड़ में कल्पना लोक की उपेक्षा करके कवि वर्मा जी जैसा नियतिवादी कवि भी मानवीय विसंगतियों को देखकर विचलित हो गये और वे

समाज का सच्चा चित्रण करने के लिये यथार्थ की संगीत्र चारपाई पर खड़े हो गये। वर्मा जी ने युगों-युगों से शोषित मजदूरों, किसानों गरीबों के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुये पूँजीपतियों मिलमालिकों जमीदारों सूद खोरो के क्रिया कलापों का खुल कर वर्णन किया है। धनिकों के शादी ब्याह में किये जा रहे धन के उन्मुक्त प्रदर्शन और दूसरी ओर बाहर जूठन चाटने वाले गरीब बच्चों, सेठानियों के नखरों के माध्यम से आर्थिक विषमताओं और दैन्य स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किये है।

ऐसी विषमता सचमुच ही समाज को कोढ़ और दुनियाँ की सर्वाधिक भयंकर बीमारी है जिसके कारण भुखमरी, दैन्य, असभ्यता और अशिक्षा फैलती है। समाज के स्तर-स्तर में व्याप्त विषमता ने कवि के हृदय में जो तिक्तता भर दी है वह तो काव्य में छलकती ही है साथ ही इसके मूल में समाज की विकृतियों पर तीक्ष्ण प्रहार कर उसका सुधार लाने की भावना भी है। देखिये एक स्थल पर प्रपंच और भ्रष्टाचार के प्रति भाव---

" मेरी मानो छल प्रपंच का,
टूट रहा है घिरा-घुरा।
कही तुम्हारी ही आंतों में,
घुस कर न जाये यही छुरा ?
दोस्त वक्त है बहुत बुरा। "1"

उपर्युक्त पंक्तियों में वर्मा जी ने स्पष्ट करना चाहा है कि भ्रष्टाचार बेइमानी करने वाले ही किसी समय धोखा खायेंगे और कुछ नहीं। विसंगतियां उसे चरित्र पतन के गर्त में ढके रहीं हैं, इस तथ्य की स्पष्ट और सांकेतिक झांकी हमें निम्न लिखित पंक्तियां में मिलती है --

" भूखा इंसान कब तक संजोये रहे ईमान
बन खुंखार लोग डसने लगे हैं।

हिन्दी काव्य में आर्थिक विसंगतियों के कारणों की पड़ताल करने, उनकी नब्ज पहचानने के यत्न के साथ साथ आर्थिक वैभव की चकाचौंध में लिप्त शोषकों की आलोचना भी की गई है। वर्मा जी की निम्न पंक्तियों में शोषण करने वालों के लिये तिरस्कार भर्त्सना युक्त उत्तेजक और प्रहार धर्मा दृष्टि देखिये ---

---

1. मेरी कवितायें ----- पृष्ठ , 242

" तुम सुख सुषमा के लाल
तुम्हारा है विशाल वैभव-विवेक,
तुमने देखी हैं मान भरी
उच्छृंखल सुंदरियाँ अनेक,
तुम भरे पूरे, तुम हृष्ट पुष्ट
ऐ तुम समर्थ कर्त्ता हर्त्ता,
तुमने देखा है क्या बोलो
हिलता डुलता कंकाल एक ?"

एक कवि द्वारा नेताओं के कारनामों को दर्शाने और साधारण श्रद्धालु जन को दी गई चेताव कि"ऐ धनवान लोगों तुमने केवल सुख सुविधा देखी, क्या कभी हिलता-डुलता कंकाल भी देखा है। स्वयं अवसर मिलते ही धन-कुवेर बन जाने वाले शासक उस जनता की दृष्टि से अपना वास्तविक रूप कैसे छिपाये रख सकते हैं जिन्होंने अपना सर्वस्व त्याग कर आजादी के संघर्ष में उनके आवाहन पर मात्र कंकाल रहना ही नियति समझा।

स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद देश ने नई मुक्त वायु में साँस ली। नया संविधान बना, संसद विधान मंडलों में स्वदेश की जनता आई। देश के विकास के लिये पंचवर्षीय योजनायें बनी। शिक्षा के प्रसार के लिये जगह-जगह स्कूल कालेज खोले गये। कहने का आशय यह कि विकास के लिये नये-नये कार्यक्रम प्रारंभ किये गये। परन्तु वास्तविक विसंगतियों की भारी संख्या भी बढ़ी। केवल अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करने की होड़ में देश और देश की निरीह दैन्य जनता के सुख को भूल गये। जन समुदाय में "सैंया भये कोतवाल अब डर काहे का" वाली उक्ति चरितार्थ होने लगी। चोर बाजारी घूसखोरी का नंगा नृत्य खुलकर खेला जानालगा। अवमूल्यन की लहर आई तो आदर्शवाद और सच्चाई के मार्ग पर चलने वाले मूर्ख समझे जाने लगे। परीक्षाओं में बिना पढ़े पास होने के लिये नई-नई भ्रष्ट पद्धतियाँ अपनायीजाने लगी। विधान मंडलों में जूता चप्पल सम्मेलन अपना रंग दिखाने लगे। देश के नेताओं ने सिद्धान्त विहीन शैली में दल बदल की राजनीति जनता के समक्ष रखी कचहरी और अदालत बेईमानी और भ्रष्टाचार के सुरक्षा संस्थान बन गये।

देश के साहित्यकार कवि के लिये यह स्थिति इतनी नाजुक थी कि वह उपर्युक्त परिस्थितयों के प्रति संवेदन शील हुआ और अपनी रचनाओं में अनेकों समस्याओं पर खुल कर यथार्थ रूप से गीत लिखे।

स्वतंत्रता के पूर्व प्रगतिवाद में प्रगति के प्रति आकर्षण पैदा हो ही चुका था तथा हर स्थिति का कवितामें विषय माने वाली नई परिस्थितियों से जूझने और उन्हें व्यक्त करने की तत्परता दिखाई दी। यहाँतक कि नियति वादी एवं व्यैक्तिक गीतकार कवि वर्मा में भी इन विसंगतियों को व्यक्त करने की तत्परता उत्पन्न हुई। इसका कारण यही है कि जगरूक और सतर्क रचनाकार समाज विमुख नहीं हो सकता है और समाजोन्मुख होने पर ही उसे यह अनुभव होता है कि वह स्वयं को अब यथार्थ के माध्यम से ही व्यक्त कर सकेगा।

:- आर्थिक असमताओं के प्रति असन्तोष :-
----x----x----x----x----x----

सामान्य व्यक्ति का आर्थिक शोषणयों तो न जाने कब से चला आ रहा है पर हिन्दी कवितामें इसकी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र तथा बालमुकुन्द आदि अंग्रेजो की आर्थिक नीति से परिचत थे, वे विदेश जाते हुये धन तथा देश के नष्ट भ्रष्ट होते उद्योग धन्धों को देखकर क्षुब्ध थे। वे जनता की दीन हीन स्थिति को देखकर दुःखी थे। इस स्थिति को अपने ढंग से इन कवियों ने विद्रोही स्वर अंका किया जिसका प्रभाव तत्कालीन कवियों पर भी पड़ा फलस्वरूप भारतेन्दु के बाद के कवियों ने भी इन आर्थिक असमताओं के प्रति भारी असंतोष व्यक्त करके सामाजिक यथार्थ रूप अपनी रचनाओं में उभारे हैं। वर्मा जी ने भी युगों-युगों से शोषित मजदूरों, किसानों, गरीबों, असहायों के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुये उन्होने पूँजीपतियों, मिलमालिकों, जमींदारों, सूदखोरों मुनाफाखोरों, धन को पानी की तरह बहाकर ऐशो आराम करने वालों के यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में कसर नहीं छोड़ी है। वर्मा जी में आर्थिक शोषण पर प्रहार करने की प्रवृत्ति सर्वाधिक है ~~शोषण-पर-प्रहार-करने की-प्रवृत्ति-म~~

" साहूकारों का भेस धरे
हैं जहाँ चोर और गिरहकट,

" है अभिशापों से घिरा जहाँ,
पशुता का कलुषितठाट-बाट। "[1]

देश के राजनेताओं के ठाट-बाट को उन्होंने पशुता का साम्राज्य बताया। उन्होंने सामान्य मनुष्य को प्रतिष्ठित करने तथा उपेक्षित जनों का उन्नयन करने के लक्ष्य से ही " भैसा गाड़ी " रचना लिख डाली थी और सामान्य जन के उत्थान में बाधक बनने वालें असामान्य असाधारण और विशिष्ट जनोंपर तीखा प्रहार किया है। उनकी "भैंसा गाड़ी" कविता में आर्थिक मुसीबतों के शिकार किसान की स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है---

" वह था उनका ही खेत, जिसे
उसने उन पिछले चार माह,
अपने शोणित को सुखा-सुखा
भर-भर कर अपनी विवश आह,
तैयार किया था x x x x x
उसके वे बच्चो तीन, जिन्हें
मां बाप का मिलता प्यार न था।
थे क्षुधा-ग्रस्त बिलबिला रहे
मानों वे मोरी के कीड़े ,
भूखे तड़पें या मरे, भरों
का तो उनको भरना है घर
धन की दानवता से पीड़ित
फटा हुआ कुछ कर्कश स्वर, "[2]

उक्त कविता में किसानों के जीवन भर अपने खेत में मेहनत करने की सच्चाई वर्णन की गई है और उनकी मेहनत का फल उनके बच्चों को जीवन भर भूखारहने में ही मिलता है। क्योंकि उन किसानों के द्वारा पैदा किया हुआ अन्न तो सारा का सारा सेठ साहूकारों के पेट भरने में ही चला जाता है और बेचारा किसान प्रतिदिन फांकों से लड़ लड़कर

---

1. मेरी कवितायें ----- पृष्ठ , 173
2. मेरी कवितायें ----- पृष्ठ , 173

घुट-घुट कर जीवन यापन करता रहता है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि सच्चा रचनाकार आर्थिक विसंगतियों की अनुभूति से असंयुक्त नहीं रह सकता। इस प्रकार की विसंगति की चोट और अनुगूंज उसके मस्तिष्क तथा कृतियों में होनी अवश्यम्भावी है। दिन प्रतिदिन आकाश को छूने वाली मंहगाई, बढ़ता हुआ परिवार, जन सामान्य में अधिक स्वार्थी होकर पैसा बटोरने की लोलुपता-एक सीधा सादा ईमानदार आदमी नित्यप्रति इस चक्की के दबाब में आता रहा है। ये समस्त आर्थिक विपन्नता के अतिरिक्त तत्कालीन अकर्मण्यता, भूख के मारे त्राहि-त्राहि करती जनता तथा इस संसार में धन ही की प्रमुखता कायम रहेगी, इंसान को इंसानियत से कोई प्रयोजन नहीं दीखता। यह एक करुणऔर अवसाद युक्त स्थिति की जिसका वर्णन कविवर्मा की लेखनी से हुआ है ----

" इस राज काज के वही स्तम्भ,
उनकी पृथ्वी उनका ही धन,
ये ऐश और आराम उन्हीं के
और उन्हीं के स्वर्ग सदन,
× × × ×
इन चांदी के ही टुकड़ो में
है मानव का अस्तित्व विफल। ".1.

भगवती चरण वर्मा भविष्य के लिये उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य बोध और नवीन विचारों का व्रत लेकर प्रगति शील साहित्यांगन में प्रविष्ट हुये थे। आपने समाज कल्याण और सामाजिक परिवर्तन की भावना को साहित्य की श्रेष्ठता का मानदंड माना। शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर और दु:खी दरिद्र जनता के प्रति सहानुभूति प्रकट करके वर्मा जी ने प्रगतिशील साहित्य को जीती जागती जिन्दगी का दर्पण बनाने का यत्न किया। वास्तविक जीवन का अंकन करके क्रांति की गुहार लगाते हुये रूढ़वादी, आर्थिक व धार्मिक सड़ी गली मान्यताओं का खंडन करके मानव प्रगति और प्रेरणा का केन्द्र बिंदु बनाया।

---

1. मानव ----- भैंसा गाड़ी, कविता -- पृष्ठ, 40

:- रचना पर युगीन परिवेश का प्रभाव :-
----x----x----x----x----x----

मनुष्य अपनी ज्ञानेंद्रियों की सहायता से ही बाह्य जगत के सम्पर्क में आता है। यह ज्ञानेन्द्रियां ज्ञेय और ज्ञाता के बीच माध्यम का कार्य करतीं हैं। इंद्रियों की सहायता से मनुष्य का मन बाह्य जगत तथा उसके पदार्थों का प्रत्यक्षीकरण करता है और इस बाह्य जगत् की छाप निरंतर उसके मन पर पड़ती है। साहित्य यदि मानसिक व्यापार है तो इसी अर्थ में वह मानव-मन अक्षय कोषागार में अपने अनंत नामों और रूप को लेकर निरंतर नव-नवीन आकृति ग्रहण करने वाले बाह्य जगत का ही चित्रण करता रहता है। उसे ही अभिव्यक्ति का विषय बनाता है। चेतना एक प्रकाश की भांति बाह्य जगत् के पदार्थों को मन के समक्ष उद्घाटित करती है और मन उसकी अभिव्यक्ति करता है।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि साहित्यकार अपने आस पास चारों ओर जो देखेंगे अथवा अन्य इंद्रियों के माध्यम से जो कुछ अनुभव करेंगे वही उनकी अभिव्यक्ति का विषय भी होगा। इसके अतिरिक्त वे कोई और विषय कहाँ से प्राप्त कर सकते हैं।1 यही कारण है कि साहित्यकार अपने देखे गये और अपने अनुभव किये गये जीवन का, जो उनकी चेतना के बाहर हिलोर ले रहा है, चित्रण करते हैं और अपनी कला साहित्य पिपासा का शमन करते है। लेखक की पुकार समाज की पुकार होती है। वह सब के भावों को वाणी का बल ही नहीं अपितु दिशा भी देते हैं। 1930 के आसपास का समय भारतीय राजनीति का न केवल महत्त्वपूर्ण समय था बल्कि भावी परिवर्तनों का सूचक भी था। भगवती चरण वर्मा की तत्कालीन सृजित काव्य रचनाओं में समाज के यथार्थ चित्र प्राप्त होते हैं। जिस समाज के समय को उन्होंने देखा है उसकी पृष्ठभूमि पर उन्होंने कई कवितायें लिखीं। इनकी विशेषता 'राजा साहब का वायुयान', जो कुछ होता है', उल्टी "सीधी "हिन्दू मुसलमान, आदि काव्य रचनायें तो राजनीतिक उथल पुथल, सामाजिक विघटन के यथार्थ रूप हैं क्योंकि भारतीय इतिहास के अत्यंत महत्त्वपूर्ण और संक्रमण काल खण्ड को उन्होंने निकट से देखा था।

भारत का स्वाधीनता आंदोलन ________________ विश्व को चकित कर देने वाली घटना थी यह आन्दोलन जहाँ एक ओर राजनैतिक स्वाधीनता के लिये प्रयत्नशील था वहीं दूसरी ओर वह कितनी ही सामाजिक समस्याओं

से जूझ रहा था। नारी शिक्षा, पर्दा प्रथा, हिन्दू मुसलमानसबैमनस्य, छीना झपटी आदि कितनी ही समस्याओं से भरे संक्रमण काल को भगवती बाबू ने अपने नेत्रों से देखा था अतः स्वाभाविक ही उनकी कतिपय काव्य रचनाओं में राजनैतिक व सामाजिक परिवर्तनों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। एक दृश्य तत्कालीन राजनैतिक व सामाजिक स्थिति का देखिये -----

" हो रहा हर तरफ जनता का अपकार दोस्त,
हो रहा हर तरफ नारों का व्यौपार दोस्त
नित नये प्रदर्शन, आन्दोलन अथवा घिराव,
सब लोग त्रस्त है, भूख और बेकारी से
तुम नेता बनने की धुन में हो मस्त दोस्त। "1"

लेखक अपने समय का प्रतिनिधि होता है। उसको जैसा मानसिक खाद्य मिल जाता है वैसी ही उसकी कृति होती है। जिस प्रकार बेतार के तार का ग्राहक-यंत्र आकाश मंडल में विचरती विद्युत तरंगों को पकड़ कर उनको भाषित शब्द का आकार देता है, ठीक उसी प्रकार लेखक अपने समय के वायु मंडल में घूमते हुये विचारों एवं स्थितियों को पकड़कर मुखरित कर देता है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि साहित्यकार जिस सामग्री से अपनी रचना का स्थूल ढांचा और उसकी कथावस्तु का संगठन करता है, वह बहुत कुछ उसके ऐतिहासिक, भौगोलिक, पौराणिक ज्ञान विज्ञान पर आश्रित होती है।

भगवती चरण शर्मा की मान्यता है कि कुछ थोड़े से सृजनात्मक साहित्य को छोड़कर दुनियां का अधिकांश साहित्य समय और परिस्थिति की मांगो को पूरा करने के लिये लिखा जाता है। इस समाज और परिस्थिति की मांग को "समाज की मांग" कहना उचित होगा। यहाँ मैं समाज को उसके व्यापक एवं सीमित दोनों ही क्षेत्रों में लेता हूँ। और समाज की मांग हमेशा अस्थाई होती है क्योंकि समाज का रूप और उसी अस्थायें बदलती रहती हैं। "2" इस प्रकार शर्मा जी के उक्त कथन से स्पष्ट है कि कोई भी रचना हो उस पर परिवेश की छाप अवश्य रहेगी। यह छाप समाज के परिवेश के साथ साथ बदलती रहती है। विश्व की अधिकांशकला का सृजन ही दूसरों की मांगें पूरी करने के लिये हुआ है। राजाओं के यशगान, धार्मिक प्रचार आदि इसके उदाहरण है। हिन्दी साहित्य में प्रगति-चेतना का सत्य

---

1. मेरी कवितायें ----- पृष्ठ, 244
2. साहित्य की मान्यतायें ----- भगवती चरण शर्मा

वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी ।प्रगति-चेतना ने साहित्य को परिणय जीवन की मनोरम भूमि से करने की चेष्टा की थी जिसकी बड़ी आवश्यकता थी। साहित्यकारों की प्रगतिशील रचनाओं में सर्वत्र हमें पुरातन के प्रति आक्रोश और नवीन एवं उपयोगी वस्तु के प्रति प्रेरणा का भाव मिलता है जैसे भगवती चरण वर्मा ने कवितायें अधिक नहीं लिखी किन्तु जो कुछ भी कतिपय काव्य रचनायें उनकी साहित्य प्रांगण में आई वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उन्होंने भी तद्‌युगीन प्रगतिवादी साहित्यकारों की भांति सोये हुये समाज को, सोये हुये राष्ट्र को जागरण का संदेश दिया है। आपने परिवर्तन और क्रांति की इच्छा से ही अनेकों प्रगतिशील कवितायें लिखीं जो आज के परिवेश में भी अर्थात् सामाजिक अव्यवस्था एवं शोषण के विरोध में महत्त्वपूर्ण है"विजया" शीर्षक कविता की कुछ पंतिया देखियें----

" अपनी पशुता से रचा यहाँ
हमने अभाव, हमने अकाल,
अपनी मानवता के लोहू से
आज हमारे हाथ लाल।
हो चुका लोप विश्वास प्रेम
मिट चुकी असत् की सीमायें
नंगी भूखी है तड़प रहीं
घर-घर में कितनी सीतायें। "1"

भगवती चरण वर्मा ने अपनी पुस्तक साहित्य की मान्यताये, में एक स्थल पर प्रगतिवादी साहित्य के बारे में लिखा है कि---" आज दार्शनिकपक्ष से अलग प्रतिवाद के कुछ सिद्धान्त दुनियां ने अपना लिये है। उत्पीड़न और शोषण को आज कोई भी उचित नहीं कह सकता, वर्ग-भेद मिटाना चाहिये इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता---- इसी लिये आधार मूल न सही लेकिन कुछ महत्त्वपूर्ण मान्यतायें तो प्रगतिवाद ने हमें दी ही हैं। "2" नव निर्माण की कल्पना तथा प्रगतिशल रचना करते समय कलाकार इस तथ्य को ध्यान में रखकर चलता है कि उससे समूची मानवता लाभान्वित हो। वह अपने विवेक के माध्यम से अपने पुष्ट चिंतन को रागात्मक अनुभूति की गहरी व्यापक और वास्तविक भूमि में रंगकर वह मानव समाज की दिशा निर्देश करता है। उनकी "विजया" शीर्षक कविता की पंक्तिया

---

1. साहित्य की मान्यतायें ------ भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ - 92
2. मेरी कवितायें ------------- पृष्ठ , 227

दृष्टव्य हैं -----

" अपनी श्रद्धा अपना संयम,
अपना खोया कर्त्तव्य-ज्ञान,
तू संचित कर फिर से इनको,
तू है समर्थ, तू है महान।

वर्मा जी की कतिपय प्रगतिशील कविताओं ने सोते हुये मानव समाज को स्पष्ट स्वर दिया, चेतावनी दी, उनमें नव आशा का संचार किया ------

" निज में जागृत कर नयी चेतना
निर्मित कर तू नव समाज।
नव संकल्पों के साथ मना। तू,
विजया का त्यौहार आज। -2-

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि वर्मा जी के काव्य में प्रगति चेतना का स्वर पूर्ण रूप से मुखरित हुआ है। एक और शोषकों के प्रति आक्रोश है तो दूसरी ओर शोषितों के प्रति सहानुभूति रखते हुये समाज को नवनिर्माण की प्रेरणा दी हैं।

:- उपसंहार :-

प्रगति जीवन का मूलाधार है। विकास और नवीनता स्वस्थता की द्योतक है। प्रगति ही जीवन का ध्येय है जिसमें गति नहीं वह प्राय: मृत समान है। यही बात साहित्य के क्षेत्र में है। जिस साहित्य में युगानुरूप विकसित होने की क्षमताहै वही साहित्य गतिवान माना गया है। प्रगतिशील साहित्य मूलत: वही साहित्य है जो मनुष्यको महानता की ओर ले जाता है।

आधुनिक युग के कवि भगवती चरण वर्मा के काव्य में इस गतिशीलता को स्पष्ट देखा जा सकता है। जब वह शोषण से विक्षुब्ध होकर शोषकों का विरोध करते हैं तब वह नये व सुन्दर समाज की वकालत कर रहे होते हैं। वर्मा जी की काव्य कृति "मानव में समष्टि मानव की शोषण मुक्तिकी उद्घोषणा है।

---

1. मेरी कवितायें ----- पृष्ठ , 228

वास्तव में वर्मा जी की काव्य साधना प्रगतिवाद से बंध कर नहीं हुई बल्कि एक मानव जाति को नूतन जीवन प्रदान करने का प्रयास जो वर्गवाद को मिटाकर मनुष्य का एक ऐसा सुखी समाज बनाने की इच्छा करते हैं जहाँ मनुष्य विज्ञान की सहायता से सृष्टि को समझ सके। भारतीय समाज में बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं पुराने विश्वासों और खोखले आदर्शों की जड़े हिलती जा रहीं है। भारतीय साहित्यकारों का कर्तव्य है कि वह भारतीय जीवन में पैदा होने वाली क्रांति को शब्द दें।" भगवती चरण वर्मा ने इस दायित्व का पूर्ण निर्वाह किया है जिससे हिन्दी-साहित्य और काव्य गौरवान्वित है।

======xxxx=======

:- वर्मा जी का काव्य शिल्प :-

----x----x----x----x--

कविता में शिल्प का विशेष महत्त्व होता है। कवि कविता में शब्दों के रख रखाव सजावट तथा वाक्य निर्माण द्वारा जो कारीगरी करता है वह "शिल्प" होता है। आधुनिक कवियों का मुख्य लक्ष्य जन चेतना को जागृत करना था। अल्प शिक्षित जनता को प्रेरित करने के लिये उसके स्तर तक पहुँच कर कविता लिखने के कारण शब्दों की सजा-वट पर इनका ध्यान कम गया है। आधुनिक युग में विशेष कर प्रगतिवादी युग में जब कि भगवतीचरण वर्मा अपने काव्य लेखन में लगे थे कवि कला और शिल्प के प्रति उदासीन से रहे।

भगवती चरण वर्मा की काव्य कृति " मानव प्रगति चेतना" का अनुपम नमूना है। जब कि " प्रेम संगीत" और "मधुकण" काव्य कृतियों पर छायावाद का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है अत: इनके काव्य में हमें मिली जुली विभिन्न अनुभूतियां दृष्टिगोचर होती हैं। कुछ समीक्षकों ने वर्मा जी के काव्य को शिल्पहीन, सौन्दर्य हीन, और नीरस बतलाया है। किन्तु ऐसा नहीं है।

हाँ यहा नि: संकोच कहा जा सकता है कि वर्मा जी के काव्य में छायावाद की अतिशय कल्पना प्रियता और अलंकारों की जगमगाहट नहीं है फिर भी इनके काव्य में अनुपम सौन्दर्य की कमी भी नहीं है। वर्मा जी का काव्य जन सामान्य की आकांक्षाओं, जिज्ञासाओं और चरम सत्य को लेकर जन्मा है और वे सम्पूर्ण जीवन काल तक उसी का प्रति निधित्व करते रहे वर्मा जी में बुद्धि का प्राधान्य मिलता है। वर्मा जी की काव्य भाषा प्रतीक, बिम्ब, अलंकार योजना सैद्धांतिक विचारों की पृष्ठभूमि में खरी उतरी है।

:- वर्मा जी की काव्य भाषा :-

काव्य भाषा का लक्ष्य जीवन और जगत के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पंदन को आकर्षक अभिव्यक्ति, प्रदान करना है। "पल्लव" की भूमिका में पंत जी ने लिखा है --- " भाषा संसार का एक नादमय चित्र है। ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व की हृतन्त्री की झंकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।"[1] अच्छी, सरल, बोधगम्य भाषा कवि के लिये वरदान बन

---

1. सुमित्रानंदन पंत --- पल्लव की भूमिका , पृष्ठ -- 28

जाती है। भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त भाषा ध्वनि का यथार्थ रूप प्रकट करने में समर्थ है। लेकिन यह तभी संभव है जब उसमें असाधारण भावों की यथासंभव पूर्णतम अभिव्यक्ति करने की सामर्थ्य हो। पंत ने इसी सामर्थ्य या आकर्षण को राग की संज्ञा होते हुये, इसे काव्य भाषा के प्राण तत्व के रूप में प्रतिपादित किया है।

वर्मा जी की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है कि उनकी काव्य भाषा में कृत्रिमता नहीं है उनकी भाषा एकदम सीधी सादी और सरल जनभाषा रही है। गम्भीर से गम्भीर विषय को सरलता से प्रस्तुत करना वर्मा जी का निजी गुण था। वे भाषा में सहजता को अपनाने वाले कलाकार हैं। अनुभूति और संवेदना का मणि- कांचन योग वर्मा जी ने अपनी कृतियों में किया है। आपके भाव श्रृंखलाबद्ध होते हैं। तथा वर्मा जी की भाषा का व्यंग्य बड़ा ही मार्मिक रहा है इनके व्यंग्य की भाषा ऊपर से तीखी, चुटीली भड़कीली होकर भी हृदयग्राह्य होती है।

वर्मा जी के युग में अर्थात्_आधुनिक युग में कवियों का भाषा संबंधी दृष्टिकोण व्याकरण निष्ठ न होकर स्वच्छंद था। क्यों कि व्याकरण निष्ठ भाषा कवि की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर आंशिक बंधन स्वरूप हो जाती है। वर्मा जी की भावना से पूर्ण सरल भाषा देखिये -----

" मैं हूँ मानव मैं हूँ समर्थ,
मैंने क्या-क्या है किया नहीं ?
निज गुरुता के मद में भरकर
मथ डाले हैं सागर, अंबर। "1"

गम्भीर से गंभीर बात को कितनी सरल भाषा में उद्धृत प्रस्तुत किया है। वर्मा जी ने भावानुगामिनी भाषा को ही- प्राथमिकता दी है।

स्वतंत्रता से पूर्व आजादी की लड़ाई के युग में काव्य में भाषा को साधारण जीवन के निकट जाने की प्रकृति अधिक प्रबल है। काव्य भाषा को बोलचाल की भाषा के निकट लाने का प्रयास इनके काव्य में अधिक मिलता है बोलचाल की तर्ज साधारण मुहावरे और लोकोक्ति की दृष्टि से भाषा को जन जीवन के निकट संपर्क में लाने का प्रयास

---

1. भगवती चरण वर्मा ---- मेरी कवितायें, पृष्ठ 25

इन्होंने भरपूर किया है ---

" तुम बहते जाना, बहते जाना बहते जाना भाई
तुम शीश उठा कर सर्दी गर्मी सहते जाना भाई। "1"

× × × × ×

रूकना है गति का नियम नहीं, तुम चलते जाना भाई,

भाषादृष्टि से आपका काव्य अंग्रेजी कवि कीट्स की काव्य भाषा के अधिक निकट है। कीट्स ने काव्य के लिये बोलचाल की साधारण भाषा पर बल दिया है।

भगवती चरण वर्मा की काव्य भाषा का सरल प्रवाह विषय या भाव को संबंध बनाने के लिए बहुत सहायक रहा है। भावुक कवि प्रतिभा वर्मा जी को जन्म से ही मिली थी। जो कवि जितना भावुक होता है वह भाव और भाषा की उतनी ही गम्भरता तक पहुँच सकनेमें सफल रहे हैं उनकी भाषा भावों की अनुगामिनी रही है -----

" कितने दु:ख, कितनी करूणा से
घिरा हुआ है हाय अहम्।
अंधकार ही अंधकार है
यह जीवन का मार्ग विषम । "2"

उपर्युक्त के अनुसार भाव सम्प्रेषण की दृष्टि से उनकी भाषा बहुत सफल है।

वर्मा जी की दूसरे प्रकार की भाषा में कुछ संस्कृत शब्दावली के प्रयोग मिलते हैं तब संभाषणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। अभिधा शब्दावली के साथ-साथ लक्षणा के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है देखिये -----

" ए उद्भ्रांत प्रवाह। प्रकृति उच्छृंखल उद्गार
कालिमा के काले अभिसार । "3"

वर्मा जी ने उपरोक्त पंक्ति में बादलों की गति और वर्ण को लक्षणा शब्दावली में पिरोया है। "मधुकर्ण" में आपने एक स्थान पर मृत्यु की विभीषिका की पूर्णत: अभिव्यक्ति करने के लिए ओजमयी और प्रवाह पूर्ण शब्दावली को प्रयुक्त किया है---

---

1. भगवती चरणवर्मा ---- मेरी कवितायें , पृष्ठ - 19
2. भगवती चरण वर्मा----- मधुकण , पृष्ठ - 167
3. भगवती चरण वर्मा ---- मधुकण , पृष्ठ - 61

" यही मृत्यु का भार लिये निज वक्षस्थल पर
और अंत के व्याप्त पूर्ण प्रतिबिम्ब भयंकर
× × × × ×
नष्ट भ्रष्ट अवशिष्ट खड़े हैं निर्जन खंडहर। "[1]

वर्मा जी की काव्य भाषा की एक और विशेषता है विभिन्न-बोलियों के शब्दों के प्रयोग की। देशाज क्रियाओं और विशेषणों के प्रयोग आपकी रचनाओं में मिलते हैं। " वर्मा जी ने खाये आम " वाली कविता में प्रयुक्त शब्दावली देखिये----

" एक दो नहीं दर्जन भर थे,
पीले पीले अति सुन्दर थे,
मीठे इतने, मात शक्कर थी,
रस से भरे लबाबल तर थे। "[2]

उपरोक्त पद में मात, लबाबब, तर, आदि विभिन्न बोलियों के देशज शब्दों का प्रयोग किया गया है। कविता के माध्यम से अपनी बात को जन-जन के लिये हृदयग्राही बना देना वर्मा जी की सफलता है। आपकी भाषा जन-जन के अनुकूल होने के कारण एक गहरे प्रभाव का वातावरण उपस्थित करती है। गांव की पूर्वी बोली को अपनाकर उन्होंने अपनी काव्य रचना "भाबव" में प्राण फूंक दिये हैं। इससे भाषा में अनुभूति की तीव्रता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दोनों ही आ गई हैं। कविता में बोल-चाल के शब्दों का प्रयोग होना कवि वर्मा को कवित्व प्रदान करता है। कवि हरिऔध का भी मत है ---" यथार्थ कविता वही है जो अधिकतर सरल और बोधगम्य हो और ऐसी कविता तभी होगी जब उसमें बोल चाल का रंग होगा। "[3]

श्री देवी शंकर अवस्थी ने वर्मा जी की भाषा के बारे में कहा है --- " कवि ने आलंकारिकता या अत्यधिक - भावुकता से भरी भाषा का प्रयोग न करके भाषा के जिस गठन तथा लहजे को स्वीकार किया है वह काव्य को रोचक व सार्थक बना देता है। भाषा

---

1. भगवती चरण वर्मा --- मधुकण पृष्ठ , 60
2. भगवती चरण वर्मा --- मेरी कवितायें - 237
3. हरिऔध ---- बोलचाल -- पृष्ठ , 219

भाषा में बेकार की ठूंस-ठांस बिल्कुल नहीं है। इतना होने पर भी भाषा में एक गतिमयता तथा प्रभविष्णुता है। "

वर्मा जी ने अपनी काव्य रचना में उर्दू तथा अंग्रेजी शब्दों का भी भरसक प्रयोग किया है। बर्दाश्त, नाराज, हुजूर, खुश, किस्मत, अवसाद, वक्त सितारा, सबूत, इत्तफाक आदि सैकड़ो उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा समयानुसार परिवर्तित होती रहती है। भाषा के साथ-साथ शब्द भी बदलते रहते हैं क्योंकि समयानुकूल शब्दों का प्रयोग ही भाषा को प्रभावशाली बनाते है। आधुनिक कवियों ने अपनी काव्य भाषा के समर्थन में जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये यद्यपि वे परम्परावादी नहीं थे फिर भी उदात्त साहित्य सृष्टि के दृष्टिकोण के उपयुक्त थे। वर्मा जी के शब्द प्रयोगों में लोकोक्तियों मुहावरों का भी समुचित प्रयोग मिलता है। साथ ही उनकी काव्य भाषा में प्रयुक्त शब्द उनकी राष्ट्रीय, राजनैतिक, समाजिक प्रवृत्ति का परिचय देते हैं।

वर्मा जी की प्रारंभिक काव्यरचना में छायावाद का प्रभाव है किन्तु बाद की रचनाओं में प्रगतिवाद का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। चूंकि प्रगतिवादी कवियों का मुख्य ध्येय ईमानदारी से अपने भावों को अभिव्यक्त करते हुये भाषा में सरलता, सुबोधता और स्पष्टता लाना था। इसी लिये प्रारंभ से ही ढंग भी उसी प्रकार से उचित माना जिससे कि उनमें दुरूहता उत्पन्न न हो। इसके निमित्त उन्हें इसमें रस, अलंकार माधुर्य आदि पर भी उतनी दृष्टि नहीं रखनी थी। परिणाम स्वरूप वर्मा जी की वर्ण-योजना, शब्द योजना, वाक्य योजना सभी सरल कोटि की जन सामान्य की भाषा से अनुप्राणित है। श्री मैथिली शरण गुप्त के विचार से ---" भाषा का सबसे बड़ा गुण सरलता" है।"[1]" वर्मा जी की भाषा की स्वाभाविकता प्रांजलता अद्भुत है। कहीं-कहीं पर भाषा में पूर्वीयपन, कहीं कहीं पर खड़ी बोली का तत्सम शुद्ध रूप बड़ा अद्भुत है तो कही कही अंग्रेजी शब्दों की भरमार है---

" 1. डिमाक्राती की, पूंजी विकृति अनोखी"[2]

2. कांग्रेस का अगला कदम कहाँ कब होगा "[3]

---

1. मैथिलीशरण गुप्त --- सरस्वती जुलाई अंक पृष्ठ, 362
2. भगवती चरण वर्मा -- सविनय और एक नाराज कविता पृष्ठ 51
3. भगवती चरण वर्मा --- सविनय और एक समराज कविता पृष्ठ, 50

कान्फ्रेंस हुई थी एक बड़ी लंदन में"

उपर्युक्त पंक्तियों में डिमाक्रासी, कान्फ्रेंस जैसे अंग्रेजी शब्दों का जहाँ प्रयोग हुआ है वहीं खड़ी बोली व क्रिया के शुद्ध रूप का यथातथ्य प्रयोग किया गया है। नवीन युग का प्रतिनिधित्व करते हुये वर्मा जी की काव्य भाषा में अजीब सी नवीनता है। जैसे कवि जीवन तो वर्मा जी का अल्प समयका ही रहा वह यथार्थ चित्रण के आवेग में उपन्यासों में आ गये। किन्तु उपन्यासों में भी उनकी भाषा स्पष्टतः मिली-जुली भाषा रही है जनसाधारण की समस्या जन साधारण की भाषा में प्रस्तुत करके वर्मा जी एक सफल उपन्यास कार के रूप में विख्यात हुये।

समग्र रूप से वर्मा जी की काव्य रचनाओं पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि उनके काव्य पर अंग्रेजी उर्दू काव्य का स्पष्ट प्रभाव है। भाषा की दृष्टि से सरल, मुहावरे दानी और देशजशब्द मिलते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न बोलियों के शब्दों का भी प्रयोग हुआ हैं। इसी कारण उनकी भाषा जन भाषा के निकट है।

चूंकि प्रगतिवाद ने काव्य भाषा को छायावाद के रोमांटिक वातावरण से निकल कर सड़को और पगडंडियों पर चलने को मजबूर किया , जिससे उसमें खुला पन आयाऔर उसनें निकटवर्ती लोक भाषाओं के शब्द समूह से निसंकोच अपना कोष भरना आरंभ कर दिया था। वर्मा जी का काव्य लेखन 1935 -36 के आसपास हुआ, यह समय प्रगति चेतना का युग था। प्रगतिवादियों ने दलित वर्ग को अपनी सहानुभूति देने एवं भावनावादी दृष्टि कोण से चेतना को जगाने हेतु जन्म लिया। फलतः तत्कालीन साहित्य में इन्ही समस्याओं को उभारा गया। इन समस्याओं को साहित्यिक रूप प्रदान करने के लिये तत्कालीन कवियों ने अपनी भाषा को यथार्थवादी रूप प्रदान किया। फलतः वर्मा जी की काव्य भाषा भी तत्कालीन प्रभाव से प्रभावित होकर जनमत का हार बन गई।

:- छन्द और लय :-

====xx=====xx==

काव्य में छन्द विन्यास भी हर क्षेत्र की तरह अपनी विशेषता रखता है। वाक्य छंद की इकाई है। गद्य हो या पद्य सभी में एक प्रकार का छंद होता है। छंद वाक्य की गति और यतिमें निहित होता है। हृदय के स्पंदन से ही वाक्य की लय निर्धारित होती है। सामान्य वार्तालाप में जो भाषा संगीत अर्थात् भाषा विशेष के उच्चारण की प्रणाली अभीष्ट रूप में व्यक्त नहीं होती, उसी को स्वत: प्रकट करने के लिये छंद का जन्म हुआ।

पंत ने "पल्लव" की भूमिका में लिखा है ---- कविता और छन्दों के बीच बड़ा घनिष्ट संबंध है। कविता हमारे प्राणों का संगीत है तो छंद हृत्कंपन। जिस प्रकार संगीत की अभिव्यक्ति कम्पायन स्वर लहरियों के द्वारा होती है उसी प्रकार हृदय के इस संगीत अर्थात् कविता की अभिव्यक्ति छंद के माध्यम से होती है। कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होता है। "1" कवि के अनुसार छंद से न केवल शब्दों में संगीत भर जाता है, अपितु वाणी भी नियंत्रित हो जाती है। राग में पूर्णता के आने से शब्दों का सौन्दर्य भी निखर उठता है। इस प्रकार छंद की उपयोगिता काव्य के लिये निर्विवाद है।

:- छन्दों के अवांछनीय बंधन से मुक्तिका प्रयास :-

====x====xx===xx===xx===xx===xx=====

छायावादी कवियों ने इस तथ्य का अनुभव किया कि भावों की सहज अभिव्यक्ति में मात्रा, वर्णों एवं अन्त्यानुप्रास के नियम प्राय: बाधक के रूप में उपस्थित होते हैं। इन बंधनों की अवांछनीयता कवि-कर्म को दुस्तर तो बनाती ही है, काव्य श्री की भी क्षति करती है। इसीलिये इन बंधनों से कविता कामिनी को मुक्त करने का प्रयास छायावादोत्तर अनेक कवियों ने किया। इसी श्रृंखला में भगवती चरण वर्मा ने भी छंदों की मात्राओं तथा यति गति में परिवर्तन को उचित माना है। चूंकि भगवती बाबू का काव्य लेखन छायावादी युग में प्रारंभ हुआ जो आगें बढ़कर प्रगतिवादी युग में जुड़ गया इस सम्पूर्ण अन्तराल में हिन्दी काव्य-युग में छंद के क्षेत्र में महान क्रांति हुई। इस युग में तुकांत छन्दों के साथ-साथ अतुकांत छन्दों की भी रचना हुई तथा भाषा प्रवाह की स्वच्छंदता आदि रही जिसका प्रभाव वर्मा जी के काव्य पर भी पड़ा ।

---

1. सुमित्रा नंदन

भगवती चरण वर्मा की छंद विषयक धारणाओं को निम्न लिखित रूपों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है ----

1. परम्परागत छंद प्रयोग
2. अंग्रेजी छंद सोनेट का प्रयोग
3. मुक्त छंद व लय

1. :- परम्परागत छंद प्रयोग :-
----x----x----x----

परंपरागत छंद प्रयोग की दृष्टि से वर्मा जी के काव्य में तीनों प्रकार के छंदों का प्रयोग मिलता है। प्रथम वर्ग में-- मात्राओं की दृष्टि से ऐसे छंद प्रयोग किये जिनके प्रत्येक चरण में 24 मात्रा संख्या समान रहती है यद्यपि अन्त्य-क्रम का नियोजन स्वचछंद है। इस प्रकार के छंद प्रयोग को हम परम्परागत रोला छंद के अन्तर्गत रख सकते हैं। उदाहरणार्थ देखिये ----

" अनजानी दुनियां का हर क्षण अनजाना है,
जीवन का हर क्षण उलझा सा अफसाना है।"1"

यह छंद प्रत्येक चरण में मात्रा संख्या की दृष्टि से रोला है क्योंकि प्रत्येक चरण में 24 मात्रायें है। अनत्यक्रम और चरण विस्तार में स्वंछदता के कारण नवीनता हैं। दूसरा उदाहरण देखिये ---

" हमको भी लगता, हम कुछ बहके-बहके हैं,
अपना विश्वास शिथिल, अपना स्वर धीमा है, "2"

उपर्युक्त छन्दों में 24 मात्राओं के विकर्ष के छंद है ये छंद आलायोचितअर्थात गेय और पाठ्य है। इनको पढ़ने का एक विशेष ढंग होता है।

दूसरे वर्ग में 16 मात्राओं के विकर्ष के छंद आते हैं। भगवती बाबू ने इस प्रकार के छंदो का प्रयोग अपने काव्य लेखन में किया है किन्तु काफी कम मात्रा में ही । 16 मात्राओं वाले छंद चौपाई का सा छंद विधान होता है।

---

1. भगवती चरण वर्मा ---- मेरी कवितायें , पृष्ठ- 59
2. भगवती चरण वर्मा ---- मेरी कवितायें , पृष्ठ - 60

" पतझड़ को पीले पत्तो ने,
प्रिय देखा था मधुमास कभी,
जो कहलाता है आज रुदन
वह कहलाया था हास कभी। "1"

परम्परागत छंदों में वर्ग में 18 मात्राओं वाले छंद आते हैं। इस प्रकार के छंद में प्रत्येक चरण में 28 मात्रायें होने के कारण विकषधार पर इन्हें सार छंद के अन्तर्गत, रखा जा सकता है। सार छंद में 28 मात्रायें होती है। भगवती बाबू को भी मैं कब से ढूंढ रहा हूँ" कविता में इसी प्रकार की 28 मात्राओं का छंद बन गया है -----

" मै कब से ढूँढ रहा हूँ,
अपने प्रकाश की रेखा।
तम के तट पर अंकित है,
निः सीम नियति का लेखा। "2"

2 :- अंग्रेजी छंद सोनेट का प्रयोग :-
----x----x----x----x----

वर्मा जी के काव्य में जो सोनेट प्रयोग किये गयें है उनमें भी स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की प्रवृत्ति है। एक तो 14 पंक्तियों के नियम का उल्लंघन किया गया है दूसरे तुक विधान का अनुशासन भी नहीं उपलब्ध होता। सीमित आकार में अपनी बात को समाप्त कर देने का नियंत्रण स्वभावत: है। पाश्चात्य आलोचक हर्बर्ट रीड ने सोनेट के दो प्रकार माने है। ---

1. इटेलियन सोनेट --- इसमें 8 और 6 पंक्तियां होती हैं।
2. अंग्रेजी सोनेट ----- इसमें 4 पंक्तियों वाले तीन भाग और अंत में एक दोहा होता है।

दूसरे वर्ग के सोनेट प्रयोगो में स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है भावाभिव्यक्ति के लिये इसमें नियम नियंत्रण का ध्यान नहीं रखा जाता है।

---

x 1. भगवती चरण वर्मा ---- मेरी कवितायें , पृष्ठ - 107
2. भगवती चरण वर्मा ---- मेरी कवितायें, पृष्ठ :- 19

इस प्रकार के सॉनेट छंदों का प्रयोग वर्मा जी के काव्य में मिल जाता है। इन्होंने "मधुकण" की "तारा" नामक रचना प्लवंगम के अतुकांत रूप में लिखी है ---

" यह तप यह जीवन की विकल साधना,
किन्तु शांति अस्तित्व तुम्हारा है कहाँ,
किस अनंत अज्ञात लक्ष्य की ओर तुम
प्रेरित करते रहते हो विचलित हृदय। "1.

बालकृष्ण राव की सॉनेट के बारे में धारणा है कि " सॉनेट के लिये तुकान्त को मैं बिल्कुल आनावश्यक बंधन मानता हूँ। वह कितना भी सुन्दर क्यों न हो। हथकड़ी सोने की ही सही, चूड़ी नहीं बन सकती है।2

:- विभिन्न मात्रिक और वार्णिक छंद :-
----x----x----x----x----x----

वर्मा जी का वर्णवृत्तों की अपेक्षा मात्रिक छंदों के प्रति अधिक झुकाव रहा। वर्ण एवं मात्रा के बंधनों को भी ये छोड़ते से दिखाई देते हैं। कहीं कहीं छंदो-भंग दृष्टिगत होता है, पर लघु दीर्घ को पादपूर्ति के लिये घटाबढ़ा कर पढ़ने की परम्परा है। वैसे वर्मा जी की क्रांतिकारी प्रवृत्तियों के संदर्भ में इसे बंधनों के प्रति विद्रोह एवं स्वच्छंदता के प्रति सहज लगाव भी माना जा सकता है।

1. " रोकर तुमने मुझको बांधा -- पादाकुलक 16 मात्रायें। "3.
2. " हाँ प्रेम किया है, प्रेम किया है मैंने -राधिका22मात्राएं"4.
3. " मधुर हास्य के शुष्क व्यंग्य में है वेदना अथाह---
सरसी 27 मात्रायें। "5.
4. " कलरव के सुर उपबन में,"
संगीत सुनाती आई -- विधाता14 मात्रायें। "6.

---

1. भगवती चरण वर्मा-- मधुकण, पृष्ठ - 107
2. बाल कृष्ण राव--- रात बीती, पृष्ठ 3
3. भगवती चरण वर्मा-- प्रेम संगीत, पृष्ठ, 51
4. भगवती चरण वर्मा-- प्रेम संगीत, पृष्ठ, 72
5. भगवती चरण वर्मा-- मधुकण, पृष्ठ, 45
6. भगवती चरण वर्मा--- मधुकण, पृष्ठ, 35

5. " यह न समझना देवि कि

मुझको निजममत्व का ज्ञान नही--- ताटंक 30 मात्राएँ" 1.

भगवती चरण वर्मा की षट शैली का एक उदाहरण देखिये।

" यह अशांत सा जीवन हो

हो प्यार में कसक मिली हो,

यौवन में पागलपन हो। "2.

भावों और विचारों की पूर्णतम अभिव्यक्ति की खोज में कवि की व्यग्रता छंदों के इस विचित्र एवं मिश्रित प्रयोगो में दृष्टगोचर होती है।

3. :- मुक्त छंद :-
-----x-----

मुक्त छंद को गेय न मानकर अर्थानुसार लय का ध्यान रखते हुये पाठ्य स्वीकार किया गया है। वर्मा जी के मुक्त छंद उनके काव्य की गणमान्य उपलब्धि है। इन्होंने विभिन्न मात्राओं के छन्दों को मिलाकर कुछ नवीन छन्दों का भी निर्माण किया। मात्रा या वर्णों का कोई क्रम बंधन नहीं है। अर्थ के अनुसार लय और लय के अनुसार गति का विधान किया गया है। मैं चल रहा, कविता की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं ---

" उर में असीमित दाह है

है रक्त में ज्वाला अमिट

निष्कंप सा निर्धूम सा

मैं जल रहा, बस जल रहा। "3.

अर्थानुसार लय का ध्यान रखते हुये उपर्युक्त छंद अत्यंत प्रभावशाली ढंग से पढ़ा जा सकता है

मुक्त छंदों के साथ-साथ मुक्त गीत में भी यह मात्राओं की स्वच्छंदता देखी जा सकती है। भगवती चरणवर्मा के " मधुकण" में संकलित " नूरजहां की कब्र पर" रचना में छंद विधान मिला-जुला है। जहांकवि ने विभिन्न मात्राओं के चरणों को मिलाकर 12 पंक्तियों का छंद बनाया है -----

---

1. भगवती चरण वर्मा --- मधुकण , पृष्ठ- 5
2. भगवती चरण वर्मा----- मधुकण , पृष्ठ -
3. भगवती चरण वर्मा ----- मेरी कवितायें - पृष्ठ, 40

" तुम रजकण के ढेर, उलकाओं के तुम भवन विहार।
किस आशा से देख रहे हो उस नभ पर प्रतिवार-- 27 मात्रा
कि जिससे टकराता था कभी -- 16 मात्रायें
तुम्हारा उन्नत भाल। "1"------ 13 मात्रायें
तुम्हारे संकेतों के साथ ---- 17 मात्रायें

" हिन्दू" नामक रचना में भी वर्मा जी ने भिन्न मात्रा वाले छन्दों एवं चरणों का मिश्रण करके मुक्त छंद की सृष्टि की है ---

" तुम विनाश के लक्ष्य पतन के कलुषित जीवन -- 25 मात्रायें
तुम सहनशीलता और ---- 17 मात्रायें
तुम्हारा धर्म कर्म आचार --- 17 मात्रायें
अरे कायर! मिथ्या आलाप---16 मात्रायें
स्वयं करते अपना अपमान ---- 16 मात्रायें
अपने को ही धोखा देना यही असंभव बात-- 27 मात्रायें

उपरोक्त रचना में छंदों का यह प्रयोग प्रवाह की गति या लय के लिये किया गया है। मुक्त छंद में वास्तव में लय या छंद विधान का पूर्ण बहिष्कार नहीं किया जाता। सुवि-धानुसार विषयानुकूलता के आधार पर छंद की लय का पद विस्तार में परिवर्तन कर लिया जाता है। अत: मुक्त छंद में लय की विषमता को अधिक महत्त्व दिया जाता है। "क्या जाग रही होगी तुम भी" कविता की कुछ पंक्तियाँ ----

" क्या जाग रही होगी तुम भी?
निष्ठुर सी आधी रात प्रिये।
अपना यह व्यापक अंधकार
मेरे सूने से मानस में,
बरबस, भर देती बार-बार।
मेरी पीड़ायें एक- एक
है बदल रहीं करवटें विकल। "2"

---

1. भगवती चरण वर्मा ---- मधुकण --- पृष्ठ , 73
2. भगवती चरण वर्मा ----- मेरी कवितायें --पृष्ठ, 159

उपर्युक्त पद में किसी लय का निर्बाध आबाध गति या यति नहीं है। प्रारंभ से अंत तक लय अटूट क्रम से नहीं चल सकी है। भावों और विचारों की पूर्णतम् अभिव्यक्ति की खोज में कवि की व्यग्रता उपर्युक्त छंद के स्वच्छंद प्रयोग में दृष्टिगोचर होती है।

वर्मा जी के मुक्त छंद पर आधुनिक अंग्रेजी काव्य के मुक्त छंद का प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव विविध रूपों में पड़ा है। एक लय विधान के परिवर्तन क्रम के रूप में, दूसरे मुक्त छंद में अनुप्रास और तुकान्त के प्रयोग द्वारा इन दोनों प्रयोगों के आधार पर वर्मा जी के काव्य का मूल्यांकन किया जाता है। "भैंसागाड़ी" कविता का एक उदाहरण देखिये---

" भर-भर कर फिर मिटने का स्वर,
काँय-काँयं उठते जिसके स्तर-स्तर,
हिलती, डुलती, हंसती-कंपती,
कुछ रूक रूक कर कुछ सिहर-सिहर,
चरमर-चरमर चूँ चरर-मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी!"

उपर्युक्त पद में अनुप्रास और तुकान्त के मिश्रित प्रयोग से मुक्त छंद का विधान किया गया है। मात्रा, यति, गति का वैषमय या वैविध्य प्राय इनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। चाहे उसकी पृष्ठभूमि में एकतरसता उत्पन्न करने की प्रवृत्ति हो या नवीनता उत्पन्न करने की चेष्टा।

मुक्त छंद में प्रवाह- अत्यावश्यक तत्त्व है। भगवती बाबू ने "गति" को छंद का आधार माना है। "मधुकण" की भूमिका में इन्होनें लिखा है ---- " मुक्त काव्य गति प्रधान काव्य है और छंदों का आधार गति ही है अर्थात् उसकी जन्मदात्री है। " गति को वर्मा जी ने मुक्त काव्य के रूप में ही प्रयुक्त किया है तथाइसी गति के कारण मुक्त काव्य गद्य से छूट जाने पर काव्य और गद्य में प्राय: भेद नहीं किया जा सकता । इसी तथ्य को ध्यान में रख कर वर्मा जी ने दोनों का अंतर स्पष्ट किया है --- " साधारण गद्य और मुक्त

काव्य में भेद इतना है कि गद्य का गतिमय होना आवश्यक नहीं है पर मुक्त

काव्य का गतिमय होना आवश्यक है। कविता निर्धारित गतिमय होती है। इस प्रकार कविता और मुक्त काव्य में भेद यह हुआ कि मुक्त काव्य की गति निर्धारित नहीं होती और कविता की गति निर्धारित होती है।[1]" अतः वर्मा जी गति को मुक्त छंद का आधार मानते हैं।

मुक्त छंदों में व्याकरणिक नियमों के उल्लंघन से होने वाली क्षति की अवांछ्य-नीयता से भी वर्मा जी अनभिज्ञ नहीं थे। वर्मा जी ने लिखा है --- " मेरे विचार से तो मुक्त काव्य में जितना सौन्दर्य गति से प्रदान किया जाता है वह व्याकरण के नियमों के उल्लंघन से हर लिया जाता है। "[2]" इन्होंने बाह्य असमानता में निहित भावों के आंतरिक साम्य और प्रवाह की ओर विशेष ध्यान दिया है। भावों को अस्वाभाविक और अवांछनीय तरीके से छन्दों में "फिट" करने की प्रवृत्ति द्विवेदी युग में चरमसीमा पर पहुँच गई थी। इस प्रवृत्ति के प्रति आक्रोश निराला और पंत में प्रकट हुआ--- " खुल गये छंद के बंध, प्राश के रजत प्राश, की घोषणा का साहस किया जिससे वर्मा जी भी काफी प्रभावित हुये।

3। मात्रा का एक बीर । आल्हा। छंद की पंक्तियां देखिये।---

" निज उर की वेदी पर मैंने महायज्ञ का किया विधान। "[3]"

छंद में व्यक्त भाव विशेष को ध्वनित करने के लिये स्वर प्रसार की ओर ध्यान दिया है।

:- अलंकार - विधान :-

----x-----x-----x---

कविता के शब्द अर्थगत उन्मेष में अलंकारो का महत्त्व-पूर्ण स्थान होता है। रीतिकाल में इन अलंकारों को जितना महत्त्व दिया गया उतना परवर्ती युग में नहीं। आधुनिक कवियों का लक्ष्य काव्य का बाहरी श्रृंगार न करके उसका आंतरिक सौन्दर्य बढ़ाना था। वर्मा जी के अनुसार काव्य का आंतरिक सौन्दर्य अलंकारों जैसे बाहरी साधन से नहीं अपितु हृदय के भावों की सुन्दरता से बढ़ता है। इनका मत था कि अलंकारों का आधिक्य काव्यास्वादन को नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त उनके काव्य में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग भी देखा जा सकता है।

वर्मा जी ने रीतिकालीन अथवा पूर्ववर्ती छायावादी कवियों की तरह अलंकारों

---

1. भगवती चरण वर्मा ----- मधुकण की भूमिका , पृष्ठ- 22
2. भगवती चरण वर्मा------ मधुकण की भूमिका, पृष्ठ - 26
3. भगवती चरण वर्मा------ मधुकण ----, पृष्ठ - 14

की छटा से अपने काव्य को चाहे न सजाया हो और अलंकार, यमक, श्लेषादि को भी चाहे विशेष महत्त्व न दिया हो, किन्तु अलंकार प्रयोग की दृष्टि से इनके काव्य में स्वभावत: उन अलंकारों का प्रयोग हो गया है जो काव्य की गरिमा सौन्दर्य और प्रभाव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु अलंकारों का अतिशय प्रयोग जो कवि की वाणी को बोझिल बनाकर विनष्ट कर दे इनके युगीन कवियों को भी स्वीकार नहीं ----

" वाणी अलंकार प्रिय बनकर
केवल बोझिल छंद हो गई "

भगवती चरण वर्मा के काव्य में जो अलंकारो का प्रयोग हुआ है उस पर तत्कालीन प्रगतिवादी युग का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। जिस प्रकार प्रसाद का उत्प्रेक्षा निराला का रूपक उसी प्रकार भगवती चरण वर्मा की कृतियों में उपमा अलंकार एवं मानवीकरण प्रमुख माना जाता है। इसके अतिरिक्त दृष्टांत, अन्योक्ति, विसंगति आदि अलंकारों का प्रयोग भी दिखाई देता है अनुभूति की सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति की मार्मिकता सर्वाधिक उपमान योजना से दृष्टिगत होती है

वर्मा जी के काव्य में मूर्त उपमेय और उपमान है, परन्तु अमूर्त उपमेय और उपमान विशिष्ट रूप से प्रयुक्त हुये है जो इनकी कल्पना शक्ति और सूक्ष्म संवेदना शक्ति के परिचायक हैं। -----

" शत शत मधु के शत शत सपनों की
पुलकित परछाई सी "[1]

उपर्युक्त पद में प्रेयसी के लिये अर्थात् मूर्त के लिये अमूर्त उपमानों का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसके अतिरिक्त अमूर्त के लिये अमूर्त उपमान योजना भी अत्यंत आकर्षक बन पड़ी है। "मधुकण" की कुछ पंक्तियां देखिये ---

" कसक सा कोमल, दु:ख सा मौन
विस्मरण सा भूला उद्गार ।"[2]

---

1. प्रेम संगीत --- पृष्ठ , 17
2. मधुकण ------ पृष्ठ , 41

वर्मा जी ने अधिकांशतः नवीन उपमान तो दिये ही हैं लेकिन जहाँ प्राचीन उपमानों का प्रयोग किया है वहाँ उनमें नई अर्थ भंगिमा भर दी है। अपनी उपमान योजना में इन्होंने प्रभाव साम्य को अधिक महत्त्व दिया है। अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण भाव और वस्तु के अन्तर्बाह्य आकार को यथासंभव मूर्त करने का प्रयास इनके अलंकार विधान में दृष्टिगत होता है। जो इनकी सूक्ष्म कल्पना शक्ति का भी द्योतक है।

:- कतिपय अलंकारों के विशिष्ट प्रयोग :-
----x----x----x----x----x----

विरोधाभास :-

" विश्व प्याला हँस रहा
1. विश्व प्याला ले रहा।"[1]

2. जी भर कर मिल लो आज
ठिकाना कल का
युग का वियोग
संयोग एक ही पल का।"[2]

उपमा लंकार :- " अरुण कपोलों पर लज्जा की भीनी सी मुस्कान लिये।
सुरभित श्वासों में यौवन के अलसाये से गान लिये ।"[3]

उपर्युक्त पंक्ति में भगवती चरण वर्मा प्रेयसी के कपोलों की सहजलालिमा में लाजमयी मुस्कान और सुगंधित श्वास में यौवन के माधुर्य का साक्षात्कार नवीन उपमा "अलसाये से गान" आदि के रूप में करते हैं। ---

मानवीकरण -

" अम्बर की लाली को उस दिन
तुमने ही तो अनुराग दिया,
तुमने ऊषा को अपनी छवि
1. कल रव को अपना राग दिया,
अपना प्रकाश रवि- किरणों को
अपना सौरभ मलयानिल को,

---

1. मेरी कवितायें --- पृष्ठ , 31
2. मेरी कवितायें --- पृष्ठ , 35
3. प्रेम संगीत ------- पृष्ठ , 19

" पुलकित शतदल को तुमने ही
प्रिय, अपना मधुर पराग दिया। "1"

2. " मुस्काता था अरुण प्रभात
और हंस रहा था जल-जात "2"

:- वर्मा जी के काव्य में बिम्ब विधान :-
----x----x----x----x----x----

बाह्य जगत के सौन्दर्य का उपयोग तो न्यूनाधिक मात्रा में प्राय: सभी मनुष्य कर सकते हैं। किन्तु, जीवन के उस बाह्य सौन्दर्य को अन्तस् के माधुर्य से पुष्ट कर उसे और अधिक सुन्दर बनाने की क्षमता केवल कलाकार में होती है। वह वस्तु अथवा भाव-जगत के सूक्ष्मतम अंशो को प्रभाव व्यंजक बनाने के लिये गोचर रूप का विधान करता है। उसका परिणाम चाहे चित्र हो अथवा मूर्ति, संगीत हो अथवा कविता।

तात्पर्य यह कि कवि के हृदय गत भाव इंद्रिय ग्राह्य प्रत्यक्षीकरण के द्वारा ही प्राणवंत हो जाते हैं। विभिन्न कलाओं में साहित्य और उसमें भी काव्य भाषाभिव्यक्ति का सबसे सशक्त रूप माना गया है। कारण यह है कि कवि जटिल से जटिल भाव को शब्द जैसे मूर्त माध्यम से बांधकर सहृदय सामाजिक के मानस में अलौकिक आनंद का विधान करने में समर्थ होता है। रस निष्पत्ति के मूल में शब्द का निवास रहता है।

वाल्टर रैले ने शब्द के तीन गुण माने है --- नाद, अर्थ तथा चित्र। जिसको क्रम से वर्ण संगीत, अर्थ गौरव और मूर्ति विधायिनी शक्ति से चिर सम्पृक्त माना गया। शब्द की इसी चित्रमयी शक्ति ने काव्य में बिम्ब को जन्म दिया।

काव्य बिम्ब की दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत उल्लेखनीय है --"काव्य में अर्थग्रहण करने मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है। बिम्ब ग्रहण वहीं हो सकता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग प्रत्यंग, वर्ण आकृति,

---

1. मेरी कवितायें ---- पृष्ठ , 160
2. मेरी कवितायें----- पृष्ठ , 154

और उसके आसपास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है।"1.

आचार्य नगेन्द्र की दृष्टि में-" बिम्ब एक प्रकार का चित्रण है जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इंद्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त में उद्‌बुद्ध हो जाताहै। "2.

आधुनिक युग में छायावादी युग काव्य बिम्ब की दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध माना जा सकता है। इस काल के कवि बिम्ब विधान की संरचना में सजग प्रतीत होते हैं। भगवती चरण वर्मा का भी कवि जीवन छायावादी युग में ही प्रारंभ हुआ था अत: रचना पर युग का प्रभाव आना स्वाभाविक था। इनकी काव्य रचनाओं में कहीं कहीं बिम्बों का प्रयोग देखा जा सकता है ।

वर्मा जी की काव्य कृति "मधुकण" में जहाँ प्रेम से संबद्ध लाज तृष्णा, कसक आदि का चित्रण है वही "हिन्दू" जैसी कविता भी है जिसमें हिन्दुओं पर कड़े प्रहार हैं, उन्हें बदलने की आकांक्षा है। "प्रेम संगीत" में प्रेमिका के मिलन और सौन्दर्य के चित्र हैं। इसमें प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में चित्रण किया गया है। प्रकृति के तत्त्वों में परिवर्तन वियोग के दु:ख का माध्यम बन गया है। "मानव" के प्रारंभिक गीतों में निराशा पूर्ण दृष्टि व्यक्त हुई है ---

" घिर गया निराशा को लेकर ,
पावस का यह धुंधला प्रभात। "3.

"कवि का स्वप्न" में कवि यथार्थ से भयभीत है। ट्राम, विषमता, भैंसा गाड़ी, राजासाहब का वायुयान आदि में व्यंग्य स्वर की प्रधानता है। "स्मृति", "मिलन", विस्मृति के फूल", में छोटे छोटे बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। "रंगो से मोह" में तीन प्रकार की रचनायें हैं --- प्रेम संबंधी, व्यंग्यात्मक, घटना प्रधान। बिम्ब विधान की दृष्टि से प्रथम कोटि की रचनायें महत्त्वपूर्ण हैं। व्यंग्यात्मक कविताओं में भी बिम्ब मिल जाते है किन्तु वर्णनात्मक कविताओं में अधिकता हैं यथातथ्य चित्रण की।

---

1. आचार्य राम चंद्र शुक्ल ---- चिंतामणि , पृष्ठ 145
2. आचार्य नगेन्द्र ---- हिन्दी ध्वन्यालोक , पृष्ठ , 45
3. भगवती चरण वर्मा ------- रंगों से मोह , पृष्ठ 97

:- भाव बिम्ब :-

भाव बिम्बों में कवि ने विभिन्न उपमानों का आश्रय लेकर मन के अमूर्त भावों को मूर्त किया है ----

" गहरा सा निःश्वास खींचकर
उजड़े सपनों वाली रात,
मेरे दुःख की काली रात ।"[1]

काली रात कवि के दुःखों की प्रतीक है, गहरी निःश्वास मन की अतृप्ति और असफलता को प्रकट करती है। दीपक के समान जीवन अंतस् की अग्नि में जल रहा है---

" उर में असीमित दाह है
है रक्त में ज्वाला अमिट,
निष्कंप सा, निर्धूम सा
मैं जल रहा, मैं जल रहा।"[2]

किन्तु कुछ स्थानों पर कवि ने उपमानों की ऐसी श्रृंखला जोड़ दी है कि बिम्ब नहीं बन पाया किन्तु उपमा अलंकार की अद्भुत घटा बन जाती है ----

" तुम नवल ऊषा की प्रथम पुलक की सिहरन।
तुम स्वप्न विचुंबित, मुग्ध किरण सी स्पंदन,
तुम सौरभ से क्लथ, मलयज की मादकता।।
तुम आशा की अच्छवासित मधुर कल- कूजन।"
-- रंगों से मोह -- पृष्ठ, 43

कवि ने भाव बिम्बों के सौन्दर्य को अधिक प्रश्रय नहीं दिया है। अमूर्त भावों का विशेष चित्रण नहीं है। मूर्त के लिये सीधी अभिव्यक्ति का आधार लिया है। श्री शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है---- " बच्चन की तरह उनकी कविता में भी लाक्षणिक व्यंजना या अप्रस्तुतों की योजना का अभाव है। "

:- रूप बिम्ब :-

वर्मा जी के प्रकृति चित्रण में रूप बिम्ब मिलते हैं। इन्होंने प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में चित्रण किया है। स्वतंत्र चित्र

---

1. भगवतीचरण वर्मा भैंसे ओ गीत पृष्ठ 37

में प्राय: मानवीय करण है ---

" अपने पराग से हो विह्वल
कलियों ने खोले वक्षस्थल,
आकांक्षा की पुलकन बनकर
है झलक रहा उनका परिमल ।"

---। रंगों से मोह । पृष्ठ 97

कलियों का पराग उनके हृदया की आकांक्षा को व्यक्त करता है। उद्दीन रूप में वर्मा जी के द्वारा चित्रित प्रकृति के चित्र देखिये ~~जैसे-के-~~

" आज कंपित भ्रमित सा वातास है,
आज शतदलपर मुदित सा झूलता
कर रहा अठखेलियां हिम हास है
लाज की सीमा प्रिये तुम तोड़ दो "

---। विस्मृति के फूल। , पृष्ठ, 138

लालसा से कांपते-भूले हुये से व्यक्ति के रूप में वातास का चित्रण हिम शतदल के प्रिय संसर्ग में आनंदित हिमजल की अठखेलियों के द्वारा कवि ने अपनी लालसा प्रकट की है। एक स्थान पर कवि ने प्रकृति का मानवीकरण करके सौन्दर्य युक्त चित्र प्रस्तुत किया है ---

" नयनों में थी सुधा
अधर पर हिम जल का परिधान,
और कपोलों पर लज्जा की
भीनी सी मुस्कान,
श्वासों में विश्वास भरा था
उर में प्रेम अथाह
था देवि तुम्हारा ध्यान। "

---।विस्मृति के फूल। मानव - पृष्ठ, 101

किन्तु कवि-केवल सौन्दर्य के कवि नहीं हैं। पीड़ित मानवता को देखकर उनका मन कटुता से भर जाता है और उस कड़ुवाहट से युक्त कुछ चित्र अभिधात्मक होते हुये भी मार्मिक बन पड़े है ---

" फिर चौराहे पर ट्राम रूकी
जब चढ़ी एक बुढ़िया जर्जर
थी शिथिल पिंडलियां कांप रहीं -
थी हांफ रहीं था उसको ज्वर से ...
वे सभ्य और मन चले लोग
चुप बैठे थे बन कर पत्थर। "

---- । विस्मृति के फूल। पृष्ठ 58

कवि ने सभ्य और मनचले लोगों को पत्थर के बिम्ब देकर समाज की मानसिकता को उजागर किया है।

एक अन्य स्थल पर सम्पन्न नगर के हंसते राजमार्ग पर पड़े एक विकृत शव का वर्णन देखिये ----

" सड़ा हुआ उसका शरीर था
मुख पर थी पीड़ा की ऐंठन
निकल पड़ी थी कुछ बाहर को
उसकी आंखे बड़ी बड़ी। "

------। विस्मृति के फूल। , पृष्ठ, 44

" पीड़ा की ऐंठन" में बिम्ब मूर्त हो जाता है। पाठक के मन में विकृत शव के पीछे उस पीड़ित मानव का रूप मूर्त हो जाता है।जो मृत्यु में भी पीड़ा से त्राण नहीं पाता।

प्रकृति के आधार पर कवि ने कुछ स्पर्श बिम्ब दिये है। मधु कली को पूर्णता तथा मादकता देता है, उसके स्पर्श की सिहरन और उपस्थिति की लाज इन पंक्तियों में बिंबित हो गई है----

"" तुम नव कलिका सी सिहर उठर,
मधु की मादकता को छूकर।
वह देखो अरुण कपोलों पर,
अनुराग सिमर कर पड़ा बिखर।"

---। प्रेम संगीत । पृष्ठ, 126

अरुण कपोलों से अनुराग और यौवन दोनों ही मूर्त हो उठते हैं। यह प्रयोग छाया-वादी प्रभाव को स्पष्ट करता है। कवि में रूपबिम्ब की संख्या सीमित है। दृश्य बिम्ब तथा स्पर्श बिम्बों के संकेत तो मिलते हैं किन्तु अन्य इंद्रियों से सम्बद्ध बिम्बों का अपेक्षाकृतअभाव है। कवि ने सामाजिक दुर्व्यवस्था के चित्रण में दृश्यात्मकता तथा मार्मिकता भरदी है--

" भेदभाव के दास धर्म के अविकल वाधक
विधवाओं के काल और गायों के पालक।

× × × × ×

अरे ये इतने कोटि अछूत, तुम्हारे वे कौड़ी के दाम
दूर है छूने ही की बात, पाप है आना इनके पास।

----। भगवती चरण वर्मा।मधुकण।

:- क्रियाबिम्ब :-
---×---×---

क्रिया बिम्बों में कवि ने सामान्य गति को लिया है। प्रकृति के चित्रों में कोमल गति है। उदाहरणार्थ देखिये---

" लतायें लहराती हैं और
झूम उठतीं हैं वे हिलमिल
मलय के चुम्बन पर हो मुग्ध
हंस रहीं हैं कलियां खिल खिल "

------। विस्मृति के फूल । पृष्ठ 205

इसमें गति के साथ ही दृश्य भी मूर्त हो गया है। कवि ने पुरातन रीति पर व्यंग्य

किया है। रूढ़ियां भैंसागाड़ी की तरह अशक्त होकर चलती जा रही हैं ----

" हिलती डुलती, हंफती कँपती
कुछ रूकरूक कर, कुछ सिहर सिहर
चरमर चरमर, चूँ चररर मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी "

-----। विस्मृति के फूल। मानव पृष्ठ, 51।

आपके काव्य में तीव्र गति का चित्रण नहीं है। बिम्बों की सृष्टि प्रयत्न नहीं हो सकती क्योंकि वे अवचेतन की वस्तु हैं। ये कवि के व्यक्तित्व के परिचायक होते हैं। वर्मा जी के बिम्बों से यह प्रतीत होता है कि उन्हें जीवन की सहज गति प्रिय है। उनमें भावों का वह तीव्र आवेग नहीं है जो सीधी अभिव्यक्ति को भी नुकीला बना दे। साथ ही उनमें भावों का वह संस्कार भी नहीं मिलता जो अभिव्यक्ति को बिम्बात्मक बना सकें।

वर्मा जी के बिम्ब किसी विशिष्टता का प्रतिपादन नहीं करते हैं। स्वयं कवि के अनुसार " इनके दो कारण हैं:- प्रेरणा का अभाव और बौद्धिकता। कुछ लोगों के मत से न हममें कविता है, न हममें दर्शन है और हमें इस मत से कोई शिकायत नहीं क्योंकि कविता के क्षेत्र से हम बहुत पहले से अलग हो गये हैं और नया दर्शन दे पाना हमारे वश की बात नहीं"।

वर्मा जी का काव्य-जीवन सन् 1930 के आस पास प्रारम्भ होता है। वह युग प्रगति चेतना का युग था। रचना पर सामयिक चेतना का प्रभाव अतः स्वाभाविक ही था। प्रगति वाद का युग छायावाद की तरह कल्पना का युग न होकर यथार्थ का युग था अत: वर्मा जी के काव्य में बिम्ब सौन्दर्य की जगमगाहट से दूर सर्वथा नवीन धरती की खोज हैं। उनका मानव-जीवन के यथार्थ की भूमि पर आधारित बिम्ब विधान, हिन्दी काव्य में एक नई सौन्दर्य सृष्टि की रचना करता है।

भगवती चरण वर्मा ---- ये सात और हम , पृष्ठ 47

भगवती चरण वर्मा ने काव्य-शिल्प के अन्तर्गत भाषा और शिल्प का तथा छंद का विवेचन इन शब्दों में किया है--- " दुरूहता को मैं कला के क्षेत्र में दोष मानता हूँ। "1. अभिधावृत्ति के प्रति आस्था रखने के कारण उन्होंने व्यंजना अथवा ध्वनि को भाषा का परम गुण न मानकर स्पष्टता को ही कवि का साध्य कहा है --- " संकेतवाद की महानता स्वीकार करते हुये भी मुझे उसमें विश्वास नहीं। मैं तो सीधी सादी बात में पूर्ण प्रभाव भर देने में विश्वास रखता हूँ। "2.

काव्य में प्रसाद गुण की निर्मल व्याप्ति से उसका अर्थ स्वत: भाषित होता है। किन्तु नैसर्गिक प्रसादत्व को संकेतमयी अभिव्यंजना से समृद्ध करने के प्रति भी कवि को अपेक्षा भाव नहीं करना चाहियें। तथापि यह स्मरणीय हैं कि संकेत विधान के लिये कृत्रिम शब्द योजना कवि का आदर्श नहीं है, अन्यथा काव्य में रस की प्रतिष्ठा को भी हानि पहुंचती है। इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप वर्मा जी ने काव्य-पुरूष के शरीरांगों में भाषा का महत्त्व स्वीकार तो किया है, किन्तु वे उसके, लिये रस का बलिदान करमें को प्रस्तुत नहीं हैं। इसी लिये उन्होंने व्याकरणिक नियमों की जटिलता को कवि-भावना की स्वाभाविकता में बाधक माना है। "मधुकण" की भूमिका में उन्होंने लिखा है ---" यह बात ध्यान में रखनी पड़ेगी कि रस को उत्पन्न करने के लिये हमें कहीं कहीं शुद्ध व्याकरण को भी बलिदान करना पड़ता है। यह व्याकरणों के नियमों का उल्लंघन हमें केवल कविता को गति प्रदान करने के लिये करना पड़ता हैं। "3.

भगवती चरण वर्मा ने छंद के विवेचन में "बच्चन" की भांति श्रम नहीं किया है, तथापि उनकी धारणाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।उन्होंने छंद को कविता का नित्य धर्म माना है। यथा---" वही कविता समाज द्वारा स्वीकृति होगी जो दूसरों का मनोरंजन कर सके छंद और अनुप्रास दूसरों के मनोरंजन में सहायक रहे हैं। आज की जो कवितायें जनता द्वारा पढ़ी जाती हैं, और प्रशंसित हैं, वे छंद और अनुप्रास के सहारे ही मनोरंजन करतीहैं। "4

काव्य में छंद का निर्वाह कवि की व्यक्तिगत रूचि और सामर्थ्य पर निर्भर है।

---

1. विस्मृति के फूल भूमिका , पृष्ठ- 3
2. प्रेम संगीत दो शब्द --- पृष्ठ , 15
3. मधुकण की भूमिका , पृष्ठ--- 26
4. साहित्य के सिद्धान्त और रूप --- भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ- 38

तथापि इसमें कोई संदेह नहीं है कि छंद का यथावत विधान न करने पर भी रचनाकार को छंद की आत्मा का ज्ञान अवश्य होना चाहिये। इससे कविता में लय के विधान में अधिक सुकरता रहेगी। छंद रचना के प्रति आग्रह रखने के कारण वर्मा जी ने मुक्त छंद का सर्वथा तिरस्कार किया है। उन्हीं के शब्दों में देखिये ----

" मेरे विचार से तो मुक्त काव्य में जितना सौन्दर्य गति से प्रदान किया जाता है उतना व्याकरण के नियमों के उल्लंघन से हर लिया जाता है। इस लिये मुक्त काव्य यदि गद्य से अधम नहीं तो उससे अच्छा भी नहीं कहा जा सकता। कला के क्षेत्र में उसका कोई स्थान नहीं ।"1"

यहाँ मुक्त छंद के प्रति कवि की असहिष्णु प्रवृत्ति सहज व्यंजित हैं मुक्त- काव्य को लय से अनुप्राणित मानकर भी उन्होंने उसे व्याकरण विरुद्ध प्रयोगों से दूषित माना है, किन्तु तथ्य यह नहीं है। काव्य में गति योजना का फल व्याकरण-विरोध नहीं है, सत्य तो यह है। कि प्रवाहमणी कविता में साधारण व्याकरणिक व्यतिक्रमों की चिंता ही नहीं की जाती है । काव्य भाषा का विवेचन करते समयप्रस्तुत कवि ने इस मत पर स्वयं भी बल दियाहै। अत: यह स्पष्ट है कि पूर्व निश्चयों के आरोपों के कारण उन्होंने मुक्त छंद का विवेचन नहीं किया है।

भगवती बाबू ने गीत में लय और भावनात्मकता के समावेश का ध्यान रखता है। मधुकण, मानव, प्रेम-संगीत में संकलित फुटकर गीतों में इन विशेषताओं की सहज व्याप्ति रही है। काव्य शिल्प के अन्तर्गत भाषा की सहजता को सिद्धान्त - रूप में महत्व देने के अतिरिक्त उन्होंने व्यवहार में भी उसे आदर्श माना है। इसी कारण गीतों के अतिरिक्त छन्दो बद्ध कवितायें प्रस्तुत कर उन्होंने छंद के प्रति अपनी आस्था को भी सहज व्यवहार्य रखा है।

वर्मा जी ने कविता में यथार्थ और आदर्श के समावेश का विशेष ध्यान रखा है। "प्रेम-संगीत" और "मानव" में आदर्श और यथार्थ के वर्ण्य- विषय के अनुसार स्थान देने पर भी उसका अंतिम लक्ष्य इनमें समन्वय की स्थापना करना है। "त्रिपथगा" में इस उद्देश्य की सहज सिद्धि हुई हैं। अत: स्पष्ट है कि कवि वर्मा ने आदर्श और यथार्थ दोनों के सहयोग पर बल देकर परम्परा का विवेकपूर्ण पालन किया है।

---

1. मधुकण की भूमिका --- पृष्ठ, 27

वर्मा जी ने प्रगीतात्मक कृति को काव्य के लिये निधि के समान माना है। उनका मन्तव्य है कि जब प्रगीत-काव्य में लय के साथ साथ भावात्मकता का भी सुन्दर समन्वय होता है तब उसके अध्ययन से पाठक के चित्र पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। यथा "यदि हम स्वर प्रधान संगीत में अच्छे से अच्छे भाव भर दें या भाव प्रधान कविता मेंअच्छी से अच्छी स्वर लहरी पैदा कर दें तो कविता का संगीत एक हो जाता है और वही काव्य का संगीत सर्वोच्च होगा।"।"

यहाँ अर्थ सौरभ्य के अतिरिक्त लय के लालित्य को गीत का अनिवार्य गुण माना गया है। इस प्रतिपादन में नवीनता नहीं है उनके अतिरिक्त निराला, महादेवी जी, उदयशंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा का मत भी यही है। अतः यह स्पष्ट है कि आलोच्य कवि की धारणाओं का समंजन करने पर भी गीत की परिभाषा अपूर्ण रह जाती है, क्यों कि गीत केवल वह रचना नहीं है जिसमें भाव-विशेष की स्वतंत्र, परिपूर्ण लयबद्ध तथा आनंदात्मक अभिव्यक्ति हो, उसमें आत्माभिव्यक्ति आदि अन्य तत्वों का भी महत्वपूर्ण योग रहता है।

भगवती चरण वर्मा ने काव्य में अन्तरंग सौन्दर्य के विधान में लय बद्ध रसमयी रचना की दृष्टि से प्रेम-संगीत" का कवितायें विशेषतः दृष्टव्य है और जीवन की स्वस्थ्य स्वाभाविक एवं मौलिक अभिव्यक्ति का प्रयास उनकी अन्य काव्यरचनाओं में भी मिलता है। कल्पना के स्थान पर अनुभूति की तीव्रता के प्रति वे "मधुकण" के रचनाकाल से ही सजग रहे है।

- -

अध्याय --3

:- उपन्यासकार भगवती चरण बर्मा :-

=====x=====x=====x=====x=====

:- उपन्यास कार भगवती चरण वर्मा :-

1. भगवती बाबू हिन्दी के उन विशिष्ट लेखकों में हैं जिन्होंने अपनी लेखनी उपन्यास विधा को समर्पित करदी है। सृजन क्षमता, अन्तर्दृष्टि, एवं कलात्मकता के आधार पर उनकी गणना हिन्दी के प्रथमकोटि के उपन्यासकारों के रूप में होती है। प्रत्येक बड़े साहित्यकार में कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ होती हैं और साथ ही उसका अपना जीवन दर्शनभी होता है। साहित्यकार की प्रवृत्तियों के आधार पर ही वह एक अपनी विशिष्ट शैली का निर्माण करता है और जीवन दर्शन के आधार पर वह मानव जीवन और सामाजिक समस्याओं का अंकलन करता है तथा किसी घटना को नया अर्थ देता है। इसके अतिरिक्त किसी भी लेखक को उसके युग की प्रवृत्तियाँ भी प्रभावित करती हैं। इस प्रकार लेखक का स्वयं का व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन उसेअन्यों से विलग कर विशिष्टता प्रदान करता है।

:- भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों की प्रकाशित तालिका :-

क्र. सं.	उपन्यास	प्रकाशित सन्
1.	पतन	1928
2.	चित्रलेखा	1934
3.	तीन वर्ष	1936
4.	टेढ़े-मेढ़े रास्ते	1946
5.	आखिरी दांव	1950
6.	अपने खिलौने	1957
7.	भूले बिसरे चित्र	1959
8.	वह फिर नहीं आई	1960
9.	सामर्थ्य और सीमा	1962
10.	थके पांव	1963
11.	रेखा	1964
12.	सीधी सच्ची बातें	1968
13.	सबहि नचावत राम गुसाईं	1970
14.	प्रश्न और मरीचिका	1973

:- 2. भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों के कथा तन्तुओं के प्रकाश में विवेच्य विषय पर चिंतन :-

---------x---------x----------x-------x---------x------

साहित्य के सभी अध्येता किसी न किसी रूप में इस बात से सहमत हैं कि कहानी अथवा कथातत्व उपन्यास का आधार है। कहानी कहना उपन्यास का प्रधान गुण है। उपन्यास की इसअनिवार्य आवश्यकता से कोई इन्कार नहीं कर सकता है। ई0 एम0 फार्स्टर तीन प्रकार के पाठकों के उदाहरण द्वारा कथा तन्तुओं की महत्ता स्वीकार करता है। किसी बस ड्राइवर से यदि उपन्यास के विषय में चर्चा की जाय तो वह यही कहेगा किसी मनोरंजक कथा की तुलना में वह उपन्यास पढ़ता है। गोल्फ के मैदान में यदि किसी सभ्य पुरुष से पूछा जाये कि वह उपन्यास क्यों पढ़ता है तो वह उपन्यास की कलात्मकता के साथ अपने को उसके कथा तन्तुओं से बंधा हुआ ही बतलायेगा। किसी साहित्यिक से इस विषय में पूछा जाय तो वह भी, दबी जबान से ही सही, कथा तत्व के महत्व को स्वीकृति देगा। कहने का मतलब यह कि उपन्यास का कथ्य कहानी के माध्यम से ही सामने आता है।

उपन्यासों के माध्यम से कही जाने वाली कहानी, अन्य कहानियों की भाँति सीधे सादे ढंग से लेखक द्वारा ही नहीं कह दी जाती है बल्कि उपन्यासकार को उसकी समुचित व्यवस्था करनी पड़ती है। उसका क्रम निर्धारण करना पड़ता है। आये हुये अन्य प्रसंगों के साथ उसकी संगति बैठानी पड़ती है।" जिस तरह कुम्हार गीली मिट्टी से अपनी कला द्वारा सुन्दर वस्तुओं का निर्माण कर देता है उसी तरह उपन्यासकार कथा को काट-छाँट कर तथा सजा-सवाँरकर कथावस्तु में परिणत कर देता है। कहानी सुनने के लिए पाठक में उत्सुकता की सर्वाधिक आवश्यकता होती है किन्तु उपन्यास की कथावस्तु को समझने के लिए बौद्धिक और स्मृतितत्व दोनों को ही सजग होना चाहिये। उपन्यास रोचक नहीं है तो वह गूढ़ विचारों के रहते हुये भी लोकप्रिय व सफल नहीं बन सकेगा। भगवती बाबू हिन्दी के सर्वाधिक सफल उपन्यासकारों में एक हैं। उनके उपन्यासों में जिज्ञासा पैदा करने की अद्भुत क्षमता है तथा पाठक को भरपूर आनंद देने में समर्थ हैं। "टेढ़े-मेढ़े रास्ते" जैसा राजनीतिक वाद-विवादों से भरा हुआ उपन्यास तथा "सामर्थ्य और सीमा" जैसा दार्शनिक विचारों से युक्त उपन्यास सामान्य पाठक के लिये केवल ग्राह्य है बल्कि उसे बाँधकर रखने में भी सफल है।

उनकी किस्सा गोई की क्षमता पाठक की उत्सुकता को लगातार जगाये रखती है और वह आगे क्या होगा की स्थिति में बना रहता है।

भगवती चरण वर्मा ने उपन्यासों में भारत के अधुनिक युग को समग्रता से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्वाधीनता आन्दोलन का जैसा विशद चित्रण भगवती बाबू के उपन्यास साहित्य में प्राप्त है वैसा हिन्दी साहित्य में अन्यत्र प्राप्त नहीं है। भारत की उद्बुद्ध होती हुई राजनैतिक चेतना की समग्र झांकी "टेढ़े मेढ़े रास्ते" में प्राप्त होती है। पराधीन भारत की स्वाधीन होने की प्रबल इच्छा का चित्रण "सीधी सच्ची बातें" में हुआ है। इनके उपन्यासों में विभिन्न राजनैतिक विचार धाराओं के टकराव का चित्रण बड़ा प्रभावशाली ढ़ग से हुआ है। साथ ही स्वाधीनता प्राप्ति तक की हलचलों को विस्तार से व्यक्त किया है।

स्वतंत्र भारत की मोहभंग की स्थिति का चित्रण उनके दो परवर्ती उपन्यासों "सबहिं नचावत राम गोसाईं" प्रश्न और मरीचिका" में हुआ है। इन उपन्यासों में देश में पनपते पूँजीवाद का कच्चा चिट्ठा ही है। अत्यंत सशक्त ढंग से भगवती बाबू देश की खोखली होती हुई मान्यताओं एवं अर्थ व्यवस्था को प्रस्तुत करते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि भगवती बाबू के उपन्यास आधुनिक युग के दर्पण हैं, उसमें बीसवीं शताब्दी के भारत की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियाँ स्पष्ट हो सकी हैं। डॉ० धर्मवीर भारती ने उनकी इस विशेषता पर लिखा है- "भगवती चरण वर्मा मेरी दृष्टि में हिन्दी के अकेले कथाकार हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से इस पूरी शताब्दी में भारतीय सामाजिक ढाँचे को बाहरी और भीतरी ठहरावों और बदलावों का एक क्रमबद्ध चित्रण किया है। और न केवल सामाजिक व पारिवारिक टूटते संबंधों का सजीव चित्रण किया है तथा आंतरिक भावात्मक धरातल की उथल-पुथल खूबी से आंकी है वरन् बाहरी तथाकथित ऐतिहासिक घटनाओं के फ्रेम को उतनी ही खूबी से निभाते चले आये हैं। यह तो कमजोरी हमारी वर्तमान हिन्दी समीक्षा की है जो अपने ओछे आग्रहों और दम्भी शास्त्रीयता या झूठी सैद्धान्तिकता की ओट में अपने खोखलेपन को छिपाने में ही जी जान से लगी हुई है, वरना किसी और भाषा में यदि "भूलेबिसरे चित्र", "सीधी सच्ची बातें" "प्रश्न और मरीचिका" यह उपन्यासत्रयी प्रकाशित होती तो भगवती बाबू की इस असाध्य, अर्थवान कथोपलब्धि का महत्त्व पहचाना जाता।

परिस्थितियाँ देश काल में परिवर्तन क्रम उपस्थित करती हैं। फलत: राष्ट्र की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशाओं में एक आमूल परिवर्तन होता रहता है जिससे प्राचीन परम्परायें विनष्ट होती हैं और उनके स्थान पर वर्तमान के अनुसार उपयोगी अनुपयोगी युगीन परिस्थितयाँ पृष्ठ भूमि बन जाया करती हैं। प्रकृति के नियम के अनुसार सत्य ही परिवर्तनशीलता जीवन है। भारतीय समाज अनेक संक्रान्तियों से होकर गुजरा है। उसे युगानुकूल मूल्यों एवं जीवन दशाओं की नई परिस्थिति में नये ढंग से प्राप्त करने के लिये अभिनव मार्ग खोजना पड़ा है। पृष्ठभूमि वह आधार स्तम्भ है जिसके अवलम्ब पर युग-प्रासाद निर्मित हुआ है। बीस-वीं शताब्दी की अभिनव पृष्ठभूमि ने नया क्रान्तिकारी प्रगतिशील वातावरण प्रस्तुत किया जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आधुनिक हिन्दी गद्य का जन्म हुआ।

सामाजिक क्रान्तियों के फलस्वरूप परम्परा की प्राचीनता विनष्ट होती रही तथा नई चेतना का आगमन हुआ। नयी चेतना के ज्योतिर्मय प्रकाश में पुरानी परम्परायें असामयिक, अनुपयोगी एवं अशक्त हो अपनी अंतिम सांसें छोड़ने लगतीं हैं। इस समय साहित्य और समाज एक नया मोड़ लेता है। किसी भी सच्चे कलाकार की विकासोन्मुख चेतना बंधी बंधाई सारणियों एवं परम्पराओं में बंध कर नहीं चलना चाहती वह नवीनता में विश्वास करता है तथा परम्पराओं से विद्रोह करके नये पथ का पथिक बनने के लिये आतुर हो जाता है। और वर्माजी एक नवो-दित चेतना के प्रतीक बन कर हमारे सामने आये। वर्माजी के व्यक्तित्व व साहित्य में चपला सी चमक है, भाषा में सलिला-सा सरल प्रवाह होने के कारण निर्भय गायन की स्वर लहरी की तरह मानव मन को स्पंदित और उद्वेलित करने की महान् शक्ति अन्तर्निहित है।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में भारतीय समाज के यथार्थ चित्र प्राप्त होते हैं। जिस समाज और समय को उन्होंने देखा है उसकी पृष्ठभूमि पर उन्होंने अपनी कृति-यों का सृजन किया है। यह स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास के अत्यंत महत्वपूर्ण व संक्रमण काल खण्ड को उन्होंने देखा है। भारत का स्वाधीनता आन्दोलन विश्व को चकित कर देने वाली घटना थी। यह आन्दोलन जहाँ एक ओर राजनीतिक स्वा-धीनता के लिये प्रयत्नशील था वहीं दूसरी ओर वह कितनी ही सामाजिक समस्या-ओं से जुड़ रहा था। नारी शिक्षा, अछूतोद्धारा, पर्दाप्रथा, हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य जातिप्रथा आदि कितनी ही समस्याओं से नवजाग्रत भारतीय समाज उलझा हुआ था।

भगवती बाबू ने इस प्रकार की तमाम समस्याओं को निकट से देखा। अतः स्वा-भाविक ही है कि उनकी कृतिओं में इन सभी समस्याओं का प्रगतिशील धरातल पर चित्रण हुआ है। उनकी कृतियों में राजनैतिक परिवर्तनों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है कुछ कृतियों तोपूर्ण रूप से राजनैतिकसमस्याओं पर आधारित हैं।

"भूले बिसरे चित्र" "टेढ़े मेढ़े रास्ते"तथा "सीधी सच्ची बातें" में स्वाधी-नता प्राप्ति से पूर्व के भारतीय समाज का चित्रण हुआ है। और "सबहिं नचावत राम गोसाईं" तथा प्रश्न और मरीचिका" में स्वाधीन भारत की स्थितियों का मूल्यांकन किया गया है। भारतीय समाज के परिवर्तन को भगवती बाबू ने एक सजग व्यक्ति और सजग साहित्यकार की आँखों से देखा है। समाज जैसे-जैसे सभ्य और प्रगतिशील हुआ वैसे-वैसे उसके और व्यक्ति के संबंध बदलते गये। भगवती बाबू के उपन्यासों में पाप-पुण्य की समस्या इसी संबंध की व्याख्या का रुपान्तर हैं। व्यक्ति की स्वाधीनता को कायम रखते हुये व्यक्ति और समाज के मधुर संबंधों की वे कल्पना करते हैं। उनके पात्र व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रति समर्पित अवश्य हैं। पर वे समाज के ढाँचे को तहस-नहस करने के अभिलाषी कभी नहीं दिखाई पड़ते हैं।

भगवती बाबू ने सामाजिक रूढ़ियों के सूक्ष्म पक्षों को पकड़ा है और उस पर विस्तार से विचार किया है। भारतीय समाज ने नारी को खुली हवा में सांस लेने की" छूट तो अवश्य देदी किन्तु नारी शरीर के साथ नैतिकता का एक हौवा जुड़ा ही रहा। नारी की स्वतंत्र सत्ताकी आवाज भी आज आधुनिक प्रगतिशील युग में ही उठी।गांधी जी ने कहा कि नारी अबला नहीं है "यदि अहिंसा ही हमारे मूल्यांकन की कसौटी है तो निश्चय ही भविष्य का निर्माण स्त्रियों के हाथ में हैं।" " नारी घर की चहरदीवारी से निकल कर राजनैतिक सामाजिक क्षेत्र में कार्य करें यह प्रयास इसी शताब्दी में हुआ जब भगवतीचरण वर्मा अपनी लेखनी पर तटस्थथे। इन्होनें स्त्री-पुरूष के बुनियादी अधिकारों की समानता की मांग की। वर्माजी के उपन्यासों में पात्रों में चरित्र-चित्रण द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय नारी सदियों से लिखी हुई लक्ष्मण रेखा को पार करके अब सामाजिक क्षेत्र में आ गई थी। और इतनी तरक्की की कि 1940 में विधान सभाओं में 80 महिलायें प्रतिनिधित्व कर रहीं थीं। नारी की मुक्ति भारतीय युग परिवर्तन और प्रगति के स्वरूप को याद रखी

जाने वाली घटना है। वर्माजी के "भूले बिसरे चित्र" में बदलती परिस्थितियों में नारी ने अपने जीवन की सार्थकता का समझा है और जीवन में एक उद्देश्य को प्राप्त किया है।

देश के सारे स्वप्न पूँजीवाद के क्रूर पंजो में दब कर क्रूर हो गये थे। वर्मा जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से यह बतलाया है कि वास्तव में इस देश के पूंजीपतियों ने अपनी मोर्चाबंदी पहले ही कर रखी थी। इसी मोर्चे बंदी का एक रूप यह था कि बड़े बड़े पूँजीपति कांग्रेस में शामिल हो गये थे। "सीधी सच्ची बातें" और "सबहिं नचावत राम गोसाईं" के माध्यम से भगवती बाबू ने देश में पैर जमाते हुये पूँजीवाद का चित्रण किया है। अंग्रेजों के प्रति भक्ति बतलाकर राधेश्याम और जयसुखलाल द्वितीय विश्वयुद्ध के समय ब्लैक मार्केटिंग करके दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करते है किन्तु जैसे ही भारतकीस्वतंत्रता के आसार दिखाई पड़ते है वे तुरन्त ही खादीधारी बनकर कांग्रेस में शामिल हो जाते हैं। जयसुखलाल कहता है "और हम लोगों को खद्दर पहनना पड़ेगा, और कांग्रेस में शामिल होना पड़ेगा अगर युद्धकाल में जो हम लोगो नेकरोड़ों रुपया कमाया है उसे बरकरार कायम रखना है। आगे चलकर देखना यही कांग्रेस वाले मिनिस्टर बनेंगे, राज करेंगे।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद कालाबाजारी और अपराधियों को अयोनों के लिये लाइसेंस और सरकारी सहायता मिलती गई इस प्रकार सभी परिस्थितियों में एक ऐसे समाज का निर्माण हुआ जिसमें पैसा ही सब कुछ है। जहाँ योग्यता, ईमानदारी और मानवीयता जैसे गुण कोई महत्त्व नहीं रखते। सारा देशअर्थ पिशाच के चुंगल में फंसता गया और स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती गई और यह स्थिति आज भी बिगड़ती जा रही है। भगवती बाबू के उपन्यासों में अर्थ पिशाच के कितने एजेंट पट्टेदार दिखलाई पड़ते हैं। अपनी सशक्त लेखनी से उन्होंने पूंजीवादी युग को यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

भगवती चरण वर्मा ने चार दशक से भी पहले लिखना आरम्भ कर दिया था। जब भी उनकी कोई कृति सामने आई उसमें तत्कालीन परिवेश को गहराई से चित्रण करने की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। भारत के नवीन युग के परिवर्तनों के चित्रांकन में उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों का आश्रय लिया है केवल इतने से ही भगवती बाबू

को प्रगति-चेता नहीं कहा जा सकता। वास्तव में देश के घटित होने वाली बातों को निष्पक्ष दृष्टि से स्पष्टता के साथ कह देने की प्रवृत्तिउन्हें प्रगति चेता बनाती है। क्रांतियां और उथल-पुथल, राजनैतिकदोगलापन, समाजकेकर्णधारों की अयोग्यता आदि आधुनिक लेखन की शर्त है। जब भगवती बाबू की पीढ़ी के लेखक आदर्श को खोल पहन कर बैठ गये तब भगवती बाबू ने आज की परिस्थितियों का बेबाक चित्रण किया।

भगवती बाबू की यह विशेषता है कि पर्याप्त आधुनिक नवीन चेतना का वहन करने के उपरान्त भी उनकी विचारधारा पाश्चात्य प्रभाव से आक्रान्त नहीं है। व्यक्तिवादी विचारधारा पश्चिम में जन्मी और विकसित हुई किन्तु भगवती बाबू ने कहीं भी पश्चिमी विचारकों के प्रति वृथा मोह प्रदर्शित नहीं किया। इस आधार पर भगवती बाबू सही माने में व्यक्तिवादी सिद्ध होते हैं क्योंकि उन्होंने अपने अनुभवों और विचारधारा पर किसी को हावी नहीं होने दिया है। धर्म, जाति और रंग की संकुचित सीमा से अलग हटकर व्यक्ति का केवल मनुष्य के रूप में मूल्यांकन करना विश्वव्यापी प्रगति चेतना या आधुनिकता है। किसी भी प्रकार की कट्टरता के कारण व्यक्ति की गरिमा पर प्रहार करना सिद्धान्त रूप में आज हर समय समाज में अनुचित माना जाता है। रंग भेद के आधार पर दमन की दक्षिण-अमेरिकी नीति अथवा इयान स्मिथ की कट्टरता, धर्म के आधार पर होने वाले भारत-पाकिस्तान के पाशविक साम्प्रदायिक दंगे, राजनीति के नाम पर रूस या स्पेन में होने वाले दमन की निंदा विश्व व्यापी स्तर पर हुआ करती है। वर्ग-भेद के आधार पर होने वाली क्रूरता को समाप्त करके औसत मनुष्य को जीवन की अधिकतम सुविधायें समान तौर पर प्रदान करना ही उसका उद्देश्य हैं।

व्यक्ति की गरिमा आधुनिक युग के केन्द्रीय विचार हैं अत: व्यक्ति और समाज के संबंधों पर आज सबसे अधिक सोचा जाता है। समाज की अधीनता इतिहास में एक वरदान थी किन्तु आधुनिक समाज में अभिशाप बन गई है। भगवती बाबू ने इस समस्या की गहरी छानबीन अपने उपन्यासों के माध्यम से की है। व्यक्ति की गरिमा को उन्होंने अत्यंत ऊँचा स्थान दिया है किसी वाद, सिद्धान्त तथा मत के कारण मनुष्य का तिरस्कार वे अवांछित समझते हैं। बड़े-बड़े सिद्धान्तों की आड़ में होने वाले युद्धों का वे विरोध करते हैं। मनुष्य को मारने की क्या आवश्यकता, वह तो नश्वर है। वह खुद मर जायेगा। और सृष्टि की जीवन-अवधि के हिसाब से मनुष्य की आयु ही

कितनी है, नहीं, मनुष्य को मारने से काम नहीं चलेगा। मनुष्य की परम्पराओं को नष्ट किया जाना चाहिये।

वर्मा जी के उपन्यास साहित्य में महाप्राण निराला की भाँति रूढ़ियों, प्राचीन परम्पराओं, वाह्याडंबरों, शोषण और अन्याय के विरुद्ध क्रान्ति का आह्-वान किया गया है। उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दी का विराट जनजीवन वर्मा जी की कृतियों में चित्रित हुआ है जो कि स्थूल नहीं सूक्ष्म है। आदर्शात्मक तथा काल्पनिक नहीं, यथार्थ वादी है। वर्तमान समय में व्यक्ति एवं समाज की भावनाओं, विचारों मनोवृत्तियों के बनते बिगड़ते रूप ही उनकी लेखनी से उभरे है। परतंत्र देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये व्यक्ति व समाज में राष्ट्रीय भावना की छटपटाहट, नई मान्यताओं और स्वतंत्रयोत्तर उन महत्त्वाकांक्षाओं का बिखरजाना, आदर्शों का खोजना आदि वर्माजी की कृतियों के प्रतिपाद्य हैं।

3. भगवती चरण वर्मा की उपन्यास कृतियों का समीक्षात्मक अनुशीलन:-

--------x--------x---------x---------x-----------

पतन :-

"पतन" भगवती बाबू का प्रथम उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1928 में हुआ था। लेखक भारतीय इतिहास के इस काल को कथानक की पृष्ठभूमि बनाता है जो अपनी अकर्मण्यता और विलासी प्रवृत्तियों के लिये कुख्यात है। किन्तु उपन्यास की मुख्यकथा में जिन व्यक्तियों का पतन दिखलाया गया है। उनके पतन का कारण सामाजिक वातावरण नहीं है बरन् उनके निजी व्यक्तिगत कारण हैं। बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि उनके पतन का कोई कारण नहीं केवल उनकी अनुभूतियां है, जिनसे वे परिचालित होते है।

"पतन" का कथानक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिये हुये है। कहानी वाजिद अली शाह के समय की है। जब अवध का राज्य पतन के कगार पर खड़ा था नवाब साहब की विलासिता राज्य के लिये खतरनाक साबित हो रही थी बजीर अलीन नवाब की जड़े खोद रहा था और नवाब साहब के नाम पर मनमानियां रहा था। भगवती बाबू की नवाब के प्रति पर्याप्त सहानुभूमि परिलक्षित होती है। वे दिखलाते हैं।

कि नवाब बुरा आदमी नहीं था बल्कि उसे बिगाड़ दिया गया था। लेखक द्वारा चित्रित नवाब अपने सम्भावितपतन को "खुदा की मर्जी" स्वीकार करते हुये परियों के अखाड़े में व्यस्त दिखलाई पड़ते हैं। जबकि उनके राज्य में चारों ओर रिश्वत और भ्रष्टाचार का बोलबाला था। उक्त देश काल को चित्रित करते हुये लेखक ने प्रतापसिंह व रणवीर नामक व्यक्तियों को मुख्य कथा का स्त्रोत बनाया है। प्रतापसिंह स्वभावत: षड्यंत्रकारी एवं कामुक व्यक्ति है जो स्वयं अनुभव करता है कि वह शैतान के हाथ बिक चुका है। उसमें सामने वाले व्यक्ति को सम्मोहित करके उससे अपनी इच्छानुसार कार्य करा लेने की अद्भुत शक्ति है। अपनी इस शक्ति का प्रयोग वह अक्सर बुरे कार्यों में करता है। प्रतापसिंह ने अपने एक मित्र के पुत्र रणवीर को पाल-पोस कर बड़ा किया है जिसेवह वास्तव में बहुत अधिक चाहता है किंतु उसकी प्रेयसी सुभद्रा को अपनी दानवी शक्ति से सम्मोहित करके वाजिद अली शाह की बेगम बनवा देता है ताकि वह उसकी वासनापूर्ति का साधन बनसके।रणवीर के मन में प्रतापसिंह के प्रति कभी प्रेम,कभी घृणा के भाव उत्पन्न होते हैं। वह प्रताप सिंह को जान से मारने का प्रयास करता है। किन्तु उसकी शक्ति के आगे अपने को विवश पाता है।

कानपुर में प्रकाश चन्द्र नामक व्यक्ति रहता है।उसकी पत्नी सरस्वती अत्यंत सुन्दर है। पति की शुष्कता के कारण वह अत्यंत प्रेम की अत्यन्त प्यासी है। प्रकाशचंचन्द्र के मित्र भवानी शंकर के साथ उसकी आत्मीयता बढ़ती है और दोनों ही एक दूसरे पर आश्रित हो जाते हैं।अपने आपको पतन से बचाने के लिये भवानी शंकर अपनी पत्नी उर्मिला को अपने चाचा मुंशी रामसहाय के पास लखनऊ ले जाता है। प्रकाशचन्द्र और सरस्वती भी लखनऊ पहुँच जाते हैं और सुभद्रा का वियोग दुख दूर करने के लिये विदेश भ्रमण करता हुआ रणवीर भी। प्रताप सिंह पहले से ही ज्योतिषी राधारमण का रूप धारण किये नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में अपना प्रभाव जमाकर लखनऊ में विद्यमान है। सभी की एक दूसरे से भेंट होती है और फिर लेखक ने कल्पना की वो उड़ानें भरी हैं कि तिलस्मी कहानी भी उसकी कहानी के आगे पानी माँगने लगती है।

प्रकाशचन्द्र, प्रतापसिंह का शिष्य है फिर भी प्रतापसिंह उसकी पत्नी सरस्वती को सम्मोहित कर लेता है।यहाँ सरस्वती एक मंजी हुई खिलाड़िन दिखलाई

पड़ती है। भवानी शंकर को अपने तथाकथितपतन का कारण बतलाते ही वह फिर भवानी शंकर को अपना बना लेती है। वे दोनों ही वापस कानपुर लौटते हैं। उन्हीं के पीछे एक गाड़ी में भवानी शंकर के चाचा पत्नी और माता भी लौटते हैं। जब भवानी शंकर गंगा पार होता है तभी उसका चाचा उसे देखकर किनारे से पुकारता है सरस्वती पगल की तरह नाव उलट देती है ताकि भवानी शंकर के साथ मर सके किन्तु भवानी शंकर तैरकर अपने परिवार से जाकर मिल जाता है और सरस्वती सदा के लिए गंगा में समा जाती है।

उपन्यास के छठवें-सातवें परिच्छेद में गुलनार प्रताप सिंह और बंदेहसन की प्रासंगिक कहानी भी चलाती है। मुहम्मद याकुब का कैदी बनने के बाद अपने अपमान का बदला प्रताप सिंह उसकी बेटी गुलनार को सम्मोहित करके लेता है। गुलनार के कहने पर उसका प्रेमी बंदेहसन प्रतापसिंह को कैद से मुक्त करता है। कैद से छूटकर प्रतापसिंह को मरना चाहता है पर गुलनार बीच में आ जाती है और अपने ही पिता के हाथों मारी जाती है। प्रतापसिंह मुहम्मद याकुब को करता है और बंदेहसन गुलनार के शव के साथ गोमती में कूद कर आत्महत्या कर लेता है।

दूसरी तरफ रणवीर किसी तरह औरत का बेश बनाकर वाजिद अली शाह के हरम में जाकर सुभद्रा से मिलता है। सुभद्रा सितमआरा की मदद से रणवीर के साथ भाग निकलती है। प्रतापसिंह बदले की भावना से उसका पीछा करता है। जब वह नदी पर करते हुये रणवीर और सुभद्रा के पास पहुँचता है तब रणवीर उसे छुरा भोंक देता है। और प्रतापसिंह मरते-मरते नाव उलट देता है और तीनों ही नदी में डूब मरते हैं। इस तरह वाजिद अली शाह को छोड़कर अन्य सभी को लेखक नदी में डुबों कर समाप्त कर देता है।

कथानक की दुर्बलता यह है कि लेखक और पाठक किसी एक बिन्दु पर नहीं पहुँच पाते हैं। कथानक के माध्यम से जो लेखक कहना चाहता है वह इतना घनीभूत नहीं हो पाया है कि पाठक, लेखक के कथ्य को एक विचार के रूप में ग्रहण कर सके। सामान्य पाठक को पात्रों के पतन का कारण अनके तर्कहीन कृत्य ही मालूम पड़ते हैं किन्तु लेखक बार बार पाठक को यह संतोष दिलाना चाहता है कि उसके पात्र पहुत बेचारे है और परिस्थितियां उनके पतन का कारण है। सरस्वती का चरित्र

उदाहरण स्वरूप मानाजा सकता है। किसी भी प्रकरण को लेखक इस तरह चित्रित नहीं कर सका है कि पाठक को यह विश्वास दिला सके कि ये सारे पात्र सचमुच ही प्रगति की धार में बेबस होकर बह रहे हैं। सभी पात्र पतन की ओर पाने की चर्चा इस तरह करते है जैसे कि तीर्थयात्रा पर निकले हों।

उपन्यास का कथानक अत्यंत शिथिल है और व्यर्थ की बातों से कई स्थलों पर उसका प्रवाह नष्ट होगयाहै। सामान्यत: इसके पात्र बहुत ही उथली चिंतन धारा में उलझे दिखलाई पड़ते हैं। कथानक का प्रवाह उस जगह भयानक तौर पर टूटता है जब लेखक कथासूत्र को छोड़कर अपनी व्यक्तिगत विचारधारा को व्यक्त करने लगता है। नवाब वाजिदअली शाह पर लिखा गया ग्यारहवां परिच्छेद अपने आप में स्वतंत्र लेख लगता है और कथानक से पूरी तरह अलग है। कुल मिलाकर "पतन" में काफी बिखराव है। लेखक एक युग विशेष का पतन दिखलाना चाहता है यह बात अंत तक अस्पष्ट रह जाती है। परिणामत: पतन गम्भीर व गहरी रचना न बन सकी।

प्रस्तुत उपन्यास में सरस्वती के माध्यम से लेखक ने विवाहित नारी के उन्मुक्त प्रेम की समस्या का वर्णन किया है। सरस्वती के पतन के कारण सामाजिक व आर्थिक दोनों ही है। मध्यवर्गीय संभ्रांत परिवार की पुत्रवधु अकर्मण और कठोर पुरुष की उपेक्षाओं का शिकार बनकर मर्यादाहिन हो जाती है। प्रकाशचन्द्र, भवानी शंकर प्रतापसिंह इन तीनों पुरुषों के सम्पर्क में आकर वह विलासी ईर्ष्यालु और अंत में कुलटा बन जाती है इसके चरित्र का पतन परिस्थितिजन्य और मृत्यु का वरण करके ही वह अपने विडम्बर पूर्ण जीवन से मुक्ति प्राप्त करती है। इस उपन्यास में वर्माजी ने मध्यवर्ग की सामाजिक व आर्थिक समस्याओं के चित्रण में नारी और पुरुष के विविध प्रकार के संबंधों का उल्लेख करते हुए उसे पाप और पुण्य की कसौटी पर कसने का प्रयत्न किया है। यह उनका प्रथम उपन्यास हैइसी लिये इसमें समस्याओं का निरूपण विशदता से नहीं हो सका है पर समस्याओं के बीज हमें उनकी इस कृति में अवश्य मिल जाते हैं जिनका विकास उनकी परवर्ती रचनाओं में देखा जा सकता है।

:- चित्रलेखा :-
----x----

सन् 1934 में प्रकाशित "चित्रलेखा" भगवती बाबू का दूसरा उपन्यास है इसके पूर्व "पतन" में उन्होने उपन्यास लेखन में प्रवेश अवश्य किया था,

पर स्वयं वर्माजी उसे एक प्रयोग मात्र मानते हैं और अपना पहला सफल उपन्यास "चित्रलेखा" ही मानते है। चित्रलेखा से पूर्व वर्माजी कवि की हैसियत से ही जाने जाते थे। और छायावाद के प्रमुख प्रवर्तकों में से थे। पर गद्य के विकास और पद्य के हृास ने उन्हें उपन्यास लिखने को प्रेरित किया। परिस्थितियों से विवश होकर या अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति, जैसे भी हो, वर्माजी ने "चित्रलेखा" के साथ कथा क्षेत्र में जो प्रवेश किया तो वे हमेशा के लिये इसी क्षेत्र के होगये। और "चित्रलेखा" को पाकर हिन्दी साहित्य समाज ने अनुभव किया कि कवि वर्मा के अन्दर एक कथाकार सोया पड़ा था, जो उनकी तरुणावस्था के साथ एकाएक जाग उठा।

छायावाद का प्रमुख कवि कविता का कितना मोह छोड़ पाता "चित्र-लेखा" का प्रत्येक अवयव छायावदी कविता के आवरण से ढंका है। पात्रों के वार्तालाप और वाद विवाद तो कवित्वमय भाषा में हैं हीं, भावों का प्रस्तुती-करण भी भावमय है। कुमारगिरि की कुटी में बीजगुप्त और चित्रलेखा अतिथि के रूप में जाकर विश्राम करते हैं, तो कुमारगिरि स्त्री को देखकर हिचकिचाता है, क्योंकि उसके अनुसार स्त्री अंधकार है, मोह है, माया है और वासना है। चित्र लेखा कुमारगिरि के इन विचारों से तिलमिला उठती है और उसका उत्तर वह ऐसी तीखी, कवित्वमयी भाषा में देती है कि योगी भी विचलित हो उठता है। उसने कुमारगिरि के वाक्यसमाप्त होने पर उनके सामने अपना मस्तक नवा कर कहा- प्रकाश पर लुब्ध पतंग को अंधकार प्रणाम करता है। वाक्य तीर की तरह पैना था, स्वर संगीत की तरह कोमल, सौन्दर्य में कवित्व था, वासना की मस्ती में अहं-कार। "चित्रलेखा" की वस्तु उसे उपन्यास का रूप प्रदान करती है तो उसकी अभि-व्यक्ति उसे कविता का। उसकी एक-एक पंक्ति में कवि बोलता है।

पाप और पुण्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये उपन्यास की रचना हुई है। यह लेखक का कौशल है कि उसने कथानक अत्यंत सुन्दर और समस्या के अनुकूल चुना। महाप्रभु रत्नाम्बर के दो शिष्य श्वेतांक और विशालदेव अपने गुरु से पाप के विषय में जानने की इच्छा प्रकट करते है। रत्नाम्बर पाप के स्वरूप में उनका साक्षात्कार कराने के लिये उन्हें दो अलग व्यक्तियों को सौप देते हैं। श्वेतांक सामन्त बीजगुप्त का सेवक बन कर तथा विशालदेव योगी कुमारगिरी का शिष्य बनकर एक ही समस्या का समाधान ढूंढने का प्रयास करते है। बीजगुप्त

सांसारिक वस्तुओं पर विश्वास करने वाला व्यक्ति है और कुमार गिरि त्यागी, संयमी और संन्यासी है।

"चित्रलेखा" के लेखन के कुछ ही समय पूर्व उन्होंने वकालत पास की थी, पर व्यवसाय के क्षेत्र में तो वे इसका प्रयोग नहीं कर पाये, साहित्य में इससे उन्होंने तर्क के माध्यम से किसी बात को कहने, विषय को प्रस्तुत करने की अपनी एक शैली बना ली। तर्क के माध्यम से लेखक सच-झूठ, अच्छे-बुरे मत का सशक्त प्रतिपादन करता है। इससे एक प्रकार का चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। झूठ को भी इस तरह प्रतिपादित करना कि वह सच लगे। "चित्रलेखा" में इस तरह का चमत्कार जगह-जगह है। तर्क के द्वारा ही लेखक समाज विरोधी तत्वों का प्रतिपादन करता है।

बीजगुप्त की प्रेयसी नर्तकी चित्रलेखा सम्राट चन्द्रगुप्त की सभा में योगी कुमार गिरी को परास्त करके स्वयं में कुमारगिरि के आकर्षण में बंध जाती है। यह आकर्षण इतना प्रबल हो उठता है कि वह वैभव को तिलांजलि देकर कुमारगिरि का शिष्यत्व ग्रहण करने उसके आश्रम में चली जाती है योगी कुमारगिरि चित्रलेखा को आध्यात्मिक ज्ञान तो नहीं दे पाता है बल्कि स्वयं ही नर्तकी के रूपजाल में फंसकर साधना भ्रष्ट हो जाता है। इधर बीजगुप्त चित्रलेखा से अथाह प्रेम करता है जीवन के भयानक अभाव को सहन न करके अपनी संपत्ति और उपाधि श्वेतांक को दान करके भिखारी बन कर निकल पड़ता है।

नर्तकी चित्रलेखा बीजगुप्त को छोड़कर कुमारगिरि के आश्रम में पहुँच जाती है तब चित्रलेखा को अपनी भूल का ज्ञान होता है और वह पश्चाताप की अग्नि में जलकर कुन्दन बन जाती है। जब चित्रलेखा बीजगुप्त के साथ पुनः जाना चाहती है तो बीजगुप्त उसे भिखारिन के रूप में ही स्वीकार करता है क्योंकि वह स्वयं भिखारी है। इस सम्पूर्ण घटना के प्रवाह को श्वेतांक और विशालदेव अत्यंत निकट से देखते हैं और दोनों ही उससे अलग-अलग प्रभाव ग्रहण करते है। श्वेतांक को अनुभव होता है कि बीजगुप्त देवता है और कुमारगिरि पापी है तथा विशालदेव को लगता है कि कुमारगिरि महान् है, बीजगुप्त पतित है।

ईश्वर द्वारा निर्मित अन्तरात्मा तथा किसी विभाजक रेखा द्वारा तथ्य

किये गये पाप और पुण्य को लेखक अत्यंत स्पष्टता से नकार देता है उपन्यास की भूमिका में ही वह कह देता है- "अन्तरात्मा ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं वरन् समाज द्वारा निर्मित है- मनुष्य की अन्तरात्मा केवल उसी बात को अनुचित समझती है जिसे समाज अनुचित समझता है।" कहने का तात्पर्य यह है कि नैतिकता की सार्वभौमिक और सार्वकालिक परिभाषा नहीं हो सकती बल्कि देश काल के अनुसार बदलती रहती है। देश जैसे-जैसे प्रगति के पथ पर बढ़ता जाता है, मानव भावनायें भी अपना महान् आदर्श लें आगे बढ़ती रहती हैं। यदि इस उपन्यास में "उपसंहार"वाला अंश न होता तो पाठक स्वभावत: बीजगुप्त को पुण्यकर्ता और कुमारगिरि को पापकर्ता मान लेता किन्तु महाप्रभु रत्नाम्बर का अंतिम निर्णय पाठक को एक नवीन दृष्टि देता है- "संसार में पाप कुछ भी नहीं है वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है।" इस उपन्यास की कथा का सारा ताना-बाना दृष्टिकोण की विषमता को स्पष्ट करने के लिये चुना गया है। आदिकालसे यहसमस्या रही है किपाप के अन्तर्गत किन कर्मों को रखा जाय। सामान्यत: पाप का संबंध नैतिकता से जोड़ा जाता है और नैतिकता किसी न किसी रूप में समाज में जुड़ी हुई है।

"चित्रलेखा" के माध्यम से वर्माजी ने प्रेम के क्षेत्र में भी नवीन मान्यता स्थापित की है। इस क्षेत्र में उन्होंने व्यक्ति स्वातंत्र्य की मांग की है। बीजगुप्त के माध्यम से उन्होंने स्वच्छंद प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। बीजगुप्त स्वच्छंद प्रेम में विश्वास करता है और वह इसे विवाह से कम पवित्र नहीं मानता। "प्रेम एक दूसरे के भेदभाव नहीं देखता, प्रेम दो हृदयों की अभिलाषा का द्योतक है।" इसलिये लोक की दृष्टि में अविवाहित होते हुये भी वह अपने को विवाहित समझता है। वस्तुत: बीजगुप्त का प्रेम एकनिष्ठ और शाश्वत है।

प्रेम के क्षेत्रमें ही नहीं मानवता के क्षेत्र में भी वर्माजी ने बीजगुप्त का हृदय विशाल दिखलाया है। व्यक्ति-स्वातंत्र्यता वह अपने लिये ही नहीं चाहता, दूसरों को भी देता है। वह जानता कि प्रेम करने का जितना अधिकार उसे है, उतना ही श्वेतांक को है- दूसरों के सुख में बाधक होना-केवल अपने सुखों की आशा, कायरता नहीं नीचता है---- हमारे हिस्से में सुख दुख दोनों ही पड़े हैं- हमारा कर्तव्य है कि हम दोनों को ही साहस पूर्वक भोगें। अतएव बीजगुप्त जिस जीवन दर्शन को लेकर चलता है, वह अत्यंत स्वस्थ्य है। वह परिस्थितियों का दास नहीं है। परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने की भी सामर्थ्य रखता है। इसी स्वस्थ दृष्टिकोण का परिणाम है कि बीजगुप्त का

आचरण कभी उच्छृंखल नहीं होने पाता है। यहाँ पर वर्माजी का मानवतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित होता है।

सामाजिक व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये मानव ने अपने अनुभव से सुकर्म तथा कुकर्म का भेदभाव किया है। समाज द्वारा पतित एवं हेय कर्मों की गणना ही पाप में की जाती है। समाज के इन आदर्शों में विषमता भी है और अतिरंजना भी। सामाजिक दृष्टि से जो व्यक्ति पापी है वह दूसरी दृष्टि से देखने में महात्मा भी दिखलाई पड़ सकता है। किन्तु पाप-पुण्य का अर्थ इससे ऊपर होना चाहिए। यदि पुण्य का अर्थ उन कर्मों से लिया जाय जो मनुष्य शाश्वत सुख की उपलब्धि के लिए करता है तो इसके अन्तर्गत वे ही कर्म आयेंगे जिनके द्वारा वाह्य जगत एवं मानव की एकात्मकता सजग एवं सचेत हो, अर्थात् जिनके द्वारा व्यक्ति जीवन का लोक-जीवन में लय हो। इसके विपरीत कर्म ही पुण्य रहित अथवा पाप पूर्ण होंगे। यहाँ पाप शब्द नकारात्मक होगा। किसी हद तक "चित्रलेखा" हिन्दी में अपने ढंग का प्रथम उपन्यास है। संस्कारों के बंधन में जकड़ी हुई भावनाओं को नवीन दृष्टि से देखना, उनके वास्तविक मूल्यों को परखना तथा विचार एवं ज्ञान के प्रकाश में उनकी नवीन कलात्मक व्याख्या करना भी आज के कलाकार का एक कर्तव्य है।

वर्माजी ने कुमारगिरि की अपेक्षा बीजगुप्त में अधिक मानवता दिखलाई है। जिस तत्व की उपलब्धि कुमारगिरि को कठिन साधनों में नहीं हो सकी थी वही बीजगुप्त ने हृदय की साधना से उपलब्ध कर ली थी। उसका हृदय इतना विशाल था, उसमें इतनी उदारता थी कि वैभव के रस में डूबे रहने पर भी कमल-पत्र के-समान वह अछूता था। जिस विलासिता में वह जीवन भर आकंठ डूबा रहा समय आने पर उसे एकदम त्याग कर तनिक भी हिचकिचाहट महसूस नहीं करता। वह भोग करते हुये वह भोगों में बंधा नहीं है। वास्तव में मृत्युलोक ऐसे ही लोगों की स्पृहा करता है।

लेखक इस उपन्यास में नैतिकता के प्रश्न को व्यक्ति तक ही सीमित रखने का इच्छुक लगता है। श्वेतांक कुमारगिरि को पापी समझता है क्योंकि वह जीवन के नियमों के प्रतिकूल चल रहा है। विशाल देव बीजगुप्त को पापी समझता है क्योंकि उसका जीवन संसार के घृणित भोग विलास में बीतता है। पाप का यह मूल्यांकन सामाजिक लाभ हानि से पाप को नहीं जोड़ता है बल्कि वह केवल दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा

नाम है। पाप-पुण्य का संबंध मानवीय नैतिकता से यदि है तो नैतिकता की स्वीकृति का संबंध व्यक्ति की इच्छा और चेतना से है न तो उसके लिये कोई बाध्यता है और न ही सामान्य नियम।

इस रचना में लेखक का प्रतिपाद्य एक तो पाप-पुण्य संबंधी बंधी बंधाई परम्परागत धारणाओं का खण्डन करना है। संसार से विरक्त हुआ व्यक्तिगत मोक्ष कीसाधना करने वाला संयमी योगी पुण्यात्मा नहीं माना जा सकता, इसके विपरीत संसार के भोगों में डूबा हुआ विलासिता में रमा किन्तु परोपकारी और उदार बीजगुप्त पुण्यात्मा है पापी नहीं। पाप और पुण्य का निर्णय परम्परागत मान्यताओं के आधार पर दो टूक नहीं हो सकता। मनुष्य की परिस्थितियों के संदर्भ में ही पाप पुण्य का सही पता चल सकता है। इस प्रकार चित्रलेखा हिन्दी की एक विचारोत्तेजक रचना है। जिसमेंपरम्परागत जीवन मूल्यों को चुनौती दी गई है।

अनातोले फ्रैंस के उपन्यास थाया में जिसके कि प्रभाव में यह उपन्यास लिखा गया लेखक का लक्ष्य मात्र पाप पुण्य का चिंतन ही नहीं है, स्त्री की प्रतिष्ठा देना है। उपन्यास की नायिका चित्रलेखा ने अपने अस्तित्व को भक्तिभाव से पति में विलीन किया पर पति की मृत्यु के पश्चात् उसका जीवन अंधकारमय हो गया फिर उसके जीवन में एक व्यक्ति आया जिसके प्रेम में उसने आत्म विस्मरण का अनुभव किया उसके चले जाने के बाद चित्रलेखा परिस्थिति चक्र में नर्तकी बनी और बीजगुप्त उसके जीवन में आया, जिसके प्रेम में उसने मादकता पाई। तदन्तर योगी कुमारगिरि के आने उसे जीतने को प्रेरित किया, लेकिन अन्ततः उसने पाया कि सच्चा प्रेमी बीजगुप्त है और उसके सर्वस्व त्याग के क्षण वह भी उसके साथ हो जाती है। चित्रलेखा इस प्रकार चारित्रिक ऊँचाई पा जाती है। एकनिष्ठता से स्खलन नारी का अक्षम्य दोष नहीं रहता। नारी को गौरव देने के साथ ही यह उपन्यास ।योगी कुमारगिरि को भ्रष्ट और भोगी बीजगुप्त को महान रूप में उपस्थित कर। लोकोत्तर जीवन की साधना का तिरस्कार करता है। और पार्थिव जीवन के उपभोग को निवृत्ति के विरुद्ध प्रवृत्ति को श्लाघ्य प्रदर्शित करता है।

परम्परागत सुधारवादी प्रवृत्ति जिसकी स्थापना प्रेमचन्द्र ने की थी, युग की समस्याओंको सेते हुये पर्याप्त नहीं थी। "वस्तुतः चित्रलेखा आधुनिक युग की विविधमुखी समस्याओं का प्रतीक है। इस उपन्यास से उन नये मूल्यों के स्वर अधिक उभर कर आने लगे, जो अभी तक दबे थे और संस्कारों के बोझ से कराह रहे थे। वहीं नहीं चित्रलेखा उन अनेक

समाजिक समस्याओं की पूर्ति थी जो सेवा सदन, कर्मभूमि, रंगभूमि मे प्रेमचन्द द्वारा प्रस्तुत की गई थी। इसके अतिरिक्त उसमें दार्शनिक जीवन के खोखेलेपन का उद्घाटन भीथा जो समस्त भारतीय चेतना पर जाल-समानछाया हुआ था।

मनुष्य के प्रत्येक कर्म में अदृश्य का हाथ होने की बात कही जाती है पर बीजगुप्त और चित्रलेखा अपनी जीवन दशाओं के बारे में स्वतंत्र व्यक्तियों की तरह निर्णय लेते दिखाये गये हैं। मनुष्य को परिस्थितियों का दास और परिस्थिति चक्रको पूर्वजन्म के कर्मों का फल बताया गया है पर यह भी कहा गया है कि मनुष्य की विजय वहीं संभव है, जहां वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसके साथ चक्कर न खाये वरन् उपने कर्तव्या कर्तव्य का विचार रखते हुये उस पर विजय पाये और हम देखते है कि बीजगुप्त तथा चित्रलेखा परिस्थिति चक्रसे ऊपर उठ जाते हैं। कथा में भावुकतापूर्ण कहानी अंत के साथ भी उपन्यास मनुष्य जीवन में परिस्थिति चक्र को निर्णायक मानने के लेखक के विश्वास के बावजूद, मानव परक आस्था प्रगतिशीलता को स्थापित करता है। इसलिये सामाजिक चेतना विषयक एक ऐतिहासिक महत्त्व की कृति के रूप में इसका स्थान सुरक्षित है।

उपन्यास में कथा वस्तु चरित्र चित्रण, भाव प्रवणता ऐतिहासिक वातावरण की सजीवता, रोचक संवाद शैली, काव्यात्मक सुन्दर भाषा शैली उद्देश्य की महान सिद्धि आदि सभी तत्वों का सुन्दर सामन्जस्य है तथा प्रेम के उदात्त रूप का सुन्दर प्रकाशन हुआ है।

तीन वर्ष :-
------x----

"तीन वर्ष" सन् 1936 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भगवती बाबू ने समाज का आधुनिक रूप प्रस्तुत किया है। इसमें वह संसार चित्रित है जिसमें आज का मनुष्य जीवित है आधुनिक व्यवस्था ने मनुष्य के अंदर जो अर्थ पिपासा भर दी है उसने मानवीय जीवन में कैसी खरांस उत्पन्न कर दी है इस बात को यह उपन्यास सामने रखता है। आज स्त्री व पुरूषों के संबंध भावना पर आधारित न होकर आर्थिक सुविधाओं पर आधारित हो गये हैं। लेखक ने सामान्यत: समाज में प्रतिष्ठित नारियों की तुलना में वेश्याओं को श्रेष्ठ घोषित किया है जो एक क्रान्तिकारी प्रगतिशील कदम कहा जायेगा।

इस उपन्यास में विद्यार्थी-जीवन यूनिवर्सिटी कालेज की झलकियाँ बड़ी यथार्थ और मनोरम हैं। लेखक ने स्वयं यह जीवन बिताया है। फलत: उसके चित्रण और वर्णन

में सचाई है। एक प्रकार से "तीन वर्ष" अत्यधिक आधुनिक उपन्यास है जिसका विषय भारतीय समाज का एक ऐसा अंग है जो अभी अस्तित्व में आ ही रहा है। इतना ही नहीं वह एक ऐसा अंग है जिस पर पाश्चात्य सभ्यता का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। वर्माजी ने जिन दो प्रकार के चरित्रों के चित्रण को ध्येय बनाया है वे अपने आप में पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं और उनका अंकन भी बड़े कौशल से हुआ है।

प्रतिष्ठित वकील सर कृष्ण शंकर की लड़की प्रभा और वेश्या सरोज को तुलनात्मक स्तर पर प्रस्तुत करके भगवती बाबू ने व्यक्त किया है कि भद्र समाज की स्त्री जो विवाह को आर्थिक समझौता मानती है वह वेश्या का ही रूपान्तर है। वेश्यावृत्ति का आधार है पैसों के लिये शरीर बेचना। अत: भगवती बाबू उस स्त्री को भी वेश्या की ही श्रेणी में रखते हैं जो आर्थिक सुविधाओं और जीवन की आवश्यकताओं को विवाह की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शर्त मानती है। इसी आधार पर उपन्यास का नायक रमेश उपन्यास के अंत में प्रभा से कहता है-" तुम पुरुष का धन लेती हो पुरुष को अपना शरीर देने के बदले में, है न ऐसी बात, और यह वेश्यवृत्ति है प्रभा जी नमस्कार।"

"तीनवर्ष" की कहानी में लेखक यह सिद्ध करने में सफल हुआ है जो मात्र अपनी स्थिति के कारण उच्चवर्ग की महिला कही जाती है वास्तव में वेश्या है और सरोज जो वेश्या दिखलाई पड़ती है अपने हृदयसे वेश्या नहीं है। अपने उच्च गुणों के कारण सम्माननीय है। लेखक व्यक्ति का मूल्यांकन उसके बाहरी स्वरूप और परम्परागत अभिजात्यता के आधार पर न कर अपनी व्यक्तिगत विचारधारा के आधार पर करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में समस्या को और अधिक उभारने के लिए उन्होंने दो विपरीत स्तर और विरोधी प्रवृत्ति के पात्रों को रखा है। एक ओर अजित ऐसा पात्र है जो उच्च वर्ग का व्यक्ति है और देश-विदेश के बड़े से बड़े शहर, ऊँचे से ऊँचे समाज का जीवन उपभोग कर चुका है। दूसरी ओर रमेश ऐसा पात्र है जो निम्न मध्य वर्ग का व्यक्ति है और अभी-अभी गांव या छोटे शहर से शिक्षा प्राप्त करने के लिये बड़े शहर में आया है। वह अबोध है जिसका एक मात्र लक्ष्य विद्याध्ययन मात्र है। संसार के मनोरंजन व क्रीड़ाओं में जिसे कोई रूचि नहीं है। जब ये दोनों विरोधी संस्कार और सामाजिक स्तर के व्यक्ति परस्पर संपर्क में आते हैं तो बड़ी अजीब स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अजित रमेश में संसार के भोलेपन की उसकी सरलता और उसकी कोमलता की एक मूर्ति देखता है। हृदय की वह स्वच्छता देखता है जो सभ्यता वातावरण में लाख ढूंढने पर नहीं मिलती। और रमेश उच्च वर्ग के वातावरण में बरबस लिप

टता चला जाता है। उच्च वर्ग के जीवन को देख उसमें भी महत्त्वाकांक्षाएँ जाग्रत हो उठती हैं। फलत: वह अपनी वास्तविक स्थित को भूल कर अपनी परिधि को लांघकर उच्चवर्गीय जीवन में घुलमिल जानेका दुस्साहस करता है और अपने आचरण में वैसे ही रंगढ़ंग अपना लेता है। लेकिन जब उच्चवर्ग का अहं उससे टकराता है तो उसके विचार चूर-चूर हो जाते हैं, उसकी आस्था हिल उठती है। यह आघात रमेश को अजित द्वारा नहीं लगता प्रभा द्वारा लगता है जो कि अपने उच्च वर्ग की जीती जागती तस्वीर है। हास विलास ही उसका जीवन है, उसके लिये प्रेम खेल और मौज की वस्तु है।

अपनी परम्पराओं और मान्यताओं से बंधे हुये रमेश को जीवन के प्रति एक नये दृष्टिकोण का पता चलता है। अजित के माध्यम से एक उच्च वर्ग में प्रविष्ट होता है। सर कृष्ण शंकर की लड़की प्रभा के प्रति जो उसकी सहपाठिन है, रमेश आकर्षित हो जाता है। और अपने दरिद्रताको भूलकर उसे पानेका प्रयत्न करने लगता है। प्रेम के प्रति उसका दृ-ष्टिकोण आदर्शवादी है और वह आर्थिक विषमता को उसमें बाधक नहीं समझता। उसकी दृ-ष्टि में प्रेम ईश्वरीय है, दो आत्माओं का बंधन है। प्रेम अनादि है, प्रेम अनंत है, प्रेम ही मनुष्य का प्राण है। रमेश विवाह का प्रस्ताव लेकर जब प्रभा के पास जाता है तब उसे यह जानकर भयानक आघात होता है कि प्रभा के लिए विवाहमात्र एक आर्थिक समझौता है। वह उत्तर देती है-"मै तो विवाह को एक संस्था मानती हूँ। जिसके द्वारा पुरूष स्त्री के भरण पोषण तथा उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है।" और निर्धन रमेश को यह कहकर ठुकरा देती है कि विवाह को मैं स्त्री व पुरुष के बीच में आर्थिक संबंध के रूप में मानती हूँ। यह सुनकर विशुद्ध प्रेम के संबंध में रमेश की जो सात्त्विक धारण थी, वह चूर-चूर हो जाती है और वह अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठता है।

आशा के विपरीत जब रमेश प्रभा से अपमानित होता है तो उसका सारा उन्माद दूर हो जाता है। रमेश की इस मानसिक प्रतिक्रिया और इससे उत्पन्न असंतुलित आचरण का लेखक नेबड़ा सफल चित्रण किया है।" तीनवर्ष' का यह स्थल सबसे अधिक सजीव है। प्रभा की ओर से निराश होकर उसे अजित कर क्रोध आता है। जिसने उसे नये वातावरण में डाल कर उसका अभ्यस्त बना दिया। वह अजित की जेब से पिस्तौल निकाल कर उसे मारने के लिये झपट पड़ता है और कर्कश स्वर में कहता है-" जानते हो अजित, तुमने मेरे विश्वासों को चूर-चूर कर दिया, मेरी आत्मा का तुमने गला घोंट दिया-यह सब तुमने किया।"

रमेश को अनुभव होता है प्रत्येक व्यक्ति को पैसेवालों की गुलामी करनी पड़ती है। दुनियां में पैसे का ही साम्राज्य है और वह अपने अतीत को भुलाने के लिये अपने को पतित करना चाहता है। शराब पीने लगता है और पशुवत आचरण करने के लिये बाध्य हो जाता है। प्रेम पर से उसका विश्वास उठ जाता है। जब सरोज उससे कहती है कि वह उससे प्रेम करती है तो वह जीवन की कटुता से परिपूर्ण उपहास करता है- प्रेम। सरोज दुनियाँ में प्रेम कहां? जो कुछ है वह पैसा है। पैसा सब कुछ खरीद सकता है मनुष्य की आत्मा तक।

वस्तुत: "तीनवर्ष" उपन्यास में युग सत्य की झांकी मिलती है। पूँजीवादी सभ्यता में पैसा ही सब कुछ है और ऐसे वातावरण में पड़कर व्यक्ति पथ-भ्रष्ट हो जाता है, यहां यह स्पष्ट चित्रित है। रमेश अपनी मानसिक प्रतिक्रिया के लिए स्वयं कहाता है कि मैं शराब इसलिये पीता हूँ कि जिससे अपने को भूल सकूँ, अपनी बेहोशी में संसार को डुबा

सकूं, खुद नरक का कीड़ा बन सकूं।= परिस्थितियोंवश लज्जाशील किताबी कीड़ा रमेश एक दम दानव बन बैठता है। विचार होता था कि अब वह शांति और सान्त्वना प्राप्त करेगा- परन्तु नहीं, वह अब भी उद्विग्न और अशान्त हैं और "प्रभा" को धनलुब्ध होने के कारण भला-बुरा कहने का लोभ संवरण नहीं कर सकता।

भगवती बाबू के कुछ परवर्ती उपन्यासों में विचार मंथन ऊपर से थोपा हुआ लगता है जो कथानक से संयुक्त नहीं हो पाता, बल्कि नीरस वाद-विवाद के रूप में ही रह जाता है। "तीनवर्ष" इस दोष से मुक्त है। लेखक के विचार विश्वविद्यालय के छात्रों की स्वाभाविक बहस के दौरान सामने आते हैं। आधुनिक युग की आधुनिक शिक्षा को ही कोसते हुये लेखक नहीं बैठा रहता। उन्होंने अन्य उपन्यासकारों की भाँति पाश्चात्य सभ्यता पर प्रहार करने में ही अपनी प्रतिभा का अपव्यय नहीं किया बल्कि उन्होंने भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले एक सीधे सादे ग्रामीण विद्यार्थी की वास्तविक स्थिति को तटस्थ रूप में चित्रित करने काप्रयत्न किया है।

उपन्यास के दूसरे खण्ड में लेखक वेश्या समस्या को चित्रित करना चाहता है। [रा]जनारायण सिंह ने लिखा है। इस प्रकार "तीन वर्ष" के कथानक में वर्मा जी के स्पष्टत: [ती]न मूल उद्देश्य प्रतीत होते हैं-

1- पैसे की सर्वव्यापी शक्ति ।

2- प्रेम का वास्तविक रूप ।

3- वेश्या सुधार की समस्या ।

जिस समस्या को लेकर वर्मा जी ने "तीन वर्ष" की रचना की, वह है-प्रेम का स्वरूप और विवाह से उसका संबंध। प्रेम के क्षेत्र में रमेश को इतनी निराशा हुई कि वह अपना संतुलन खो बैठा और उन्मादावस्था की ओर बढ़ने लगा। उसकी अनुभूतियों की समस्त पीड़ा उसके चेतन मानस से निकल कर अचेतन मन में धंसने लगी। इस अवस्था में यदि लेखक उसे कानपुर न ले जाता तो वह पागलखाने या जेल में पड़ा सड़ता। इसी लिये निर्माण हुआ-विनोद और उसके आवारा साथियों का। जो दिन भर शराब पीकर लेटे रहते, रमेश इस नये समाज में ही खप सकता था। इस समाज के साथ ही रचना हुई सरोज की जो वेश्या होने पर भी रमेश की पूजा करती थी उसे देवता की तरह मानती थी। सरोज ने जिसे रमेश वेश्या ही मानता रहा, अपने प्राणों की आहुति देकर वह सिद्ध कर दिया कि उसका प्रेम रूपयों का गुलाम नहीं। यही तो वर्मा जी की प्रगतिशील चेतना है जो अपने उपन्यासों में अप्रत्यक्ष रूप से वर्णित करते हैं। वास्तव में लेखक का मूल उद्देश्य युग सत्य को अभिव्यक्त करना है। इस उपन्यास में वर्मा जी ने गांधीवाद, मार्क्सवाद, लेनिनवाद, पूँजी की शक्ति का विश्लेषण व्यक्तिवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया है

:- टेढ़े मेढ़े रास्ते :-

-------x-------

सन् 1946 में प्रकाशित "टेढ़े मेढ़े रास्ते" भगवती बाबू का विशुद्ध राजनैतिक उपन्यास है। हिन्दी में कोई ऐसा उपन्यास नहीं जिसमें विभिन्न राजनैतिक वादों, विचार-धाराओं तथा राष्ट्रीय हलचलों को ही कथानक बनाया गया हो। टेढ़े मेढ़े रास्ते में केवल "क्रास-एक्जामिनेशन" है। बिना किसी वाद विशेष की ओर झुके लेखक एक परिवार के कुछ सदस्यों के माध्यम से सन् 1930 के आसपास के भारतीय परिवेश को उपन्यास में समेटता है। वर्मा जी ने तत्कालीन प्रत्येक राजनैतिक दल की नस को पहचाना है। इसी लिये वे उनकी गतिविधियों और कार्यक्रमो का इतना सच्चा अंकन कर सके हैं जैसे उनमें उन्हों भाग लिया हो जबकि वर्मा जी राजनीति से हमेशा अलग रहे।

उपन्यास के संबंध में भगवती बाबू ने स्वयं लिखा है "वह युग प्रगतिशील साहित्य के उफान का था। समाजवादी विचारधारा एक दल विशेष में केन्द्रित होकर अपने को देश पर आरोपित कर रही थी। इन विचार-धाराओं को टेढ़े मेढ़े रास्ते में गांधीवादी विचारधा का प्रतिपादन दीखता था, यद्यपि सही अर्थों में उसमें किसी भी विचारधारा का प्रतिपादन

नहीं था, वह तो उस काल में प्रचलित सभी विचारधाराओं के परिवेश में मानवीय संवेदना एवं मानवता का आरोपण भर था। यह उपन्यास 1930 के सत्याग्रह आन्दोलन के वातावरण को अपनाकर चला है। बड़े बड़े संवादों के द्वारा विभिन्न दलों के दृष्टिकोणों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

इस उपन्यास में एक परिवार की विफलता की कहानी है। पण्डित रामनाथ तिवारी अवध के राजभक्त ताल्लुकेदार एवं आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं। ब्रिटिश शासन में उनकी निष्ठा है, क्योंकि वह उनके वर्ग के हितों का पोषण करता है। "योग्यतम ही जीवित रहता है" सिद्धान्त के वह पक्के समर्थक हैं। अंग्रेज सरकार और अपने हितों को एक ही समझते हैं और यही चाहते हैं कि अंग्रेज सरकार भारत में हमेशा कायम रहे। वे शक्ति में विश्वास करते हैं और उनका अहंकार इतना प्रबल है कि वे किसी भी अवस्था में भी किसी के सम्मुख विनत होने को अपनी पराजय समझते हैं। विधि की विडम्बना से इनके तीनों पुत्रों ने टेढ़े मेढ़े मार्गों को ही अपनाया है। बड़े लड़के दयानाथ को कांग्रेस का सक्रिय सदस्य होने के कारण उन्होंने सदा के लिये त्याग दिया। रामनाथ उसे सलाह देते हैं कि वह कांग्रेस छोड़ दे किन्तु दयानाथ अपने सिद्धान्तों पर आस्था प्रकट करता है तब वे उसे अपना विरोधी कह कर घर से निकाल देते हैं।

रामनाथ का मंझला लड़का उमानाथ कम्युनिस्ट है और जर्मनी से पढ़कर साम्यवादी बन कर लौटा है। वह भारतवर्ष में साम्यवादी आन्दोलन की सम्भावनाओं का सर्वेक्षण करता है और कानपुर में दयानाथ के यहाँ रहकर साम्यवाद के प्रचार की भूमि तैयार करता है। उनका छोटा लड़का प्रभानाथ वीणा नामक युवती के साथ क्रान्तिकारियों के दल में शामिल हो जाता है। अपने पिता के ही स्कूल में वह वीणा को हेडमास्टरी दिलवाकर कलकत्ता से उन्नाव बुलवा लेता है। यह प्रभानाथ डाका डालने लगता है। डाका व हत्या के अभियोग में यह पकड़ा जाता है। श्यामनाथ जो कि प्रभानाथ का चाचा है उसे मुखबिर बनने के लिये राजी कर लेता है किन्तु रामनाथ के स्वाभिमान को यह स्वीकार नहीं होता है और उन्होंने जेल में जाकर उसे कर्तव्यबुद्धि दी। जेल की भेंट में रामनाथ तिवारी उसे अपने सिद्धान्त पर अटल रहने की प्रेरणा दे देते हैं। अपनी प्रेमिका और सहकारिणी वीणा से विष प्राप्त कर प्रभानाथ ने जेल में ही आत्म हत्या कर ली। श्यामनाथ इस झटके को सहन नहीं कर पाते हैं और पागल हो जाते हैं।

दयानाथ कांग्रेस के सभापति पद के लिये चुनाव लड़ता है जिसमें वह हार जाता है। हार को वह अपने त्याग का अपमान समझता है। अतः कांग्रेस छोड़ देने का निर्णय लेकर वह अपने

पिता के पास पहुँचता है परन्तु पण्डित रामनाथ उससे कहते है कि एक बार व्यक्तिको आगे बढ़कर पीछे नहीं लौटना चाहिये और उसे वे एक बार त्याग चुके हैं अत: वापिस अपने घर में स्वीकार नहीं करेंगे।

पंडित रामनाथ तिवारी अपने अश्रु को छिपाये घर में अकेले रह जाते हैं और अंत में रामनाथ तिवारी अपने आप कहीकह उठते हैं-" सब कुछ समाप्त हो गया कोई नहीं बच गये। अकेले तुम प्रेत की तरह मौजूद हो रामनाथ।

उमानाथ के बचे अवशेष को छाती से चिपकाते हुये उन्होंने कहा- बेटा, इस बूढ़े का साथ मत छोड़ना।

यह उपन्यास वास्तव में अपनी समग्रता में प्रतिवाद को अंत: सलिला की तरह छिपाये हुये है। समस्त राजनीतिक वाद-विवाद और हलचलें देश के एक विशिष्ट समय को सामने रखने के लिए चित्रित हुई हैं। अत: "टेढ़े मेढ़े रास्ते" में सबसे अधिक गहनता रोचकता और व्यापकता है किन्तु इसके कथानक में कसावट की कमी है।
वार्तालाप और परिस्थितियों तथा सिद्धान्तों के विश्लेषण का मोह लेखक को दिग्भ्रमित कर देता है और वह मूलधारा को छोड़कर बीच-बीच में इधर-उधर बहने लगता है। फिर भी यह उपन्यास हिन्दी की एक अनूठी कृति है क्योंकि इसमें समाजवादी विचारधारा का सुन्दर परिपाक हुआ है जैसा कि अन्य परवर्ती उपन्यासों में नहीं दीखता है। उमानाथ का अपनी पत्नी से वार्तालाप समाजवाद पर आधारित है-" उमानाथ मुस्कराया "देखो हिल्डा क्रोध की कोई आवश्यकता नहीं इसके पहले हम लोगों को अपने अधिकारों को समझ लेना पड़ेगा। समाजवाद के मत में स्त्री और पुरुष समान है, किसी का किसी के ऊपर कोई अधिकार नहीं कोई किसी का स्वामी नहीं------- पति और पत्नी का विवाह विच्छेद किसी भी समय किसी की इच्छा से हो सकता है।

हिल्डा उमानाथ के तर्कोंका खण्डन नहीं करती है लेकिन उसके अंदर वाला समाजवादी मन जिसने कार्ल-मार्क्स का अध्ययन किया था जो दूषित मार्ग पर जाते हुये समाज का उद्धार करने के लिये कार्यक्षेत्र में कूद पड़ी थी। जिसने दुनिया के भोग विलास को ठुकरा दिया था, जो सिद्धान्त के नशे में सराबोर थी, वह समाजवादी हिल्डा इस तर्क का विरोध नहीं कर सकती थी। इस संदर्भ में मिसेज सिम की बिल्ली और मारीसन वाला काण्ड भी महत्त्वपूर्ण है। मिसेज सिम को लिखा मारीसन का पत्र इस उद्देश्य की पूर्ति करता है,

"इस ख्याल से कि आपकी बिल्ली मरेगी आप बेहोश हो गईं। इससे मुझे बहुत दुख हुआ और इससे भी अधिक दुख इस बात से हुआ कि आपकी नजर के सामने ही हजारों आदमी भूखे प्यासे तड़पते हैं और आप उनपर ध्यान भी नहीं देतीं जब कि एक जानवर पर आपकी इतनी ममता है........।

वर्माजी की उपन्यास कला की यह खूबी है कि जब कथानक का प्रवाह थम जाता है, तब वे आकस्मिक घटनाओं का नियोजन कर उसमें तीव्रता ला देते हैं। प्रभानाथ के जीवन में, प्रकारान्तर से उपन्यास के चित्रपट पर एक ऐसी सनसनी पूर्ण घटना अकस्मात् हो उठती है जिससे प्रभानाथ को जीवन दिशा निश्चित हो जाती है अथवा उसका निष्क्रिय जीवन सक्रिय हो जाता है और इस प्रकार कथा को एक नई गति मिलती है। वह घटना है- वीणा का एकाएक उसके सम्पर्क में आ जाना-एक विचित्र संयोग के साथ और उसने देखा कि उसकी मोटर के पास करीब पाँच गज की दूरी पर एक युवती पिस्तौल ताने खड़ी है। कार की स्पीड तेज न थी। प्रभानाथ ने कार रोक दी। युवती ने झपट कर कार की बायीं ओर वाला दरवाजा खोला और वह प्रभानाथ की बगल में बैठ गई। उसके दाहिने हाथ वाली पिस्तौल की नली प्रभानाथ की पसलियों से लगी थी। इस प्रभावशाली क्रांतिकारी नारी वीणा का संपर्क प्रभानाथ को सच्चा क्रांतिकारी बना देता है।

"टेढ़े मेढ़े रास्ते" में वर्माजी ने पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व बड़ी खूबी से उभारा है। प्रत्येक पात्र के सम्मुख ऐसे अवसर आते हैं कि उन्हें एक को अपनाना और दूसरे को छोड़ना आवश्यक हो जाता है। तब उनके व्यक्तित्व और बाह्य परिस्थिति के टकराव स्वरूप जो निर्णय होता है वह कितना मनोवैज्ञानिक हो उठता है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। पुत्रों की गतिविधियों और विशिष्ट सिद्धान्तवादी विचारधारा रामनाथ के अजेय व्यक्तित्व को कितनी ही बार छिन्न-भिन्न करने को होती है। वे अपने मानसिक द्वन्द्व से तड़प उठते हैं। भावना और तर्क के संघर्षकाल की बदलती हुई मनोदशा के विभिन्न रंगो का वर्माजी ने बड़ी सूक्ष्मता से अंकन किया है। कांग्रेस के लिये जब दयानाथ घर और पैतृक-सम्पत्ति को छोड़कर चला जाता है तो एक बार रामनाथ मर्माहत हो उठते हैं। एक बारगी भावना उनकी अहंमन्यता पर हावी हो उठती है रामनाथ ने तनिक जोर से कहा, स्वयं अपने से गया मुझे छोड़कर, रुपया पैसा जमीन सब कुछ छोड़कर सिर्फ एक हट, एक पागलपन। उफ। मेरा लड़का मुझसे ही लड़ने जा रहा है। और वे कमरे में टहलने लगे।

प्रस्तुत उपन्यास के रामनाथ प्रमुख नायक है इन्हें हम वर्ग-प्रतिनिधि कह सकते हैं

रामनाथ उखड़ती हुई सामन्तवादी व्यवस्था का एक अडिग सदस्य है जो परिस्थितियों के थपेड़ों में पड़कर भी अपने विश्वासों को दृढ़ रखता है। रामनाथ में सामंतीय संस्कारों की जड़ें-गहरी तथा मजबूत हैं। भारतीय रईसों का चित्र रामनाथ के चरित्र में सजीव हो उठा है। इस वर्ग की जो मूल विशेषता है-आत्माभिमान और अहम्मन्यता, उन सबसे रामनाथ का चरित्र ओतप्रोत है। वे सबको झुकाना चाहते हैं, झुकना उनके स्वभाव के प्रतिकूल है। उनके तीनों पुत्र नवयुग की नवीन चेतना से युक्त हैं। परन्तु रामनाथ इन नई रोशनी के युवकों को भी अपने सम्मुख झुकाना चाहते हैं। फलस्वरूप पिता और पुत्रों में संघर्ष होता है। पुत्रों को भी आत्माभिमान और अहंमन्यता परंपरागत रूप से मिले हैं, वह झुकना नहीं जानते हैं।

विचार शील मनुष्य में अहंभाव की प्रबलता उसे हठवादी बना देती है। और वह अपनी कुछ गलत सही धारणाओं पर इतना विश्वास कर उठता है कि उसमें परिस्थितियों के अनुकूल मोड़ लेने की शक्ति ही नहीं रह जाती। चूंकि परिस्थितियाँ परिवर्तन की अपेक्षा रखती हैं। अतएव वे ऐसे व्यक्ति को अंत में तोड़ डालती हैं। रामनाथ तिवारी के साथ यही हुआ। समय बदल रहा है, विश्वास बदल रहे हैं, परन्तु रामनाथ तिवारी के विश्वासों में परिवर्तन नहीं होता है-- हाँ समय बदल रहा है, दुनियां बदल रही है यह अराजकता, यह यह एक दूसरे पर अविश्वास, यह दुराग्रह इन सबसे हमारा कल्याण नहीं हो सकता। यही विश्वास उनसे सब कुछ छीन लेता है अपने लड़कों को कुर्बान करके भी वे संसार को जीतना चाहते हैं। अंत में उन्हें हम विक्षिप्तावस्था में ही पाते हैं।

वर्माजी ने झगडू मिश्र के चरित्रोद्घाटन से मानवता की आवाज को सामने रखा है। ईश्वर, भाग्य और कर्मकाण्ड पर विश्वास करने वाले झगडू मिश्र बड़े दयालु और निर्मल हृदय के व्यक्ति हैं। असत्य, अन्याय और उत्पीड़न के वे विरोधी हैं। जो काम दयानाथ, मार्कण्डेय उमानाथ नहीं कर पाते हैं वही झगडू मिश्र करजाते हैं। झगडू मिश्र के पास न कोई सिद्धान्त है, न कोई मताग्रह, केवल वे एक सरल हृदय मानव हैं। अत्याचार और उत्पीड़न को देख वे मनमोहन से कहते हैं ---

"सुनेव मनमोहन। यू अत्याचार दिन-दिन बढ़त जातहै। अब हमारे सामने सवाल यूं है कि ई सबको उत्तर कौनी तरह दीन्ह जाय। तौन महात्मागांधी "अहिंसा चिल्लाय रहे हैं, और हम कहित हैं अहिंसा कायरता आय। अत्याचार का विरोध करने के लिये वे गांव में संगठन करते हैं, किन्तु हिंसा का सहारा नहीं लेते हैं, यह जानते हुये भी कि हिंसा का सहारा लेकर अत्याचार और अन्याय का मुँह तोड़ उत्तर दे सकते हैं। कई बार उनके मन में हिंसा को भड़काने की

के कारण वे ऐसा नहीं कर पाते है, वरन् हिंसा को रोकने के लिये अपने प्राणों का बलिदान कर देते हैं।

नारी पात्रों में वर्मा जी ने महालक्ष्मी और राजेश्वरी के व्यक्तित्व में कोई नवीनता नहीं दिखलाई है। वे ऐसी भारतीय नारी हैं जिनके पास इच्छा नाम की कोई चीज नहीं, पति ही जिनका भाग्य-विधाताहै। इसके विपरीत वर्मा जी आधुनिक प्रगतिवादी नारी का चित्र उभारने में चूके नहीं है। वीणा प्रतिभा ऐसी नारियां हैं जिनमें स्त्री-सुलभ मूक, विरही भावनायें बहुत न्यून मात्रा में है। पहले पहले जब प्रभानाथ का साक्षात्कार वीणा से एक विचित्र परिस्थिति में होता है, तो वह चौंक उठता है, उसके कुल समाज में स्त्रियां कोमल, परतंत्र तथा विवश होती थीं, वे ममता की मूर्ति थीं, उनकी मुस्कराहट में करुणा थी, उनके जीवन में त्याग था..... परन्तु स्त्री के उस रूप को जिसे उसने उस दिन देखा था, उसने पहले कभी नहीं जाना था...... यह करुणा और विलासिता की मूर्ति नारी-यह प्राणों पर खेलने कैसे चली आई..... नारी मिटना जनती है, मरना जानती है, पर वह मारना कब से जान गई, वर्मा जी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि आधुनिक युग में नारी बहुत आगे बढ़ गयी है। वीणा वह काम कर दिखाती है जिसे पुरुष वर्ग नहीं कर सका, जिसे सत्ता धारी नहीं कर सके।

राजनैतिक आन्दोलनों के विकास में यह उपन्यास सबसे अधिक सफल रहा है। यों प्रेमचंद ने भी अपने उपन्यासों में राजनीतिक समस्यायें उठाई हैं पर उन्हें उपन्यासों में प्रमुखता नहीं प्राप्त हुई है बल्कि वे सभी उनके द्वारा प्रस्तुत की गई सामाजिक समस्याओं की अंग भर थीं। यशपाल ने अवश्य अपने उपन्यासों में राजनैतिक समस्याओं का चित्रण किया है पर वे अपने विशिष्टवाद के आधार पर ही निष्कर्ष निकालते हैं जबकि "टेढ़े मेढ़े रास्ते" में बिना किसी वाद-विशेष की ओर झुके लेखक एक परिवार के कुछ सदस्यों द्वारा 1930 के आसपास के भारतीय परिवेश को उपन्यास में समेटता है। तद्युगीन समाज में जहाँ एक ओर सामन्तवर्ग का उत्पीड़क समुदाय था, वहाँ इसके नवयुवक समाज में एक ऐसा वर्ग भी उत्पन्न हो रहा था जो अपने वर्ग के शोषण और अत्याचार को हेय समझता था, और इसके प्रायश्चित के रूप में वह इस उत्पीड़न और अन्याय को मिटाने के लिये कमर बांध कर जुटा हुआ था। टेढ़े मेढ़े रास्ते" में उमा, प्रभादया पात्र इसी वर्ग के हैं। "टेढ़े मेढ़े रास्ते" अपने युग का एक सफल राजनैतिक उपन्यास है।

इस उपन्यास में विश्वम्भर मार्क्सवाद का पोषक है। भारतीय प्रगति और परिवर्तन के लिये विश्वम्भर साहित्य के द्वारा मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रचार का आकांक्षी है-- हममेंवास्तव में प्रगति का अभाव है और समय से बहुत पिछड़े हुये हैं, हममें परिवर्तन की आकांक्षा है हमें जीवन पर अपने दृष्टिकोण को बदलना चाहिये। और इसी लिये मैं तो इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हमारे साहित्यकारों को मार्क्स का अध्ययन करना चाहिये। विश्वम्भर मध्यवर्गीय लेखक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है और प्रगतिशील लेखक संघ की स्थपना का प्रतीक है।

इस उपन्यास में गांधीवादी चेतना और गांधी कीअहिंसात्मक नीति के समर्थक झगड़ू मिश्र का लड़का मार्कण्डेय अपने पिता को समझाता है-- यह सब कितना गलत है, आप लोग हिंसा की शरण ले रहे हैं। क्या यह आपको शोभा देता है आप एकाएक अपना कर्तव्य क्यों भूल गये। पुत्र द्वारा सचेत किये जाने पर झगड़ू मिश्र गांव के उत्तेजित वर्ग को शान्त करने का प्रयत्न करते हैं। और भीड़ के आकस्मिक प्रहार से रामनाथ तिवारी को बचाते हुये अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं। झगड़ूमिश्रा का यह बलिदान महात्मा गांधी की अहिंसात्मक नीति में अटूट विश्वास का प्रतीक है मार्कण्डेय का कथन देखिये- अहिंसा की प्रतिक्रिया अहिंसा की प्रतिक्रिया अहिंसा ही हो सकती है और इस तरह अहिंसा कभी भी नष्ट नहीं हो सकती। मार्कण्डेय व्यक्ति को नहीं सम्पूर्ण समाज को अहिंसात्मक बनाना चाहता है। अहिंसा काल्याणकारी तभी हो सकती है जब वह व्यक्ति से ऊपर उठकर समाज की चीज बन जाय।

इस उपन्यास के अधिकांश पात्र प्रगतिके पथ पर अग्रसर हैं। मध्यवर्गीय शिक्षित नारी कितनी साहसी और कर्मठ हो सकती है इसके उदहरण वीणा और प्रतिभा हैं। मनमोहन तथा उमानाथ वर्ग संघर्ष की चेतना को प्रस्तुत करते हैं और वर्ग रहित समाज के आकांक्षी हैं। मनमोहन साम्राज्य विरोधी हैं और उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग का भेद मिटाना चाहता है और इस विषमता को मिटाने का सतत् प्रयास करता हैम

आखिरी दाँव :-
---x-----x---

1950 में प्रकाशित"आखिरी दाँव" उपन्यास में पूंजीवादी युग में पनपती अर्थ पिपासा पर काफी चर्चा है। इसमें वर्माजी ने नितान्तनयेक्षेत्र में पदार्पण किया है। कई स्थलों पर लेखक आधुनिक युग के सामाजिक मसलों विशेषकर स्त्री पुरुष संबंध की नैतिकता की समस्या से उलझा दिखाई पड़ता है। यह अजीब बात है कि भगवती बाबू

ने अपने साहित्य में महाजनी सभ्यता के विरोध में काफी कुछ कहा है, इस सभ्यता के प्रति अपनी घृणा को उन्होंने अत्यंत तीखा बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है-- इस गम्भीर प्रश्न को वे अपने साहित्य में युगीन समस्या बनाकर प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। अपने नाटक "रूपया तुम्हें खा गया" में भी इन्होंने इसी संकट को प्रस्तुत किया है। किन्तु उसमें भी यह संकटअंत में एक व्यक्ति के जीवन की घटना मात्र बनकर रह गया है। अर्थ-पिशाच के चंगुल में फंसे हुए पात्रों को कठघरे में खड़ा कर अथवा पश्चाताप से युक्त चित्रित करना उनका मुख्य उद्देश्य रहा है। इस उपन्यास में सामाजिक यथार्थ का सुन्दर चित्रण हुआ है। वर्माजी के उपन्यासों में जो बात हमें सर्वाधिक प्रभावित करती है, वह है उनका अत्यधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण। उन्होंने केवल जीवन के चित्र दिये हैं, अच्छा बुरा कहने का प्रयत्न नहीं किया है। छोटे-छोटे व्यंजक ब्यौरों के द्वारा वातावरण निर्माण में वर्मा जी को बड़ी सफलता मिली है।

कथा नायक रामेश्वर अपनी पैतृक सम्पति जुये में हार कर बंबई चला आया है। दूसरे परिच्छेद में नायिका चमेली अपने पति के अत्याचारों से ऊब कर अपने गहने आदि लेकर एक युवक के साथ बंबई भाग आई है। इस दूसरे परिच्छेद का अंत इस वाक्य से होता है-- और रतनू के साथ चमेली एक अदृश्य में कूद पड़ी। बंबई में रतनू चमेली को धोखा दे देता है। अपनी भूमि से उजड़े हुये वह दो व्यक्ति एक दूसरे का सहारा बनने का प्रयास करते हैं। एक दिन चमेली बड़े संकट में थी रामेश्वर से उसकी भेंट होती है और वह उसे अपने घर ले आता है। रामेश्वर बड़ा ही सहृदय व्यक्ति है और उसी सज्जनता पर रीझ कर चमेली इस अधेड़ अवस्था वाले पुरूष से प्रेम करने लगती है और आनंद से उसकी थोड़ी आय में दोनों का जीवन व्यतीत होने लगता है।

चमेली के जीवन में सेठ शिवकुमार व राधा का आना एक मोड़ उत्पन्न करता है। राधा का सुविधापूर्ण जीवन चमेली के अन्दर पैसों की तृष्णा को जन्म देता है। यह तृष्णा संक्रमणशील होकर रामेश्वर को भी बहकाती है। वह सट्टा खेलता है अपने सेठ के चार हजार रूपये उसमें हार जाता है जिससे रामेश्वर बड़ा व्यग्र है। एक प्रकार रामेश्वर के लिये ही चमेली सेठ की शरण में जाती है, धीरे-धीरे उसके चंगुल में फंसती ही चली जाती है। वह एक सफल अभिनेत्री के रूप में प्रसिद्ध होती है और न चाहते हुये भी फिल्मी जीवन के पंक में बुरी तरह फंस जाती है चमेली अपनी स्थिति रामेश्वर से कहती है। रामेश्वर की सरल ग्रामीण आत्मा को लगता है कि पैसा ही संसार में बड़ी चीज है और उसे किसी तरह प्राप्त करना चाहिये चाहे उसके लिये शरीर और आत्मा ही क्यों न बेचना पड़े। अपने निश्चय को वह कार्य

रूप में परिणत करने के लिये रघुनाथ दादा का तबेला खरीदता है। और तबेले की आड़ में शराब बेचना, जुआ खिलवाने का कार्य करता है।

चमेली धीरे-धीरे फिल्म स्टूडियों की मैनेजिंग डाइरेक्टर और शेयर होल्डर भी बन जाती है किन्तु आत्मा की शांति नहीं मिलती है और वह निरंतर प्रयास करती है कि वह और रामेश्वर अपने धंधे छोड़कर केवल एक दूसरे के होकर शांत जीवन बितायें चमेली, सेठ शिव-कुमार की वासना-तृप्ति का साधन तो थी ही। सेठ उसके द्वारा दूसरे युवक को फंसाकर अपनी आर्थिक स्थिति ठीक करना चाहता है। रामेश्वर इस दूसरे सेठ को बड़ा आतंकित कर देता है। यह सेठशीतल प्रसाद रामेश्वर को अपने मार्ग से अलग कर देने के लिये उसके जुये के अड्डे की सूचना पुलिस को दे देता है। चमेली उसकी गोली मार कर हत्या कर देती है और रामेश्वर को सूचना देने तबेले पहुँचती है कि पुलिस आ रही है अत: वह अपना बचाव करे, पर रामेश्वर पागलों की तरह जुआ खेलता है। जब वह अपना आखिरी दांव चलता है तभी पुलिस आ जाती है। चमेली दूसरे कमरे में गिरफ्तारी होने के भय से आत्महत्या कर लेती है। रामेश्वर निराश भाव से आत्म-समर्पण करके पुलिस सर्जेन्ट से कहता है लेचलिये सर्जेन्ट साहब, आज मै जिंदगी का अखिरी दांव हार चुका हूँ, ले चलिये।

इस उपन्यास में सामाजिक यथार्थ का सुन्दर चित्रण हुआ है। बंबई का फिल्मी जीवन, वहां के कलाकारों की मनोवृत्ति, वासना-तृप्ति के लिये सेठों के हथकंडे, शराब जुआ आदि का अवैध व्यापार आदि का बड़ा ही यथार्थ चित्रण किया गया। रामेश्वर के कठोर व्यक्तित्व के भीतर उसकी सहृदयता, कोमलता एवं प्रेम कातरता आदि को चित्रित करने में वर्मा जी पर्याप्त सफल रहे हैं। इसमें जीवन के प्रति बड़ा ही तटस्थ दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। ग्रामीण युवती चमेली में बंबई में आकर जिस रूप में परिवर्तन होता है वह अवश्य थोड़ा असाधारण लगता है किन्तु परिस्थितियां मनुष्य में अभूतपूर्व परिवर्तन की क्षमता रखती हैं।

वर्मा जी के उपन्यासों में जो बात हमें सर्वाधिक प्रभावित करती है वह है उनका अत्यधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण। उन्होंने केवल जीवन के चित्र दिये हैं, अच्छा या बुरा कहने का प्रयत्न कम किया है। कथानक में एक व्यक्ति जीवन के उतार-चढ़ाव को व्यक्त करने की उत्सुकताहै। वह उत्सुकता इतनी तीव्र है कि जिस अर्थ-लोलुप संसार को लेखक विशदता से कहानी में अंकित करता है कि उसका प्रभाव मंद पड़ जाता है। पूँजीवादी विकृत व्यवस्था से लेखक पहले घृणा के भाव से देता है- " शिवलाल लखपति था, लेकिन वह लखपति बना था अपने उचक्केपन से। जाल, फरेब, झूठ, बेईमानी इन सब गुणों में वह पारंगत था। समाज में

वह बड़ा शरीफ गिना जाता था। उसके दो मकान थे, कपड़े की एक दूकान थी। सभा सोसाईटियों में वह सदा आगे रहता था। और रात के समय वह शराब पीता था, वेश्यागमन करता था, जुआ खेलता था।

छोटे-छोटे व्यंजकों व्यौरों के द्वारा वातावरण निर्माण में वर्मा जी को काफी सफलता मिली है। पैसा कमाने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के प्रति लेखक की कटुता उपन्यासों के कई स्थलों पर दीखती है--" इस बंबई नगर में सभी रूपया पैदा कर रहे है शरीर बेचकर, आत्मा बेचकर। जो शरीर बेचकर रूपया पैदा नहीं कर रहें वह आत्मा बेचकर रूपया पैदा कर रहे हैं -- और आत्मा का मूल्य शरीर से कहीं ऊपर है। किन्तु पूँजीवादी व्यवस्था और उससे उत्पन्न अर्थ पिशाच के प्रति केवल असहमति, कटुता या विरक्ति ही दिखलाई पड़ता है, उसके प्रति आक्रोश नतो लेख में दिखाई पड़ता है और न ही उपन्यास के पात्रों में। उस व्यवस्था के सामने एक असहाय समर्पण ही दिखलाई पड़ता है। अर्थ पिशाच के क्रूर पंजों में फंसे हुये पात्र हाथ पैर फड़फड़ाते हैं चमेली कहती है- हम लोगों को धन का पिशाच न जाने कहां ले आया। उसकी भयानक पकड़ में आ चुके हैं हम दोनों, उस पकड़ से बचना गैर मुमकिन है।

भगवती बाबू के उपन्यास समस्या प्रधान माने जाते हैं। उनके उपन्यासों में चित्रित सामाजिक परिवेश किसी "वाद" विशेष पर आश्रित नहीं है। जिस समस्या पर उन्होंने दृष्टि डाली उस पर गहनता से विचार किया है। ध्यान देने योग्य बात है विचारों से व्यक्तिवादी होते हुये भी उनके उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण है। प्रेमचंद की तरह उन्होंने अपने युग की सारी समस्याओं का चित्रण नहीं किया है। यह बात अवश्य है कि जिस विशिषट समस्याओं पर उन्होंने अपनी दृष्टि डाली उनका गहनता से चित्रण किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सारा देश इस अर्थ पिशाच के चंगुल में फंसता गया और स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती ही गयी और यह स्थिति आज भी बिगड़ती जा रही है। भगवती बाबू ने अपने उपन्यासों में अपनी सशक्त लेखनी से पूंजीवादी युग को यथार्थ रूप से चित्रित किया है।

इस उपन्यास में रामेश्वर अर्थ के चक्कर में पड़कर स्वयं ही अपने जीवन को नष्ट कर लेता है। रामेश्वर प्रारम्भ में एक व्यावहारिक व्यक्ति की तरह दिखलाई पड़ता है, किन्तु चमेली की विवशता के बारे में जब उसे मालूम होता है तब वह अत्यधिक भावुक हो उठता है

और अपने को ही दोषी मान लेता है। और वह पैसा कमाने की धुन में अपराध की दुनियां में प्रवेश करता है। चमेली स्वयं काला धन कमाने के बाद धंधा छोड़कर उसे बंबई छोड़ने के लिये आग्रह करती है और रामेश्वर धन के लालच में अपराध की दुनियां में कुछ दिन और रहना चाहता है। इसका कारण लेखक परिस्थितियां ही मानता है। अपने कष्टों को, भूली बातों को भुलाने के लिये मनुष्य स्वयं अपने को भूल जाना चाहता है और गलत मार्ग पर आ ठहरता है जहां शायद वह कुछ शांति प्राप्त करता है परन्तु वास्तव में शांति न मिलकर पश्चाताप ही मिल पाता है।

मनुष्य परिस्थितियों से परिचालित होता हैं इस बात को आज बहुत लोग स्वीकार करते हैं पर इसका अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति द्वारा बार-बार दुहराई गयी गलती को भी व्यक्ति की विवशता स्वीकार कर लिया जायें किसी भी सामाजिक या प्राकृतिक परिवर्तन पर व्यक्ति की प्रतिक्रिया उसकी मानसिक दशा के आधार पर होगी। चमेली रामेश्वर से कहती है--" जाने क्यों मेरा मन बड़ा उदास है, मुझे ऐसा लगता है कि मानों विपत्ति के बादल हमारे जीवन पर घिरते आ रहे है। और इसी के बाद किशोर के द्वारा उसके चारों ओर षड़यंत्र का एक जाल बुना जाता है। कथानक की चरम सीमा तक पहुँचने के पहले भी बीसवें परिच्छेद का प्रारंभ इस प्रकार होता है-"उस दिन चमेली जब सोकर उठी, वह बहुत उदास थी। वैसे उसकी उदासी का कोई कारण न था, लेकिन उसने अपने प्राणो में एक तरह की आशंका का अनुभव किया। आखिरी दांव में अर्थ-पिशाच में उत्पन्न मानवीय संकट की चर्चा तो है पर उस संकट पर सघनता कम ही मिल पायी हैं।

"आखिरी दांव" के सभी उपकरण जीवन की अस्थिरता और अनिश्चितता को सिद्ध करते हैं। उपन्यास पढ़ने के बाद पहली प्रतिक्रिया आधुनिक युग की पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति विरक्ति अथवा आक्रोश के रूप में ही होती है औरमनुष्य परिस्थियों से ऊब कर अपना जीवन एक जुए के दावं पर लगा देता है यानी व्यक्ति का जीवन जुए के दांव की तरह अनिश्चित हो गया। चमेली का शिव कुमार को आत्म समर्पण करना निश्चय ही उसकी मजबूरी थी किन्तु शीतलप्रसाद के जाल में धीरे-धीरे वह अपनी सजगता के उपरान्त फंसती है। पाठक जिसे उसकी गलती मानता है जबकि भगवती बाबू यहां भी आर्थिक कमजोरी को ही दिखाते हैं। अर्थ पिशाचों के चंगुल में किसतरह भोली भाली जनता पिसती जा रही है।

भगवती बाबू का विश्वास है कि मनुष्य का आधार भूत व्यक्तित्व परिस्थितियों

का सहारा पाकर प्रतिफलित होता रहता है। ऐसी स्थिति में किसी को बुरा कहना गलत है। वर्माजी इस बात पर विश्वास करते हैं कि अपने कर्मों के लिये मनुष्य जिम्मेदार नहीं होता जहां तक प्रवृत्तियों का प्रश्न है कभी-कभी मनुष्य में एक दूसरे की विरोधी प्रवृत्तियां डूब-ती उतरती नजर आती हैं और उन प्रवृत्तियों को मोड़ देती रहती हैं परिस्थितियों।

वर्माजी का यह उपन्यास जिस समस्या पर आधारित है वह है धन के पिशाच के द्वारा उत्पन्न विकृति। आज के युग में सम्मान औरशक्ति के भी धन में ही एका-कार हो जाने से धन का पिशाच सबको गुलाम बनाये हुये है। फलत: समाज के सभी मूल्यों की प्राप्ति के लिये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धन के पीछे अंधाधुंध दौड़ लगाते हुए मानव स्वयं भी विकृत हो गया है। इसमें भारतीय हिन्दूनारी की समस्या को विस्तार से चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इस उपन्यास में चमेली एक ऐसे परिवार की अशिक्षित पात्र है जहां नारी का सम्मान नहीं है। अपने पति और इस बांझ होने की समस्या से नारी को परिवार में कितना अपमानित होना पड़ता था। इसी का वर्मा ने चमेली के द्वारा जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत किया है। नारी के प्रति नृशंसतापूर्ण बर्बर व्यवहार का परिणाम यह होता है कि बहुधा भोली-भाली नारियां बिना जाने बूझे अनेक ऐसी आपदाओं की शिकार बन जाती हैं जिनका निराकरण नारी को शिक्षा एवं सुदृढ़ आर्थिक आधार प्रदान कर बड़ी आसानी से किया जा सकता है।

इस उपन्यास में सामाजिक समस्याओं का प्रमुख संबंध धनसे रहा है। ग्रामीण जीवन से संबंधित पात्र बंबई से आकर किस प्रकार आधुनिक जीवन की कुरूपताओं को अपना लेते हैं इसका प्रतिरूप रामेश्वर और चमेली है। इस उपन्यास के माध्यम से वर्मा जी ने फिल्मी दुनियां की अनैतिकताओर भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया तथा पैसे के चकाचौंध की करामात दिखाई है। इनके अधिकांश उपन्यास यथार्थवादी हैं।

:-अपने खिलौने :-
---x---x---

"अपने खिलौने" उपन्यास 1957 में प्रकाशित हुआ। हिन्दी उपन्यासों में इसका अनूठा ही स्थान है। इसने हिन्दी उपन्यास क्षेत्र की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा किया। प्रारम्भ से ही हिन्दी उपन्यासों में हास्य व्यंग्य की कमी रही है। विदेशी

भाषाओं में उर्दू, बंगला, मराठी, जैसी भारतीय भाषाओं के कथा-साहित्य में तो हास्य-व्यंग की परंपरा रही है किन्तु हिन्दी में विशुद्ध हास्य व्यंग्य पर आधारित अच्छी रचनाओं का अभाव रहा है। जो थोड़े बहुत हास्य व्यंग्य पर आधारित उपन्यास प्राप्त थे वे स्तरहीन थे। "अपने खिलौने" एक स्तरीय हास्यव्यंग्य उपन्यास के रूप में महत्त्वपूर्ण है। अपने को कला और संस्कृति का ठेकेदार समझने वाले वर्ग का खोखलापन इस उपन्यास में हास्य-व्यंग्य के माध्यम से बड़ा ही सरस और मनोरंजक बन कर सामने आया है। वर्माजी के अन्य उपन्यासों की तरह न तो "अपने खिलौने" में कोई बड़ा उद्देश्य है और न बड़ी-बड़ी बातें।

"अपने खिलौने" को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि यदि वर्माजी व्यंग्य का अधिकाधिक प्रयोग करें तो उनकी कृतियां और भी मनोरंजक हो जायें। व्यंग्य के लिए एक विशेष प्रकार की प्रतिभा अपेक्षित है और वह प्रतिभा वर्मा जी में पर्याप्त है। यह व्यंग्य घटनाओं से भी होता है, पात्रों में भी तथा उनकी बात चीत में भी। रियासत के युवराज, मिल ओनर सरकारी अधिकारी, कलाकार, साहित्यकार फिल्म प्रोड्यूसर की दुनियां इस उपन्यास में एक बारगी जीवित हो उठी है। समाज के उच्च वर्ग की महिलाओं की नजाकत, ऊँची शिक्षा के बावजूद उनका बचकाना स्वभाव, उनकी अस्थिरता-सभी को लेखक हास्य व्यंग्य के माध्यम से चित्रित करता है। इस उपन्यास में व्यक्त हास्य के पीछे अत्यंत सूक्ष्म व्यंग्य का हथियार भगवती बाबू छिपाये हैं। गंभीर से गंभीर बात को हास्य व्यंग्य में उड़ा देनातथा हल्की फुल्की बात को गंभीर रूप दे देना वर्माजी की आदत बन गई है। जीवन के जिन संघर्षों से वे गुजरे हैं, उनमें कोई दूसरा व्यक्ति होता तो वह टूट जाता पर वर्माजी ने वह सब हंसी में उड़ा दिया स्वभाव में हास्य व्यंग्य की अतिशय मात्रा होने के कारण जहां भी उन्हें अवसर मिला । उपन्यास या कहानी। में उन्होंने इस प्रवृत्ति का खूब उपयोग किया है। किन्तु यत्र-तत्र हास्य व्यंग्य का अद्भुत सृजन करने से वर्माजी को सन्तोष नहीं मिला फलत: उस तृप्ति के लिये उन्होंने हास्य व्यंग्य से ओत-प्रोत एक लघु उपन्यास लिख ही डाला।

सन् 1957 तक के विभिन्न जीवनानुभवों का परिणाम "अपने खिलौने" उपन्यास में चित्रित है क्योंकि इस समय तक लेखक हिन्दुस्तान के उन सभी प्रमुख नगरों में घूम फिर चुका था, जो नये युग के नयी सभ्यता और शिक्षा से पूर्ण तया अभिभूत हो चुके थे। और अपनी सूक्ष्म आवलोकन दृष्टि के फलस्वरूप वे आज के जीवन के विकृत रूप की हल्के-फुल्के ढ़ंग से, मर्मस्पर्शी रूप से प्रस्तुत करने में अत्यधिक सफलहुये। "अपने खिलौने" के पात्र और घटनाओं की

झांकियां हमें इससे पूर्व की वर्मा जी की कतिपय कहानियों में मिलती हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हीं का प्रखर रूप उन्होंने प्रस्तुत उपन्यास में उपस्थित किया है।

"अपने खिलौने" का कथानक अत्यंत संक्षिप्त है। परन्तु उसके पात्र अनेक और घटनायें अनंत हैं। संयोग और आकस्मिक घटनाओं की प्रचुरता ने उपन्यास में नाटकीयता भर दी है। यह उपन्यास आज के शिक्षित पात्रों की मानसिक तथा बाह्य क्रिया-प्रतिक्रियाओं के माध्यम से वर्माजी की विशिष्ट कला निपुणता का परिचायक है। उन्होंने अप्रत्याशित घटनाओं और परिस्थितियों के सहारे हास्यका सृजन किया है। हास्य के साथ इसमें व्यंग्य भी प्रच्छन्न है। साधारण दृष्टि से देखने पर जो विशुद्ध हास्य ही प्रतीत होता है। बारीकी से देखने पर उसमें एक ऐसा व्यंग्य है जो हमारे मान और आस्था को हिला देता है। अपने खिलौने के लगभग सभी पात्र उच्चवर्गीय सुशिक्षित और शहरी हैं। इसमें उच्चवर्गीय समाज केसभी स्तर और सभी प्रकार के लोगों का चित्रण हुआ है। वर्माजी की प्रखर प्रतिभा ने आई० सी० एस० आफीसर, मंत्री, संगीतज्ञ, कलाकार, शायर, आधुनिक नारी सभी पर व्यंग्य किया है। किन्तु यह व्यंग्य समाज सुधारक याउपदेशक बन कर नहीं आया है। लेखक ने तो केवल पात्रों को यथार्थ रूप से चित्रित कर उनकी कमजोरियों और बुराइयों को इस प्रकार रखा है कि उनकी वास्तविक स्थिति हास्यास्पद लगे। वस्तुतः इस वर्ग के लोगों ने जीवनको बहुत सस्ता समझ रखा है-- खिलौने के समान और उनसे वे खिलवाड़ करते हैं। ऊपर से जगमगाते इस समाज के खोखलेपन पर पाठकों को हंसी भी आ जाती है और घृणा भी होती है।

मनोरंजन को महत्त्वपूर्ण तत्व मानने के बाद भी भगवती बाबू की सामाजिक प्रतिबद्धता कम नहीं होती है। "व्यंग्यात्मक दृष्टि से लेखक ने इसमें यह सिद्ध किया है कि सामाजिक पतनोन्मुखता नैतिक संक्रमण का मूल कारण है।" प्रारम्भ में लेखक हास्य व्यंग्यद्वारा आधुनिक युवती पर प्रहार करता है। मीना, सांस्कृतिक व सामाजिक समारोहों की शोभा के रूप में दीखती है पार्टी में एक मात्र वहीं वही दिखे इसके लिये वह अनाप शनाप खर्च करती है। समाज में ऊँचा उठने की मृगतृष्णा मीना को इतना अधिक बहका देती है कि फिल्म में काम करने को तैयार हो जाती है। अन्नपूर्णा भी विकृत आधुनिक नारी है। सभा-सोसाइटी में भी जाती है क्योंकि वहां उसका अतृप्त मन पुरुष वर्ग के सम्पर्क में आकर, संतोष का अनुभव करता है। इसके लिये वह दूसरों के सामने झूठ बोलकर, यह दिखाकर कि इनमें उसे कोई दिलचस्पी

नहीं है, लोगों पर अहसान लादने की लिये वह इनमें भाग ले रही है, वह अपनी मनोविकृति को छिपाने की असफल कोशिश करती है। अपने खिलौने के पात्रों की प्रकृति इतनी युगानुरूप है और आचरण इतना परिस्थिति के अनुकूल है कि उन्हें हम अयथार्थ नहीं कह सकते है। ऐसे चरित्र हमें समाज में रोज देखने को मिलते हैं। विशेषत: आज का उच्चमध्यवर्गीय और उच्च-वर्गीय समाज इस प्रकार की कमजोरियों से बुरी तरह ग्रस्त है। मीना, अन्नपूर्णा और वैरा जैसी सुसंस्कृत स्त्रियों का असभ्य ग्रामीण स्त्रियों की भाँति लड़ना, झगड़ना तथा अन्य विचित्र आचरण आदि कमजोरियां संस्कारजन्म एवं परिस्थिति जन्य है। वर्मा जी ने नये युग के वातावरण में उन्हें हास्यास्पद स्थिति में लाकर खड़ा किया है। यही कारण है कि "अपने खिलौने" के सभी पात्र कल्पित होते हुये भी यथार्थ है। समाज में ऐसे चरित्रों की कमी नहीं है।

"अपने खिलौने" का कोई स्थल सरलता और रोचकता से हीन नहीं है। जीवन की कटुता को इतने हल्के-फुल्के ढंग से उड़ा देने में यह उपन्यास पूर्ण सफल हुआ है। हिन्दी में ऐसी कृतियों की बहुत आवश्यकता है जो आज के व्यस्त एवं नीरस जीवन को कम से कम कुछ क्षणों के लिये तो सरसता और उल्लास प्रदान कर सकें। वर्मा जी की आंखों से छलकता हास्य, होठों पर थिरकती हंसी जैसे जीवन और जगत् की निस्सारता और निरर्थकता की ओर संकेत करते हैं, एक कटु सत्य की अभिव्यक्ति करते हैं और कथानक की गहराई तक पहुँचकर उसे सामाजिक विसंगतियों को प्रदर्शित करने का माध्यम बनाते हैं।

इस उपन्यास में वर्माजी ने दिल्ली के उच्चवर्गीय समाज का विस्तार से चित्रण किया है। राजाओं पूँजीपतियों तथा उच्च अधिकारियों की जीवन की मान्यतायें कितनी खोखली हैं, प्रस्तुत उपन्यास उसी का कलात्मक रूप है। अन्य उपन्यासों की भाँति इसमें पैसे की शक्ति की महत्ता स्पष्ट की गई है। क्या उच्च वर्ग, क्या निम्न वर्ग पैसे की शक्ति के आगे सभी पराजित हुये हैं। जिसका बड़ा व्यंग्यपूर्ण चित्रवर्मा जी ने खींचा है।

:- भूले बिसरे चित्र :-

----x----x----

भूले बिसरे चित्र मूलत: एक महाकाय उपन्यास है जो कि 1969 में प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी साहित्य के उन उपन्यासों में से है जिनमें महाकाव्य के स्वर विधमान है। एक परिवार की चार पीढ़ियां की यह कथा है और ये पीढ़ियाँ अपने

समसामयिक परिस्थितियों एवं संघर्षों के तनाव में ही उठती गिरती हैं। भारतीय जीवन के विविध पक्षों को समेटते हुए इस उपन्यास का कथानक लगभग पचास वर्ष के परिवर्तन की झांकी प्रस्तुत करता है। इसके विशाल चित्रफलक को देखकर सहसा फ्रेंच उपन्यासकार मार्सेल प्राउस्त के उपन्यास "रिमेम्बर ऑफ थ्रिंग पास्ट ।की याद आ जाती है। परन्तु जहां प्राउस्त का दृश्यांकन स्मृति के त्रिपार्श्व फलक से छनकर आता है, वहां इस उपन्यास में इतिहास की वस्तुपरक दृष्टि मात्र है।

इस उपन्यास का कथाकाल सन् 1880 ई0 से 1930 तक फैला हुआ है। पचास वर्ष के समय फलक पर फैले हुये भारतीय समाज के चित्र राजनैतिक परिवेश में देने की चेष्टा की गयी है। इतिहास की वस्तुपरक दृष्टि बनाये रखने के लिये ही संभवत: वर्मा जी ने कथानक को 1930 तक ही रखा है। चौथी पीढ़ी का नवल वर्माजी की अपनी पीढ़ी का प्रतीक है और उसे संघर्ष भूमि पर उतार कर उपन्यासकार अपराम हो जाता है ।फिर वह अपने निष्कर्ष नहीं देना चाहता है। 1930 तक पहुँचते-पहुँचते मध्यवर्ग पर संकट सामने आ गया था। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की छाया तले उसका विकास हुआ था, पर धीरे धीरे आर्थिक संकटापन्नता उसे मुक्ति का भी बनाने लगी थी। संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन मध्यवर्ग का उदय, सामन्तवाद की पूँजीवाद के द्वारा पराजय तथा राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आंदोलन का विकास ये चार आधार बिन्दु हैं जिन पर संपूर्ण उपन्यास का कथानक खड़ा है।

ज्वाला प्रसाद व गंगाप्रसाद नौकरशाही एवं मध्यवर्गीय प्रतीक हैं। गंगाप्रसाद कलेक्टर हो जाते हैं, पर जब अचानक ही उनकी मृत्यु होती है तो नवल लगभग उस स्थिति में पहुँच जाता है जहां से उसके पितामह ने प्रारंभ किया था। उसका क्षुब्ध अहम् किसी की दया को स्वीकार नहीं करता और जीवन के ज्वार में बहने के लिये वह पूरे आवेश से सत्याग्रह संग्राम में कूद पड़ता है। सब मिलाकर चार पीढ़ियों वाले इस परिवार के स्तर पर ही यह उपन्यास सबसे अधिक सफल हुआ है।

उपन्यास के कथानक का प्रारम्भ 4 जुलाई 1885 से होता है जब मुंशी शिवलाल को खुशामदखोरी का पुरस्कार यह प्राप्त होता है कि उनके लड़के ज्वाला प्रसाद को नायब तहसीलदार बना दिया जाता है। ज्वालाप्रसाद अपना कार्य ईमानदारी से करता है जो उसके पिता को पसंद नहीं है। नम्बरदारिन जैदेई के मन में ज्वालाप्रसाद के लिये कमजोरी है यह

जानकर मुंशी शिवलाल अपने बेटे को सलाह देते हैं कि नम्बरदारिन बड़ी धनवान है अत: ज्वाला को चाहिये कि वह जायदाद खड़ी कर ले। अपने पिता के प्रति पनपती वितृष्णा को महसूस करते हुये ज्वालाप्रसाद का चित्रण प्रस्तुत कर पहला खण्ड समाप्त होताहै। अपने पिता चाचा और चचेरे भाई के रुपये कमाने के षड्यंत्र में ज्वालाप्रसाद शामिल नहीं होता इस बात पर क्रोधित होकर मुंशी शिवलाल आत्महत्या कर लेते हैं और चाचा तथा भाई रूष्ट होकर चले जाते हैं। कथा के इस प्रारंभिक भाग में ही उपन्यास के कथानक का दूसरा स्तर भी उभरता है :सामन्तवाद बनाम पूँजीवाद का।

घाटमपुर तहसील में नायब तहसीलदार ज्वाला प्रसाद के पहुँचते ही ठाकुर गजराज सिंह, ठाकुर वरजोर सिंह एवं लाला प्रभुदयाल का संघर्ष सामने आता है। मामूली बनिया का लड़का प्रभुदयाल धीरे धीरे कुलाभिमान एवंपुराने सामंती ठाठबाट में चूर दोनों ठाकुरों को नीचा दिखा देता है। अपना अवसर पहचानने की उसमें अचूक निगाह है। वह जानता है कि नौकरशाही को साथ में रखना चाहिये। नौकरशाही के प्रतीक ज्वालाप्रसाद उसे साथ देने के लिये विवश होते हैं- न्याय एवं कानून के नाम पर इसतरह नौकरशाही एवं पूँजीवाद के गठबंधन द्वारा लेखक ने सामन्तवाद की पराजय के ऐतिहासिक तथ्य को चित्रित किया है। फिर तो पूँजीवाद के घृणित चेहरे पर पड़ी नकाब को लेखक ने बार बार उघाड़ा है।

नम्बरदारिन जेठाई ज्वाला प्रसाद के लड़के गंगाप्रसाद को अपने संरक्षण में पढ़ाने लिखाने के लिये लखनऊ से इलाहाबाद ले जाती है। ज्वालाप्रसाद डिप्टी कलक्टर बन कर रिटायर होतेहैं। किन्तु उनके लड़के गंगाप्रसाद की नियुक्ति सीधे डिप्टीकलक्टर के पद पर होती है। अपने अक्खड़ और साहसी स्वभाव के कारण वह अत्यंत सफल अफसर साबित होता है। स्वाधीनता आंदोलन का वह उसी तरह विरोधी रहता है जिस तरह उस समय अधिकांश सरकारी अफसर थे। कलेक्टर के पद पर पहुँचकर गंगाप्रसाद की असमय मृत्यु हो जाती है। गंगा प्रसाद का लड़का नवल अपने पिता की विचारधारा के विपरीत स्वाधीनता आंदोलन का पक्षधर है तथा लड़की विद्या भी नवीन विचारधारा की है। आई० सी० एस० की पढ़ाई के लियें इग्लैण्ड जाने और लखपति व्यक्ति का दामाद बनने के बदले नवल कांग्रेस का कार्य करता है। और अंत में नमक बनाओ आन्दोलन में हिस्सा लेकर गिरफ्तार होने निकल पड़ता है। विद्या भी अपने पति व ससुर का विरोध करती है और ससुराल से घर वापस आ जाती है और नौकरी करने लगती है। ज्वालाप्रसाद को यह सब अजीब लगता है और अनुभव

करता है कि उसके युग की मान्यतायें बदल गयी हैं और दुनिया तेजी से बदल रही है। इस परिवर्तन का तीव्र आभास देते हुये यह उपन्यास इस तरह समाप्त होता है-"दो बूढ़े, जिन्होंने युग देखा था जिंदगी के अनेक उतार चढ़ाव देखे थे जिन्होंने, जिनकेपास अनुभवों का भण्डार था, निरूत्तर थे। और दूर हजारों, लाखोंकरोड़ों आदमी जीवन और गति से प्रेरित नवीन उमंग और उल्लास लिए हुए एक नवीन दुनियां की रचना करने के लिये चले जा रहे थे।

"भूले बिसरे चित्र" को कैनवास अत्यंत विशाल है और उस पर तद्युगीन भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन की झांकी उभर आयी है। परिवर्तित परिस्थितियों में एक परिवार पर क्या प्रभाव पड़ता है और पीढ़ी दर पीढ़ी उनके स्वभाव, मनोवृत्ति और आचरण में क्या अंतर आता जाता है इसका कलात्मक चित्रण इस उपन्यास में चित्रित है। जहां तक उपन्यास के प्रवाह और उसकी रोचकता का प्रश्न है यह एक अत्यंत सफल कृति है। प्रस्तुत उपन्यास में जिन स्तरों की चर्चा की गयी है वे अलग-अलग कटे हुये नहीं हैं। एक दूसरे पर आश्रित हैं, एक से दूसरा उत्पन्न होता है। यों अगर सभी स्तरों के मूल में विधमान मूल भाव बिंदु को ढूंढा जाय तो लगेगा पुरानी दुनिया (अपनी सारे मूल्यों और विश्वासोंके साथ) को तोड़कर उसके स्थान पर जो नई दुनिया जाई है उसका रूप और विकास दिखाना ही मुख्य थीम है। ज्वाला प्रसाद सामन्ती कुलीनता एवं अभिजात्य के मूल्यों केविरोध में खड़े होने वाले पूँजीवाद का समर्थन करता हुआ कहता है--" बप्पा, यह नया जमाना है। कोई खुद बढ़ईवहां नौकर होंगेम मशीन की मदद से काम होगा अच्छे से अच्छे नये फैशन का सामान बनेगा लाखों का काम काज हो सकता है नई दुनियां का नया रूप होगा।" मुंशी शिवलाल की समझ में यह बात आती तो नहीं, पर चूंकिउनके बेटे ने, जो नये युग का आदमी था, कही, इसलिये उन्होंने मान ली।

तीसरे खण्ड में कथानक का केन्द्र बिंदु ज्वालाप्रसाद का परिवार नहीं रह जाता है। कथानक कभी हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य में खो जाता है,कभी संतो बीबी के भटकाव के चित्रण में।

चौथे खण्ड में कथानक को उसके केन्द्र बिंदु यानी ज्वालाप्रसाद के परिवार में लेखक पुनः स्थापित कर देता है। "भूले बिसरे चित्र" के विषय में नेमिचंद्र जैन लिखते हैं - "पूरा उपन्यास एक तरह से अनगिनत, असंबद्ध अथवा शिथिल रूप में संबंध चित्र श्रृंखला जैसा

है और अंत में वह समाप्त होता है तो हमें यह अनुभव नहीं होता कि हम सचमुच पचास वर्षों की घटना-बहुल क्रांतिकारी तथा विविधतापूर्ण काल खण्ड की यात्रा करके लौटे हैं।

लेखक ने प्रत्येक पीढ़ी का संघर्ष अपनी गत पीढ़ी से अपना अधिकार नहीं दिखलाया है, जितना तत्कालीन वातावरण एवं सम्पर्क में आने वाले "व्यक्ति समूह में। पहला खण्ड दो भिन्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियों के बाह्य संघर्ष को लेकर लिखा गया है जिसमें ज्वालाप्रसाद को अकारण मानसिक वेदना सहनी पड़ती है युग बदल रहा है और उनके साथ सत्ता एक हाथ से दूसरे हाथ में जा रही है।ठाकुर बनियो से नीचा होता है पर वह संस्कारजन्य अहम नहीं छोड़ पाता ठाकुर बरजोरसिंह प्रभुदयाल से यह कहकर-हम राज राजा खानदान के हैं, कोई बनिया बक्काल थोड़ें ही हैं । और झगड़ा इतना प्रबल रूप धारण करता है कि एक दूसरे की हत्या और आत्महत्या में परिणत हो जाता है। ज्वाला प्रसाद कर्तव्यऔर भावना के चक्कर में पड़कर झगड़े को शान्त करने का प्रयत्न करता है। न्याय और भावना के संघर्ष को वह अपनी इच्छा से अपने ऊपर ले लेता है। इस सबका बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित किया है। न्याय एवं कानून के नाम पर सामन्तवाद के पराजय के ऐतिहासिक तथ्य को चित्रित किया गया है।

"भूले बिसरे चित्र" एक व्यक्ति को केन्द्र में रखकर समय के परिवर्तन का चित्रण है। संयुक्त परिवार से हटती हुई आस्था पहले और चौथे खण्ड के द्वारा स्पष्ट हो जाती है। इस पूंजीवाद युग में पैसा ही शक्ति और अधिकार का मापदंड बन गया है। पैसे के ही बल पर ज्वालाप्रसाद के परिवार में अधिकार और शक्ति के स्थान परिवर्तन का अवसर आया। मुंशी शिवलाल विधुर होने के नाते अपने भाई की पत्नी को घर की मालकिन मानते हैं वे उसकी मर्जी विरुद्ध कोई कार्य नहीं करना चाहते। सम्मिलित परिवार व्यवस्था अकारण ही नहीं टूटती जा रही है। उसकी बुराइयों और दुष्परिणामों ने उसे आप ही आप खोखला बना दिया है। दूसरों पर आश्रित रहकर परिवार के अन्य सदस्य आवारा और निकम्मे हो जाते हैं दूसरे की पसीने की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं और मेहनत का महत्त्व भूल जाते हैं। ज्वालाप्रसाद चाचा और भाइयों की जाल-साजी, झूठ फरेब और निकम्मेपन से जब तंग आ जाता है तभी ज्वालाप्रसाद का मुंह खुल जाता है और बड़ी मुश्किल से इन लोगो से घर वापस चले जाने को कह पाता है। ज्वालाप्रसाद के मन में इन लोंगो के प्रति आदर है, ममता, मोह है। किन्तु इनके बाद की पीढ़ी गंगाप्रसाद में यह मोह भी चला जाता है।

जब बंशीधर नौकरी के सिलसिले में गंगा प्रसाद के पास आता है तब वह ज्ञान प्रकाश से कहता है- देख रहे हो चाचाजान, इस जंगली को बप्पा ने मेरे पास भेजा है। शक्ल देखी तुमने इसकी, हैवानियत बरस रही है चेहरे पर। और जी हां, यह मेरे बिरादर है। जौनपुर में मेरे छोटे भाई होने के ढोल पीटते घूमेंगे। मैतो शरम से गढ़ जाऊंगा। अजीब मुसीबत में डालदिया है बप्पा ने। परिवार से लेकर समाज और शासन तक में हुये परिवर्तन को लेखक उपन्यास में चित्रित करता है। वहीं परिस्थितियों से संचालित मानता है। उपन्यास में बदलते हुये समय का साक्षी ज्वाला प्रसाद है।

ज्वालाप्रसाद की दुनियां भी बदलती हैं ज्वालाप्रसाद से भी अधिक परिवर्तन उसकी अगली पीढ़ी गंगाप्रसाद में देखने को मिलता है। डिप्टी कलेक्टर सोमेश्वरदत्त गंगा प्रसाद के लिए कहते हैं- "दिल और हौसले वाला-है मीरसाहब, यह तो आपको मानना ही पड़ेगा। नये युग का आदमी है। इस नई दुनियां में यह काफी आगें बढ़ेगा और इस नये आदमी का गुण है कि वह साहसी है खुशामद नहीं कर सकता, अंग्रेजों से भी बराबरी का बर्ताव करता है, यानी मध्यवर्ग इतना शक्ति शाली हो चुका था कि आत्मा विश्वास के साथ आगे बढ़ सकें।" पर यह आत्मविश्वास अभी भी सुख, सुरक्षा एवं नौकरी के प्रश्न पर साथ छोड़ देता है उसके अन्दर की कायरता ही उसे तोड़ देती है। असहयोग आन्दोलन से सहानुभूति होते हुये भी अपमानित गंगाप्रसाद नौकरी नहीं छोड़ पाता है। किन्तु इसकी अगली पीढ़ी में यह भी सामर्थ्य पूर्ण हो जाती है और नवल पूर्ण अहम के साथ जीवित रहना चाहता है। बीमार पिता की दिनचर्या के लिये भुवाली जाने को प्रस्तुत नवल को गंगाप्रसाद ने देखा, सामर्थ्य और आत्माविश्वास से भरा हुआ पुत्र, भविष्य का प्रतीक। नये युग का यह प्रतीक स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व का हामी बनता है। उसके अनुसार स्त्री की नौकरी के सवाल को नई दुनियां वाले ठीक समझेंगें वह वकालत करने से इन्कार कर देता है क्योंकि झूठ, मक्कारी, और खुशामद उसके बस की बात नही है। वह कहता है-"मै निराश होकर जेल नही जा रहा हूँ। जो रास्ता मैंने अपनाया है उसकी यही परिणति है संघर्ष-संघर्ष-संघर्ष। जीवन भर संघर्ष मेरे अन्दर की पुकार है... जो कि वह यह अनुभंव भी करता है कि जिस नवीन का निर्माण करने वह निकला है वह काफी महंगा पड़ रहा है। जो कुछ भी प्राचीन है उसे बड़ी बेरहमी से तोड़ना पड़ रहा है।"

नवल एक ओर देश की नवचेतना से पूर्णत: अनुप्राणित है और दूसरी ओर अपने

पिता की असफलता के रहस्य से परिचित है। उसका पिता मान, पद, और उन्नति के चक्कर में पड़कर अपनी अन्त: चेतना के स्वर को नहीं पढ़ पाया। किन्तु नवल किसी से दबता नहीं है और न ही वह अपनी आत्मा के खिलाफ कोई कार्य करता है। अपने पिता और परिवार के प्रति वह कर्तव्य को समझता है इसलिये अपने कैरियर और प्यार को वह ठुकरा देता है। उसकी मान्यतायें निश्चित और स्पष्ट हैं। कभी एक को अपनाने और दूसरे को छोड़ने की बात उसके मन में आती ही नहीं है। अपनी विस्तृति और रोचकता तथा पीढ़ीगत सामाजिक परिवर्तनों का दर्पण होने के कारण " भूले बिसरे चित्र" की समता हिन्दी साहित्य में "बूँद और समुद्र " झूठासच" मैला आँचल" अलग-अलग-वैतरण" रागदरबारी जैसी शक्तिशाली कृतियां ही कर सकती हैं। वर्तमान से जुड़े हुये निकट अतीत को समग्रता से चित्रित करने का प्रयास इस उपन्यास में किया गया।

लगभग सभी पात्र वर्गप्रतिनिधि हैं। लेखक का उद्देश्य प्रस्तुत उपन्यास द्वारा मानवमूल्यों का संक्रमण करना था। ठाकुर गजराजसिंह व ठाकुर बरजोरसिंह जहाँ ठाकुर वंश के प्रतिनिधि हैं, वहां प्रभुदयाल उठते हुये बनिया वर्ग का। प्रमुख पात्र शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद, नवल किशोर, ज्ञानप्रकाश, विद्या, सत्यब्रत आदि पात्र वर्ग प्रतिनिधि मात्र नहीं हैं। इनमें अपने वर्ग की मूल विशेषतायें अवश्य वर्तमान हैं। किन्तु उससे अधिक उनमें अपना निजी व्यक्तित्व है। उनमें संस्कार और परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रवृत्ति है। लेखक ने इस संघर्ष का बड़ा सूक्ष्म निरीक्षण किया है क्योंकि उसी के द्वारा वह मानव मूल्यों का संक्रमण दिखा सकता था, जो प्रकारान्तर से उपन्यास की आधार शिला है। मुंशी शिवलाल अपने संस्कारों के कारण बाह्य संस्कारों से ऐसा जुड़ते हैं कि इन्हें अपना जीवन ही समाप्त कर देना पड़ता है। उनके संस्कार झूठ, जालसाजी धोखाधड़ी आदि करने वाले हैं। किन्तु अब परिस्थितियां बदल गई हैं, वातावरण बदल गया है। इसलिये उनका पुत्र इस सब बातों को अनैतिक तथा हेय समझता है और वह यह सब करने को तैयार नहीं होता है। पिता के आदर्श पुत्र के आदर्शों से टकराते हैं। पुत्र की जीत होती है किन्तु यह पुत्र की जीत पिता को तोड़ कर रख देती है। एक आदर्श की हत्या से दूसरा आदर्श पनपता है। इस सामजिक संघर्ष की चरम सीमा का चित्रण लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है।

इस युग के व्यक्ति के सामने यह समस्या थी कि क्या त्याज्य है और क्या अपनाना चाहियें। गंगाप्रसाद और ज्ञानप्रकाश एक ही युग के दो व्यक्ति हैं। ज्ञान प्रकाश में वह व्यक्तित्व है जो युग निर्माण कर सके। परन्तु गंगा प्रसाद में दूसरों की परिस्थितयों में अथलपुथल

लाने की क्षमता तो लेखक दिखलाता है किन्तु स्वयं उससे जूझने वाला व्यक्तित्व नहीं दे पाया है और इसलिये वह टूट जाता है अपनी पराजय का उत्तरदायी वह स्वयं ही है। ज्ञानप्रकाश राजनीतिक चेतना का प्रतीक है तथा विद्या नई विद्रोहिणी नारी की प्रतीक है। माध्यम से लेखक के आदर्श बोलते हैं और मीर साहब लेखक के अपने ही ज्ञान प्रकाश व नवल किशोर के अंश के प्रतीक हैं और दूसरी ओर प्राचीन धार्मिकता एवं नैतिकता के अंश भी उद्घाटित होते हैं।

वस्तुत: इस उपन्यास में जिस बीते आदर्श के "भूले बिसरे चित्रों" को पुन: याद के सहारे अंकित किया गया है, वे अपनी रोचकता में हमें आकर्षित करते हैं। जब भगवती बाबू की पीढ़ी के लेखक आदर्शवादी खोल पहन कर बैठ गये, तब भगवती बाबू ने आज की परिस्थितियों का खुलकर चित्रण किया। क्रांतियों और उथल पुथल, राजनैतिक दोगलापन, समाज के कर्णधारों की अयोग्यता तथा भारतीय समाज के मोहभंग आदि का चित्रण नवीन चेतना की शर्त है। भगवती बाबू में यह प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। मध्यवर्ग की बढ़ती हुई चार पीढ़ियों के विश्वासों, प्रवृतियों और परिस्थितियों के रोचक प्रसंगों की यथार्थ कल्पना के साथ-साथ वर्मा जी ने युगीन सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन की अनेक रंगीन व आकर्षक रीलें एक के बाद एक प्रकट की हैं।

कथानक की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर नामक सत्याग्रह आन्दोलन तक के परतंत्र भारत का यह विशद आख्यान है। एक पुराने समाज का अंत और इसमें संयुक्त परिवार, स्वच्छंद प्रेम, नारी की पराधीनता, दहेज प्रथा आदि समस्याओं का उल्लेख है। सामाजिक मान्यताओं को प्रस्तुत करने वाले पात्रों का दृष्टिकोण दो वर्ग में बांटा जा सकता है एक वर्ग प्रगतिशील तत्वों का पोषक है और दूसरा वर्ग रूढ़ि और जर्जर मान्यताओं से जकड़े रहना चाहता है। सम्मिलित परिवारों में दोनों ही विचारों के पोषक पात्र इस उपन्यास में विद्यमान हैं। ज्वालाप्रसाद की पत्नी यमुना परम्पराओं में जकड़ी हुई नारी है जो पति के हर कार्य को मौन रहकर समर्थन करती है है भारतीय नारी का यह सहज स्वाभाविक अनुगत रूप है जो कि पति के हर कार्य को विश्वास के साथ देखती है। लेकिन साथ ही विद्या नई पीढ़ी की नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है। ज्ञान प्रकाश और नवल विद्या को जड़ मान्यताओं और खोखली सामाजिक मर्यादाओं से मुक्ति दिलाते हैं। इस प्रकार विद्या के रूपमें आधुनिक भारतीय नारी की विवाह तथा स्वतंत्र जीवन यापन की समस्या का हल प्रस्तुत किया है।

युग के बदलते हुये परिवेश के साथ युग की नवीन चेतना ज्वालाप्रसाद एक तटस्थ दर्शन की भांति स्वीकार करते है क्योंकि उनमें नवीन चेतना के प्रति न तो आक्रोश है। और न ही पुरानी मान्यताओं के प्रति अतिरिक्त मोह। अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति से जहां भारत में प्रगति की लहर आई वहीं दूसरी ओर पढ़े लिखे वर्ग के सामने जीवनयापन की भयंकर समस्या भी उत्पन्न हो गयी। ज्ञान प्रकाश, नवल किशोर से इसी समस्या पर प्रकाश डालता हुआ कहता है- देश की चेतना जाग उठी है यह जो मध्य वर्ग में बेकारी बुरी तरह बढ़ रही है वह अपना रंग दिखायेगी। ज्वाला प्रसाद को समझाता हुआ कहता है- "दुनियां की मान्यतायें बड़ी तेजी से बदल रहीं हैं। हमारे भविष्य का रूप क्या होगा यह नहीं कहा जा सकता। "एक परिवार को प्रतीक बनाकर चार पीढ़ियों की कथा के माध्यम से समस्याओं का प्रस्तुतीकरण करके उपन्यास ने गौरव प्राप्त किया। सामाजिक समस्याओं के साथ ही राजनीतिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में हिन्दू मुस्लिम लीग की स्थापना, कांग्रेस की सक्रिय नीति व नवीन प्रगतिवादी चेतना के इतिहास को प्रस्तुत किया है।

:- वह फिर नहीं आई :-
------x-----x------

भगवती बाबू का "वह फिर नहीं आयी" उपन्यास एक छोटा सा उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1960 में हुआ था। "राख और चिनगारी" संकलन में यह उपन्यास कहानी के रूप में चित्रित है। कहानी और उपन्यास में केवल कलेबर का अंतर है। "वह फिर नहीं आई "कहानी संवेदनशीलता की दुनिया में अत्यंत सफल है और मित्रों का आग्रह भी इसे उपन्यास का रूप देने में सहायक हुआ होगा। वैसे कहानी और उपन्यास के लेखन काल में 10 वर्ष का अंतर है। इस दस वर्ष की अवधि में किसी लेखक क्या साधारण व्यक्ति तक में महान अन्तर स्वाभाविक है। उसकी मान्यतायें उसके जीवन मूल्य बदल सकते हैं। उसकी भावुकता की दृष्टि से वर्मा जी पर किसी प्रकार का अंतर नही आया है किन्तु लेखक पर दार्शनिकता का आवरण अवश्य चढ़ गया है। आत्म कथात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास एक सामान्य घटना प्रधान उपन्यास है।

दिल्ली के एक होटल में ज्ञानचंद का परिचय रानी श्यामला से होता है। और उसका पति जीवन राम भी उसके साथ है किन्तु अपने पति-पत्नी संबंध को किसी के

सामने वे व्यक्त नहीं करते हैं। ज्ञान चंद और रानी श्यामला का प्रेम-संबंध बड़ी तेजी से बढ़ता जाता है और ज्ञान चंद रानी श्यामलाऔर जीवनरामको लेकर कानपुर आ जाता है। जीवनराम ज्ञानचंद के आफिस में काम करने लगता है और श्यामला को अपनी रखेल बनाकर उसके साथ सैर सपाटा करता है। एक दिन ज्ञानचंद को पता चलता है कि जीवनराम ने उसके जाली हस्ताक्षर बनाकर 20 हजार रूपये बैक से निकाल लिये है। तब ज्ञानचंद जीवनराम को पुलिस से पकड़वा देता है, तब रानी श्यामला बताती है कि जीवन-राम वास्तव में उसका पति है।

"वह फिर नहीं आई" कहानी में लेखक विशुद्ध कथाकार है परन्तु उपन्यास में वह कहानीकार के साथ-साथ दार्शनिक भी है। अवसर पाते ही वह किसी न किसी विषयको लेकर उसकी दार्शनिक व्याख्या करने लगता है। उसकी ये व्याख्यायें सभी विषयों पर हैं-व्यापार, इति-हास परिवार, प्रेम, अर्थ, कानून, नैतिकता किसी को भी उसने नहीं छोड़ा। ये व्याख्यायें उपन्यास के चिंतन पक्ष को उभारती हैं किन्तु कथानक के प्रवाह को कम करती हैं। घटना प्रधान कथानक में कानून , इतिहास और व्यापार पर किया गया चिंतन - मनन कथात्मकता पर आघात पहुँचाने वाला सिद्ध होता है किन्तु ऐसा नहीं हो पाया क्योंकि बीच-बीच में लेखक ने एक एक दो पैराग्राफोंमें कथा-तंतु इस प्रकार गूंथ दिये हैं कि वह टिप्पणियाँ करता है तो फिर क्यों वह जीवनराम को जेल भेजता है, इसका उत्तर स्वयं ज्ञान चंद देता है-"जीवनराम जेल में है। उसे सजा होगी। वह बच नहीं सकता। और जहांतक मेरा प्रश्न, मै कानून की पकड़ में नहीं हूँ क्योंकि मै सक्षम हूँ और समर्थ हूँ अधिकारी मेरे मित्र हैं, समाज मेरा आदर करता है, सम्मान है। दूसरे की पत्नी का अपहरण कर सकता हूँ और मेरे ऊपर आंच तक नहीं आ सकती। फिर भी मेरे मन में हलचल है, उद्वेलन है। मेरा मन शांत नहीं है, मै अपराधी हूँ। ज्ञान चंद द्वारा उपरयुक्त आत्म विश्लेशण अपने ढंग का है। उसके कथन में सत्य है किसी प्रकार का दुराव-छुपाव उसने नहीं किया है। अपनी कमजोरी को स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है

जब जीवन राम जेल चला जाता है तो रानी श्यामला अपनी कहानी ज्ञानचंद से कहती है। लाहौर से जीवनराम को राजा का खिताब मिला हुआ था और वह अपनी पत्नी

के साथ सुखी जीवन बिता रहा था। लेकिन जब लाहौर में सांप्रदायिक झगड़े हुये तो उनकी सारी संपत्ति लूट ली गई और घर भी जल गया। उस समय जीवनराम के मित्र ने उनकी रक्षा की जिसकी कीमत 10 हजार रूपये मित्र ने मांगी अपनी पत्नी को मित्र के पास बंधक रख कर एक साल की अवधि लेकर जीवनराम चला जाता है। जीवनराम एक कंपनी में काम करता है और अपनी कंपनी से बीस हजार काशबन कर उन पैसों से अपनी पत्नी को पुन: प्राप्त कर लेता है। पुलिस वारंट से बचने के लिये जीवन राम ने ज्ञानचंद का पैसा गबन किया। ज्ञानचंद उदारता पूर्वक जीवनराम को छुड़ा देता है किन्तु जीवनराम को भीख पसंद नहीं है। अत: अपनी पत्नी को ज्ञान चंद के पास बंधक रखकर हजार रूपये कमाने के लिये निकल आता है। उसके बाद श्यामला अत्यंत उदासी से जीवन बिताती है। सालभर के बाद थका हुआ जीवनराम लौटकर अपनी पत्नी की गोद में दम तोड़ देता है।

श्यामला जीवन में कई बार भटकती है किन्तु उसकी आत्मा सदैव जीवनराम की रहती है।जीवनराम के मरने के बाद श्यामला के अनुसार-"दो प्राणों को एक सूत्र में बांधता है, वह प्रेम है, विवाह तो दो शरीरों को एक सूत्र में बांधता है।प्रेम तो वह जीवनराम से ही करती है। वर्मा जी ने नारी को विशेषतया वेश्या या समाज की दृष्टि में पति नारी को बहुत ऊँचा उठाया है। उसके हृदय की पीड़ा को समझा है उसके मर्म को छुआ है। "चित्रलेखा" की चित्रलेखा, "तीनवर्ष"की सरोज, आखिरी दांव की चमेली, "वह फिर नहीं आयी" की श्यामला के ऊँचे चरित्र उनकी इसी भावना के परिणाम हैं। शरणार्थी समस्या और सताई हुई शरणार्थी नारी की इतनी मर्मस्पर्शी कहानी बहुत कम देखने में आई है। इस उपन्यास में पात्रों के चरित्र मानवीय कमजोरियों से ग्रस्त होने पर भी बहुत ऊँचे हैं। ज्ञानचंद की सभी दुर्बलतायें मानवीय हैं।

वर्माजी ने जीवनराम के चरित्र भी काफी प्रभावशाली दिखलाया है। उसे दुनियां में किसी पर विश्वास नहीं और यदि विश्वास कर भी ले तो किसी की दया की उसे आवश्यकता नहीं। वह श्यामला से सच्चा प्रेम करता है। जेल से छूट जाने के बाद वह समझता है कि ज्ञानचंद ने उसकी पत्नी के बदले में छुड़ाया है, तो वह कहता है-" तो फिर आ गया आपकी समझ में, आपने मेरी पत्नी ली, मैंने आपका रूपया लिया, हिसाब किताब बराबर।" किन्तु ज्ञानचंद के यह कहने पर कि यह श्यामला तुम्हारी पत्नी है और वह तुम्हारी ही रहेगी वह एकाएक तड़प उठता है। न जाने कहां से दृढ़ता, कठोरता

उस संकुचित जीवनराम में आ जाती है और वह यह कहकर कि "तो मालूम होता है श्यामला आपके सामने रोई और गिड़गिड़ाई है। वह आपके यहां भीख मांगने गई थी। लेकिन ज्ञानचंद जी, मैं आपकी भीख नहीं चाहता। मैं दुनिया में किसी की दया या करुणा नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि मैं आपका रूपया वापस करके ही अपनी पत्नी को आपसे वापस लूँगा। वह चला जाता है। जीवनराम में अटूट दृढ़ता और आत्मविश्वास है। किसी पात्र की विशेषता पर बार-बार किसी पात्र के संवाद द्वारा प्रकाश डलवाकर उसे व्यक्त करने की शैली भगवती बाबू को अत्यंत प्रिय है। इस उपन्यास में जीवनाम की विशेषताओं को व्यक्त करने के लिये कुछ इस तरह का स्थूल तरीका उन्होंने अपनाया है।

जीवनराम कमरे में चला गया और स्त्री ने बेरा को चाय लाने का आर्डर दिया। उसके बाद उसने सन्तोष की सांस लेते हुये मुझसे कहा, देखा आपने इस जीवन राम को कितना भोला है यह, और साथ ही बड़ा भला आदमी है।

रानी श्यामला को अनैतिक कहना या पतित कहना पाठक के लिये संभव नहीं होता। जबकि परम्परावादियों की दृष्टि में वह निश्चय ही पतित सिद्ध होगी। इसका कारण यह है कि भगवती बाबू का नैतिकता-संबंध दृष्टिकोण अलग है जिससे परिचलित होकर रानी श्यामला का चित्रण इस ढंग से करते हैं कि पाठक को उसके कृत्यों से घृणा न हो। इस उपन्यास में नैतिकता के संबंध में भगवती बाबू लिखते हैं।- " नैतिकता कानून से ऊँची है, नैतिकता के साथ कम से कम एक मानवीय गुण है, भावना जनित विश्वास। नैतिकता को कोई दूसरा आरोपित नहीं करता, नैतिकता को स्वीकारकरना अथवा अस्वीकार करना यह हमारी इच्छा पर, हमारी चेतना पर निर्भर है। यहाँ भगवती बाबू ने नैतिकता को सामाजिक नियम या विचार न मानकर स्वतंत्रविचार के रूप में ग्रहण किया है। यही तो इनकी साहित्य सृजन की अनोखी दृष्टि है।

कानून व्यवस्था के संबंध में भी भगवती बाबू ने इस उपन्यास में कुछ कहने का साहस किया है। सबल और निर्बल विषमता की चिरंतनता के आधार पर लेखकर यह मानता है कि दुनियां के जितनेआदर्श और कानून बने है वे सबल व्यक्तियों की स्वार्थ सिद्ध करने के लिये बने हैं। आदर्श इसलिये बने ताकि निर्बलऔर कमजोर व्यक्ति आह न कर सकें। आदर्शों के प्रति वर्माजी आस्था कभी नहीं दिखती है वे कहते हैं- आखिर समाज का संचालन तो व्यक्ति ही करते हैं और यह समाज का संचालन करने वाले इन गिने व्यक्ति अपनी मान्यताओं को समाज पर आरोपित करते हैं। उनकी दृष्टि में कानून वह बनाता

है जो शक्तिशाली हो। हजारों, लाखों करोड़ों आदमियों से अपनी आधीनता स्वीकार कराने केलिये यह कानून बनाया जाता है। पुराने कानून यदि शक्तिशाली लोगों के पक्ष में नहीं हुये तो उन्हें बड़ी निर्दयता से नष्ट किया जाता है।वर्माजी को समाज में प्रचलित बड़ी-बड़ी मान्यतायें थोपी हुई लगती हैं। वर्माजी अपने निजी दृष्टिकोण को समस्याओं को पाठकों के सामने लाकर रखते अवश्य है पर कोई मजबूत समाधान स्पष्ट रूप से नहीं रखते हैं।

आज का मनुष्य किसी न किसी राजनैतिकवाद के माध्यम से इन समस्याओं का कोई समाधान पाना चाहता है। भगवती बाबू इन वादों को अंततोगत्वा मानवीय अहम का कही दूसरा रूप मानते हैं। उपन्यास के माध्यम से किसी निश्चित समाधान को प्रस्तुत करने में अपनी आस्था वैसे भी कभीनहीं रही-" जहां समस्यामूलक उपन्यास किसी निश्चित निदान को निर्धारित करता है वहाँ वह राजनैतिक प्रचार का माध्यम बनकर अपनी कला को खो देता है। वर्माजी मानते है कि राजनैतिक वादों से मानवीय समस्याओं का हल नहीं हो सकता। लेखक अपने अन्तस में प्रगतिशील भावों को छिपायें हुये है और यह सिद्ध करने की कोशिश करता है कि मनुष्यअपना काम ईमानदारी से करता चले इसे ही वे काफी मानते हैं। जो कि सारी समस्याओं का हल है। भगवती बाबू के विचार से सारी समस्याओं का कारण यह है कि मनुष्य की आस्था से भावना मर गई है। वे मानते है कि समस्याओं का निदान भावात्मक ही हो सकता है।

— -

:-सामर्थ्य और सीमा :-
-----x-----x----

प्रस्तुत उपन्यास की समस्या है मनुष्य के सामर्थ्य और सीमा की। भगवती बाबू का यह उपन्यास 1962 में प्रकाशित हुआ था औपन्यासिक तत्वों का सही संतुलन इस उपन्यास में हमको मिलता है। उपन्यास वह विधा है जिसमें कृतिकार अधिक से अधिक विद्यमान रहता है। केवल सौन्दर्य और कोमलता का सृजन करने के लिये उपन्यास नहीं लिखा जाता है। जब केवल इतने ही उद्देश्य लेकर लेखक चलता है तो उस विशिष्ट रचना में विशिष्टता आती है रचनाकार की गहन दृष्टि से और वजनदार कथ्य से। "सामर्थ्य और सीमा" की कथा स्वतंत्र भारत की पृष्ठभूमि पर निर्मित की गयी है। इसलिये स्वतंत्र भारत की सामाजिक,राजनैतिक व सांस्कृतिक समस्यायें व स्थिति

प्रस्तुत उपन्यास में अपने आप ही समाविष्ट हो गई है। "सामर्थ्य और सीमा" की समस्या शाश्वत है इसलिये इसके प्रमुख चरित्र देश काल की सीमा से परे हैं। पूंजीपति, इंजीनियर, कलाकार, आर्टिस्ट, मंत्री आदि का चरित्रांकन विशाल धरातल पर हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास मिटते सामन्तवर्ग और उसके सांस्कृतिक विघटन का सूक्ष्म अंकन ही है। पूंजीपति वर्ग की लूट खसोटवाली मनोवृत्ति को उस वर्ग के आचरण द्वारा प्रतिध्वनित किया गया है। स्वतंत्र भारत की शासन नीति पर भी व्यंग्य किया है। शासन सत्ता जिनके हाथ में है वह अपने स्वार्थों में ही लगे हैं जनता की कौन सुने। वर्माजी की लेखन कला की महानता ही है हालांकि भगवती बाबू अपने को किसी "वाद" में नहीं रखते है और जहां तक हो सकता है दूर रह कर ही अपना कार्य करते हैं लेकिन उनकी भावनायें उनके साथ हैं जो यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में हिचक का अनुभव नहीं करती । इस उपन्यास में भी उनका कई स्थलों पर प्रगतिशील रूप प्रखर हो उठता है। और वे इस युग में व्यक्ति की वास्तविक स्थिति का चित्र उजागर करते हैं।

सुमन पुर स्टेशन, जो कि प्राकृतिक सौन्दर्य को अपने में समाहित किये हुये है में एक दिन 5 व्यक्तियों का आगमन होता है। पहले व्यक्ति हैं हिन्दुस्तान के बड़े भारी उद्योगपति जिनको रतन चंद मकोला कहते है। दूसरे व्यक्ति हैं-विश्वविख्यात इंजीनियर वासुदेव चिंतामणि देवलंकर, जो प्रकृति को अपने वश में रखने का दावा करते हैं। तीसरे व्यक्तिव है देश के सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र "रिपब्लिक" के प्रधान संपादक ज्ञानेश्वर राव। चौथे व्यक्ति हैं पण्डित शिवानंद शर्मा एक साहित्यकार एवं संसद सदस्य। पांचवे व्यक्ति हैं एक बड़े भारी कलाकार। लोगों की राय है कि सरकार का कोई भी कार्य उनके बिना नहीं चल सकता। ये सभी समर्थ व्यक्ति सुमनपुर के विकास के लिये उत्तर प्रदेश के मंत्री जोखनलाल की ओर से आमंत्रित किये गये हैं।

सभी व्यक्ति सुमनपुर के विकास की योजना बनाते हैं। यहीं पर यशनगर की अद्वितीय सुंदरी युवा किन्तु विधवा नारी मानकुमारी से इन लोगों की भेंट होती है। ये रानी मानकुमारी के रूप पर आशक्त हो जाते हैं तथा रानी मानकुमारी के अंदर फिर से जीने के लिये इच्छा प्रबल होने लगती है। वह इन सभी व्यक्तियों के भिन्न भिन्न व्यक्तित्व से प्रभावित भी होती है। रानी के प्रति सभी के हृदय सहानुभूतिहैं और सभी

रानी की सहायता करके उसे पाना भी चाहते हैं। रानी के मन में जीवन के परिवर्तन के इस पूर्वाभास से एक असीम उल्लास जाग्रत होता है और उसके चाचा भी इस उल्लास को जीवन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया ही मानते हैं। साथ ही यह भी संकेत कर देते हैं। कि किसी के स्वप्न पूरे नहीं होंगे। सभी यशनगर से वापस जाने वाले थे कि आकस्मिक वर्षा के कारण यशनगर में भीषण बाढ़ आ जाती है और सभी व्यक्ति भागने का प्रयास करते हैं किन्तु असफल रानी मानकुमारी और नाहरसिंह राजमहल के ऊपर चढ़ अपनी रक्षा का प्रयास करते हैं किन्तु राजमहल टूट जाता है, सभी अथाह जल में समा गये।

भगवती बाबू के अन्य उपन्यासों की भांति इसमें घटनाओं की कमी है और कथानक अत्यंत संक्षिप्त है। इसमें वर्माजी ने आज के युग के व्यक्ति की छटपटाहट, विवशता, निराशा को दिखाने की कोशिश की है जिसके लिये लेखक बाढ़ का दृश्य दिखाकर सभी को उसी में समाहित कर देता है। आज व्यक्ति जिस युग परिस्थिति से गुजर रहा है उसका अंकन इसमें बड़ी सूक्ष्मता और गहनता से हुआ है। सभी में हमें विकृति, विश्रृंखलता, कुंठा और छटपटाहट के दर्शन होते हैं। इस उपन्यास में वर्माजी ने पांचों सक्षम, समर्थ व्यक्तियों के चरित्रों को समाज के विभिन्न व्यक्तियों के रूप में दिखलाया है। इन व्यक्तियों के माध्यम से स्पष्ट होता है कि मनुष्य काफी समर्थ हो गया है- प्रकृति पर निरंतर विजय पाता जा रहा है और देश निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है किन्तु फिर भी इस सामर्थ्य की कुछ सीमा है। आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य प्रकृति पर विजय पाता जा रहा है। पर प्रकृति का एक दूसरा रूप भी है जिसे लेखक ने खोला है। प्रकृति का एक रूप वह भी है जो अजेय है मनुष्य उस पर विजय नहीं पा सकता है। मनुष्य बाँध बांधता है., नहर बनाता है, जंगलों को काटता है तो क्या मनुष्य ने प्रकृति पर पूरी विजय पाली। यहीं लेखक मनुष्य के सामर्थ्य की सीमा दिखाता है। प्रकृति के प्रचण्ड रूप के सामने मनुष्य की हार होती है। कुछ लोगों को "सामर्थ्य और सीमा" का जल विप्लव अस्वाभाविक लगता है। पर पहाड़ों के फटने, बाढ़ के आने के अनेक उदाहरण आते हैं जिससे हम इसकी यथार्थता पर अविश्वास नहीं कर सकते।

सुमनपुर के नव निर्माण के साथ इस उपन्यास की कथा प्रारम्भ होती है। इसके निर्माण व विकास के लिये ही सूक्ष्म, समर्थ, सबल व्यक्ति एकत्रित होते हैं तभी रानी मानकुमारी व उसके परिवार से ये लोग परिचित होते हैं। सुमनपुर और उसके आस पास की

जमीन पर रानी मान कुमारी का अधिकार है। इसी पर ये पुरुष अपने-अपने स्वार्थ के लिये आधिपत्य जमाना चाहते हैं। यहां निस्सहायता और सामर्थ्य का संघर्ष मार्मिक हो उठता है सम्पूर्ण कथानक का यह स्थल प्राण है। कथा की मार्मिकता में वृद्धि होती है सभी व्यक्ति रानी मानकुमारी की सहायता करने के बहाने उसे छल कर पाना चाहते हैं। अपने देश की खोखली नीति पर कैसा व्यंग्य किया गया है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के दर्प और अहम से भी प्रबल मानव में नारी के सामने अपने-अपने ढंग से झुकने की प्रवृत्ति है। यह आज की ही नहीं, युग युग के मनुष्य की संसार के हर कोने के व्यक्ति की प्रकृति की कमजोरी है। इस मूल कथा का विकास वर्माजी ने बड़ी रोचकता से किया है और अंत में पाठक में सजगता चरम सीमा से बहुत पहले ही उग्र हो जाती है। उपन्यास की चरम सीमा में आकर्षण घटना द्वारा उत्पन्न किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास में भी वर्माजी स्वतंत्र भारत की शासन नीति पर व्यंग्य करने से नहीं चूके हैं। उपन्यास मेंचर्चित पांचों व्यक्तियों को काफी समर्थ दिखलाया है फिर भी ये एक निस्सहाय को लूटने की ही तो योजना बनाते हैं। अपने-अपने स्वार्थ में लगे हैं। एक पात्र के शब्दों में-" मंत्री पूँजीपति को उपकृत करते है, सरकारी अफसर रिश्वत खाते हैं, ठेकेदार चोर बाजारी करता है और मजदूर हरामखोरी करता है किसी का कोई कसूर नहीं। बांध बंधेंगे कारखाने लगये जायेंगे और ठप्प पड़े रहेंगे और जनता के लोग पैसे-पैसे पर जान देंगें और बेइमानियों करेंगे। इस तिरह हमारे देश का निर्माण होता रहेगा। इसकथन से यह सिद्ध होता है कि देश की प्रगति में पूँजीपति वर्ग किस तरह बाधक बना हुआ है जिसके फलस्वरूप प्रत्येक श्रेणी का व्यक्ति जालसाजी करता है। आर्थिक संकट के कारण सभी चोर बाजारी व बेईमानी को अपना लेते हैं देश की उन्नति में यह बाधायें एक द्रुगति से प्रवहमान होते हये भी झरने के आगे शिलाखण्ड-सी आकर टकरा जाती हैं लेकिन कुछ साहित्यकारों के माध्यम से इन बाधाओं पर जब व्यंग्य किया जाता है तो ये रुकावटें कम-सी होने लगती हैं और फिर वही प्रवाह, वही गति, वही नवीन चेतना झलकने लगती है वर्माजी ने देश की प्रत्येक समस्या का यथार्थ स्रूपही जनता के सामने रखा है उनकी भावना ही उनका साहित्य है।

राल्फ फ्रैंकिस ने लिखा है-" लेखक को अपनी कृति में उसी तरह व्याप्त रहना चाहियें जिस तरह ईश्वर अपनी सृष्टि में विधमान हुआ करता है, हर जगह उपस्थिति किन्तु अदृश्य है। समस्याओं का यथार्थ चित्र उपस्थित करना ही वर्माजी का उद्देश्य रहा है। एक-एक पक्ष पर ऐसा प्रहार किया है कि पाठक तिलमिला उठे और उसेराजनीतिक सामाजिक

व सांस्कृतिक दृष्टिएक प्रकार के थोथे पैगाम ही नजर आते हैं। लेखक ने इस उपन्यास में सरकार की जमींदारी उन्मूलन नीति पर प्रहार किया। जमींदार गये किन्तु जमींदार के स्थान पर सैकड़ों पैदा हो गये..... चार पांच प्रतिशत आदमियों को सम्पन्न बनाकर उन्हें सम्पत्ति देकर उनमें पूँजीवादी मनोवृत्ति पैदा कर दी गई है। उनमें शोषण और उत्पीड़न के बीज बो दिये गये हैं। इन सब के चित्रण के अतिरिक्त सामर्थ्य और सीमा में हिन्दू मुस्लिम सांप्रदायिक झगड़े, स्वयं भारतीयों की हिन्दी-भाषा विरोधी प्रवृत्ति, वैवाहिक जीवन की विकृति आदि का चित्रांकन हुआ है।

इस उपन्यास की सुशिक्षित सुयोग्य रानी मानकुमारी आधुनिक हैं। जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण स्वस्थ है। आज नवीन चेतना को हृदय में संजोये हुए नारी उमंग, उत्साह विलास, नाच रंग को जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान दे रही है। मान कुमारी विधवा है फिर भी जीने का सुख लेना चाहती है। वह अपने को चिंता वश विराग में डूबों लेना जीवन की अवहेलना ही मानती है। यही तो प्रतिवादी विचारधारायें हैं जो कभी-कभी वर्मा जी के पात्रों के मुख से स्वत: ही निकलने लगती हैं। वैसे तो वर्माजी अपने को नियतिवादी ही मानते हैं क्योंकि जीवन के अनुभव ने उन्हें नियतिवादी बनाया। इस उपन्यास में भी यह नियतिवादी स्वर प्रखर करने के लिये ही शायद भीषण बाढ़ का दृश्य उपस्थित किया गया है। किन्तु नियति पर आस्था ने वर्माजी को निर्जीव व निष्क्रिय नहीं कर दिया है। वह अंत तक संघर्षरत रहते हैं। पराजय स्वीकार कर लेना उनके स्वभाव में नहीं रानी मानकुमारी में आधुनिकता के साथ पुरातन लक्षण भी है। इस अद्भुत सम्मिश्रण ने रानी के चरित्र को और भी अधिक मोहक एवं गरिमामय बना दिया है। इसलिये भावुकता पर वह सदैवविजय प्राप्त करती है। "सामर्थ्य और सीमा" मृत्यु और विनाश, विवशता और निराशा की अनुभूति करा व्यक्ति की कलुषित भावनाओं को दबाने और उच्च भावनाओं को जाग्रत करने की प्रेरणा देती है, यही प्रस्तुत कृति की रचनात्मक उपलब्धि है।

इस उपन्यास में वर्माजी ने स्वातंत्र्योत्तर औद्योगिक विकास की योजनाओं, उसकी कार्यप्रणाली, देश में बढ़ती हुई राजनैतिक दलबंदियों, बढ़ते हुये पूँजीवादी प्रभाव, जमींदारीउन्मूलन तथा उससे उत्पन्न जमींदारों की निराशाजनक स्थिति का वर्णन किया है। इसउपन्यास के माध्यम से रोमानी प्रवृत्ति, वैयक्तिक कुण्ठायें, आर्थिक विपन्नता तथा राजनैतिक चेतना प्रस्तुत की गई है। रानी मानकुमारी को समझाते हुये शिवानंद कहते हैं।

इतनी निराश, इतनी व्यथा रानी साहिबा, इस सबसे काम नहीं चलेगा। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करता है। इस प्रकार शिवानंद जहाँ एक ओर मध्यवर्गीय दुर्बलताओं की प्रतीक है वहीं दूसरी ओर आशा, विश्वास तथा युग की प्रगति चेतना भी उनके माध्यम से व्यक्त हुई है।

थके पाँव :-

वर्माजी का प्रत्येक लघु उपन्यास उनके बृहद् उपन्यास के अति परिश्रम के बाद के विश्राम की देन है। सन् 1963 में प्रकाशित भगवती बाबू का यह "थके पाँव" एक लघु उपन्यास है। बृहत उपन्यासों की तुलना में लघु उपन्यासों का कथानक संकुचित है। किसी भी लेखक की प्रत्येक कृति प्रेरणा स्फूर्ति नहीं होती, कभी कभी कृति की रचना के पीछे प्रेरणा से हट कर अन्य कारण भी हुआ करता है। विवशतावश लेखक ने थके पाँव नाम का एक रेडियो प्ले लिखा था। उसी प्ले को उसने दूसरी बार विवश होकर उपन्यास का रूप देदिया। "थके पाँव" में न तो विषय की गंभीरता ही है और न ही अभिव्यक्ति की नवीनता ही आ पाई है। वर्माजी ने "थके पाँव" विवशताओर झुंझलाहट में आकर ही पूर्ण किया है इसके विषय में वर्माजी ने ~~स्वयंमहीं~~ लिखा है- उसे मैंने कभी महत्त्व दिया ही नहीं। यह प्ले मैंने "थके पाँव" नाम से ही 1953 में लिखा था किसी प्रेरणा से नहीं, एक तरह से विवश होकर।

इस उपन्यास में शहरी जीवन की घुटन को भोगते हुये निम्न मध्यवर्ग के आर्थिक संघर्ष को चित्रित करना उपन्यास का ध्येय होते हुये भी गहराई तक नहीं पहुँचपाता है। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि "थके पाँव" उन कृतियों में है जो लेखक की कीर्ति को घटाती हैं। वैसे लेखक जीवन के भीषण संघर्षों में बैठा है- जीवन एक अनवरत संघर्ष है, उस संघर्ष का केशव को एक अच्छा अनुभव है और इस संघर्ष का अन्त है मृत्यु, जो असफलता और निराशा की प्रतीक है। वर्माजी का यह उपन्यास जीवन के संघर्ष को चित्रित करता है किन्तु उस संघर्ष की भीषणता का अहसास वह नहीं दे पाता है। यह उपन्यास आर्थिक कठिनाई में जकड़े हुये आदमी का "किस्सा" है। संघर्षों में टूटते-पिसते आदमी की पीड़ा है।

पचास वर्षीय आदमी केशव के जीवन की कहानी ही इस उपन्यास की प्रारंभिक

स्थिति है। केशव घर के तखत पर बैठ कर अपने बीते हुये पचास वर्ष के जीवन का मूल्यांकन कर रहा है। वह अनुभव करता है कि उसकी सारी कहानी विवशताकी कहानी है। केशव को अपने जीवन का वह दिन याद आता है जब वह बी०ए० पास हुआ था। हर आदमी की तरह उसने भी बड़े-बड़े सपने देखे थे। अपनी बहिन का भार भी उसी के ऊँपर था उसकी शादी करनी थी पैसे की जरूरत थी। बड़े प्रयासों के बाद एक क्लर्की की नौकरी मिल जाती है और केशव अपने परिवार के भरण पोषण में लग जाता है। इस उपन्यास में वर्माजी ने आर्थिक संकट यथार्थ रूप में चित्रित किया है। सब कुछ त्याग कर अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देने में ही सारा धन व्यय करता है और बड़ालड़का बी०ए०, एल०एल०बी० पास करके इण्डियन एक्सपोर्ट में असिस्टेन्ट मैनेजर बन जाता है किन्तु अस्थायी नौकरी के छूटने के बाद वह पिता की लाइन में आजाता है क्लर्की के लिये मजबूर होना पड़ता है। यहां उस युग के सामजिक आर्थिक दशा का चित्र बेकारी के परिप्रेक्ष्य में रख कर वर्मा जी ने सफलता पाई है।

केशव के छोटे लड़के किशन का दृष्टि कोण परम्परावादी न होकर गंभीर है और व्यावहारिक है वह फक्कड़ व रंगीन मिजाज का है, स्वयं मस्त व दूसरों को भी मस्ती में छिपाने वाला। वह बंबई जाकरअभिनेता बन जाता है और उसकी प्रेरणा से उसकी बहिन माया भी मां बाप से बिना बताये फिल्मों में काम करने चली जाती है और शादी से इन्कार कर देती है। दिन रात मेहनत करनेकेकारण मोहन को टी०वी० हो जाती है। जिसके इलाज में पैसे की आवश्यकता पड़ती है वह केशव के लिये चिंता का कारण बन जाती है। लेकिन मोहन की पत्नी को लेखक ने नये विचारों के रूप में लाकर रख दिया है। जिससे उसमें नवीन जाग्रति के साथ अपने पति केइलाज के लिए सहर्ष नौकरी करने की इच्छा बलवती हो उठती है जबकि केशव तो पुरानी रूढ़िवादी मान्यताओं में पला हुआ है। उसे यह सब आश्चर्य से देखना पड़ता है। लेकिन मोहन की पत्नी दृढ़ संकल्प लेकर अपनी बात अपने ससुर के सामने रखती है।" मैं कहती हूँ इसमें हर्ज क्या है। आजकल स्त्रियां नौकरी करती है तुम ।पति। अपनी नौकरी छोड़कर आराम करो.... और इस बीच कोई अच्छी नौकरी ढूंढों।वर्माजी ने "थकेपांव" में दो नारी पात्रों माधुरी और सुशीला द्वारा समाज की विकृत मनोदशाओं को अलग करना चाहा है चूँकि वर्माजी का यह प्रतिवादी कदम प्रत्येक उपन्यास में परोक्ष रूप में ही आया है। लेकिन सत्यता से दूर नहीं हटा जा सकता वर्मा जी ने ऐसी नारियों का चित्रण पाठको के समक्ष किया है।

जो पुरुषों द्वारा बांधी गई परम्परागत रुढ़ियों एवं रुढ़िवादियों पर प्रगतिशील नारी की विजय का प्रतीक है।

"थके पांव" में केशव का चरित्र पुरानी मान्यताओं रुढ़िताओं से आते प्रोत है किन्तु उसकी अगली पीढ़ी इन मान्यताओं को कुचल देती है। मध्यवर्ग के प्रतीक केशव का व्यक्तित्व देखिये ये अभाव में रह सकते हैं। शीला नौकरी करे। माया स्वावलंबी बनकर अविवाहित रहे। इसेवे बड़ी मुश्किल से सहन कर पाते है। सहन इसलिये करते हैं कि वे परिस्थिति से विवश हैं।

इस वर्ग से आगे एक वर्ग है और जो अपना अलग वर्ग बना रहा है। वह उच्च मध्यवर्ग कहलाता है। यह वर्ग नवीन आदर्शों कोअपना रहा है। परिस्थिति के साथ तेजी से बदल रहा है और इसीलिये उन्नति कर रहा है-चाहे नैतिक पतन करके ही ऊँचा उठा रहा हो। सुरेश, किशन, माया इस वर्ग से छिटक कर अपना अलग वर्ग बना लेते हैं। परिवार का मोह उनमें नहीं रहता है। वर्माजी ने मध्यवर्ग की विषमताओं और खोखली मान्यताओं को उजागर करने का जीवित चित्रण "थके पांव" में किया है। लेखक यह भी स्पष्ट करता है कि युग की बदलती हुई मान्यताओं,आवश्यकताओं और मंहगाई के झंझावात के समक्ष संयुक्त परिवार का ढांचा चरमरा उठा है।

वर्माजी अपने युग की बेकारी की समस्या को भी इस उपन्यास में चित्रित करते हैं। नौकरी पाने के लिये मध्यवर्ग काफी हैरान, परेशान है और सिफारिश का रास्ता ही अपना लेता है। इस धोखा धड़ी ने इसकी अवस्था को और भी अधिक दयनीय बना दिया है। दर-दर की ठोकरें खाना, विवशता की झुंझलाहट, दूसरी अच्छी नौकरी की सदैव तलाश आदि इस वर्ग के लिये कोई नयी बात नहीं है अधिक से अधिक मेहनत करने पर भी यह वर्ग स्वयं में आत्म संतुष्ट नहीं हो पाता है।

इस उपन्यास में शायद कथानक के अभाव में एक ही बात कई स्थलों पर कही गई है जिससे कथानक में शिथिलता सी आ गई है, यहीं नहीं पात्रों की जीवन कथा एक दूसरे से मिलती-जुलती है। रामचंद्र के साथ, केशव के साथ व मोहन के साथ एक ही प्रकार की परिस्थितियां है। और तीनों पीढ़ी के व्यक्तियों के आदर्शों और मान्यताओं

में भी कोई अंतर नहीं दिखलाया गया है। पात्रों का हृदयान्दोलन लेखक बहुत कम दिखा पाया है। इस कृति में रोचकता का अभाव ही रहा है। "थके पांव" एक सामान्य कृति बन कर रह गई। साथही वर्मा जी ने स्वतंत्रता के बाद भारतीय परिवारों को विशृंखला आर्थिक ढांचे और बदलती हुये मान्यताओं को ही इस उपन्यास का मेरुदण्ड बनाया है। केशव के पुत्रों के माध्यम से बदलती हुई मान्यताओं वाली भावी पीढ़ी की कहानी कहकर दहेज प्रथा की भीषण समस्या को उभारा है। इसके अतिरिक्त बेकारी की समस्या भी सामने आई है।

जीवन के कटु सत्य की ओर अधिकांश लोग आंख मूंद लेते हैं पर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने समय और वातावरण की आवाज को पहचानते हैं और अपनी पिछड़ी सड़ी गली मान्यताओं को छोड़कर प्रगतिशील रहते हैं। माया "थके पांव" की विद्रोहिणी नारी है। माया का विरोध आधुनिक नारी वर्ग का विरोध है जो अपने युग की आवश्यकता को पहचान कर प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाते हुये अपने अस्तित्व को बनाये रखती है।

रेखा :-

यह उपन्यास भगवती बाबू ने काम समस्या को लेकर ही लिखा है और 1964 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का मनोविज्ञान बड़ा गूढ़ व अनोखा है। यौन कुंठाओं से युक्त रोमानी आदर्श और कटु यथार्थ भी भटकती हुई भारतीय विवाहित नारी की जीवन व्यथा है। परन्तु कोई समाधान प्रस्तुत करके इस उपन्यास की समस्या को हल करने का प्रयास नहीं किया गया है। शारीरिक तृष्णा और मानसिक बेचैनी की उलझन भरी वीथियों को लेखक टेलीकास्ट नहीं कर सका। इस लिये इसे हमने किसी मद तक ही मनोवैज्ञानिक माना है। उपन्यास यौन कुंठाओं और मानसिक गुत्थियों पर आधारित होने के उपरान्त भी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की पंक्ति में नहीं आ पाया है। क्योंकि भगवती बाबू पात्रों के जीवन के उतार-चढ़ाव को तथा उनकी परिस्थितियों को चित्रित करने में अधिक रूचि लेते हैं। परिस्थितयों का विशद चित्रण करके यह चिंतन करना कि पात्रों के कर्म उचित हैं कि नहीं भगवती बाबू को अधिक प्रिय है। "रेखा" उपन्यास परिस्थितियों की पकड़ में छटपटाते हुये पात्रों की विवशता को चित्रित करते हुये कुछ प्रश्न भर छोड़ जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने दर्शन के माध्यम से पात्रों के तर्कों को सुलझाया है। रेखा एक चरित्र प्रधान उपन्यास है।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रोफेसर डा० प्रभाशंकर के व्यक्तित्व के उपन्यास प्रारंभ होता है जो कि छात्रों को नियमित समय पर कालेज आने की चेतावनी देते हैं। छात्रा रेखा जो कि दर्शन शास्त्र से एम०ए० कर रही है। एक बार रेखा कुछ देर से क्लास में पहुँच पाती है तो वह प्रोफेसर प्रभाशंकर के द्वारा सचेत की जाती है कि भविष्य में वह हमेशा सावधान रहेगी। डा० प्रभाशंकर के प्रति उसका आकर्षण श्रद्धा की भावना से भरा हुआ है। प्रोफेसर प्रभाशंकर एम०ए० फाईनल के डिज़र्टेशन के लिये रेखा का गाइड होना स्वीकार कर लेते है। रेखा के सौन्दर्य और अध्ययन शील व्यक्तित्व के प्रति प्रोफेसर का भी झुकाव होता है। यह आकर्षण एक छात्र व अध्यापक का आकर्षण नहीं बल्कि एक अतृप्त पुरुष का नारी के प्रति आकर्षण है।

वास्तव में प्रोफेसर के प्रति रेखा में असीम श्रद्धा है।यह श्रद्धा प्रारंभ में उसी भाँति की है जो एक गुरुजन के प्रति विद्यार्थी में होती है साथ ही इस श्रद्धा में एक अंतर भी है जो विपरीत सेक्स वाले दो प्राणियों में होता है। और इसी अंतर के फलस्वरूप श्रद्धा प्रेम में परिणत हो जाती है। विधुर प्रोफेसर का देवकी के प्रति भी अनैतिक संबंध है। जब देवकी अपने स्वार्थवश प्रोफेसर से मिलने इलाहाबाद से दिल्ली आती है तब प्रोफेसर अनायास ही देवकी और रेखा की तुलना करते है और रेखा की ओर अत्यंत तीव्रता से आकर्षित होते हैं। रेखा आदर्श और भावुकता से भरे हुये प्रेम से प्रेरित होकर शानदार व्यक्तित्व के मालिक प्रोफेसर के विवाह प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है। यह परिवार वालों के खिलाफ ही होता है परन्तु रेखा स्वेच्छा से ही ऐसा करती है।

रेखा प्रोफेसर के साथ प्रणयसूत्र में बंध जाती है लेकिन शारीरिक अतृप्ति के रूप में रेखा के जीवन में एक कटुता आ जाती है जो उसके चरित्र को पतित करती है। अमेरिका से आये हुये अपने भाई अरुण के मित्र सोमेश्वर से वह शारीरिक संबंध स्थापित करती है। जब सोमेश्वर उससे अपने साथ अमेरिका चलने को कहता है तो वह उत्तर देती है-" शरीर नश्वर है इसलिये शरीर के संबंध बन कर भी टूटने चाहिये। जहाँ तक आत्मा का संबंध है, वह तो तुम्हारे साथ कभी मेरा रहा ही नहीं, रह भी नहीं सकता वह तो प्रोफेसर के साथ है। और मृत्यु पर्यन्त प्रोफेसर के साथ रहेगा। दर्शन की विदुषी रेखा को अपने आपको संतुष्ट करने का यह अच्छा नुस्खा मिल जाता है और फिर एक के बाद एक कई पुरुषों से अपने शारीरिक संबंध स्थापित करती है। जिसका पता प्रोफेसर को लग जाता है और

यहीं से उसके जीवन में कटुता आना शुरू हो जाती है। वास्तव में वर्माजी ने इस उपन्यास मेंएक काम-कुंठा से अतृप्त नारी का चित्र हमारे सामने रखा है क्योंकि रेखा एक वयस्क पुरुष से जो कि 50 साल के हैं विवाह कर लेती है जिससे उसका जीवन कटु हो जाता है। वर्मा जी के प्रत्येक उपन्यास में हमें स्वस्थ जीवन दर्शन के दर्शन होते हैं। किन्तु क्यों "रेखा" हमें अस्वस्थ जीवन दर्शन देती है, ये विचारधारायें हरेक पाठक में स्वत: उठने लगती हैं। वास्तव में यदि "रेखा" पर गहनता से विचार किया जाये तो ज्ञात होगा इसका जीवन दर्शन भी अन्य कृतियों की भांति ही है। भोगवाद के प्रति रेखा में सदैव आस्था रही है, वह उस अध्यात्म वाद पर विश्वास कभी नहीं करती जिसमें आत्मा का हनन किया जाये। वर्माजी के विचार देखिये रेखा के शब्दों में-" शरीर की कमजोरियों पर विजय पाई जा सकती है अपनी आत्मा को दबा-कर, उसे कुंठित करके। हमारे धर्मशास्त्रों का कमजोरी पर विजय पाना-कितना भोड़ा विधान है। "रेखा के जीवन में इसीलिये असंतुलन है क्योंकि प्रारंभ में ही वह अपनी आत्मा का हनन आवश्यकता से अधिक करती है, पर जब एक बार वह गलती कर बैठती है तो उसकी जिंदगी का द्वार इन गलतियों के लिये खुल जाता है और उसका आत्म संशय समाप्त हो जाता है। "रेखा" हमें जीवन के इसी असंतुलन से परिचित कराती है।

"रेखा" प्रोफेसर को बेहद चाहती है और उसने प्रोफेसर को स्वेच्छा से वरण किया है। किन्तु समाज यह सब देखकर चुप नहीं रह पाता है। व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छाओं में यह समाज मान्यतायें रूप में आकर टकराती रहता है जिन्हें तोड़ना व्यक्ति के लिये दुष्कर हो जाता है-" कुछ रुक कर योगेन्द्रनाथ ने रेखा से कहा मेरा ऐसा खयाल है कि प्रोफेसर की उम्र बावन तिरेपन साल से कम न होगी "आपका अनुमान ठीक है रेखा बोली। एकाएक योगेन्द्रनाथ की आंखे चमक उठी आगया समझ में, सुनिये आपकी सखी ज्ञानवती वही गलती कर रहीहै जो आपने दो साल पहले की थी...... रेखा के मुख की रेखायें कठोर हो गईं, और उसके स्वर में दबा हुआ विस्फोट आ गया था। तब उसने कहा-" तो आप समझते है कि मैने प्रोफेसर से विवाह करके गलती की। आपको यह मुझसे कहने की हिम्मत कैसे पड़ी। मैने आपको एक बुद्धिमान सभ्य और सुसंस्कृत आदमी समझा था। रेखा की मानसिक उलझनअधिक हो जाती है। और वह गहराइयों में डूब कर अपने को विस्मृत करने की कोशिश करती है। वर्माजी ने स्पष्ट संकेत दिया है कि सामाजिक मान्यताओं का उल्लंघन करने वाले को कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। वास्तव में रेखा

को छोटी सी गंभीर वृद्ध प्रोफेसर से विवाह कर लेने से तमाम उलझनों का सामना करते हुये अपमानित भी होना पड़ता है। रेखा व प्रोफेसर जब दिल्ली से मंसूरी जाते हैं तो एक चित्र देखिये-" जब से रेखा दिल्ली से चली है तब से हरेक स्टेशन पर कुछ मनचले युवक अवश्य ही रेखा के कम्पार्टमेंट में चक्कर लगा जाया करते हैं। अब उनकी समझ में यह रहस्य आया कि उन युवकों की दिलचस्पी उसमें इतनी अधिक इसलिये है कि उसके साथ एक बूढ़ा आदमी सफर कर रहा है और वह बूढ़ा आदमी उसका पति है। यह रहस्य जनकर कुछ झुंझलाहट हुई। लेकिन इससे ज्यादा उसे हंसी भी आई।

"रेखा उपन्यास में वर्मा जी ने स्वच्छंद प्रेम तथा वैवाहिक चुनावके सवाल को उठाया है। रेखा कालेज की छात्रा है और स्वच्छंद प्रेम को ही जीवन का लक्ष्य मानती है। बदलते हुये जीवन मूल्यों एवं मान्यताओं का आभास प्रभाशंकर व रेखा की माता से हुई बात चीत से स्पष्ट होता है प्रभाशंकर कहते हैं- माताजी आधुनिक युग में तो लड़कियां स्वयं अपना पति चुना करती हैं, आप चिंता करना छोड़ दें। लेकिन विवाह का विकृत रूप जैसा कि प्रभाशंकर व रेखा का अनमेल विवाह है वह असफल दिखलाता है। विवाह संबंधी गंभीर मामलों में वर्माजी माता व पिता का सुझाव नितांत आवश्यक मानते हैं। वर्माजी ने अपने उपन्यासों में अनेमल विवाह, बहुविवाह पर बहुत तीखे व्यंग्य किये हैं। वर्माजी ने इन अनमेल विवाहों से उत्पन्न कटुता, संदेहास्पद वातावरण, दुखी दाम्पत्य जीवन, नारी धर्म जैसे गंभीर सामाजिक सांस्कृतिक प्रश्न भी उपस्थित किये हैं। स्पष्ट है कि वर्मा जी अनमेल विवाह के कट्टर विरोधी हैं। इस प्रगतिवादी युग में तो और भी अधिक इन अनमेल विवाहों की कड़ी आलोचना होती है। युगों से लगा हुआ यह वटवृक्ष आज प्रगति के झोंकों से टूट गया, गिरगया, सूख गया।

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में अहंवादी पात्रों को पराजित ही चित्रित किया है। "रेखा" उपन्यास के प्रोफेसर प्रभाशंकर को भी हम अहम् के सींखचों में बांधा हुआ पाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रोफेसर को गम्भीरता और शालीनता का आवरण उपन्यास के अन्त तक उतर जाता है। अपनी सुविधा के लिये प्रोफेसर प्रभाशंकर डा० योगेन्द्रनाथ को ओस - लो विश्वविद्यालय जाने को मजबूर करते हैं। जाते-जाते योगेन्द्र नाथ संकेत दे जाता है कि सारे प्रकरण के मूल दोषी स्वयं प्रभाशंकर हैं। "योगेन्द्रनाथ जाते जाते उनपर प्रहार कर जाता है-

प्रभाशंकर ने अनुभव किया और उस प्रहार से प्रभाशंकर तिलमिला उठे। प्रभाशंकर ने जो चाहा वही हुआ, कहीं भी उन्हें योगेन्द्रनाथ से किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं मिला, लेकिन प्रभाशंकर के अन्दर यह भावना भर गई कि वह पराजित हुये और उनके अंदर एक अशांति भर गयी। अपना सिर थाम कर वह बैठगये। क्रोध और पराक्रम की यह चुभन। उन्हें ऐसा लग रहा था कि उस पीड़ा से वह बेहोश हो जायेंगे। प्रभाशंकर अपने ही द्वारा उत्पन्न किये गए मानसिक तनाव के कारण मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

वास्तव में भगवती बाबू यह दर्शाना चाहते है कि अहम की अति मनुष्य के लिये घातक है। ऐसा अहम जो मनुष्य को सारी दुनिया के और ईश्वर के सामने भी विरोधी बनाकर खड़ा कर दे, मनुष्य के पतन और विनाश का कारण बनता है। मनाव के अंदर अहम हो यह ठीक है पर वह अपने को कर्ता न समझे, इसी में उसका कल्याण है। सामाजिक, धार्मिकनियम, प्रतिबंध उतने ही प्रिय हो जहां तक उनकी संगति मनुष्य की भावना में मिल गयी हो।

:- सीधी सच्ची बातें :-
----x----x----

भगवती बाबू का यह पाँच सौ चौसठ पृष्ठों का बृहत्त उपन्यास है। यह 1968 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास को "भूलेबिसरे चित्र" की अगली कड़ी के रूप में लिखा है। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि 1938 से 1948 तक का काल है जिसमें त्रिपुरा कांग्रेस से लेकर बापू की मृत्यु तक की घटनायें हैं। "सीधी सच्ची बातों" में राजनैतिक गतिविधियों का अंकन अधिक विस्तार से हुआ है। गोरे काले का मतभेद हिन्दू मुस्लिम समस्या, राजा महाराजों की स्थिति, भारतीयों की नवीन चेतना आदि अपने सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिवेश के साथ चित्रित हुई हैं। "सीधी सच्ची बातें" उनके "टेढ़े मेढ़े रास्ते" और "भूले बिसरे चित्र" की परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। कांग्रेस की स्थापना 1885 में हो चुकी थी और कुछ ही समय में उसका आंदोलन तीव्र होगया था तीनों उपन्यासों की कथा 1885 और 1948 के भारत को पृष्ठभूमि पर निर्मित हैं। और तीनों उपन्यासों में स्वाधीनता आन्दोलन का उत्साह देश भर में ऐसा छागया था कि बूढ़े, जवान बच्चे, स्त्रियाँ, गरीब, अमीर सभी बड़े, उमंग के साथ भाग ले रहे थे। सभी वर्गों में एक प्रकार का आनंद समा गया था, बड़ी खुशी-खुशी जेल जाते थे। सभी वर्गों में एक प्रकार का आनंद समा गया। बड़ी खुशी=खुशी जेल जाते थे, अंग्रेजी सरकार हैरान

थी। यह युग था प्रगतिवादी जहां क्लर्क, इंजीनियर, मजदूर, किसान, सभी अपने को समझ कर एक होकर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने को तैयार थे किन्तु एक और ऐसा भी वर्ग था जो स्वाधीनता अंदोलन को कुचलने में अंग्रेजों का साथ दे रहा था। यह थे सरकारी अफसर और जमींदार जिनका स्वार्थ अंग्रेजों से जुड़ा था।

हिन्दुस्तान की गुलामी बहुत बड़े अंश में व्यापारिक व आर्थिक गुलामी थी। इंग्लैण्ड की व्यापारिक नीति से हिन्दुस्तान के पूंजीपतियों को बहुत धक्का लगता था। इसलिये व्यापारी वर्ग अपने हित के लिये स्वतंत्रताआंदोलनों में भाग ले रहा था और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लड़ रहा था। भारत में स्वाधीनता आंदोलन कई लोगो ने उठाया पर यह वर्ग केवल कांग्रेस का साथ दे रहा था, क्योंकि कांग्रेस द्वारा विदेशी माल का बहिष्कार और देशी की खपत हो रही थी। कांग्रेस मूवमेण्ट इन्हीं के बूते पर चल रहा था और यही पार्टी स्वाधीनता आन्दोलन की सबसे मजबूत पार्टी थी। "टेढ़े मेढ़े रास्ते" का झुकाव क्रांतिकारी हो गया था किन्तु "सीधी सच्ची बातें" में क्रांतिकारी दल को न तो लेखक ने छुआ और न उसमें रूचि ही ली है क्योंकि समय के साथ इन विभिन्न पार्टियों की कार्यकारिणी और गतिविधियों में अंतर आ गया जिसमें लेखक के विचारों में परिवर्तन भी आ गया।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के शोध-छात्र जगत प्रकाश को केन्द्र बनाकर इस उपन्यास का श्रीगणेश किया गया है। राजनीति में रूचि न होने पर भी वह अपने मित्र कमलकांत के कहने पर त्रिपुरी कांग्रेस देखने जाता है। वहां वह देश की बदलती हुई राजनीति, देश की प्रगति की ओर बढ़ते हुये जन समूह को, तथा देश के अत्यंत समृद्ध लोगों कोदेखता है। जसवंत कपूर, त्रिभुवन मेहता, कुलसुम तथा मालती कापरिचय उसकी जीवनधारा को बदल देता है। बीमार कुलसुम को पहुंचाने जब जगतप्रकाश बंबई जाता है तो वहां उसकी भेंट जमील काका से होती है जो उसी के प्रांत के व्यक्ति हैं तथा बंबई के सक्रिय कम्युनिस्टपार्टी का कार्यकर्ता है। जमील के साथ वह बंबई का असली रूप देखता है और साम्यवादी विचारधारा का पहला पाठ सीख लेता है। पार्टी से उसके जीवन में एक साम्यवादी सेवक के गुण भर जाते हैं और देश की प्रगति में आगे बढ़ते हुये जन समूह को साम्यवाद का संदेश देता है।

कुलसुम के प्रति उसके मन में आकर्षण जागता है और कुलसुम भी जगत की ओर आकृष्ट

होती है रिसर्च पूरी करके जगत विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हो जाता है किन्तु उसे कम्यु-निष्ट समझकर बंश गोपाल वकील उसे गिरफ्तार करवाकर कंसन्ट्रेशन केम्प देवली भेजदेते है। जहाँ वह सचमुच कम्युनिस्ट बन जाता है देवली केम्प से छूटकर उसे मालूम होता है कि कुलसुम ने परवेश सेशादी कर ली है तो उसका मन इतना कड़वा हो उठता है कि वह सेना में भर्ती हो जाता है तथा कमीशन प्राप्तकरके द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी के विरुद्ध लड़ने के लिये मित्र राष्ट्रों के मोर्चे पर चला जाता है। किन्तु वह युद्ध की विभीषिका नहीं सहन कर पाता है। खून व हत्यायें, मार, काट देख कर उसका मन कमजोर हो जाता है और सेना मुक्ति प्राप्त करके भारत लौट आता है। आंदोलन दबाने के लिए फौज द्वारा अंधाधुन चलाई गई गोलियों से उसकी बड़ी बहिन की मृत्यु हो जाती है जो उसके जीवन की एक मात्र सहारा थी। जगत को इलाहाबाद विश्वविद्यालय में फिर सेनौकरी मिल जाती है। कुलसुम ने निमंत्रण पर वह नौकरी से इस्तीफा देकर बंबई पहुँच जाता है जहाँ उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हो सका है न विश्वविद्यालय की नौकरी पाता, न कम्युनिस्ट रह पाता, न कांग्रेसी बन पाता और न मालती का प्यार ही पा पाता है। वह दुनियां की गतिविधियों से परेशान होकर अपने को दुनियां में मिसफिट पाता है जब जमील काका भारत-पाक विभाजन के बाद पाकि-स्तान चले जाते हैं तो उसे और भी दुख होता है। इससे भी अधिक दुख उसके जीवन में तब आता है जब गांधी जी की मृत्यु होती है। गांधी जी की हत्या का समाचार सुन-कर उसका हार्ट फेल हो जाता हैं। और स्वप्न लोक में विचरने वाली उसकी प्रेमिका उसे "फरिश्ता का खिताब दे देती है उपन्यास इस तरह समाप्त होता है-" कुलसुम ने बढ़कर जगत प्रकाश का हाथ पकड़ लिया, उसकी नब्ज जाती रही थी उसने पीछे हट कर कहा, "गया महात्मा के पीछे पीछे एक फरिश्ता भी गया" और उसकी आंखों से दो आंसू टपक पड़े।

देश का राजनैतिक वातावरण उसके सामाजिक और आर्थिक विघटन और संक्रमण का कारण बनरहा था। देश में स्वतंत्रता आंदोलन जोरों पर अवश्य था, पर उसकी भी अपनी कमजोरियां थी क्योंकि जनता और उनके नेताओं के मतैक्य के अभाव में देश कोई नि-श्चित और ठोस कदम नहीं उठा पा रहा था। गांधी जी की अहिंसा पर लोगों का अटूट विश्वास था किन्तु उसकी निष्क्रियता और कायरता लोगों की प्रतीक्षा की घड़ी असह्य बना रही थी। हिन्दू, मुस्लिम मद और ब्रिटिश सेना तथा देश की पुलिस की निर्दयता के अतिरिक्त इस आन्दोलन में कुचले जाने का चित्रण "टेढ़े मेढ़े रास्ते" में किया गया है। मंहगाई बेतहाशा बढ़ती जा रही थी। एक और एक छोटा सा वर्ग बेतहाशा अमीर बनता

जा रहा था और दूसरी ओर करोड़ों व्यक्ति अभाव ग्रस्त होते जा रहे थे। फलत: भारत छोड़ो आन्दोलन की असफलता ने देश को तोड़ कर रख दिया। "सीधी सच्ची बातें" में लेखक ने युगीन भारत का चित्र रखा है। इस वृहत्त उपन्यास में मुख्य कथानक के साथ प्रासंगिक कथायें, घटनाओं का जिक्र और उनपर बाद विवाद ही भरा पड़ा है। व्यर्थ के चिंतन से उपन्यास का कलेवर आवश्यकता से अधिक बढ़ गया है। हर पात्र दार्शनिक की भांति बोलता है।

"सीधी सच्ची बातें" में लेखक कांग्रेस और उसके कार्यकर्ताओं के बाद विवाद समाजवाद, और उसको- अनुयायियों की निष्क्रियता, प्रगतिवाद और उसकी विकृतियों को सीधे सच्चे ढंग से प्रस्तुत करता है। कांग्रेसी आंदोलन तथा अहिंसा की नीति पर वर्मा जी ने कभी भी आस्था नहीं दिखाई है। लेखक जमता है कि गांधी में एक सबल व्यक्तित्व था, वह महान थे, वह देवता थे। पर वह यह भी मानते हैं कि उनके द्वारा अपनाई गई अहिंसा जनता में निष्क्रियता ला रही है। लोग अहिंसा की अफीम खा खा कर अंधे होते जा रहे हैं। औरैर जो यह अनुभव कर रहे थे कि अहिंसा से काम न चलेगा इनका दल समाजवाद की ओर झुक रहा था। इनकी विचारधाराप्रगतिवाद से बहुत कुछ मेल खाती थी। यह समाजवादी दल वर्ग-भेद ऊँच-नीच मिटाने में लगा हुआ था। "सीधी सच्ची बातें" के पात्र इसी साम्यवादी विचारधारा के है। पर ये सब उच्च वर्ग मध्यवर्ग के है इसलिये कम्युनिष्ट उनके लिये शौक और फैशन की चीज बन कर रह जाती है। क्योंकि वह अभावों में पली हुई कुंठाओं को नहीं समझ पाए हैं। "सीधी सच्ची बातें" में कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के इसी व्यक्तित्व को सीधे सच्चे रूप में प्रस्तुत किया गया है।

जगत प्रकाश जो अभी तक अहिंसा की पवित्रता पर अटूट विश्वास करता था, जो महात्मा गांधी को महान मानता था। वह साम्यवाद पर गहरी आस्था का अनुभव करने लगता है। धीरे धीरे उसका विश्वास हो जाता है कि केवल समाजवाद में यह क्षमता है जो दुनियां को एक बना सके। उसकी समस्या को हल करके विश्वशांति स्थापित कर सके दुनियां के दुख दैन्य का एक ही इलाज है- समाजवाद। व्यक्तिगत स्वार्थ बेईमानी झूठ जगत प्रकाश के स्वभाव के परे की चीजें है। फलत: अच्छाई, नैतिकता और आदर्श पर विश्वास करने वाले जगतप्रकाश के लिये का अनुभव भी बड़ा तीखा और मर्मघातक होता है। एक अंग्रेज अफसर हिन्दुस्तानी अफसर को अपने सेनीचा समझे यह क्यों क्या हमारा रंग काला है, या जो शक्तिशाली है, समर्थ है, वह श्रेष्ठ है। जो निर्बल और असमर्थ है, वह पतित है। मानवता और आदर्श की लड़ाई में भाग लेने के लिये जो जगतप्रकाश सेना मे

भरती होकर आया था, वह युद्धक्षेत्र में आकर किन्हीं और ही विचारों में खोगया। उसे लग रहा था हिंसा विनाश है, निर्माण नहीं है। बिना विनाश के निर्माण संभव नहीं। मानव समाज में नयी परम्पराओं का यदि निर्माण करना है तो उसकी प्राचीन दूषित और विकृत परम्पराओं को नष्ट करना ही होगा। वर्माजी इन परम्पराओं के लिये यही कहते हैं कि ये परम्परायें तो मनुष्य द्वारा निर्मित हैं मनुष्य की भावना की उपज है। भावना बदली जा सकती है। विकृतियों को केवल हृदय परिवर्तन द्वारा नष्ट किया जा सकता है- महात्मा गांधी का यह मत है। इस नर-संहार से तो मनुष्य के अंदर घृणा उभरती है। घृणा और हिंसा से समाज की विकृतियों को दबाया जा सकता है। जगतप्रकाश हिंसा-अहिंसा की एक नई और मौलिक व्याख्या से ओतप्रोत है। यह उस हिंसा पर विश्वास करता है जो मानव कल्याण के लिये आवश्यक है और उस अहिंसा पर अविश्वास करता है जो मनुष्य में कायरता और नपुंसकता भर दे। जगत प्रकाश में हृदय की सच्चाई और अनुभूति की गहराई है, किन्तु जीवन के कटु अनुभव उसे तोड़ कर रख देते हैं।

लेखक कई स्थलों पर गीता के कर्मवाद पर विश्वास करता हुआ दिखाई पड़ता है। गीता के कर्मवाद में विश्वास करना हीउसकी आस्था का प्रमाण है। अपनी नवीन कृतियों में वह अधिक स्पष्ट शब्दों में गीता को मानवीय समस्याओं और उलझनों के समाधान के रूप में स्वीकार करता है। इस उपन्यास में सांसारिक विभीषिकाओं से त्रस्त जगत परवेज के आग्रह पर गीता पढ़ता है और शांति प्राप्त करता है। और इन्ही संघर्षों में उसका चरित्र प्रस्फुटित हुआ है। वह अपने आचरण पर स्वयं मनन करता है और दूसरों से उसका विश्लेषण करता है। इस उपन्यास में औपन्यासिक गुणों का तो नितान्त अभाव है पर भारतीय समाज और जनमानस की हलचलों का चित्रण सफलता से हुआ है।

स्वाधीनता आंदोलन में कितनी ही विसंगतियां पल रहीं थी। आंदोलन ने राजनैतिक चेतना के साथ साथ-कितने ही समाज-सुधार कार्यक्रम अपनायें थे। कितने ही कांग्रेसी इन कार्यक्रमों के समर्थन का ऊपरी प्रदर्शन करते थे। हरिजन उद्धार आंदोलन की कलई इस उपन्यास में लेखक ने उतार कर रखदी है और उसकी विकृति को सामने, प्रस्तुत कर दिया है। हरिजन सुखलाल और शिवदुलारी के विवाह के भोज के विषय में बाबू राम और जगत में हुई बातचीत देखिये-बाबूराम बोला, यह सुखलाल इसने अपने पिता की मर्जी के खिलाफ शादी की है हिन्दुओं के अनुसार यह शादी हो ही नहीं सकती थी

लेकिन कांग्रेस नेता ने आर्यसमाजी ढंग से शादी करवा दी। जब तक कोर्ट में ये लोग रजिस्टर्ड मैरेज न करवा लें तब तक शादी कानूनी नहीं हो सकती। तिलकहाल में तमाम कांग्रेस मैनों कोदावत दी गई है, अपने घर में दावत देने की हिम्मत नहीं पड़ी। और जनता है सुख-लाल के घर खाना खाने, ऊपर से यह हरिजन का मामला ठीक है।

क्यों महात्मा गांधी तो हरिजनों के बीच ठहरते हैं, हरिजन बस्ती में रहते हैं, हरिजनों के साथ खाना खाते हैं। हरेक कांग्रेस मैन महात्मा गांधी का अनुयायी है।

अरे महात्मा गांधी आदमी थोड़े ही हैं वह तो देवता हैं, साक्षात भगवान।यह छुआछूत, यह जाति पांति-थे मनुष्यों पर लागू होते हैं देवताओं पर नहीं।

कांग्रेस में घुसे हुए मतलबी लोग अपने निहित स्वार्थ के लिये देश भक्ति के नाम पर औरों का माल किस तरह हड़प रहे थे इसे अंगनूशाह के माध्यम से लेखक ने प्रस्तुत किया है। जमील की विधवा फूफी का मकान कांग्रेसी अंगनू पार्टी दफ्तर के नाम पर सस्ते से सस्ते हड़प लेता है। जमील अहमद के इन शब्दों में तीखा व्यंग्य देखिये-यह लूट नहीं है बरखुरदार,यह देश भक्ति है। अंगनू कांग्रेस के नाम पर मकान खरीद रहा है हजार रुपया अपने पास से देकर। यह अंगनू का त्याग नहीं तो क्या है।वह यह कहता है कि फूफीजान भी त्याग करें-यानी, एक हजार रुपये से वह गम खायें।

गांधी महान थे, स्वाधीनता आंदोलन गौरवशाली आंदोलन था, लोगों के त्याग झूठे नहीं थे पर यह भी सत्य है कि हलचलों के पीछे विसंगतियां भी थीं और स्वाधीनता आंदोलन के साथ प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियां भी जुड़ी हुई थीं। इस आंदोलन में शामिल पूंजीपतियों की देशभक्ति का आवरण नकली था। इस बात को जमील अहमद इस तरह व्यक्त करता है-- "हां बरखुरदार ब्रिटिश साम्राज्य को मिटाने में दिलचस्पी कैसे है, देश के इस पूंजीवाद को ही तो है, जो विदेशी पूंजीवाद का इतना नंगा नाच होगा कि लोग त्राहित्राहि करने लगेंगे। बनियों का राज होगा इस देश में।--

भगवती बाबू के उपन्यासों में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भी काफी विचार किया गया है। हिन्दू और मुसलमान की समस्या वर्माजी के दृष्टिकोण से केवल राजनैतिक और धार्मिक नहीं है। उनके मत में यह सांस्कृतिक है। हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी दुर्बलता है यह

मानते हैं, कि यह सामाजिक नहीं है बल्कि वैयक्तिक है, दूसरी ओर इस्लाम धर्म सामाजिक है पर उसमें संकुचित सामाजिकता है, अतः वह व्यर्थ की हिंसा पर उतारू हो जाता है। हिन्दू धर्म स्वयं ही अपने समर्थकों को विभाजित करता है। ऐसी स्थिति में व अन्यों के साथ उसकी एकता की कल्पना हास्यास्पद है--" तुम्हें अपने को हिन्दू कहने में शर्म आती है। तुम तो छोटेछोटे फिरकों में बंटे हुए हो, ब्राम्हण, बनिया, ठाकुर, अहीर, चमार। और जब इनसे ऊपर उठे तो इन्टरनेशनल बन गये।

हिन्दू मुस्लिम समस्या का सबसे दुखद पक्ष हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का बंटवारा है। धर्म के आधार पर देश को बंटवारे के कगार पर खड़ा कर देना अंग्रेजों की बड़ी भारी राजनैतिक चाल थी। राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त हिन्दू -मुसलमानों ने कभी बंटवारे की जबरदस्त तैयारियां हो रही है और यह बंटवारा हिन्दुस्तान को तोड़ कर रख देगा। किन्तु साम्प्रदायिक दंगों की छाया में देश का बंटवारा हुआ। जमील अहमद जैसे उदारवादियों ने भी स्वतंत्र भारत में अपना भविष्य अनिश्चित समझा और पाकिस्तान की राह ली। भगवती बाबू ने अपने उपन्यासों के माध्यम से बार-बार यह व्यक्त किया है कि यह समस्या राजनैतिक स्वार्थ और समझदारी के अभाव के कारण अभी तक उलझी हुई है।

वर्माजी ने सामाजिक समस्या की गहरी छानबीन अपने उपन्यासों के माध्यम से की है। आज हर संप्रदाय और तंत्र, कम से कम ऊपरी तौर पर, मानवीय विचार स्वातंत्र्य और समानता का समर्थन करता है। वर्ग भेद के आधार पर होने वाली क्रूरता को समाप्त करके औसत मनुष्य को जीवन की अधिकतम सुविधायें समान तौर पर प्रदान करना ही इसका उद्देश्य है। वर्माजी के उपन्यासों में अक्सर प्रगतिशील चिंतन प्रखर हो उठा है।

:- सबहिं नचावत राम गुसाईं :-

-----x-----x-----x-----

1970 में प्रकाशित भगवती चरण वर्मा का उपन्यास "सबहिं नचावत राम गुसाईं" पढ़ने से कथा गढ़ी हुई नहीं बल्कि घटित हुई सी प्रतीत होती है उपन्यासों के क्रमिक विकास की पिटी पिटाई परिपाटी से भिन्न एक नई शैली और अभिव्यक्ति के नयेआयाम इस उपन्यास की विशेषता है। कथ्य और शिल्प

के अद्भुत संतुलन के कारण उनकी परिवर्तीकृतियों में यह कृति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। विश्वयुद्ध के समय जो रिश्वतखोरी, कालाबाजारी शुरू हो गयी, वह बढ़ते-बढ़ते किस तरह स्वतंत्र भारत में व्यापक रूप धारण करती है। तिकड़मबाजी और दादागिरी के बल पर सामन्तशाही शासन प्राप्त होता था। किन्तु स्वाधीन प्रजातान्त्रिक युग में भी उसी का बोलबाला है, केवल उसका स्वरूप बदल गया है- इन बातों का कच्चा चिट्ठायह उपन्यास अत्यंत स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत करता है। लेखक की शैली में अपार व्यंजना है और इस कारण स्थूल चित्रण माध्यम से सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण बड़ा सफल बन पड़ा है।

" सबहिं नचावत राम गुसाईं" वर्माजी का नायक विहीन उपन्यास है। इसमें तीन कहानियों केसंदर्भ में तीन ही नायक रखे गये। पहली कहानी का नायक है राधेश्याम जो बुद्धि का प्रतीक है। दूसरी कहानी का नायक है- जबरसिंह जो भाग्य का प्रतीक माना गया है तथा तीसरी कहानी का नायक है रामलोचन जो भावना के प्रतीक के रूप में आया है। बनिये में बुद्धि का कौशल है, भाग्य की विडम्बना और भावना की उपलब्धि ही तो है कि एक परचूनी का पोता सफल उद्योगपति बन बैठता है, एक डाकू का पोता मंत्री बन बैठता है, और ब्राह्मण का पोता डी०एस०पी० बनकर भी मन की आवाज की उपेक्षा नहीं कर पाता है।

अपने खिलौने केबाद वर्माजी की यह दूसरी व्यंग्य कृति है किन्तु दोनों कृतियों में एक मूल अंतर है। "अपने खिलौने" में व्यंग्य में तीक्ष्णता है और वह व्यक्ति विशेष पर किया गया है, किन्तु "सबहिं नचावत राम गोसाईं" का व्यंग्य न तो तीक्ष्ण ही है और न व्यक्ति विशेष पर किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में वर्माजी का सारा आक्रोश समाज के उन विकृत तत्वों पर है जो आज सामाजिक एवं मानवमूल्यों के विघटन का कारण बने हैं। इन विकृति को लेखक ने अलग-अलग वर्गों में पाया है। राधेश्याम उद्योगपति वर्ग की विकृति प्रकट करता है, जबर सिंह राजनीतिक नेता वर्ग की विकृति और कामरेड, मार्तण्ड, रवीन्द्र समाज सुधारक वर्ग की विकृति प्रकट करते हैं। समाज में व्याप्त विषमताओं, विडम्बनाओं पर भरपूर व्यंग्य होने के उपरान्त भी मानवीय अच्छाई पर आस्था प्रकट की गई है। यह कृति आक्रोश को व्यक्त नहीं करती बल्कि जग का मुजरा लेख की मुद्रामें केवल तीखी मुस्कराहट को व्यक्त करती है। आशा से भरा हुआ स्वर इस कृति में निहित व्यग्य को

एक नई अर्थसार्थकता प्रदान करता है। यह उपन्यास चारखण्डों में लिया गया है और तीन विभिन्न कहानियों को सामने रखता है।

:- राधेश्याम-बुद्धि :-
---x---x---x----

उपन्यास के प्रथम खण्ड में देश के पूँजीपति वर्ग की निरंतर बढ़ती हुई हरामखोरी की कहानी है लाला घासीराम किराना के डंडी मारना, कम तोलना खास गुण थे। उनका पुत्र मेवालालअपने पिता से आगे रहता है। जालसाजी के बल पर पिता की हजारों की दौलत को लाखों में बदल लेता है। और मेवालाल का पुत्र राधेश्याम उच्च प्राप्त करके अपनी बुद्धि के बल पर देश का बड़ा भारी उद्योगपति बन जाता है। राधेश्याम वास्तव में बेईमानी और मौकापरस्ती का ही बौद्धिक रूप रखता है। वह जेसुखलाल से उद्योगपति बनने का उपाय सीखता है और द्वितीय विश्वयुद्ध की फौजों को घटिया माल सप्लाई करके उद्योगपति बन जाता है। जब भारत की स्वाधीनता के लक्षण दीखते हैं तो यह खद्दरधारी बन कर स्वतंत्र देश में भी बेईमानी करने का लाइसेन्स प्राप्त करता है। अपने उद्योग को बराबर कायम रखने केलिये और बढ़ाने केलिये यह पैसों के बल पर मंत्रियों की आवाज अपने साथ मिला लेता है।

उपन्यास के प्रथम खण्ड में हीदेखिये इसके कथानक का ताना बाना व्यंग्य भाव से बुना गया है। प्रत्येक विवरण व्यंगात्मक शैली में लिखा गयाहै। घासीराम का डंडी मारना बेटे से पिटना, और फिर अपने पापों का पश्चाताप करने केलिये तीर्थ यात्रा के लिये प्रोग्राम बनाना, मेवालालके द्वारा धार्मिक उपद्रवकरा के म्युनिसपल बोर्ड की जमीन कब्जे में करके धर्म के नाम पर वहाँ मंदिर बनवाना और उसी मंदिर के तहखाने में ब्लैक का रुपया रखना आदिधर्म के नाम पर आडम्बर रखने वालों पर अनोखा व्यंग्य ही तो है। इसके अतिरिक्त पिता अपने पुत्र को विलायती शिक्षा इसी लिये दिलवाता है कि वह जालसाजी बेईमानी में विलायत की तरह हो जाय क्योंकि जाल बट्टा लूट खसोट और बेईमानी में हमविलायत वालों से बहुत पीछे हैं, यानी हमारे तौरतरीके सब ऐसे हैं कि आसानी से धर लिये जायें, तो राधे को विलायती ढंग से पढ़ाया जाए। हमने यह तय कर लिया है। कितना तुच्छ जीवन आदर्श है। और सचमुच राधेश्याम का सारा उद्योग चालबाजी, ब्लैक मार्केटिंग को लेकर ही फैलता है उसमें अपरमित व्यावसायिक बुद्धि है। देश के स्वतंत्र होते ही

वह अंग्रेजों से आधेदामों पर बड़ी-बड़ी मशीने खरीद लेता है जो कि उसके उद्योगके विकास में सहायक होती है जैसुखलाल और राधेश्याम की बातचीत का एक दृश्य देखिये जो कि कूटनीति का स्पष्ट रूप है----

"अरे हम लोगों को खद्दर पहनना पड़ेगा और कांग्रेस में शामिल होना पड़ेगा, अगर इस युद्ध में हम लोगों ने करोड़ों रूपया कमाया है उसे बरकरार कायम रखना है। आगे चलकर देखना यहीं कांग्रेस वालेमिनिस्टर बनेंगे राज करेंगे। और इनका हमला इन पैसे-वालों पर होगा। इन सबके पहले हम लोग खुदकांग्रेसी बन जायें फिर कैसे हम पर यह हमला करते हैं। "कैसा तीक्ष्ण व्यंग है और साथ ही कितनी प्रखर बुद्धि दिखाई गई है कि देश स्वतंत्र होकर भी हमेशा के लिये पूँजीपतियों का ही होकर रह जाय। भोली जनता को तो हमेशा पिसना ही है।

स्वतंत्रता दिवस समारोह पर राधेश्याम की मिल का सड़ा आटा व सड़ा तेल निक-लवा कर भोजन बनवाकर दोदिन तक कंगलों को भोजन कराया गया तो कानपुर शहर के कंगालों की संख्या आधी रह गई। आधे लोग राधेश्याम का सड़ा भोजन खाने से अपने अति सड़े जीवन से मुक्ति पा गये "शब्दव्यंजना कितनी व्यंग्यपूर्ण है कि कोई आंख उठा कर राधेश्याम को देख भी नहीं पा रहा है बात यहीं तक रह कर व्यंग्य में ही विलीन हो जाती है।

जबरसिंह-भाग्य :-
----x----x----

दूसरे खण्ड में मंत्री जबरसिंह के भाग्य की या परिवार की उन्नति की कहानी है। डाकू का बेटा नाहरसिंह डाके की रकम से उत्तरप्रदेश में एक छोटी सी जायदाद खरीदकर कुंवर नाहरसिंह केनाम से विख्यात हो जाता है। उसके बेटे केहरसिंह की शादी ठाकुर रघुनाथ सिंह की बहिन के साथ हो जाती है जिससे वह उच्चकु-लीन ठाकुर बन जाता है और उसका पुत्र जबर सिंह अपने दुस्साहस के कारण राजनीति में अत्यंत सफल होता है और राज गंभीर सिंह की लड़की धनबंत कुंअर से उसकी शादी हो जाती है। भारतीय आदर्शों एवं राजनीतिक सिद्धान्तों में प्रवीण होने के कारण यह जबर सिंह गृह मंत्री बन जाता है। इस खण्ड के अंत में जबरसिंह की सफलता पैसों के बल पर ही दिखाई गयी है देखिये--" चारों और जबरसिंह का आतंक था। जबरसिंह जानता था कि अपनी राजनीतिक सत्ता किस तरह कायम रखी जाय और उसने देखा कि आदर्शवाद का

युग देश के स्वतंत्र होते ही समाप्त हो गया है। अब आदर्श वाद का युग देश के स्वतंत्र होते ही समाप्त हो गया है। अब आदर्श वाद एक नारा भर रह गया है असली चीज तो है अपनी सत्ता की रक्षा जो केवल पैसों के बल पर ही हो सकती है।

हमारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और मानव-मूल्यों के विघटन का बहुत कुछ उत्तरदायित्व राजनीतिक उठा-पटक पर है। रोज-रोज सरकारी बदलती नीति, जमीन्दारी उन्मूलन और हिन्दू कोडबिल आदि ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में विश्रृंखलता को जन्म दिया है। जो जबरसिंह धोखाधड़ी से मंत्री बना है जो रिश्वत में माहिर है उसका कथन कितना आडम्बरपूर्ण है हमारी सरकार ने जमींदारी खत्म कर दी है। यह मेहनतकश मजदूरों और किसानों का राज है। शोषण और उत्पीड़न बंद उसका यह कथन उसके ही व्यक्तित्व पर व्यंग्य बन कर छा जाता है।- लेखक ने इस उपन्यास में राजनैतिक चेतना पर तीखा प्रहार किया है।

विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं और मंत्रियों के विचार विनिमय और क्रियाकलाप द्वारा लेखक ने उनके वास्तविक चरित्र और आडम्बरपूर्ण चरित्र की दो रंगीन झांकी प्रस्तुत की हैं। साधारण कुल और परिवार के लोग धोखाधड़ी और छलकपट से एक दूसरे की उठा-पटक कर उच्च मंत्री पद प्राप्त कर लेते हैं। फिर वे अपनी सत्ता कायम रखने के लिये वे अनेक अनुचित मार्ग अपना कर राजनीतिक व सामाजिक उठापटक करते हैं। ये देश और समाज की प्रगति में घातक तत्त्व हैं ये ही मंत्री बड़े-बड़े नेता उद्योग पतियों से रिश्वत लेकर उनके उद्योग के प्रसार के लिये ब्लैक मार्केट और शोषण को प्रश्रय दिलवाते हैं। आज इस बात से सभी परिचित है कि अधिकांश मन्त्रियों ने धन संचय इतनी अधिक मात्रा में कर लिया है कि कई पीढ़ी तक आर्थिक संकट परिवार में नहीं आ सकता है यह उस युग का यथार्थ रूप था और आज भी है। भारत की मंद प्रगति का यही मुख्य कारण ।रहस्य। है।

भारत जैसे विशाल देश में जहां प्राकृतिक संपदा का भण्डार है जिसके पास अपरिमित मानव शक्ति है, वह छोटे-छोटे देशों से आर्थिक विकास में पिछड़ता जाये-इसका कारण हमारे नेताओं में राष्ट्रीय भावनाओं की कमी है जो कि देश की प्रगति में रोड़ा बन कर टकरा रही हैं। वास्तव में वर्माजी को इस विषय में स्थूल ज्ञान है। वर्माजी ने इस उपन्यास

में स्पष्ट कर दिया है कि भारत की जनता एक ऐसे दुश्चक्र में फँसी है कि अनैतिकता के सामने आत्मसमर्पण के अतिरिक्त कोई धारा नहीं है सरकारकी नीति ने उसे और भी पंगु बना दिया है। राष्ट्र के सारे विकास अवरुद्ध हो गये है। आडम्बर इतना अधिक बढ़ गया है कि सच्ची अभिव्यक्ति मुश्किल हो जाती है। उपन्यास में कवि झंझावत ठीक ही कहता है--" लोग मेरी बातों से बहुत प्रभावित हुए, लेकिन मेरी वे सब बातें बनावटी थी शायद आज दुनियाँ ही बनावटी बातों की है। सत्य बात तुम कह नहीं सकते क्योंकि सत्य हमेशा टकराता है। घुलने मिलने की चीज तो बनावट है। तो भाई डियर रामलोचन बनावट की जिंदगी है, सत्य तो मौत है।

स्पष्ट है, समाज के निर्माता युग की नवीन चेतना के प्रतीक कथकलाकार सक में एक वर्ग ऐसा है जो धाँधलेबाजी का सहारा लेकर सफलता पा रहा है। समाज-सुधारक भी तरी और बाहरी व्यक्ति एक दूसरे के विपरीत है। यहाँ भी आडम्बर और दिखावा मुख्य है। इस उपन्यास का व्यंग्य प्रच्छन्न है और वह स्वंय पात्र के कथन के द्वारा उसी के व्यक्तित्व पर व्यंग्य बन कर छा गया है। "अपने खिलौने" में व्यंग्य हल्का फुल्काहै और व्यंग की अपेक्षा उसमें हास्य अधिक है। किन्तु "सबहिं नचावत रामगुसाईं" का व्यंग्य ऊपर से देखने में हल्का फुल्का होते हुये भी गंम्भीर विचार की सामग्री छोड़ जाता है। यह उपन्यास एक यथार्थ अंकन है।

:- राम लोचन पाण्डेय-भावना :-
-----x-----x-----x-----

तीसरे खण्ड में ताल्लुकदारों की गिरती हुई हालत का बयान है।सत्ता बलवानों के हाथ से निकल कर किस तरह पैसे वालों के साथ में चली गई उसका स्पष्ट रूप इस खण्ड में चित्रिण किया है। राजा पृथ्वीपाल सिंह का विवाह एक ऐंग्लोइंडियन से राम समुझ पाण्डेय करवाते हैं जिससे रामसमुझ को जायदाद दक्षिण में मिलती है। और वह ताल्लुकेदार बन जाता है। किन्तु समय के साथ इस ताल्लुकदारी केकारण पारिवारिक झगड़े होते हैं जिससे पारिवारिक विघटन होता है। जमींदारी प्रथा उन्मूलन के कारण और भी विशृंखलतायें जन्म लेती है। परिणाम स्वरूप उनके लड़के रामलोचन पाण्डेय को नौकरी करनी पड़ती है। अपने भाई के मित्र राजा महिपालसिंह के माध्यम से रामलोचन का परिचय जबरसिंह से होता है और उसे पुलिस विभाग में नौकरी

मिल जाती है। ईमानदारी और सिद्धान्त प्रियता जैसे गुणों को लेकर राम लोचन पाण्डेय भ्रष्ट समाज में कानून का सच्चा रक्षक बनने का प्रयास करता है।

रामलेचन में एक और ब्राह्मण कुल के संस्कार विनम्रता, न्यायसंगत बात चीत करना आदि प्रवृत्तियां हैं। साथ ही उसके पूर्वजों की ताल्लुकेदारी से प्राप्त अहम् भी उसके स्वभाव में घुल मिल गया है। किसी से दबना तो वह जानता नहीं हठ और प्रतिज्ञा पालन की भावना उसमें बलवती है। इसी चरित्र के बल पर वह राधेश्याम जैसे उद्योगपतियों और ~~जैसे उद्योगपतियों~~ और जबर सिंह जैसे मंत्री की धज्जियां उड़ाता है। जिससे इन लोगों के अहम् पर करारी चोट पहुँचती है। आज के युग में हमारे देश में मंत्री व पूँजीपति ही अच्छी तरह से पनप रहे हैं साधारण जनता का विकास तो अवरुद्ध हो गया है और साथ हमारी कानून-व्यवस्था इतनी ढीली है कि यह वर्ग ही मंत्रियों व पूँजीपतियों की ही बजाता है क्योंकि हर जगह हर क्षेत्र में पैसे का ही बोलबाला है। किन्तु इस उपन्यास में वर्माजी ने रामलोचन पाण्डेय की सृष्टि करके एक नया प्रगतिशील कदम उठाया है यदि हमारे देशकी कानून व्यवस्था भावना रामलोचन सदृश्य कर्तव्यनिष्ठ हो जाये तो देश व अबाध गति से उन्नति शील हो सकता है।

लेखक ने तीन कहानियों के माध्यम से भारत का यथार्थ चित्र खींचकर अपने पात्रों को एक जगह एकत्र कर लिया है। उपन्यास का चौथा खण्ड है "उठापटक " जिसमें लेखक ने यह सिद्ध कर दिया है कि बुद्धि और भाग्य मिलकर उन्नति कर सकतेहैं किन्तु भ्रष्ट भी हो सकते हैं पर भावना को किसी भी कीमत पर खरीदा नहीं जा सकता । अपनी न्याय बुद्ध से प्रेरित उद्योग पति राधेश्याम को, गृहमंत्री की आदेश की अवज्ञा करके भी गिरफ्तार करता है और साबित करता है कि सामाजिक पतन का निदान, कानून और व्यवहारिक बुद्धि में नहीं भावना में है। नियम कानून को सबल व्यक्ति अपने पक्ष में कर लेता है किन्तु भावना को किसी ताकत से नहीं जीता जा सकता है। रामलोचन पाण्डेय, जबरसिंह को चुनाव में हराता है और यह साबित करता है कि सबल और साधन सम्पन्न होने के बाद भी बुराई पराजित होती है। इस उपन्यास में लेखक कहता है-

"कहानी पूरी हो गयी, लेकिन खत्म नहीं हुई। अनादि काल से यह कहानी किसी न किसी रूप में चलती आई है। और और अनंत काल तक किसी न किसी रूप में चलती रहेगी। लेखक का विश्वास है कि मानवीय मूल्यों का विघटन कभी संसार की उन्नतिको

रोक नहीं सकता। विघटन का संकट हर युग में भोगा है फिर भी दुनियां से अच्छाई नष्ट नहीं हुई। रक्त चूसने वाले व्यापारी, भ्रष्ट गद्दी नशीनों के काले कारनामों ने संसार की प्रगति को धीमा अवश्य कियाहै लेकिन इसके कारण कोई भी युग या देश हमेशा के लिये पंगु नहीं हुआ है। युग-युग से अच्छाई और बुराई का यह युद्ध चल रहा है। कभी-कभी ऐसा समय आता है लगता है कि अब अच्छाई और ईमानदारी उभर नहीं सकती किन्तु लेखक का विश्वास है कि अच्छाई दब कर भी नष्ट नहीं होती वह बुराई से लोहा लेती है। भगवती बाबू ने अपने कई लेखो में यह विश्वास व्यक्त किया है कि उनके अन्दर यह प्रबल आस्था है कि इसमें मानवीय आस्था का प्रबल स्वर है।भगवती बाबू अपने अन्य उपन्यासों में पतनोन्मुख भारतीय समाज का चित्रण करते रहे हैं किन्तु नवोदित राष्ट्र की घुन लगी हुई स्थिति का प्रभावशाली चित्रण जैसा "सबहि नचावत राम गुसाई" में है वह अपने ढंग का ही है।

वस्तुतः मानव मूल्यों के विघटन और बदलते प्रतिमानों का अंकन ही "सबहिंनचावत रामगुसाई" की उपलब्धि है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व मनुष्य के पास एक ध्येय था, एक संकल्प था, एक आदर्श था किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वे ऊँचे ऊँचे आदर्श धूलधूसरित हो गये। अपनी-अपनी सत्ता को कायम रखने की इच्छा बलती हो गई है और अधिकाधिक धन कमाने की लालसा मनुष्य पर हावी हो गयी। मानव मूल्यों के विघटन की यही कहानी "सबहि नचावत राम गुसाई" में अंकित है। उपन्यास का अंत बहुत सुंदर बन पड़ा है। अंत में डेढ़ पृष्ठों के वक्तव्यमें उपन्यास का सारा सौन्दर्य सिमट कर बैठ गया है। "अच्छाई" की विजयके साथ लेखक हमें सुंदर तथा उज्ज्वल भविष्य कीकल्पना अवश्य करा देता है।

:- प्रश्न और मरीचिका :-

------x-------x------x

यह उपन्यास 1973 में प्रकाशित हुआ। इसमें 15 अगस्त 1947 से लेकर 1963 तक के भारतीय समाज की उथल पुथल अंकित है। स्वाधीनता के बाद का समय भारतीय जन के लिये मोह भंग का काल रहा है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के जीवन मूल्यों के विघटन की कहानी सीधे और सहज ढंग से इस "प्रश्न और मरीचिका" उपन्यास के माध्यम से सामने आती है। गांधी जी के आदर्शों को सामने रखकर राजनीतिज्ञों ने जनता को आश्वस्त किया कि देश की शीघ्र ही उन्नति होगी। चतुर्मुखी विकास के लिये तथा आत्मनिर्भर होने के लिये योजनाबद्ध तरीके से औद्योगीकरण किया गया। इससे देश को नया स्वरूप प्राप्त हुआ और उन्नति के लक्षण भी दिखाई दिये। नवीन उद्योगों के

माध्यम से भारत आधुनिक संसार से जुड़ा तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का नाम ऊंचा उठा। किन्तु शीघ्र ही देश के नेताओं ने मतलब परस्ती और अदूरदर्शिता सामने आने लगी। हर कुर्सी का प्रयोग अपने स्वार्थ के लिये किया जाने लगा। अत्यंत तीव्रता से पतित होते हुये भारतीय समाज की कहानी अत्यंत स्पष्ट शब्दों में लेखक इस कृति में प्रस्तुत कर सका है। जो समाज अपने लक्ष्यकी प्राप्ति के बाद क्यों इस तरह बहक गया. यह एक विचारणीय प्रश्न है। लेखक ने इसका उत्तर जानने का ईमानदार प्रयास किया है। वह यह दावा भी नहीं करता कि उसका विश्लेषण ही सत्य है। उपन्यास के अंत में वह नायकके माध्यम से स्वीकार करता है---

"यह मेरे जीवन की कहानी इतनी नहीं है कि जितनी उन लोगों की जो मेरे इर्दगिर्द हैं, या जो मेरे जीवन में घनिष्ठ रूप में आये और जिन्होंने मेरेजीवन को प्रभावित किया। और इसलिये मैं कहता हूँ यह मानवजीवन के उतार चढ़ाव की कहानी है। जहांतक सत्य असत्य का सवाल है इस कहानी का सत्य मेरा सत्यहै, दूसरों का सत्य क्या है, मैं नहीं जानता। इस जीवन के न जाने कितने रंग हैं, न जाने कितने पहलू हैं.जो आसानी से पकड़ में नहीं आते हैं।

एक व्यक्ति अथवा परिवार की कहानी को आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत करने में यह उपन्यास बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। कथानक नायक के जीवन के उतार चढ़ाव पर केन्द्रित न होकर उसके आसपास के समाज पर केन्द्रित है। समाज के सबसे ऊँचे वर्ग की चरित्र हीनता तथाशाब्दिक आदर्शों की विडम्बना को प्रस्तुत किया गया है। लेखक की समझौतावादी नीति तो कभी नहीं रही वह केवल सरल ढंग से आदर्श च्युत लालची और समझौता परस्त वर्ग का नकाब उतार फेंकता है।

उदयराज उपाध्याय के व्यक्तिगत जीवन से उपन्यास शुरू होता है और उसके जीवन की कहानी ही समाज की कहानी की आधार शिला है। बंबई से उदयराज भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय के ज्वाईंट सेक्रेटरी श्री जयराज उपाध्याय आइ० सी० एस० का त्याज्य पुत्र है। भारत के स्वाधीन होने पर वह आजीविका के सिलसिले में अपने पिता के पास आता है।पिता के प्रभाव से उसके लिये हर क्षेत्र खुल जाता है। लेकिन राजनीति में प्रवेश होने के इरादेसे वह कांग्रेस के प्रभावशाली नेता शर्माजी का सेक्रेटरी बन जाता है एक मुसलमान लड़की सुरैया से उसका परिचय होता है और सुरैया का प्रेम का मामला भी सांप्रदायिक रंग

से लेता है और वह प्रेमिका को पाने में असफल होता है इससे स्पष्ट है कि लेखक ने प्रथम खण्ड में हिन्दू- मुसलमान बैमनस्य का चित्रण किया है जो स्वाधीनता प्राप्ति के समय व्याप्त था। बड़ी स्पष्टता के साथ लेखक यह स्वीकार करता है कि हिन्दू मुस्लिम झगड़ों के पीछे वास्तव में सत्ता का प्रबल आकर्षण है:- एक संघर्ष चल रहा है देश की राजधानी दिल्ली में दोनो संघर्षों के रूप अलग अलग दीख रहे है, लेकिन मुझे ऐसा दीखता है कि दोनों संघर्षों के मूल तत्त्व एक ही हैं। यह तत्त्व है सत्ता का देश का साम्प्रदायिक आधार पर जो बंटवारा हुआ उसकी तह मेंनेहरू और जिन्ना के बीचमें सत्ता का संघर्ष था। दिन प्रतिदिन रिश्वतखोरी भ्रष्टाचार बढ़ता गया नेताओं का कार्य केवल इतना था कि देश की दुर्दशा का दायित्व विरोधियों पर छोड़ दें तथा अपने पद की रक्षा कर लें।

उपन्यास का कथानक दूसरे खण्ड में सामाजिक रूप रख कर आता है। उदयराज अमेरिका में"मार्निंगस्टार" के संवाददाता की हैसियत प्राप्त करता है और जब भारत लौटता है तो देखता है कि शर्मा जी जैसे कर्मठ और ईमानदार व्यक्ति राजनैतिक मंच से हटाये जा चुके हैं। देश की राजनीति जवाहरलाल नेहरू के आसपास सिमट कर बैठ गई है।ईमानदार नेहरू के आस पास बेईमानों का जमघट लगा हुआ है- इन लोगों को चरित्रवान और कर्मठ बनाना बहुत बड़ी जिम्मेदारी है नेहरू जी पर लेकिन इन चालीस करोड़ आदमियों की जयजय कार से वह आदमी जिम्मेदारी भूल गया। अहम् और मरीचिका में पड़करवहअन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सबसे महान बनने का सपना देखने लगा है। भागवती बाबू ने स्पष्ट करना चाहा है कि इस युग में धनवान व्यक्ति अपनी तिकड़म से अधिक धनवान बन रहे है। उदयराज की शादी आई० सी० एस० अफसर विश्वनाथ मदान की लड़की प्रमिला से हो जाती है। जिसके फलस्वरूप उदयराज को अपने पिता व ससुर के प्रभाव से अधिक से अधिक सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं।

उपन्यास के तीसरे खण्ड में स्वतंत्र भारत की मोह-भंग की वास्तविक स्थिति से परिचत होते हैं। विरोधी पार्टियों के नेताओं की कुंठाओं को भी कथानक अपने में समेट लेता है। प्रेममदान, और संजीत तथा मेजर अमरजीत और कान्ता की कथाओं में माध्यम से उच्च वर्ग की खोखली नैतिकता और अर्थ लोलुपता सामने आती है। भ्रष्ट नौकरशाही का चित्र विद्यानाथ के शब्दों में देखिये--" हर तरह की आजादी मिली है, लूटने की अमीर बनने की, बेईमानी करने की हर तरह की आजादी। सब कुछ गिनेनेअंग्रेजो के अधीन यह देश

था, वह लोग खुद तो लूटते थे मगर दूसरों को नहीं लूटने देते थे। लेकिन आज हिन्दुस्तान का हरक आदमी अपने को मालिक समझता है, लूट में एक होड़ सी लगी है। "अंजनी कुमार के माध्यम से यह बात सामने आती है कि अयोग्य और ऊपरी दर्शन में सफल व्यक्ति किस तरह स्वतंत्र भारत में सरकारी क्षेत्रों में प्रभाव जमा लेते हैं। इसे अपने देश की वास्तविक स्थिति का चित्रण ही कहेंगे।

चौथे खण्ड में लेखक सभी घटनाओं को एक परिप्रेक्ष में वर्णन करता है। केशरबाई, मेलाराम, अंजनी कुमार आदि सभी कथाओं को निचोड़कर लेखक उनकी सामाजिक संदर्भ और दार्शनिक सन्दर्भ में स्पष्ट व्याख्या करता है कि पतन के गर्त में डूबे समाज में बेबसी किस तरह छायी हुई है। हमारी प्रजातांत्रिक प्रणाली के पूर्ण रूपेण सड़ जाने की स्वीकारोक्ति विधनाथ के शब्दों में इस तरह है--" ये जितने चुनाव है वे सिद्धान्तों पर नहीं लड़े जाते हैं। बेतहाशा रुपया खर्च होता है चुनावों पर- चांदी का जूता भी चलता है और असली जूता भी चलता है। वोटों को खरीदने के लिए शराब पिलाई जाती है, झूठे वायदों पर लोगों को गुमराह किया जाता है। कभी कभी लाठी और जूते का भी सहारा लेना पड़ता है। मैने भी यह सब किया तब कहीं जाकर मैने चुनाव जीता है।

आदर्श सुख, न्याय और स्वच्छ समाज की मरीचिका के पीछे व्याकुल होकर दौड़ने वाले ईमानदार और सजग व्यक्ति के सामने केवल प्रश्न रह गये है। उत्तरों का अभाव गहरे अवसाद को जन्म देता है चीनी आक्रमण की युद्ध समाप्ति के बाद देश फिर वैसा का वैसा रह गया। लूटने वालों में किसी तरह का संकोच या रूकावट दीख नहीं रही थी न लूटने वालो में किसी तरह का आर्तनाद या विद्रोह नजर आ रहा था। रक्षा फंड में जो बेहताशा रुपया या गहना मिला था उसका क्या हुआ, कहाँ गया न किसने इसका जवाब माँगा और न किसी ने इसका पता दिया।" सम्पूर्ण उपन्यास और विशेषकर उसका अंत स्थितियों के प्रति आक्रोश जाग्रत नहीं करता है बल्कि एक गहरे अवसाद को जन्म देता है। "अस्तित्व आशंकाओं और आश्वासनों से भरी एक मरीचिका में भटकते रहना जिंदगी है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि भगवती बाबू के उपन्यास आधुनिक युग के दर्पण हैं। उनमें बीसवी शताब्दी के भारत की राजनैतिक सामाजिक सांस्कृतिक गतिविधियाँ स्पष्ट हो सकी हैं। इस दिशा में उनकी सजगता विस्मयकारी है।

समाहार :-
----x----

इस प्रकार वर्माजी की औपन्यासिक चेतना के विषय का उपर्युक्त अध्ययन करते हुये हमने देखा कि वर्माजी में कथा निर्माण की अद्भुत क्षमता है। चित्रलेखा भूले बिसरे चित्र, टेढ़े मेढ़े रास्ते, सीधी सच्ची बातें, सबहिं नचावत राम गुसाईं, जैसी प्रौढ़ कृतियों में उनकी उपन्यास कला की उत्कृष्टता भी प्रमाणित होती है। उनकी उपन्यास कला यथार्थवादी है। प्रेमचंद युगीन उपन्यास की परिधि से बाहर वर्माजी के उपन्यास है। इसके चरित्र विकास में एवं विषय वस्तु में काफी प्रगति हुई है। प्रेमचंद परम्परा के उपन्यास साहित्य में व्यक्तिवादिता का इतना विकास प्रतिबिम्बित नहीं होता जितना वर्माजी की कृतियों में झलकता है। प्रेमचंद युग के उपन्यासों में सामाजिकता की भावना अधिक थी जो धीरे धीरे व्यक्तिवादी उपन्यासों में क्षीण होकर मनोवैज्ञानिक कोटि के उपन्यासों में क्रमशः लुप्त होती गई ।

वर्माजी आदर्शवादी आचारों के प्रति विद्रोह करते हुये अपनी स्वच्छंद भावनाओं का खुलकर प्रयोग करते हैं और बच्चन की तरह जिनका जीवन दर्शन भोगवाद है पश्चिमी शिक्षा तथा संस्कृति से प्रभावित होकर जो स्वच्छंद प्रेम में आस्था रखते, हैं, जिनके जीवन में अभाव, निराशा, असंतोष तथा विद्रोह की भावना का आना स्वाभाविक है। समाज की उस स्थिति को उपन्यासों में अभिव्यक्ति देते हैं जो विकास तथा ह्रास के बीच संक्रान्ति की प्रतीक है नवयुवक लेखकों का विद्रोही हो जाना तथा वर्तमान समस्याओं का वैयक्तिक दृष्टि से समाधान प्रस्तुत करना प्रगति चेतना के अनुरूप है।

"चित्रलेखा" उपन्यास में बीजगुप्त भोगी होता हुआ भी कुमारगिरि सरीखे योगियों से श्रेष्ठ है। अदृश्य की सर्वव्यापी शक्ति को मानते हुये कर्मरत है। शक्ति सम्पन्न होते हुये सबके लिये निरापद है, वासनामय अच्युत है क्योंकि उसकी वासना अनन्य प्रेम में लीन हो गई है। नर्तकी चित्रलेखा के संसर्ग में संसार की समस्त वासनाओं पर विजय पाने का दावा करने वाला योगी कुमारगिरी पतन के गर्त में गिरा और उसी चित्रलेखा को अपनी जीवन संगिनी बनाकर भोगी बीजगुप्त स्वयं देवता बना और नर्तकी का भी उद्धार कर गया, यही वर्माजी की बदलती हुई मान्यता है। मुख्य पात्र प्रगति की ओर अग्रसर होते दिखाये गये हैं। भूले बिसरे चित्र में कुछ पात्र समाज के बदलते हुये रूप के परिचायक हैं। भविष्य के प्रति आस्थावान व भविष्य के निर्माण के प्रति कर्मठ ज्ञानप्रकाश और अलका के चरित्र

छिनकी और उसका पु[illegible] मीठू आ[illegible] [illegible] सौंदर्य अपने ग्राम से ऊपर [illegible] की [illegible] [illegible] का उपहास कर उठता है।

[illegible] प्रकार पात्र निश्चित धा[illegible]णाओं को [illegible] कर ही [illegible] करते हैं। जीवन [illegible] मोड़ों पर जब भी उन[illegible] सामने [illegible]स्यायें आती [illegible] परस्पर विरोधी मार्गों में से एक को अपनाने को बाध्य होते हैं उन्हें [illegible] करने में हिचकिचाहट नहीं होती। प्रगतिशील दृष्टिकोण उनके मस्तिष्क में समाया रहता है और कुछ संकोच होता भी है तो बहुत थोड़ी देर रहता है। अपनी स्वभावगत अनुभव और नई मान्यताओं के आधार पर वे शीघ्र ही अपने लिये मार्ग चुन लेते हैं। वर्माजी की उपन्यास कला के विकास के साथ-साथ उनके पात्रों में जैसे प्रौढ़ता आती गई है। जीवन के किसी मोड़ पर से परस्पर विरोधी भावों में से एक को चुनना पड़ा उनके मूल पात्रों के मन में पहले से ही स्थिर होने के कारण उन्हें निश्चय करनेकमें देर न लगी।

वर्माजी के औपन्यासिक पात्रों में घटनाओं का विशेष महत्त्व है आकस्मिक घटनायें ही उन्हें एक दूसरे के सम्पर्क में लाकर उनके जीवन सूत्र में परिवर्तन लाती हैं। वर्माजी के उपन्यासों में कथावस्तु, चरित्र भावप्रवणता, ऐतिहासिक वातावरण की सजीवता। रोचक संवाद तथा परम्परागत जीवन मूल्यों को चुनौती दी गई है।

----------x----------

4. भगवती चरण वर्मा मध्यवर्गीय उपन्यासकार के रूप में :-

वर्माजी मध्यमवर्गीय साहित्यकार थे। इन्होंने मध्यवर्ग की प्रत्येक समस्या को निकट से देखा था और उस पर चिंतन किया था। अपने उपन्यास साहित्य में इन्होंने स्वयं को एक मध्यवर्गीय पात्र के रूप में चित्रित कर घटनायें सप्राण कर दी हैं। हिन्दी साहित्य कोश में मध्यवर्ग की विशेषताओं और उसके स्वरूप की चर्चा करते हुये कहा गया है "मध्यवर्ग सामन्तवादी व्यवस्था में नहीं पाया जाता क्योंकि उस समय ज़मींदार किसान का सीधा संबंध था, किन्तु पूँजीवादी व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल बना दिया कि एक मध्यवर्ग की भी आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन सूत्र को सम्हाल सके। "इस वर्ग में नौकरी पेशा, शिक्षक क्लर्क और अन्य साधारण लोग आते हैं। मध्यवर्ग विशेषत: बुद्धि प्रधान वर्ग माना गया है और सामाजिक क्रांति के प्राय: समस्त विचारों का सर्जन मध्यवर्ग में होता है।

मध्यवर्ग समाज का प्रेरक वर्ग होता है। एक ओर सतत संघर्ष और दूसरी ओर समाज में सुधार की कामना इस वर्ग का उद्देश्य है। वर्ग संघर्ष को मिटाने तथा समाज में समाजवादी व्यवस्था द्वारा समानता का विस्तार करने का इच्छुक यहीं वर्ग है। समाज में वर्ग संघर्ष सदैव से रहा है और आज भी है। यहाँ तक कि वर्ग संघर्ष को प्रगति का सूचक भी माना गया है बिना वर्ग संघर्ष के सामाजिक प्रगति संभव नहीं हो सकती। जितना ही समाज में शोषित वर्ग, शोषक वर्ग के प्रति बलवती विद्रोह की भावना लेकर लड़ेगा उतनी ही शोषित वर्ग की प्रगति होगी। जितना ही अधिक वर्ग संघर्ष होगा उतना ही पुराने मूल्यों के बीच नये मूल्यों की स्थापना होगी और इस प्रकार समाज की व्यवस्था में प्रगति आयेगी।

सामाजिक प्रगति के लिये वर्ग संघर्ष को समाप्त करने का प्रश्न मध्यवर्ग ने ही उठाया है और समाजवादी प्रक्रिया को समाज के लिए अनावश्यक मानकर एक वर्गहीन समाज का स्वप्न देखने वाला यदि कोई वर्ग है तो यही मध्यवर्ग है। इस प्रकार अपनी दुर्बलताओं और अपनी सामर्थ्य से युक्त मध्यवर्ग ने विश्व साहित्य में बड़े-बड़े कलाकारों को जन्म दिया है। भारत में भी मध्यवर्गीय कलाकार प्रेमचंद, रांगेयराघव, वर्माजी, नागरजी आदि अनेकों महान शक्तियाँ समाज के प्रेरक व उन्नायक रहे हैं। और इनकी प्रतिमा शतधा होकर सदा ही अपने युग की समस्याओं से जूझती रही है। हिन्दी के उपन्यासकार भगवती बाबू ने भी

अपने युग की समस्याओं का अध्ययन विस्तार से प्रस्तुत किया है। मध्यवर्ग से संबंधित होने के कारण भगवती चरण वर्मा ने मध्यवर्गीय समस्याओं को अपने अध्ययन का विषय ही नहीं बनाया वरन् स्थान-स्थान पर समस्याओं के निराकरण के लिये उपयुक्त संदेश भी दिये हैं। समाज में होने वाले परिवर्तन का साहित्य पर प्रभाव पड़ता है और साहित्य भी समाज में परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। मानव की परिस्थितियों एवं उनकी मनोवृत्तियों का संघर्ष मात्र दिखाकर ही आज के साहित्यकार का उत्तरदायित्व पूर्ण नहीं होता, अपितु निरंतर बदलते हुये बाहरी और भीतरी परिवेश से प्राप्त अनुभवों के फलस्वरूप जो परिवर्तन उत्पन्न होते हैं उन्हें भी साहित्यकार को चित्रित करना पड़ता है।

" आधुनिक युग का व्यापक विश्वास मानवतावाद है। नवीन मानवतावादी विश्वास की सबसे बड़ी बात है, इसकी ऐहिक दृष्टि, मनुष्य के मूल्य और मर्यादा के महत्त्व का बोध। इस नवीन मानवतावाद को स्वीकार करने का युक्ति-संगत परिणाम हो सकता है- मनुष्य की मुक्ति। सब प्रकार के सामाजिक एवं राजनैतिक और आर्थिक शोषणों से मनुष्य को मुक्त किया जाना चाहिये क्योंकि मनुष्य के जीवन का बड़ा मूल्य है। " व्यक्ति समाज का प्राणी होते हुये भी मूलतः व्यक्ति है और उसके व्यक्तित्व की रक्षा होनी चाहिये। यह दृष्टिकोण निरन्तर उपन्यासों में प्रमुख होता गया।

वर्तमान युग के उपन्यासों में मध्यवर्ग के पात्र समाज की रूढ़िगत मान्यताओं से विक्षुब्ध होकर व्यक्ति की महिमा को प्रतिष्ठित करने में तत्पर दिखाई देते हैं। समाज की जिस नवीन समस्या की ओर प्रेमचंद पूर्ववर्ती उपन्यासों तथा प्रेमचंद युगीन उपन्यासों में संकेत हैं इस युग में वे समस्यायें विस्तार पाती गई। प्रत्येक साहित्यिक युग अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक युग की ही परिणति होता है।

भगवतीचरण वर्मा की उपन्यास कला का आधारभूत उद्देश्य मध्यवर्गीय समाज में व्यक्तिवादी चेतना को अभिव्यक्ति देना है। "चित्रलेखा में नैतिक, तीनवर्ष में पारिवारिक टेढ़े मेढ़े रास्ते में राजनैतिक, और आखिरी दाँव में आर्थिक धरातल पर व्यक्तिवादी जीवन दर्शन को प्रतिष्ठापित किया है। "तीनवर्ष में लेखक ने रमेश के माध्यम से एक तरुण व्यक्ति के निर्माण काल में चलने वाले संघर्षों को विस्तार से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। निम्न मध्यवर्गीय जीवन से संबद्ध प्रतिभा के बल पर ऊपर उठता हुआ रमेश आर्थिक अभावों

में ग्रस्त होकर भी उच्च वर्ग के सुखपूर्ण जीवन की कामना करता है। रमेश के माध्यम से प्रेम, विवाह, सेक्स तथा वश्या की समस्या तथा निम्न मध्यवर्ग की पैसे के अभाव में टूटती हुई जिंदगी का चित्रण है। वास्तव में लेखक का मूल उद्देश्य युग सत्य को अभिव्यक्त करना है।

युग की बदलती हुई मान्यताओं, आवश्यकताओं और, मंहगाई के सामने मध्यवर्गीय ढांचा टिक नहीं रहा है वह गिरता जा रहा है उसका प्रभाव संयुक्त कुम्ब के विघटन के रूप में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। लेखक की स्पष्ट धारण है कि यदि निम्न मध्यवर्गीय परिवार अपनी सफलता और अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है तो वह अपने वर्ग की आर्थिक विषमताओं को पहचानने का प्रयत्न करे और इसके लिये सारे परिवार को जुझना होगा। नारी पुरूष दोनों को धनोपार्जन में लगना होगा। स्त्री को स्त्री समझकर आदर्शवादिता के रूढ़ि संस्कारों में बधकर घर की चहर दीवारी में बंद रखने के काम नहीं चलेगा वरन् उसे भी आवश्यकता के अनुरूप जीवन के संघर्षों में सक्रिय सहयोग देने के लिये स्वतंत्र करना होगा। इस प्रकार युग की बदलती हुई आवश्यकताओं के आगे सब कुछ बदल जाता है।

समाहार :-
----x----

कोई साहित्य-सर्जक चाहे कवि हो, कहानीकार हो, आलोचक हो, जीवनी लेखक हो, नाटककार हो, और चाहे उपन्यासकार हो वह अपने युग-धर्म से पूर्णत: प्रभावित रहता है, उसका साहित्य युग साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ऐसे ही साहित्य का मूल्य शाश्वत है। यही कारण है कि वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, शेक्सपीयर आदि का साहित्य कालजयी है। इसी प्रकार उपन्यास जगत् में गोर्की, टालस्टाय प्रेमचंद, भगवती बाबू के उपन्यास भी इसी कोटि के हैं। सामाजिक क्रांतियों के फलस्वरूप परम्परा की प्राचीनता विनष्ट होती रही तथा नई चेतना का आगमन हुआ नव्य चेतना के ज्योतिर्मय प्रकाश में पुरानी मान्यतायें असामयिक, अनुपयोगी हो अपनी अंतिम सासें छोड़ने लगती हैं। इस समय साहित्य और समाज एक नया मोड़ लेता है। प्रगतिचेतना कलाकार की प्रबुद्ध विकासोन्मुख चेतना बंध-बंधाई सारणियों एवं मान्यताओं में बंधकर नहीं चलना चाहती वह नवीनता में विश्वास करता है तथा सड़ी

गली मान्यताओं से विद्रोह करके नये पथ का पथिक बनने के लिये आतुर हो जाता है। वर्माजी का साहित्य सामयिक परिस्थितियों में नई भूमिका भावी पीढ़ी के लिये प्रस्तुत करता है।

वर्माजी की उपन्यास कला अपने युगीन उपन्यास कारों से कुछ भिन्न है हालांकि इन्होंने भी अपने युगीन उपन्यासकारों की भांति सामाजिक राजनैतिक चित्रण किये हैं फिर भी यह किसी परिपाटी या "वाद" से बंधे नहीं हैं इनके उपन्यास सर्वथा स्वतंत्र सत्ता रखते हैं, अपने आप में पूर्ण हैं। भगवती चरण वर्मा में प्रगतिशीलता स्पष्ट परिलक्षित होती है। कल्पना, रोमांश एवं चमत्कार प्रदर्शन के इन्द्रजाल से विमुक्त होकर सामाजिक यथार्थ की कठोर भूमि पर खड़े होकर वर्माजी के उपन्यासों ने वास्तविक अर्थों में अपने युग-धर्म का प्रतिनिधित्व किया है।

वर्मा जी आदर्श और यथार्थ के बीच समझौता करके ही चले। उन्होंने पतन और स्खलन का भी वर्णन किया है किन्तु सामान्य मानव सुलभ दुर्बलता के रूप में- उसमें आसक्ति नहीं दिखाई गयी। वास्तव में भारतीय राष्ट्र की मौलिक मनोवृत्ति, उसके आदर्श एवं प्रतिभा की सुन्दरतम् अभिव्यक्ति वर्मा जी के उपन्यासों में हुई है। अतएव समय के प्रवाह में उनकी कृतियों का मूल्य कम नहीं है। भगवती बाबू के उपन्यास की बड़ी ही सहज लक्ष्य, प्रवृत्ति है सामान्य के स्थान पर विशेष का चित्रण। लगता है जैसे जीवन को उसकी सम्पूर्णता में देख लेने के उपरान्त कलाकार उसके विभिन्न अंगों का निरीक्षण कर रहा है। सामाजिक यथार्थ की तीव्र अनुभूति ने उसे यह प्रेरणा दी है। यह तो मानना पड़ेगा कि साहित्यिक अभिव्यंजना प्रणाली पर यथार्थवाद का प्रभाव पड़ा है। आज के उपन्यास को सच्चे अर्थों में समाज का चित्र कहलाने की क्षमता यथार्थवाद से मिली है।

साहित्य की सृष्टि जीवन के माध्यम से जीवन के लिये होती है। जीवन के अनेक रूप हैं, अनेक पक्ष हैं और विविध रूपों एवं पक्षों में ही वह यथार्थ है। वर्माजी ने मानवीय सहानुभूति के साथ मनुष्य की शक्ति एवं दुर्बलता को पहचाना और जीवन को उसकी समग्रता में व्यक्त किया। वर्मा जी की स्वस्थ और संतुलित दृष्टि आदर्श व यथार्थ का समन्वय करके चली है। वर्मा जी के साहित्य के लिये जीवन का कोई क्षेत्र नगण्य, उपेक्षित एवं हेय नहीं रह गया है।

:-5. वर्मा जी के उपन्यासों में प्रगति चेतन के विविध आयाम :-

:- वर्माजी के उपन्यासों में सामाजिक चेतना :-

वर्माजी का साहित्य तथाकथित सुधारवादी तथाकथित संस्थाओं में प्रगतिशील विचारों से प्रभावित रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर बीसवीं शताब्दी के विगत दशक तक कालक्रमानुसार बहुरंगी जीवंत चित्र वर्माजी का साहित्य प्रस्तुत करता है।

वर्माजी की यह अपनी विशेषता रही है कि वह समाज- सुधारकों का जामा पहने बिना प्रगतिशील विचारों द्वारा जीर्ण शीर्ण व्यवस्था पर प्रहार करके उसे ध्वस्त करते रहे। "भूले बिसरे चित्र" इस दृष्टि से विशेष कृति है। नारी स्वतंत्रता आंदोलन उस युग में तेजी से चलने लगा था जिसे "विद्या" नारी पात्र के द्वारा वर्माजी पूर्णाभास करा दिया है। एक ही साथ वह ससुराल वालों के अत्याचार का विरोध करती है एवं सामाजिक व्यवस्था से विद्रोहकरती हुई राजनीतिकआंदोलन में निर्भय भाग लेती है। शायद भारतीय समाज में नारी जागरण का यह पहला स्वर है, वर्मा जी ने जिसे प्रगति-चेतना के आलोक में सशक्त व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया है।

सन् 1947 में कलकत्ता कांग्रेस ने यह सम्मति प्रकट की थी। "शिक्षा तथा स्थानीय सरकार से संबंध रखने वाली निर्वाचित संस्थाओं में मत देने तथा उम्मीदवार खड़े होने की स्त्रियों की वहीं शर्तें रखी जायें जो पुरूषों के लिये हैं।" [1] सरोजिनी नायडू तथा एनीबेसेन्ट आदि नारियोंने सरकार के सम्मुख 1917-18 में सरकार से मांग की थी कि नारियों को राजनीतिक अधिकार दिलाएं जायें। वर्माजी के उपन्यास "भूले बिसरे चित्र" में माया शर्मा इसी चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। ये नारी के सामने अधिकारों की मांग करती हुई सत्याग्रह करती हैं और स्वदेशी आंदोलन में भाग लेती है तथा जेल जाती है। स्त्री पुरूषों के सह प्रयत्न से इस प्रकार का अधिकार नारी वर्ग को मिला। स्त्री शिक्षा का अधिकाधिक विकास हुआ जिससे संबंधित सभी समस्याओं का चित्रण वर्मा जी ने किया है।

---

1. डा० पट्टाभि सीता रमैया: कांग्रेस का इतिहास, अनु० अरिभाऊ उपाध्याय पृ. -59

नवीन औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप देश की सामाजिक स्थिति तथा वर्ण-व्यवस्था में पर्याप्त परिवर्तन आया। खान-पान, शादी विवाह जीविकोपार्जन के साधन तथा जीवन संबंधी दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण प्रत्येक वर्ण अनेक जातियों उप-जातियों में विभजित हो गया। संयुक्त परिवार का विघटन "भूलेबिसरे चित्र" से ही प्रारंभ हो गया।

भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले परिवर्तन क्रम से गुजर रहे सामाजिक परिवेश ने नारी जीवन में आमूल परिवर्तन उपस्थित किये। उसका क्षेत्र घर बाहर दोनों दिशाओं में विस्तृत हो गया और सार्वजनिक जीवन में वह पुरूष के निकट आई। पुरूष के साथ बढ़ते हुये संघर्ष ने सामाजिक जीवन में स्वच्छंद प्रेम को जन्म दिया। स्त्री पुरूष दोनों ने मुक्त कंठ से वैवाहिक संस्था का विरोध किया। इस प्रकार रूढियों और परम्पराओं को विध्वंस कर एक नवीन समाज की कल्पना वर्माजी के साहित्य में की गयी है।

वर्माजी ने भारत की नवोदित सामाजिक चेतना को नई अभिव्यक्ति दी है। समाज के अंतरंग एवं बाह्यरंग का चित्रण नैतिक मान्यताओं और यौन वर्जनाओं के परि-प्रेक्ष्य में नारी पुरूष के संबंध को देखना वर्माजी की मौलिक विशेषता है। समाज की रचना और उसके संगठन का आधार आर्थिक व्यवस्था से निर्धारित हुआ करता है। ~~आर्थिक व्यवस्था से निर्धारित हुआ करता है।~~ आर्थिक व्यवस्था जितनी अधिक विकसित होगी समाज उतना ही प्रगतिशील होगा। नवीन औद्योगिक अर्थव्यवस्था ने यहां नये सामाजिक वर्गों को जन्म दिया वहां परम्परागत वर्गों का विघटन भी कम न हुआ। इस दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय सामाजिक इतिहास में यह महत्त्वपूर्ण घटना है। क्योंकि इसी समय से परिवर्तन की यह प्रक्रिया प्रारम्भ होती है जिसका दौर आज भी समाप्त नहीं हुआ।

:-नारी समस्या :-

----x----

उन्नीसवी एवं बीसवीं शताब्दी का अन्तराल वास्तविक अर्थों में मुक्ति आंदोलन का युग था और भारतीय समाज में सबसे अधिक पीडित एवं बंधन-ग्रस्त था यहां की नारी। भारतीय समाज में नारी की स्थिति अत्यंत चिंत्य थी, जिससे अने-कानेक सामाजिक समस्यायें, बुराइयां उत्पन्न हो रहीं थीं। किसी भी समाज की श्रेष्ठता

तथा श्रेष्ठता उस समाज में नारी की स्थिति पर निर्भर करती है। इस प्रकार नारी समाज की उन्नति अवनति की द्योतिका है। यही कारण है कि गांधी जैसे युग पुरुष ने भी उसके महत्त्व को समझा और समाज में इस उपेक्षित वर्ग को समानाधिकार तथा सम्मान दिलाने की कोशिश की। उनका कहना था कि नारी को अबला कहना, उसके प्रति पुरुष का यह अन्याय है-" यदि अहिंसा हमारे मूल्यांकन की कसौटी है तो निश्चय ही भविष्य का निर्माण स्त्रियों के हाथ में है।"1

भारतीय समाज में नारी अनेकानेक समस्याओं से ग्रस्त रही है एक ओर पुरुषों को स्वच्छंद जीवन भोगने के लिये अनेक सुविधायें उपलब्ध रहीं। दूसरी तरफ नारी घर की कारा में बंद पुरुषों के हाथ की कठपुतली बना दी गई। परन्तु बीसवीं शताब्दी में नारी- जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित हुये और भारतीय समाज में नारी को गौरवशाली पद प्राप्त हुआ। अब वह जागरूक होकर पुरुषों की सहयोगिनी ही नहीं बनी अपितु सामाजिक, राजनीतिक प्रश्नों को समझती है। वर्माजी का साहित्य प्रतिपाद्य की दृष्टि से दीर्घकाल के अंतराल को आत्मसात करता है अतः उसमें नारी जीवन के पुरातन एवं नूतन दोनों स्वरूपों की अभिव्यंजना हुई है।

:- नारी और वैवाहिक विकृतियाँ [समस्यायें] :-

शास्त्रानुसार विवाह-संस्कार में धनधान्य से युक्त कन्या को बर के हाथ दान करदिया जाता था। इस प्रथा ने एक ओर नारी को दान में दी जाने वाली तुच्छ व निरीह वस्तु के रूप में बदल कर उसके अस्तित्व को समाप्त कर दिया तो दूसरी ओर दहेज प्रथा को प्रोत्साहित कर आर्थिक विवशता में अनमेल विवाह, आदि को प्रश्रय प्रदान किया, क्योंकि धन पहले तो स्वेच्छा से दिया जाता था, लेकिन बाद में इसका रूप दहेज प्रथा के रूप में आया जिससे लड़कियों का विवाह समाज में एक कठिन आर्थिक समस्या बन गया। इस समस्त अभिशापित अत्याचारों को नारी ने मौन भाव से स्वीकार किया। दहेज प्रथा के कुत्सित रूप ने अनमेल विवाह, बहु-विवाह, बाल-विवाह आदि के रूप में विवाह के विविध विकृत रूप समाज में प्रचलित किये। इन वैवाहिक विकृतियों ने सामाजिक संगठन को सदैव कमजोर तथा जर्जर बनाया जिससे नारी वर्ग को इन विकृतियों का सब से अधिक शिकार बनना पड़ा।

1: यंगइण्डिया, 10-4-1930

" भूले बिसरे चित्र" उपन्यास में मुंशी हरसहाय विवाह को एक दैवी बंधन स्वीकार करते है--" विवाह तो देव बंधन है, जिस दिन परीक्षा हुई उसी दिन यह बंधन बंध गया।"। " विवाह द्वारा ही पुरूष अबला स्त्री को आश्रय देता है। "स्त्री को आश्रय देना उसकी रक्षा करना यह पुरूष का कर्तव्य है, इसीलिये प्रत्येक पुरूष का कर्तव्य समझा गया है कि वह एक स्त्री को आश्रय दे, साथ ही उस स्त्री को अपनाकर अपने को पूर्ण बनावे। सृष्टि में पुरुष अपूर्ण है, क्योंकि उसके ममत्व पर केन्द्रीभूत होने के कारण उसमें दया, त्याग, सहानुभूतिआदि की कोमल भावनाओं का अभाव-सा है और साथ ही स्त्री भी अपूर्ण है, क्योंकि उसमें अधिकार वीरता, साहस आदि का अभाव है, इसलिये स्त्री पुरूष के मिल जाने से जीवन पूर्ण होता है..... इसलिये विवाह का जन्म हुआ। "2"

वैवाहिक चुनाव के आधार एकदम निश्चित नहीं होते-निश्चित हो भी नहीं सकते आर्थिक संगठन तथा सांस्कृतिक मूल्यों के परिवर्तन क्रम में ये गतिशील होते हैं। माता पिता की इच्छा द्वारा लिये गये वैवाहिक निर्णय अधिकांशत: नवदम्पति के लिये समस्या बन जाती है। उमानाथ द्वारा "टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यास में यह बात स्पष्ट हो जाती है। उमानाथ कहता है --" मैंने अपनी पहली पत्नी से अपनी इच्छानुसार विवाह नहीं किया, वह मेरे गले में जबरदस्ती मढ़ दी गई है मैं उससे प्रेम नहीं करता, कर भी नहीं सकता, वह मेरे लिये त्याज्य है। "3"

युग के प्रगतिशील धरातल पर सामाजिक मान्यतायें बदल रही है और इस बदलती हुई मान्यताओं के साथ समाज के रूप भी बदल रहे हैं। अतस्व प्रेम, पुरातन मान्यताओं के अनुसार जो विवाह के बाद हुआ करता था। वह आज विवाह का मुख्य आधार बना। युगों से त्रस्त नारी जब अपने अधिकार प्राप्त किये शोषण से मुक्त हुई तो उसने पुरूषों के विशेषाधिकार का विरोधकरते हुये उनके अत्याचार के विकृत स्वरूप का पर्दाफाश किया और अपने अस्तित्व को पहचाना। "टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यास की प्रतिभा प्रभानाथ से कहती है--" स्त्री सुख है या उसका शरीर सुख है या उसकी सुन्दरता सुख है, स्त्री का रूप उससे छीन लो उसकी मोहिनी उसे हटा लो, और फिर वह स्त्री तुम्हारे लिये नरक बन जायेगी "4"

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ 21
2. तीन वर्ष, पृष्ठ , 51
3. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ 90
4. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ 67

इसी अस्तित्व बोध के कारण वैवाहिक व्यवस्था के प्रति नारियों ने विद्रोह किया। "भूले बिसरे चित्र" की विधा तथा "थकेपांव" की माया वर्माजी के साहित्य की ऐसी ही नारियां है, जो विवाह व्यवस्था का विरोध करती हैं।

"रेखा" उपन्यास में वर्माजी ने स्वच्छंद प्रेम तथा वैवाहिक चुनाव के सवाल को उठाया है। रेखा कॉलेज की छात्रा है और स्वच्छंद प्रेम को ही वह जीवन का लक्ष्य मानती है। प्रेम के वशीभूत होकर वह पारिवारिक विरोध सहकर भी स्वेच्छा से विवाह करती है। यह बदलते हुये युग का उदाहरण है। बदलते हुये जीवन मूल्यों एवं मान्यताओं का आभास प्रभाशंकर और देवप्रिया के वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है। प्रभाशंकर, रेखा की माता देवप्रिया से कहते हैं-- " माताजी आधुनिक युग में तो लड़कियाँ स्वयं अपना पति चुना करती है, आप चिंता करना छोड़ दें। "[1]" यही विचारधारा "प्रश्न और मरीचिका" उपन्यास में जयराज उपाध्याय की देखने को मिलती है। वह अपनी पुत्री लता को स्वेच्छा से विवाह करने की छूट देते हैं। इस प्रकार ये बदलती हुई मान्यतायें आज समाज अपनाता जा रहा है। परन्तु ज्ञातव्य है कि रेखा और लता जो स्वेच्छा से विवाह करती हैं वे दोनों असफल रहती हैं। इससे यह विदित है कि लेखक युगीन आधुनातक मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता, विवाह संबंधी गम्भीर मामलों में माता-पिता की अनुमति एवं सुझाव नितांत आवश्यक मानते हैं। वर्माजी ने अपनी यही मान्यता को "तीन वर्ष" उपन्यास में स्थापित की है। अजित कृष्णानंद से कहता है--"आप अपने पिता पर विश्वास कीजिये, वे अनुभवी हैं वे आपके पिता हैं, आप पर उनकी ममता है। पिता आपका अहित न करेंगे... जिस समय आप दोनों एक बंधन में बंध जायेंगे, आप दोनों के स्वार्थ एक हो गये, जीवन धारायें एक में मिल गईं, तब आपस में प्रगाढ़ सहानुभूति हो ही जायेगी। इसलिये हमारी संस्कृति ने विवाह में पिता को इतनी स्वतंत्रता दे रखी है। "[2]"

वर्माजी अराजकता से बचने तथा सुव्यवस्थित जीवन-क्रम व्यतीत करने के लिये विवाह व्यवस्था नितांत आवश्यक मानते हैं। "रेखा" उपन्यास में सोमेश्वर के द्वारा वैवाहिक विरोध करने पर प्रोफेसर प्रभाशंकर द्वारा विवाह व्यवस्था का समर्थन करके वर्माजी अपनी विचारधारा की पुष्टि करते हैं। " विवाह न करके तुम दुनिया से संपर्क तोड़ रहे हो, क्योंकि दुनिया के सब लोग इन छोटे छोटे बंधनों में बंधे हैं। जो निर्बंधता की दुहाई देता है वह अराजकता को अपनाता है, और समाज उसे अपने में सम्मिलित करने में हिचकिचाता है। ये जितने नियम हैं, ये जितनी मान्यतायें है सृष्टि इन्हीं पर

---

1. रेखा. पृष्ठ 65.   2. तीन वर्ष, पृष्ठ 55

अवलंबित है। .1.

युगानुकूल सामाजिक दृष्टियों में परिवर्तन के समानान्तर ही उपन्यासकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन आता गया है। इस दृष्टि से सामाजिक दृष्टि से, सामाजिक दृष्टि कोण के विविध परिवर्तनों को वर्माजी के उपन्यास साहित्य में भली भाति निहारा जा सकता है। आज विवाह संबंधी पुरातन सामाजिक मान्यतायें लगभग समाप्त हो रही हैं। स्वच्छंद प्रेम की पद्धति बहुत लोक प्रिय होती जा रही है। और ग्रामीण अंचलों के लोग भी इसके आधार पर विवाह सूत्र में बंधने लगे हैं। वर्माजी के साहित्य में पुरातन एवं नूतन दोनों विचारधाराओं के पात्र हैं। यही उनकी कला की सफलता का रहस्य है। यहां वैवाहिक व्यवस्था की विकृतियों के संदर्भ में तथाकथित विचारधाराओं का अध्ययन अनुपयुक्त न होगा।

अनमेल विवाह - ।बाल विवाह। :-
------x------x------x------x----

भारतीय समाज में अनमेल विवाह एक भयंकर सामाजिक दोष है। नारी परतंत्र है अतः बहुधा उसी का शोषण हुआ है। यही कारण बहुधा अनमेल विवाह का रूप वृद्ध विवाह होता है, जिसमें किशोरावस्था में लड़कियों का विवाह वृद्ध पतियों से होता है। यह अनमेल विवाह, दहेज प्रथा व आर्थिक निर्धनता के कारण समाज में प्रचलित हुआ अनमेल विवाहों की परिणति अन्ततः किसी न किसी रूप में दुखद ही हुआ करती है। ऐसे विवाहों में स्त्री का आंतरिक असन्तोष खुलकर भले ही न व्यक्त हो पाये, परन्तु जीवन भर उन्हें अंदर ही अंदर घुटना पड़ता है। वर्माजी ने अपने उपन्यास "पतन" में एक ऐसे ही अनमेल विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया है। "प्रकाशचंद्र प्रेम के भावों को समझता ही नहीं था सरस्वती उसके लिये एक जड़ पदार्थ थी।- अपना सुख उसके लिये सब कुछ था.... अपने सुखों पर वह सरस्वती के सुखों को न्योछावर कर देता था। .2.

"टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यास में वर्माजी ने अनमेल विवाह से उत्पन्न कटुता तथा दुखी दाम्पत्य जीवन का विशद चित्रण किया है। महालक्ष्मी उच्चवंश की बधू है। जो भारतीय नारी के आदर्श के परिपालन में जीवन की पूर्णता समझती है। पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता में पले उमानाथ को उसके इस पति-परायण निष्ठ धर्म से चिढ़ होती है,

---

1. रेखा पृष्ठ 95
2. पतन पृष्ठ 76

इसलिये वह अंग्रेज लड़की हिल्डा से दूसरा विवाह कर लेता है। उमा नाथ कहता है- "मुझे चाहिये पत्नी में एक व्यक्तित्व उसके स्वतंत्र विचार और मेरे व्यक्तित्व का उसके व्यक्तित्व से तथा मेरे विचारों से उसके विचारों का अनावरत संघर्ष।"[1] हम देखते हैं कि पति-पत्नी का सांस्कृतिक व वैचारिक भेद ही दाम्पत्य जीवन की दुखान्त भूमिका को प्रस्तुत करता है।।

"रेखा" उपन्यास में भगवती चरण वर्मा रेखा के अनमेल विवाह से न केवल सामाजिक समस्या को प्रस्तुत करते हैं अपितु अनमेल विवाह से उत्पन्न कटुता, संदेहात्मक वातावरण, दुखी दाम्पत्य जीवन, नारी धर्म, मानवधर्म जैसे गंभीर प्रश्न भी उपस्थित करते हैं। रेखा का विवाह प्रौढ़ व्यस्क प्रोफेसर प्रभाशंकर से स्वेच्छा से होता है। रेखा अनमेल विवाह से ग्रस्त, यौवनोन्माद से पागल, नियति की हिलोरों मेंबहती हुई नारी है।इस अनमेल विवाह का अभिशाप जीवन पर्यन्त दोनों को भोगना पड़ा प्रभाशंकर कहता है-- "रेखा, तुम्हारे कारण मैंने बहुत कुछ सहा है, लेकिन मैं तुम्हें दोष नहीं देता। मेरे कारण शायद तुमने इससे भी अधिक सहा है। तुमसे विवाह करके मैंने तुम्हारे जीवन को नष्ट कर दिया।"[2] नारी भरी दुख की बदली रेखा की जीवन गाथा है जो अपना सर्वस्व नष्ट कर प्रियतम को समर्पित करके टूट जाती है और अनबुझी प्यास में सिसकते हुये पाषण की तरह नियति के हथौड़ों की चोट से सिसक उठती है।

बहु - विवाह :-

भारतीय समाज में बहु-विवाह प्रथा युगों से चली जा रही है। भारतीय हिन्दू समाज में नारी को सम्पत्ति संबंध अधिकार न होने के कारण पुत्र-लालसा के नाम पर पुरूष के लिये आज भी कई विवाहों की छुट मिल जाती है। सांमत वर्ग में बहु-विवाह का विशेष प्रचलन था। "सबहि नचावत राम गोंसाई" उपन्यास में राजा पृथ्वीपाल सिंह की तीन रानियों हैं। यह सांमत वर्ग आर्थिक रूप से अधिक सम्पन्न होने के कारण विलासी और कामुक प्रवृत्ति का था। "प्रश्न और मरीचिका" की मंजीत एक ऐसी नारी है जो बहु-विवाह जैसी दूषित प्रथा का विरोध करती है और किसी भी शर्त पर प्रेम मदान को दूसरी पत्नी बननेको तैयार नहीं होती है। वर्माजी ने मंजीत के माध्यम से बहु-विवाह का विरोध किया है।

वर्माजी ने बहु विवाह के खिलाफ जोरदार आवाज उठाई तभी तो वह सीता नाथ

---

1. टेढ़े मेढ़े रास्ते पृष्ठ 190   2. रेखा पृष्ठ 346

द्वारा राजेन्द्र किशोर की अवमानना कराते हैं जो विवाहित होते हुये भी सुंदर एवं सुसंस्कृत ऊषा के साथ अपना विवाह करना चाहता है। सीतानाथ नवल से कहता है, "मुझे तो राजेन्द्र किशोर पसंद नहीं एक पत्नी के रहते जो आदमी दूसरा विवाह करना चाहे, वह कितना भी बड़ा पद मर्यादा वाला हो, मै उसे पतित आदमी ही समझ सकता हूँ "।" इसके अतिरिक्त हिन्दू कोड बिल पास होजाने के बाद नारियों की जीवन दशा में कतिपय सुधार हुये तथा बहु-विवाह पर जबरदस्त नियंत्रण लग गया ।

"सीधी सच्ची बातें" उपन्यास में त्रिभुवन मेहता और मालती के दाम्पत्य के जीवन में ऐसी कटुता उत्पन्न करायी कि दोनों एक दूसरे से अलग हो जाते है। मालती कहती है "तुम उसे यह भी समझा देना कि अगर उसने दूसरी शादी की तो मै उसे मिट्टी में मिला दूंगी। यह मर्दों की गुलामी का युग अब आ गया है। "2" त्रिभुवन मेहता बिना कुछ सोचे समझे दूसरा विवाह कर लेता है। मालती अपने पचास रुपये की डिगरी त्रिभुवन मेहता पर करवा देती है, जिसका प्रोनाट उसके पास था। इससे त्रिभुवन घबरा कर पुन: मालती की शरण में आ जाता है दूसरी पत्नी को छोड़ देता है। नारी के समक्ष पुरुष की पराजय का इससे बड़ा उदाहरण कौन है कि बहु-विवाह की जड़े जहाँ से उगी थीं वहीं उखड़ गईं। और युगों से लगा रूढियों का वट वृक्ष आज सूख गया।

पुनर्विवाह :-

रूढियों, परम्पराओं और प्राचीन मान्यताओं में ग्रस्त समाज में अनेक समस्यायें स्वतंत्र न रहकर कई सामाजिक दोषों की श्रृंखला में कड़ी बद्ध हो जाती हैं। हिन्दू समाज में विधवा प्रथा एक ऐसी ही समस्या रही है जो अनेक सामाजिक दोषों को आत्मसात करती हुई व्यक्ति और समाज के लिये महत्त्वपूर्ण समस्या बनी फिर भी समाज द्वारा उपेक्षित रही। विधवा बेचारी वैसी ही जीवन के भार को बोझिल जीवन ढोती थी , उसका उठना बैठना, खाना-पीना, पहनना- ओढ़ना सब समाज की नजर में आलोचना की वस्तु थें। ऐसी दशा में शायद पति के साथ सती हो जाना आसान रहा होगा यह वैसा ही समाधान हैजैसे सत्याचार सहते सहते नैराश्य के कुहासे में डूबकर आत्महत्या कर ली जाय। समाज सुधारकों ने अमानुषिक सती प्रथा पर तो कानूनी नियंत्रण लगा दिये परन्तु विधवा

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 548
2. सीधी सच्ची बातें, पृष्ठ - 492

के सामाजिक जीवन की समस्याओं और उनके समाधान पर विचार न किया।

वस्तुत: विवाह-संस्था का जो उद्देश्य है वही विधवा जीवन की मूल समस्या है। वैधव्य को जब समस्या का रूप दिया जाता है जो यह स्वीकार करना पड़ता है कि वैवाहिक संस्था आदर्श, प्राकृतिक तथा वांछनीय है। भारतीय समाज में विवाह का आज भी महत्व है। गतिरोध उत्पन्न होने पर किसी भी विधवा या विधुर को दूसरा सामाजिक समझौता करने का अधिकार मिलना नितांत आवश्यक है। स्वस्थ समाज का स्थायी महत्त्व तभी स्थापित हो सकता है। यही कारण है कि विधवा-समस्या पर विभिन्न पहलुओं से विचार किया गया।

"भूले बिसरे चित्र" एवं "सामर्थ्य और सीमा" दोनों उपन्यासों में भगवती चरण वर्मा ने विधवा-समस्या को अन्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य में रखकर चित्रित किया है। "भूले बिसरे चित्र" में वर्माजी ज्वाला प्रसाद के जीवन में कर्तव्य भावना का संघर्ष चित्रित कर दो हिन्दू-परिवारों की निरीह विधवा नारियों के जीवन के सटीक चित्र निर्मित करते हैं। जैदेई अपने पति के हत्यारे बरजोरसिंह को सजा दिलाने के लिये नायब तहसीलदार ज्वालाप्रसाद की सहायता लेती है। बरजोरसिंह कानून के भय से आत्म हत्या कर लेता है। जैदेई ज्वलाप्रसाद से सहायता से प्रभावित होकर उसे अपना बना लेती है क्योंकि परिस्थितियों का सामना करने के लिये उसे पौरूष की आवश्यकता थी। अपने मानसिक द्वन्द्व में ज्वालाप्रसाद अपना मार्ग निर्धारित नहीं कर पाते हैं। एक ओर यदि वे बरजोर सिंह के खिलाफ गवाही देकर अपने सरकारी अफसर की जिम्मेदारी पूरी करते हैं तो दूसरी ओर बरजोर सिंह के आत्महत्या कर लेने पर उसके परिवार के लिये उससे ज्यादा उत्तरदायित्व का अनुभव कर सौ अशर्फियां बरजोर सिंह के परिवार को देकर ऋण मुक्त भी करा देते हैं। चंद्रभूषण ज्वालाप्रसाद से कहते हैं--" सौ अशर्फियां देकर बरजोर सिंह की बेवा को उसकी खुदकाश्त वापस करा दी। बड़ा विशाल हृदयपाया है आपने। "[1]

वैधव्य की निरीहता ही उस अनैतिकता का कारण है जिसका चित्रण जैदेई और ज्वालाप्रसाद के माध्यम से हुआ है। ज्वालाप्रसाद एक ऐसे माध्यम हैं जो एक साथ दोनों विधवाओं (जैदेई और बरजोर सिंह की बेवा) को क्रमश: सामाजिक और आर्थिक सहायता

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ- 90

प्रदान करते हैं। इस प्रकार वर्माजी विधवा-समस्या की विशद विवेचना करने में सफल हुये हैं।

"सामर्थ्य और सीमा" उपन्यास पूर्णतया विधवा-समस्या पर आधारित है। पति वियोग में दुखी रानी मानकुमारी को सरकार की कठिन नीति का सामना करते हुये वैधव्य जीवन की यथार्थ समस्याओं और अभावों का अनुभव होता है। "उन्होंने देखा कि उनके सम्पर्क में अपने वाले हर एक आदमी में विनय है, आदर्शवाद है, ऊँचे सिद्धांत हैं, हर एक आदमी सद्भावना और सदाचार को अपने जीवन का उद्देश्य बनाए हुये है। फिर भी उसका काम नहीं बन पा रहा है। उन्होंने अनुभव किया कि काम बनाने के लिये जिस चीज की आवश्यकता है वह उसके स्वभाव और प्रकृति में नहीं है।"[1] हिन्दू समाज की निरीह विधवा नारी की घुटती हुई जिन्दगी का यह सच्चा चित्र है जिसे समाज सहायता देने से तो दूर रहा उसकी असमर्थता का लाभ उठना चाहता है। स्वयं खीजकर कहती है-- "मैं अपने निरर्थक, निरूद्देश्य और लक्ष्यहीन सौन्दर्य से आजिज आ गई हूँ। कभी-कभी जी होता है जहर खाकर मर जाऊँ।"[2] मानकुमारी सामाजिक अवमानना सहती हुई घुटती जीती है।

जीवन की महत्त्वाकांक्षा, मातृत्व की प्रबल कामना और आदर्शों को जड़ता ने विधवा मानकुमारी को तोड़ कर रख दिया है। मानकुमारी का वैधव्य अनुभव विधवा नारी जीवन की सच्ची कहानी है। यह आश्चर्य जनक तथ्य है कि वर्माजी ने विधवा समस्या के मूलभूत कारणों का विशद विवेचन किया है किन्तु समस्या का कोई समाधान प्रस्तुत न कर सके। पुनर्विवाह, विधवा समस्या का उचित समाधान था जिसे वह भरतीय नारी जीवन के आदर्श में बाधक मानकर स्वीकार नहीं करते। यही कारण है कि मानकुमारी देवलंकर से विवाह प्रस्ताव को स्वीकार करते हुये भी नकार जाती है।

---

1. सामर्थ्य और सीमा पृष्ठ- 66
2. सामर्थ्य और सीमा पृष्ठ- 136

:- वेश्या- समस्या : समाधान और संस्कार :-

वेश्या नारी जीवन का भारतीय समाज में एकअभिशापित अंग है। भारतीय समाज में दहेज प्रथा, पर्दाप्रथा, वबहु पत्नी विवाह आदि ऐसी अनेक कुप्रथायें रहीं हैं। जो त्रस्त-निरीह को जीवित रहने के लिये और आर्थिक दृष्टि से निराधार परिवार द्वारा उपेक्षित, समाज से लांछित एकाकी परिवार की सीमा से निकल कर व्यापक समाज की सीमा में फेंक दिया जाता है। उचित संरक्षण के अभाव में छल तथा प्रपंच से तथा अनमेल वैवाहिक संबंधों सेअसफल जीवन में सम्पत्ति अधिकारों से बंचित होकर नारी का वेश्य जीवन अपना लेना कोई आश्चर्य जनक नहीं है।

भारत जैसे देश में जहां युगों से नारी के लिये सतीत्व धर्म, तथा प्रतिव्रत धर्म श्रेष्ठ रहे हों, वहां वेश्या वृत्ति का अवधि प्रचलन लज्जास्पद नहीं तो और क्या है। सभ्य कहलाने वाले देशों में भले ही इसके मूल में नारी की चरित्र हीनता तथा नैतिक पतनशीलता रही हो लेकिन भारत में आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों ने ही इसे प्रोत्साहन दिया है। स्त्री अपने शोषण के विरुद्ध विद्रोहात्मक उद्घोषण वेश्या के रूप में करती है। अपने प्रतिक्रियात्मक विद्रोह में वह आर्थिक स्वतंत्रता का अनुभव करती हुई पुरुष को परतंत्र बनाने की प्रतिहिंसात्मक स्वतंत्रता में आनंदानुभूति करती है" लेकिन इतना सब करती हुई वह कहीं न कहीं नारीत्व को आत्मसात किये होती है, जो उसके संबंधों और उसकी मानसिकता को जटिल रूप प्रदान करता है। यह जटिलता ही उस रचनात्मक संघर्ष की जन्मदात्री है जो समय, समय पर औपन्यासिक कृतियों में वेश्याओं के माध्यम से व्यक्त हुआ है।

प्रेमचंद युगीन कलाकार जहां वेश्या समस्या पर सहानुभूतिपूर्ण ढंग से विचार करते हुये उनके विवाह का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करते हैं वहां प्रारंभिक उपन्यास-

कार घृणा की दृष्टि से देखते हैं परन्तु भगवती चरण वर्मा की यथार्थोन्वेषी दृष्टि ने वेश्या-समस्या को बड़ी सहानुभूति के साथ मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। "तीनवर्ष" उपन्यास में वर्माजी ने वेश्या समस्या को तुलनात्मक रीति से उठाया है और सामान्यत: समाज में प्रतिष्ठित नारियों की तुलना में वेश्याओं को श्रेष्ठ घोषित किया है। जो इसलिटशा में क्रांतिकारी कदम है। वर्माजी अपने उपन्यास में प्रतिष्ठित वकील सर कृष्णशंकर की पुत्री तथा वेश्या सरोज का तुलनात्मक चारित्रिक मूल्यांकन मानवतावादी धरातल पर करते हैं। तदुपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भद्र समाज की प्रतिष्ठित नारियों की अपेक्षा वेश्यायें महान चरित्रवाली हैं। प्रभा अपने सहपाठी रमेश से प्रेम करती है लेकिन उससे विवाह इस लिये नहीं करती कि वह गरीब है। लेकिन उपन्यास में उत्तरार्द्ध में जब वह रमेश के पास चार लाख रूपये का बैंक ड्राफ्ट देखती है तो वह शादी के लिये तुरन्त तैयार हो जाती है। परंन्तु सरोज वेश्या का नि:स्वार्थ प्रेम और उसके द्वारा चार लाख रूपये दान देकर रमेश की आँखे खोल देती है। रमेश प्रभा को संबोधित करता है- "तुम पुरूष का धन लेती हो पुरूष को अपना शरीर देने की बदले में- है न ऐसी बात और यह वेश्यावृत्ति है-- प्रभाजी नमस्कार।"[1] वर्माजी की पैनी दृष्टि तीनवर्ष उपन्यास में एक नवीन सत्य के उद्घाटन में सफल रही है।

प्रभा जो सभ्य और सुसंस्कृत, शिक्षित और सम्पन्न तथा समाज में प्रतिष्ठित है, वह हृदय से वेश्या है और सरोज जो वेश्या जीवन-जीती है वह निष्कलुष एवं पूज्यनीय है, क्योंकि उसमें वेश्यापन का सर्वथा अभाव है। समाज की कुछ ऐसी खोखली मान्यतायें है कि भद्र समाज कुछ भी करे उस पर उंगली नहीं उठाई जा सकती, एवं निम्न वर्ग या निरीह व्यक्ति जो सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों से मजबूर होकर पथ भ्रष्ट हुये है- हृदय से पवित्र एवं उज्ज्वल हैं- उन्हें समाज घृणित समझता है। वर्माजी का यह चरित्र विश्लेषण हिन्दी उपन्यास में अभूतपूर्व है।

---

1. तीन वर्ष, पृष्ठ 255

इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्रभा सदृश युवतियाँ आज के जाने माने सभ्य समाज में पाई जाती हैं लेकिन सरोज सी वेश्या विरले ही मिलेंगी। "तीन वर्ष" के कथानक में लेखक वेश्या-सुधार का विशेष आग्रह लेकर चला है, जिसकी प्रतिष्ठा के लिये आधुनिक नारी प्रभा का सृजन कर उसे सरोज वेश्या से भी अधिक पतित दिखाया गया है। इसकी पृष्ठभूमि में दो उद्देश्य रहे हैं। एक तो वेश्या के प्रतिसामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना तथा दूसरी ओर पाश्चात्य शिक्षा संस्कृति से अनुप्राणित रमणियों की विलासी प्रवृत्ति का परिचय कराना और लेखक को अपने इस अभीष्ट में सफलता मिली है।

"चित्रलेखा" उपन्यास में वर्माजी कला की अमर साधिका नर्तकी चित्रलेखा में महत्त्व का प्रतिपादन कर अपनी उदारतावादी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। भोगी और तपस्वी की तरह साधना में अनुरक्त उसी नर्तकी को समाज में कोई महत्त्व नहीं दिया जाता है। किन्तु समाज नर्तकी को कठिन साधना को क्या समझे। चित्रलेखा की वाचालता के अवगुंठन को उठाकर यदि झांके तो उसमें प्रेम का पीयुष प्रवाहमान दीख पड़ता है जिसके बीच विद्रोही उक्तियाँ केवल उसकी पुष्टि के लिये लाई जाती हैं।

:- पर्दा प्रथा :-
----x----

वर्माजी ने अपने साहित्य में पर्दाप्रथा का विरोध किया है क्योंकि वर्माजी प्रगतिवादी चेतना के कलाकार हैं, नूतन को ग्रहण करने तथा अनुपयोगी पुरातन को परित्याग करने की उनमें जन्मजात प्रवृत्ति है। पारिवारिक धरातल पर जो समस्यायें हैं उनमें पर्दाप्रथा प्रमुख है। भारतीय समाज में मुस्लिम सभ्यता एवं संस्कृति के आगमन काल से इस प्रथा का प्रचार हुआ। इसके पूर्व वैदिक काल में ऐसी कोई प्रथा नहीं मिलती है। इस प्रथा ने नारी जीवन की प्रगति में भीषण बाधा पहुँचाई है। पर्दा-प्रथा का उन्मूलन आव-

पृथक हो गया जिससे उसे समान शिक्षा व अधिकार प्राप्त हो सकें। नव-जागरण काल के सुधारकों एवं प्रगतिवादी दृष्टिकोण के उपन्यासकारों ने नारी जीवन के स्वस्थ विकास के लिये पर्दा- प्रथा उन्मूलन का समर्थन किया।

"भूले बिसरे चित्र" की रूकमणी और यमुना ऐसी ही नारियां है जो पारिवारिक बंधन में बंधी होने के कारण इस विकृति से मुक्त न हो सकीं परन्तु विद्या जो परिवार की अगली पीढ़ी है वह इस प्रथा का विरोध करती है और उसे सफलता मिलती है। गंगाप्रसाद के माध्यम से उपन्यासकार ने पर्दा-प्रथा का विरोध किया है जो मध्यवर्गीय चेतना का परिचायक है। वह दिल्ली दरबार में सम्मिलित होने के लिये जाते समय रूक्मिणी को भी साथ ले जाना चाहता है। रूक्मिणी जो युगीन परिवर्तन से अभिज्ञ है वह अपने पारिवारिक बंधनों से मुक्त नहीं होपाती है। रूक्मिणी ने अपनी जीभ दांतों के नीचे दबाते हुये कहा "राम राम। तुम्हारे साथ दिल्ली घूमने पर लोग क्या कहेंगे. दो हाथ का घूंघट काढ़ कर मै तुम्हारे साथ चलूंगी तो लोग हंसेंगे नहीं। "गंगा प्रसाद-अरे घूंघट काढ़ने की क्या आवश्यकता है, यह बस पुराना दकियानूसीपन छोड़ो भी। "1.

इस प्रकार "थके पांव" उपन्यास में निम्नमध्यवर्ग की यथार्थ झांकी है उसमें पर्दा प्रथा उन्मूलन के प्रश्न को उठाया गया है। केशव का पुत्र मोहन जब बीमार पड़ता है तो आर्थिक अभाव में उसके इलाज में कठिनाई होती है। उस समय मोहन की पत्नी नौकरी द्वाराधन अर्जित करना चाहती है, जिसका विरोधस्वयं उसके पति एवं श्वसुर द्वारा होता है। परन्तु मोहन की पत्नी सुशीला इंटरमीडियेट पास शिक्षित नारी है अत: वह घर के बाहर जीवन संघर्ष में भाग लेना अनुचित नहीं मानती है- "मै कहती हूँ इसमें हर्ज क्या है, आज कल स्त्रियां नौकरी करती हैं तुम अपनी नौकरी छोडकर आराम करों.... और बीच में

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ- 202

कोई अच्छी नौकरी ढूंढो। जब तुम लोग आर्थिक दृष्टि से सुव्यवस्थित हो जाओगे तब मैं यह नौकरी छोड़ दूंगी।"[1] बहू का यह प्रस्ताव सुनकर केशव भी आश्चर्य अनुभव करता दीख पड़ता है। उसे प्रतीत नहीं होती, इसलिये पूछता है--" तुम नौकरी करोगी यह कैसे हो सकता है हमारे खानदान में औरतें कभी बाहर नहीं निकलतीं है नौकरी करना तो दूर रहा।"[2]

"थके पांव" उपन्यास में वर्माजी ने माधुरी और सुशीला द्वारा पर्दाप्रथा के मिथ्यास्वरूप का पर्दाफाश किया है सुशीला युगानुकूल सामाजिक जीवन की प्रगति से परिचित है। सुशीला एक ऐसी जाग्रत नारी है जो पुरूषों द्वारा बंधी हुई परम्परागत रूढ़ियों को स्वयं काट कर रख देती है और भविष्य के लिये प्रगतिवादी मार्ग प्रशस्त करती है। लेखक ने इस प्रथा को अनुपयोगी मानकर नष्ट करने का प्रयत्न किया है और सफल भी रहा है। सुशीला का अपने अभीष्ट में सफल होना रूढ़ियों एवं रूढ़िवादियों पर प्रगतिवादी नारी की विजय का प्रतीत है और पर्दा-प्रथा की व्यर्थता का प्रमाण है। "भूले बिसबे चित्र" उपन्यास में लेखक ने विद्या का चरित्र भी बिल्कुल क्रांतिकारी रूप में चित्रित किया है जो कि आज के युग की आवश्यकता है।

:- दहेज प्रथा :-
---x---x---

शास्त्रानुसार, विवाह संस्कार में धन-धान्य से युक्त कन्या को वर के साथ दान कर दिया जाता था। पहले यह धन स्वेच्छा से दिया जाता था लेकिन बाद में इसका रूप दहेज-प्रथा के रूप में आया जिससे लड़कियों का विवाह समाज में एककठिन आर्थिक समस्या बन गया।भगवती चरण वर्मा ने मध्यवर्ग की दहेज-प्रथा - समस्या को "भूले बिसरे चित्र" में विद्या के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। विद्या का

---

1. थके पांव , पृष्ठ- 108
2. थके पांव , पृष्ठ- 126

विवाह पी० सी० एस० अफसर सिद्धेश्वर प्रसाद से होता है। विवाह में दहेज देने के लिये ज्वालाप्रसाद तथा नवल किशोर को बीस हजार रुपया खर्च करना पड़ता है। ज्ञान प्रकाश सिद्धेश्वरी प्रसाद के पिता को "अर्थ पिशाच" कह कर विधा का विवाह उस परिवार में करने से मना करते हैं। लेकिन नवलअपने मृत पिता के वचन को निभाकर अपना कर्तव्य पालन करना चाहता है। विधा नई पीढ़ी की नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें सामाजिक कुरूपताओंसे विद्रोह करने का साहस है। पति तथा ससुराल वालों से दुर्व्यवहार पर रुष्ट होकर वह पतिसेसंबंध विच्छेद कर लेती है तथा नौकरी कर आत्म निर्भर जीवन व्यतीत करती है। अवसरानुकूल वह मारपीट पर भी उतारू हो जाती है।विन्देश्वरी प्रसाद विधा के श्वसुर हैं--"जब अपमान जनक शब्द कहते हैं, तो शैतान कहीं का कह कर चप्पल लेकर उसकी तरफ दौड़ती है।"[1]

"थके पांव" उपन्यास में मध्यवर्ग की बिगड़ती हुई आर्थिक दशा के कारण माया का विवाह विधुर डाक्टर से किया जाता है। इसी क्षण माया का विद्राही रूप सामने आता है। वह विवाह प्रस्ताव अस्वीकार कर देती है और दृढ स्वर में कहती है--" आपने मुझे पढ़ा लिखा कर मनुष्य बनाया है तो मेरे साथ आप मनुष्यता का व्यवहार करिये। मै जानवर नहीं हूँ जिसके साथ चाहा उसके साथ बांध दिया। मुझमें भी भावना है, मुझमें भी व्यक्तित्त्व है। मै अपना हित-अनहित समझ सकती हूँ।"[2] इस प्रकार माया आधुनिक नारी है जो शिक्षा प्राप्त कर लेने के कारण अपने वर्ग औरसंस्कारों से ऊपर उठना चाहती है। वैसे केशव बेचारे की मजबूरी ही है जो वह विधुर डाक्टर से अपनी लड़की का विवाह करना चाहता है क्योंकि अच्छे विवाह के लिये लम्बी रकम दहेज के रूप में चाहिये। वह उसके पास नहीं है। अत: वह किसी तरह कुमारी लड़की के हाथ पीले करना चाहता है। स्पष्ट है कि दहेज प्रथा समाज में घोर अभिशाप की तरह पैर जमाये हुये है।

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ- 534 2. थके पांव पृष्ठ- 100

इस प्रकार मध्यवर्ग में दहेज-प्रथा, वंश-परंपरा के अनुकूल चलती हुई प्रतीत होती है न कभी समाप्त होती है और न समाप्त करने के लिये ईमानदारी से प्रयत्न किये जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्तमान भारतीय समाज आज भी इस दहेज प्रथा से मुक्त नहीं हो पाया है। यद्यपि विधा और माया सदृश आधुनिक पढ़ी लिखी नारियां तथा जगत प्रकाश ऐसे शिक्षित नव युवक इस कुत्सित प्रथा का विरोध कर रहे हैं तथापि यह एक ज्वलंत समस्या के रूप में लोगों का ध्यान आकृष्ट करती है। दहेज-प्रथा के कारण ही भारतीय समाज में अनेकानेक वैवाहिक विकृतियां बाल विवाह, वृद्ध विवाह आदि उत्पन्न हुईं, जिनसे नारी जीवन अभिशप्त-सा बन गया।

नारी: शिक्षा और स्वतंत्रता पर बल :-
-----x-----x-----x-----x-----

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के अन्तराल में अनेक आंदोलन हुये जिनमें नारी शिक्षा और स्वतंत्रता पर सार्वभौमिक विचार किया गया था तथा इसके समर्थन में प्राय: सभी वर्ग एक मत रहे। फिर भी नारी शिक्षा पद्धति को लेकर सनातनी तथा प्रगतिशील विचारकों में काफी मतभेद हुआ। सनातनी घर के अंदर ही लड़कियों को प्रारंभिक और घरेलु शिक्षा देने के पक्ष में थे. परन्तु प्रगतिवर्ग नारियां को समान अधिकार को प्राप्त करने के लिये उच्चशिक्षा का समर्थन करता रहा। सनातन पंथी विचारधारा युग के साथ चलने को तैयार न थी अत: परिवर्तनों की टक्कर में टूटकर बिखर गईं और प्रगतिवादियों ने युग का प्रवर्तन किया। फलत: नारियों को स्वावलंबी बनाने के लिये सन् 1916 ई0 में प्रथम महिला विश्व विद्यालय की स्थापना घोन्टों केशव कारवे के द्वारा हुई और प्रथम उप कुलपति सर भंडारकर नियुक्त हुये। जकारिया का कथन है कि प्रथम विश्वविद्यालय है जो बिना सरकारी सहायता के अपना अस्तित्व बनाये रहा। इसके अतिरिक्त स्त्री शिक्षा के कतिपय कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये, जो आगे बल स्त्री पुरूषों के समान अधिकार के प्लेटफार्म का निर्माण करते हैं।

स्त्री-पुरूष के समान अधिकार और समान शिक्षा व जीवन के संघर्षों में प्राचीन

मान्यताओं पर पानी फेर दिया। कितना स्वाभाविक है कि रूढ़ियों के जीर्ण-शीर्ण पत्रदल युग वृक्ष से बसन्त आगमन के पतझर में झर गये और हरितवर्णी पत्रदल अभिनव कोमल लहर उठे। वृक्ष की सुषमा ने समाज का मन मुग्ध कर लिया। इस प्रकार युग के साथ सामाजिक सांस्कृतिक और अनेक आर्थिक परिवर्तन हुये। जिन्हे वह आत्मसात करता हुआ कच्छपगति से अविरल गतिमान है।

साहित्यिक चरित्र समाज विशेष की उपज होते हैं यही कारण है कि उन चरित्रों के माध्यमसे सामाजिक प्रगति को जाना जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में जब हम वर्माजी के उपन्यासों का सिंहावलोकन करते हैं तो ज्ञात होता है कि लेखक ने संक्रांतिकाल की द्विमुखी विचारधारा को आत्मसात करके साहित्य सृजन किया है, जिसमें नवयुवक पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में पुलकित और विस्मृत है और पुरातन पीढ़ी परिवर्तन से भौचक्की खड़ी है। नारी शिक्षा के प्रचार-प्रसार, ने नई सम्भावनों को जन्म दिया। वर्माजी के साहित्य में इसे स्त्री स्वतंत्रता तथा नारी विद्रोह तक ही स्थान मिला है। बदलते हुये परिवेश में उच्च शिक्षा लेकर नारियां पुरूषों के मुकाबले समाज में पदार्पण करने लगी हैं। तो इसका मतलब यह नहीं है कि आज के युग में पति परायण नारियां नहीं है। ~~आज के युग में पति परायण नारियां नहीं है।~~ आज के युग में दोनों प्रकार की नारियों समाज में हैं। वर्माजी ने स्पष्ट किया है कि समाजवादी नीति से संघर्ष करती हुई नारियां अपने अस्तित्व तथा स्वतंत्रता की रक्षा में सदा प्रयत्नशील रहती हैं।

:- वर्ण व्यवस्था :-
----x----x----

वर्ण-व्यवस्था के उद्भव में श्रम विभाजन की ही सामाजिक उपयोगिता रही और इसलिये उसका अस्तित्व शताब्दियों तक बना रहा। वर्ण व्यवस्था चार वर्गों में विभाजित है-- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, लेकिन कालान्तर में विजित द्रविड़ जाति को भी पंचम वर्ण में स्वीकार कर अछूत बना दिया गया। जिनसे आर्थिक संगठनों ने तो लाभ उठाया, परन्तु उन्हें सामाजिक अधिकारों से मुक्त रखा गया। खान-पान, शादी-विवाह, पेशे तथा जीवन दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण प्रत्येक वर्ण अपनी उपजातियों में विभाजित होता गया। कालान्तर में वर्ण-व्यवस्था का आधार

कर्म से विलग जन्म मान लिया गया और जिसके कारण कोई भी व्यक्ति दूसरे वर्ण अथवा जाति में प्रवेश नहीं कर सकता था।

आधुनिक औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था ने नये पेशों को जन्म दिया तथा यातायात की सुविधा के कारण व्यक्ति जीवको-पार्जन के लिये ग्रामों से दूरस्थ गया। नगरों में जाने लगा वर्ण-व्यवस्था के निर्धारित पेशों पर निर्भर रहना कठिन हो गया। नगरों के होटल तथा मिल मालिकों के एक साथ बैठने के कारण जाति भेद, खान-पान आदि के नियम निभाने कठिन हो गये और जाति व्यवस्था दूर होने लगी। वर्मा ने यह अनुभव कर अपने साहित्य में व्यक्त किया। "आखिरी दांव" की चमेली से कहता है--" तो तू समझती है कि तेरा हाथ का पकाया हुआ खाना खाऊंगा नहीं...... देख बंबई में खाने पीने के मामलेमेंसिर्फ एक ही जात होती है वह है आदमी की। वहाँ मुसलमानों के होटल की चाय पीनी पड़ती है।"[1] रामेश्वर के कथन के यह आभास होता है कि उसमें हिन्दू मुसलमान भेद-भाव की बू सर्वथा विद्यमान है। वह शायद सबके हाथ का भोजन कर लेगा, परन्तु मुसल-मान के हाथ का खाने में कुछ हिचकता दीख पड़ता है।

वर्ण व्यवस्था सामाजिक संस्था है लेकिन भारतवर्ष में धार्मिक भावनाओं के प्राचुर्य से धार्मिक रंग में रंग गई। उसमें धर्म का यथार्थ पक्ष गौण होता गया और उसके स्थान पर सामाजिक जीवन में रूढ़ियों, रीतियों, प्रथाओं आदि का आडम्बरपूर्ण पालन आवश्यक समझा गया। फलत: समाज तथा धर्म दोनों में विकृतियों जाने लगीं और जिसका आधार रूढ़ियां प्रथायें तथा रीतियों बनती गईं। यही कारण है कि वर्माजी ने वर्ग-व्यवस्था के कुत्सित रूप को पहचान कर सामाजिक चेतना के प्रगतिशील संदर्भ में समाज बहिष्कार और प्रायश्चित विधान विरोध किया। इस प्रकार उन्होंने अपने उपन्यासों में वर्ण-व्यवस्था संबंधी बुराइयों को कलात्मक आवरण में पिरोकर प्रस्तुत किया है।

"टेढ़े मेढ़े रास्ते" में उमानाथ जब विदेशसेशिक्षा प्राप्त कर जर्मनी से वापस लौटता है तो उसके पिता रामनाथ तिवारी सामाजिक बहिष्कार से मुक्ति पाने के लिये प्रायश्चित का विधान करते है क्यों कि रूढ़िवादी हिन्दू समाज की व्यवस्था थी कि विदेश जाने से अन्य जातियों के सम्पर्क में आने से हिन्दू अपने धर्म से च्युत होकर

---

1. आखिरी दांव, पृष्ठ- 25

अशुद्ध हो जाते हैं अत: विदेश से लौटने पर शुद्धि आयोजन में आगन्तुक को शुद्ध करके तब समाज में सम्मिलित किया जाता था। वर्माजी ने उमानाथ द्वारा प्रायश्चित विधान में सम्मिलित होने से इन्कार कराके उच्च वर्ण के ब्राह्मणों के थोथे अभियान और पाखण्ड की खिल्ली उड़ाई है। जिस समय उमनाथ अपने पिता रामनाथ तिवारी के साथ प्रायश्चित में सम्मिलित होने के लिये पहुँचा सभ्यगण विवाद में व्यस्त थे। विवाद का विषय था क्या उमानाथ के प्रायश्चित करने से रामनाथ का कुल अपनी मर्यादा कायम रख सकेगा या नहीं। मुन्नू दबे ही प्रायश्चित विरोधी दल के नेता थे, उन्होंने साहस के साथ तिवारी से कहा-" हम कनौजियन मा विलाहतहन का नकवों प्रायश्चित भा है औरनआज होई। लेकिन मैं तैयार नहीं।"1" उमानाथ तुरन्त बोल उठा। यह सब स्वांग आपही को मुबारक रहे ददुआ। ये कुत्तों से भी गये बीते आदमी हमारे घर में हमाराही अपमान करें और आप सब कुछ चुपचाप देखते रहें, चुपचाप सुनते रहें, मुझे आप पर आश्चर्य हो रहा है। "2" इस प्रकार वर्माजी ने उमानाथ के माध्यम से पतनोन्मुखी वर्ण-व्यवस्था पर सीधा व्यंग्य प्रकट किया है जिससे रूढ़िवादी समाज तिलमिला उठा।

" टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यास में झगडू मिश्र प्रगतिशील विचारों के समर्थक रहते हुये भी अपनी जाति व कुछ मर्यादा की रक्षा के लिये मार्कण्डेय को जेल जाने से रोकते हैं--"नहीं हम तुमसे कांग्रेस छोड़ने के लिये थोड़े ही कह रहे हैं, हम तो केवल इतना ही कहा तुम जेल न जाओं, जहां जात कुजात सबे के साथ का छुन्न खाय पड़े है वहां ब्राह्मणत्व नहीं रह सकता है। "3" वर्माजी ने अपने इस उपन्यास में जहां ब्राह्मणों के उच्च वर्गीय अहंकार को व्यंग्य की नजर से देखा वहीं बंबई ऐसे निम्न-वर्गीय दकियानूसी पात्र उनकी पैनी दृष्टिसे ओझल न हो सकें।

"सबहिं नचावत राम गौसाई" उपन्यास के राम संजीवन उमानाथ की भांति विदेश से लौटे हैं। उनके माता पिता अंग्रेजी युवती मिसेज मार्था को बहू रूप में स्वीकार नहीं करते है लेकिन अंतत: माता नन्दिनी का अंतरंग सबकुछ बुरी तरह टूट गया और पुत्र की ममता ने उस पर विजय पाई और मार्था को बहू स्वीकार कर लेती है। लेकिन धर्म कर्म

---

1. टेढ़े मेढ़े रास्ते पृष्ठ 128
2. टेढ़े मेढ़े रास्ते पृष्ठ 129
3. टेढ़े मेढ़े रास्ते पृष्ठ 158

के नष्ट होने के भय से वह प्राण गवां बैठती है। क्योंकि "मार्था" उनकी दृष्टि से म्लेछ है म्लेछ से विवाह करना अधर्म है। "1"

इस प्रकार वर्माजी ने राम संजीवन के द्वारा अपने पिता राम समुझ पर जो व्यंग किया है उससे ब्राह्मणों की खोखली मान्यतायें उभर आई हैं--" म्लेछ और विधर्मी" तो सिल्वेनिया जोजेफ भी थी जिसे आपने ही शुद्ध कराकर हिन्दू बनाया और उसका नाम शैलजा रखा और राजा पृथ्वीपाल सिंह से विवाह करवाया। इसीलिये तो आपको पांच गांव दिये थे राजा पृथ्वीपाल सिंह ने और आज आप ताल्लुकेदार राम समुझ पाण्डेय हैं। "2"

"सबहि नचावत राम गोसाईं" में वर्ण-व्यवस्था के परम्परित रूप के प्रति वर्माजी की आस्था समाप्त सी दिखाई पड़ती है। इसलिये उन्होंने मानव जीवन की तीन प्रमुख प्रवृत्तियांबुद्धि, भाग्य और भावना के माध्यम से बनिया, क्षत्रिय और ब्राह्मण के यथार्थ स्वरूप की अभिव्यंजना की है जो कि व्यंगात्मक शैली में होने के कारण अतुलनीय है।

"भूले बिसरे चित्र" और "प्रश्न और मरीचिका" मे भी वर्माजी ने वर्ण-व्यवस्था के विगलित रूपों का चित्रण किया है। "प्रश्न और मरीचिका" के जयराज उपध्याय जब इंग्लैण्ड से मारिया युवती से विवाह कर स्वदेश लौटते हैं तो परिवार वालों ने उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया। अपने पुत्र उदयराज के विवाह के अवसर पर जब उनकी दूसरी पत्नी अपने परिवार वालों को बुलाती है तो वह उन्हें घर से अलग ही ठहराते है क्योंकि परस्पर एक साथ खान-पान में असुविधा होती है। यह उस युग की समाजिक व्यवस्था के खोखलेपन का द्योतक है। हिन्दू परिवार की मर्यादा खान-पान को ही अधिक महत्व देती है इसलिये नियंत्रण आवश्यक हो जाता है। यह नियंत्रण ही सामाजिक विघटन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। और यही हिन्दू वर्ण-व्यवस्था की विडम्बना है।

"भूले बिसरे चित्र" के बटेश्वरी बाबू जब विदेश से वापस लौटते है तो उन्हें जाति बहिष्कृत कर दिया जाता है परन्तु वह प्रायश्चित विधान नहीं करते है। इसी प्रकार ज्ञान प्रकाश विलायत से लौटने पर इलाहाबाद अपना आवास बना लेता है। और घर नहीं जाता

---

1. सबहिं नचावत रामगुसाईं, पृष्ठ - 115-116
2. सबहि नचावत राम गोसाईं पृष्ठ 116

है। क्योंकि गांव जाने से प्रायश्चित का बखेला पड़नेकीसम्भावना है। "विलायत से लौटा हूँ, लोग कहेंगे प्रायश्चित करो यह करों वह करों तो इन झंझटों में कौन पड़े। -2- अपने व्यक्तिगत जीवन में ज्ञान प्रकाश उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है जो भारतीय जड़ संस्कारों का सर्वथा विरोधी है। इसीलिये वह नई समाजोपयोगी चेतना का अभिनंदन करता है।

"भूले बिसरे चित्र" में उपन्यास में वर्माजी ने विशेष रूप से वर्ण-व्यवस्था के विघटन का विस्तार से वर्णन किया है। छिनकी जो एक स्थान पर शिवलाल के जीवन का अविभाज्य अंग है वही दूसरेस्थान पर खान-पान की दृष्टिसे उनके लिये अस्पृश्य है। छिनकी का धर्मभीरू होने के कारण उसमें परम्परागत संस्कार बद्धमूल है कि निम्न वर्ग के हाथ का पका भोजन करनेससे उच्च वर्ण के लोगों का धर्म नष्ट हो जाता है। इसलिये वह मुंशी शिवलाल से कहती है--" राम राम हम कच्ची रसोइया में कैसे जाईं कलप-वास कर रहे हो तो धरम करम का तो खयाल रखो। चौका में हमरे जाये से चौका छूत हुई जाइ हैन" इतना ही नहीं शिवलाल के विशेष आग्रह पर वह बड़ी विनम्रता पूर्वक कहती है--" तुम्हारे हाथ जोड़ित हन, ई पाप हम से न कराओ-हम चौका में न घुसब, तुम्हार परलोक हमरे हाथ न बिगड़े। -3- अंतमें क्रोध भरी आज्ञा को शिराधार्य कर बिह्वल मन से चूल्हा फूंकती है। और अपने निर्दोष होने का साक्ष्य-सा प्रस्तुत करती है। "हे गंगा मैया तुम हमार साक्षी हो कि हम इन केर धरम नहीं लीना, इन केर अक्किल बौराय गई है, तौर इन केर पाप क्षमा करो। रसोई बनाय के इन्हें खिलाये तोइन केर धरम जाय, औऊर न बनाई तो ई भूखन कलपै और हम पर मार पड़े ऊपर से। -4-

छिनकी के उपर्युक्त कथन से लेखक ने एक ओर समाज के निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति का वर्णन किया और दूसरी ओर हिन्दू वर्ण-व्यवस्था की आडंबर प्रियता पर करारा व्यंग्य किया है। जिस रमणी के साथ भोग विलास करने से उच्च वर्ग का धर्म नष्ट नहीं होता और उसी के हाथ का पका भोजन कर लेनेसे लोक परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं।

---

1. भूले बिसरे चित्र पृष्ठ- 313
2. भूले बिसरे चित्र पृष्ठ- 101
3. भूले बिसरे चित्र पृष्ठ- 102
4. भूले बिसरे चित्र पृष्ठ- 101

इससे बढ़कर हिन्दू समाज व्यवस्था की विडम्बना और क्या हो सकती है। शिवलाल जो उस युग का प्रगतिवादी दृष्टिकोण का व्यक्ति है, उसके द्वारा वर्माजी ने जड़ होती हुई समाज व्यवस्था पर आघात कराया है। इसलिये वह राधेलाल की पत्नी से कहता है-- "मैं कहताहूँ कि इसने यदि मेरा खाना पका दिया तो कोई पाप नहीं किया है, और मैंने इसके साथ खा लिया तो मैंने भी कोई पाप नहीं किया।"[1] यह आवाज अकेले शिवलाल की नहीं अपितु युगीन प्रगतिवादियों की है जो वर्ण व्यवस्था के जड़ रूप को बदल डालने के पक्षपाती हैं।

वर्माजी का दृष्टिकोण रूढ़िवादी समाज के लिये व्यंग्यपूर्ण तथा हास्यास्पद हो गया। वर्माजी वर्ण व्यवस्था की अमानवीयता का विरोध करते हैं और उनका दृष्टिकोण निश्चय ही प्रगतिशील एवं आधुनिक है, फिर भी उसकी अपनी सीमा है। सामाजिक चेतना का प्रगतिशील दृष्टिकोण जो वर्माजी के उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है उसमें व्यापकता और गम्भीरता है। वस्तुत: वर्ण व्यवस्था की कट्टरता अब समाप्त ही हो गई है। निम्न-जाति के लोग सुशिक्षित होकर समाज का नेतृत्व करते हैं। लेकिन यह मात्र सैद्धान्तिक बात है। व्यवहारिक रूप में अभी भी जाति भेद भाव बना हुआ है। शूद्र लोग अभी भी अछूत समझे जाते हैं।इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करने का श्रेय जिना महात्मा गांधी के हरिज-नोद्धार कार्यक्रमों को है।

:- अपृश्यता: ।समस्या। :-
----x-----x-----x--

समाज में सर्वाधिकउपकार एवं सेवा करने वाला वर्ग ही समस्त अधिकारों से वंचित कर दिया गया। वर्ण-व्यवस्था की मान्यता के अनुसार "यह ब्राह्मण अपने को देवता कहता है, यह क्षत्रिय अपने को राजा कहता है, यह बनिया अपने को धनपति कहता है, फिर आता है शूद्र यह अपने को सेवक कहता है, अपने को गुलाम कहता है, अपने को परजा कहता है। इसके बाद आते हैं अछूत-धानुक, चमार, पासी। इनसे भी नीचे है चाण्डाल इन लोगों को छुआ तक नहीं जाता है।-"[2] इसलिये इन्हें छुआ तक नहीं जाता है। इस समस्त विभेद का स्त्रोत मनुष्य की शारीरिक सामर्थ्य और आर्थिक बल है। जो शक्तिशाली और समर्थ है वह श्रेष्ठ है, जो निर्बल निम्न वर्गीय और असमर्थ है वह पतित है। सामाजिक विषमता का यह अभिशापित चक्र युगों से

---

1. भूले बिसरे चित्र पृष्ठ 108
2. सीधी सच्ची बातें पृष्ठ 35

निम्नवर्गीय समाज को त्रस्त करता रहा। "सीधी सच्ची बातें" उपन्यास में उन्होंने व्यक्त किया है। "ब्राह्मण सामाजिक शोषण का प्रतिनिधि, बनियां आर्थिक शोषण का प्रतिनिधि है। यह धार्मिक ढोंग, आडम्बर, यह जातिवाद, छुआछूत, जहां, मनुष्य को पशुओं से भी अधिक गया बीता बनादिया है- कितनी भयानक हिंसा है, इन सब में। तुम गाय की पूजा कर सकते हो, तुम गोबर से अपनी रसोई लीप सकते हो, तुम कुत्ता बिल्ली अपने घरों में पाल सकते हो...... लेकिन मनुष्य को तुमने अछूत बना दिया है, उसके स्पर्श मात्र से तुम्हें नहाना पड़ता है, तुम्हें अपने को शुद्ध करना पड़ता है। "यह है ब्राह्मण की अहिंसा तुम मंदिर बनवा सकते हो तुम धर्मशालायें बनवा सकते हो, तुम सदाव्रत बांट सकते हो तुम भिक्षा दे सकते हो, लेकिन तुम बूंद बूंद में मनुष्य का रक्त चूस सकते हो, लम्बे मुनाफे के लिये तुम समाज में अभाव और दुर्भिक्षा पैदा कर सकते हो, यह है बनिये की अहिंसा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्धिक एवं आर्थिक हिंसा ने अहिंसा का लबादा ओढ़ कर निम्न वर्णों के शोषण द्वारा देश के विशिष्ट वर्ग को अवगति में ले डुबोया। पशुओं से भी अधिक घृणा का व्यवहार अछूतों के साथ किया जाता है। वह समाज के सब घिनौने कार्य तो करता ही है लेकिन उसेअच्छा जीवन जीनेका भी अधिकार न था।

:- अस्पृश्यता निवारण :-

----x-----x----

गोखले सदृश जागरूक महामानव अछूत प्रथा को हिन्दू समाज प्रथा का कलंक मानकर सुधार के लिये प्रयत्नशील थे। 1910 ई० में तक अछूत वर्ग स्वयं जागरूक होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगा। जालंधर केमेहतरों की "बाल्मीकि समाज" ऐसी हीएक संस्था थी। इस संस्था के प्रगतिशील दृष्टिकोण ने समाज में अभिनव-चेतना का मंत्र फूंका। आधुनिक शिक्षा से स्वयं अछूत वर्ग की चेतना जाग उठी जिससे उनके स्वतंत्र संगठन बनने लगे जो समाज की दासता से उन्हें मुक्ति दे सके और सवर्ण हिन्दुओं की घृणा का प्रतिकार कर सकें।

"भूले बिसरे चित्र" उपन्यास में प्रथम खण्ड में हम देखते हैं उस युग में ऊँच नीच की भावना इतनी प्रबल थी कि चमार ब्राह्मण के कुयें से पानी नहीं पी सकता था। इसजड़ होती हुई समाज व्यवस्था में भी हमें कुछ प्रगतिशील तत्त्व दिखाई पड़ते हैं, जिनका प्रतिनिधित्व हमीरपुर के मुंशी राम सहाय करते हैं। वे अपनीहवेली में कुयें का आधा हिस्सा

चमारों के उपयोग के लिये दे देते हैं। मुंशी रामसहाय ब्राह्मणों की विगलित व्यवस्था का विरोध करते हैं। यह उस युग की प्रगतिवादी व्यक्ति है, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये अवर्णों का सहयोग वांछनीय मानते हैं। इसलिये वह गेंदालाल।चमार। एम0 ए0 को अपने यहाँ बुलाते हैं--" आरे बैठिये भी। किसी बात का ख्याल न कीजिये हम लोग यह छुआछूत का भेद भाव मिटा चुके हैं। महात्मा गांधी ने इस बात का बीड़ा उठा लिया है। •1•

सन् 1936-37 के आस पास भारतीय समाज में रूढ़ियों और अंध परम्पराओं का अंत हो चुका था। राष्ट्रीय रंग मंच पर इसी समय हम डा0 अम्बेदकर तथा जगजीवनराम जैसे निम्नवर्गीय नेताओं को मध्यवर्गीय पात्रों के साथ बराबरी के स्तर पर कार्य करते हुये पाते हैं। राजनीतिक संदर्भ में गांधीजी ने अछूत उद्धार के लिये विविध रचनात्मक कार्यक्रम करते हुए पाते हैं। राजनीतिक संदर्भ में गांधी जी ने अछूत तथा हरिजनों की समस्या को काफी गंभीरता से लिया और उनके उद्धार के लिये विविध रचनात्मक कार्यक्रम खान पान संबंधी नियम, शादी विवाह, मंदिर प्रवेश और धार्मिक उत्सव में समानता का व्यवहार प्रस्तुत किये। गांधी जी के आंदोलन में तीन पक्ष थे:--

1. व्यक्ति को उत्पीड़ित करने वाली सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध आंदोलन।
2. व्यापक निर्धनता के कारण स्वरूप आर्थिक व्यवस्था के प्रति आंदोलन।
3. विदेशी सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन।

फलत: गांधी जी का यह युग जातियों की समानता की दृष्टि से महान उपलब्धियों का युग है। कलकत्ता कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया कि-"यह कांग्रेस भारतवासियों से आग्रह करती है कि परम्परा से दलित जातियों पर जो रुकावटें चली आ रही हैं, वे बहुत दुख देने वाली और क्षेमकारी है, जिससे दलित जातियों को बहुत कठिनाइयों सख्तियों और असुविधाओं का सामना करना पड़ता है, इसलिये न्याय और मलौमसी का यह तकाजा है। कि ये तमाम बंदिशें उठा दी जाय। •2• कांग्रेस तथा अछूत वर्ग में पुना-एक्ट का समझौता हुआ और हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई जिसके मंत्री डा0 बप्पा की अमूल्य सेवायें इतिहास में अमर रहेंगी।

---

1. भूले बिसरे चित्र पृष्ठ- 378
2. डा0 पट्टाभिसीता रमैया: कांग्रेस का इतिहास, अनुवादक हरिभाऊउपाध्याय पृष्ट 59

"सीधी सच्ची बातें" उपन्यास का नायक जगतप्रकाश गांधीवादी है अतएव वह सवर्ण असवर्ण सभी के यहां समान रूप से खाता पीता है। बाबूराम-" अरे महात्मा गांधी आदमी थोड़े ही हैं, देवता हैं, साक्षात् भगवान। यह छुआछूत यह जाति -पांति ये मनुष्यों पर लागू होते हैं देवताओं पर नहीं।"[1] "भूले बिसरे चित्र" के ज्ञान प्रकाश सत्यव्रत शर्मा तथा माया शर्मा ऐसे ही गांधीवादी पात्र हैं। "सबहिं नचावत राम गोसाईं" उपन्यास के रघुराज सिंह भी गांधीवादी विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं-" हम ठहरे कांग्रेसी आदमी, हमें जाति पांति पर कोई विश्वास नहीं।"[2] इस प्रकार हम देखते है वर्माजी के युग तक समाज में अछूत वर्ग निम्न जातियों को राजनीतिक स्तर पर समानता का अधिकार प्राप्त हो गया था और एक साथउठने बैठने खाने-पीने का अवसर भी प्राप्त था, जिसकी सफल अभिव्यक्ति वर्माजी अपने उपन्यासों में कर सकें हैं।

:- संयुक्त परिवार :-
----x----x---

संयुक्त परिवार प्रणाली प्राचीन काल से सामाजिक संगठन का एक मात्र आधार रही है। इससे परिवार में सहयोग, सद्भाव स्नेह एवं समानता की भावना बनी रहती है। प्राचीन काल में आर्थिक ढाँचा इतना परस्परपेक्षी था, पारिवारिक एकता के आदर्श एवं संस्कार इतने दृढ़ थे कि कटुता एवं वैमनस्य उसके समक्ष मिथ्या हो जाया करते थे। इस प्रकार संयुक्त परिवार अपने को अक्षुण्ण बनाये रहा, जिसमें उसे देश की आर्थिक परिस्थितियों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

आधुनिक युग में व्यक्तिवाद को प्रमुखता मिलने परम्परागत रिवाजों, तथा रूढियों का निर्वाह संस्कृति द्वारा संभव हो सका, क्यों कि आधुनिक शिक्षा के प्रभाव में उसकी संकीर्णता नष्ट होकर व्यापक दृष्टिकोण को अपनाने लगी। ऐसी स्थिति में उसका निर्वाह संस्कृति द्वारा संभव हो सका, क्योंकि आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से उसकी संकीर्णता नष्ट होकर व्यापक दृष्टिकोण को अपनाने लगी। ऐसी स्थिति में उसका निर्वाह व्यक्तिही कर सकता था परिवार द्वारा संभव न था। फलत: नवीन आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में कौटुम्बिक व्यवस्था में परिवर्तन होना असंभव न था। यह परिवर्तन की क्रिया संक्रमण स्थिति उन्नीसवीं शताब्दी तक चलती रही। समाज शास्त्री इसे संयुक्त परिवार के विघटन को संज्ञा

---

1. सीधी सच्ची बातें, पृष्ठ 305
2. सबहि नचावत राम गोसाईं, पृष्ठ 69

देते हैं। एक महत्त्वपूर्ण तथ्य इस संबंध में ध्यातव्य है-कि नौकरी पेशों की वृद्धि,औद्योगिक विकास, यातायात की सुविधा, नगरों के आकर्षण, नई शिक्षा एवं सभ्यता आदि के सम्मिलित प्रभाव से वैयक्तिक स्वार्थों के प्राबल्य ने पारिवारिक विघटन प्रस्तुत किया, परन्तु परस्पर स्नेह सूत्र अभी समाप्त नहीं हुये हैं इस लिये वे टूटकर भी संतुष्ट नहीं है। वर्माजी ने अपने उपन्यासों-" भूले बिसरे चित्र" थकेपांव" तथा "टेढ़े मेढ़े रास्ते" गेये अनुभव अभिव्यक्त किये हैं।

"टेढ़े मेढ़े रास्ते" में रामनाथ का छोटा भाई श्यामनाथ तिवारी सदैव अपने अग्रज का अनुचर रहा, परन्तु तिवारी जी के तीनों पुत्र अपने-अपने व्यक्तिगत जीवन संबंधी मान्यताओं में उनका हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं करते हैं। फलत: उनका ज्येष्ठ पुत्र कांग्रेसी बन कर पिता का विरोध सहते हुये स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेता है और परिवार से अलग हो जाता है। दयानाथ कहता है — " मुझे अपने विश्वास पर चलने का और अमल करने का उतना ही अधिकार है जितना आपको अपने विश्वास पर चलने का अमल करने का।"[1]
तिवारी जी के तीनों पुत्र परम्परा और अधिकार के विरोधी हैं जिससे उनका संयुक्त परिवार विघटित हो जाता है और तीनों लड़के अलग-अलग मार्ग अपना लेते हैं। अन्ततोगत्वा रामनाथ युग प्रवाह से टकराकर टूट जाते हैं।

संयुक्त परिवार की यह विशिष्टता होती है कि उसमें से एक भी व्यक्ति यदि आर्थिक दृष्टि से अन्यों से ऊँचा उठ जाता है तोसारा परिवार उसी के आश्रय में जीवन-यापन करने लगता है। यही स्थिति"भूले बिसरे चित्र" में मुंशी शिवलाल के परिवार में है। ज्वालाप्रसाद के नायब तहसीलदार होतेही सबकी आँखें उसकी ओर लग जाती हैं। उपन्यास के पहले खण्ड में मुंशी शिवलाल के परिवार में संयुक्त- कौटुम्बिक व्यवस्था देखते हैं किन्तु युग के प्रगतिशील धरातल का स्पर्श करते हुये वर्माजी उपन्यास के दूसरे खण्ड में संयुक्त कौटुम्बिक व्यवस्था को तोड़कर रख देते हैं। जिससे पारिवारिक स्तर पर शक्ति और अधिकार बदल गये। मुंशी शिवलाल भी यह अनुभव कर रहे हैं और इसका स्पष्टीकरण छिनकी करती है-" घर की मालकिन ज्वाला की बहू आय। ईश्वर राज पाट आय तौन ज्वाला की बदौलत भोग रहे आय। "[2] स्पष्ट है कि घर की मालिकन अब सास नहीं बहू है क्यों कि उसका पति कमाता है और पूरे परिवार का भरण पोषण करता है।

---

1. टेढ़े मेढ़े रास्ते पृष्ठ - 13
2. भूले बिसरे चित्र पृष्ठ - 112

वर्माजी का यह अपना विश्वास है कि अधिकांश मध्यवर्गीय पारिवारिक कलह में मूल में पराश्रयी वृत्ति विद्यमान रहती है। इसलिये वह इस व्याधि से मुक्ति प्राप्त करने का यह उपाय प्रस्तुत करते हैं कि प्रत्येक संयुक्त परिवार का सदस्य अपनी आर्थिक व सामाजिक सीमाओं में रहे इसी में उसका कल्याण है। दूसरों पर भार बनकर रहना इस औद्योगिक युग में संभव नहीं, क्योंकि सामाजिक गतिशीलता ने पुरानी समाज व्यवस्था के रूप को बदल दिया है। गतिशील सामाजिक व्यवस्था में यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ही अपना संपर्क रखे। इस सत्य की चारूत्तर अभिव्यक्ति कथाकार ने ज्वालाप्रसाद के कुंकुमल की कहानी से की है। ज्वालाप्रसाद मजबूर होकर जायदाद के सिलसिले में बटेश्वरी प्रसाद वकील से कह देते हैं कि-" मेरे पास कोई जमीन जायदाद नहीं है, और मुश्तक खानदान आप समझ लीजिये टूट चुका है।"[1] संयुक्त परिवार से संबंधित ज्वालाप्रसाद का यह कथन अकेले उनका नहीं, युगसत्य है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। वर्माजी इस पारिवारिक विघटन का मुख्य कारण वैचारिक विभेद मानते हैं। उनके अनुसार-" पिता पुत्र में मान्यताओं का एक भावात्मक तनाव है। पिता पुरानी पीढ़ी का है, पुत्र नई पीढ़ी का है, यह धन की लिप्सा यह वैभव का प्रदर्शन पुरानी पीढ़ी वाला मेवालाल उसका विरोध कर रहा था नई पीढ़ी वाला सुरजीत उसे अपनाता जा रहा थे।"[2] फलत: विघटन होता है जो स्वाभाविक था।

इसी प्रकार-" थके पांव" उपन्यास मध्यवर्ग की विषमताओं और खोखली मान्यताओं को उजागर करता है। युग की आवश्यकताओं और मंहगाई के झंझावतों के समक्ष संयुक्तपरिवार का ढांचा चरमरा उठता है। इसके साथ ही परिवार के सदस्यों की व्यक्तिवादी विचारधारा तो इसे तोड़ कर रख देती है। मोहन का छोटा भाई किशन पारिवारिक मान्यताओं से विद्रोह करता हुआ कहता है-" मोहन भैया, परिवार के लिये मेरा कुछ कर्तव्य है, यह मैं जानता हूँ लेकिन उसके पहले अपने प्रति मेरा कुछ कर्तव्य है, यह मैं कैसे भूल जाऊं।अपने को संकट में डालकर रहना मेरे ख्याल में सबसे बड़ी बेवकूफी है।"[3] इस प्रकार किशन का विद्रोह संयुक्त परिवार व्यवस्था को ध्वंस कर देता है।

---

1. धूमिल चित्र — पृष्ठ- 181
2. प्रश्न और मरीचिका — पृष्ठ- 362
3. थके पांव — पृष्ठ- 89

वर्माजी के उपन्यासों की अभिव्यक्ति के अनुसार संयुक्त परिवार व्यवस्था आज के वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति के युग में व्यावहारिक दृष्टि से अनुपयोगी है। इस नये दौर में सामाजिक प्रगति ने रूढ़िगत मान्यताओं से अपने को मुक्त कर लिया है और अन्य दूसरे मूल्यों के आधार पर संगठित होने लगी है। यह मात्र कल्प कथा नहीं है अपितु स्थानुभूत-जीवन का सत्य है।

इस प्रकार युग की बदलती हुई मान्यताओं आवश्यकताओं और महंगाई के सामने सब कुछ बदल जाता है। वर्माजी के पात्र दो प्रकार के हैं-एक पूर्ण रूप से प्रगतिशील और दूसरे पुरानी आस्थाओं, परम्पराओं से चिपके रहने वाले। पुरानी आस्थायें व नैतिक खोखलापन धीरे-धीरे टूटता हुआ दिखाया गया है। जीवन की संघर्षमयी परिस्थितियों में यह पात्र उलझे हुये दिखाये गये हैं। वर्माजी ने समाज से उपेक्षित, नियति से प्रवंचित सामान्य मानवों से लेकर बड़े अफसरों तक को चित्रण का विषय बना कर साहित्य को एक नवीन दिशा दी।

:- आर्थिक चेतना :-
----x----x---

किसी देश के सामाजिक जीवन के क्रमिक विकास में अर्थ व्यवस्था का अपना हाथ होता है क्योंकि आज के प्रगतोन्मुख जन जीवन में उन्नयन के मूलस्त्रोत अर्थ में निहित हैं। योजनाबद्ध आर्थिक विकास देश की समाजिक व्यवस्था और प्रगति-चेतना को गति प्रदान करता है। भगवती चरण वर्मा का आर्थिक दृष्टिकोण स्वतंत्र है। जहाँ वह पूँजी-पतियों पर व्यंग्य करते हुये दलितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं, वहीं वह किसी वाद से प्रभावित नहीं हैं। वर्माजी ने किसी आर्थिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया है अपितु सामाजिक जीवन में आर्थिक विषमता एवं पैसे का महत्त्व अपने उपन्यासों में अभिव्यंजित किया है।

बीसवीं शताब्दी भारत के औद्योगिक विकास की महत्त्वपूर्ण सदी है। इस समय देश के आर्थिक ढाँचे में व्यापारी वर्ग अपना प्रमुख स्थान बना रहा था और यही वर्ग आगे विकसित होकर पूँजीपति वर्ग बना जिसके नेतृत्व में भारत औद्योगिक विकास का प्रारम्भ हुआ भारत की तत्कालीन आर्थिक दशा का वर्णन "भूले बिसरे चित्र" में हुआ है। इसमें एक मध्य वर्ग के पात्रों के माध्यम से भारत की आर्थिक दुर्दशा का चित्र तथा दूसरी और उद्योग धंधों के प्रसार से अंग्रेजों की पिपासा का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में देशी उद्योग धंधों के विकास पर बल देने, विदेशी शोषण से मुक्त होने, भारतीय सुख समृद्धि के

हेतु नये नये कदम उठाने का आग्रह किया गया है। देश की गरीबी और मुक्ति आंदोलन और शिक्षित बेकारी की ओर कथाकार ने सामान्य जन मन को आकर्षित किया है और साथ ही निम्न वर्ग से लेकर मध्य वर्ग उच्चवर्ग के विकास की कहानी कही है वर्माजी यहीं लेखने से पूंजीपति की व्याख्या देखिये--" हिन्दुस्ता का पूंजीपति ही हमारे आंदोलन की रीड है।.. तो इस ब्रिटिश पूंजीवाद का सबसे बड़ा शत्रु अगर कोई हो सकता है तो हिन्दुस्तान पूंजी पति व उद्योगपति है कांग्रेस आंदोलन कारियो को आर्थिक सहायता देता है ताकि सरकार से उसे हर तरह की सुविधायें मिलें, इस मुनाफे का छोटा सा हिस्सा देता है कांग्रेस को ताकि स्वदेशी आंदोलन जोर पकड़े और उसका माल जोरों के साथ बिके। इस मुनाफे का थोड़ा सा हिस्सा देता है गंगाप्रसाद ज्वाइंट मजिस्ट्रेट कोताकि लक्ष्मीचंद जो लूट खसूट बेईमानी करता है उसके बारे में सरकारी कर्मचारी आंखे बद कर लें। रूपया इस युग की सबसे बड़ी मजबूरी है।"[1]

भूले बिसरे चित्र में हम ग्रामीण साहूकार से लेकर जमींदार से उद्योगपति का विकास स्पष्टरूप से देख सकते हैं। प्रभुदयाल किसानों का शोषण करने वाला ही बनियां नहीं अपितु जजोर सिंह सदृश जमींदारी हड़पने वाला महाजन है, जिसका अगला विकास अगली पीढ़ी में में उद्योगपति (लक्ष्मीचंद) के रूप में होता है। साहित्यकार ने समाज पर पैसे के उत्तरोत्तर बढ़ते हुये प्रभाव का आकलन समानान्तर क्रम में किया है। साहित्यकार समाज में रहते हुये समाज से प्रेरित होकर समाज के लिये सृजन करता है। समाज व्यक्ति रूपी इकाइयों का संगठन है तथा व्यक्ति और समाज के विकास का मेरूदंड अर्थ के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। अ अर्थ को यदि सामाजिक निर्माण की मुख्य पीठिका कहा जाय तो अनुपयुक्त नहोगा। भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में सामाजिक संचेतना के साथ साथ आर्थिक संचेतना इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से लेकर अद्यतन काल के आधुनिक युग के सम्पूर्ण अंतराल को आत्मसात करके अभिव्यक्ति हुई है। वे अमीरी और गरीबी को एक सैद्धान्तिक रूप में मानकर उसे एक सनातन प्रक्रिया के रूप में देखते हैं-" जमींदार को मिटना ही था, क्योंकि वह निकम्मा बन गया था। ऐश आराम में डूबकर उसने अपने को तबाह कर लिया था। शक्ति उसके हाथ में है जो कमीं रहता है। अमीरी और गरीबी कायम रहेगी, शक्ति का केन्द्र बदल गया है आज शक्ति के केन्द्र उत्पादन और व्यापार में है, रचनात्मक मस्तिष्क में है। बुद्धि उसके पास है वहा शक्तिशाली है वहीं सम्पन्न है, वहीं अमीर है। ऊंचनीच बराबर बना रहेगा जमींदार मिट गया तो क्या बनिया तो तेजी से बन रहा है। "[2] इस प्रकार वर्माजी प्राचीन व्यवस्था और नव निर्मित व्यवस्था के बीच अमीरी और गरीबी के शाश्वत सिद्धान्त को स्वीकार

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ-390 (2) सामर्थ्य और सीमा, पृष्ठ-209

करते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि समाज में कभी भी यह संभव नहीं है कि सबको एक प्रकार की आर्थिक सुविधायें उपलब्ध हो सके क्योंकि इसके मूल में मानव प्रकृतिको एक दूसरे पर शासन करने की भावना विद्यमान है। वर्माजी ने किसी आर्थिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया है, अपितु सामाजिक जीवन में आर्थिक विषमता एवं पैसे का महत्त्व अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है।

:- शोषण व पूंजीवाद का विरोध :-

----x-----x-----x----x----

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में भयंकर अकाल पड़े। मिल मालिक व मजदूर, जमींदार और किसान की स्थिति शोषक व शोषित हो गई। उत्पादन के साधनों पर शोषक वर्ग का नियंत्रण जितना बढ़ गया, भारत की स्थिति उतनी ही खोखली होती गई "अंग्रेजों की आर्थिक नीति का सबसे ज्यादा जबरदस्त प्रभाव भारत की प्राचीन ग्रामीण व्यवस्था पर पड़ा और उसकी आत्मनिर्भरता विशृंखलित होने लगी।.2. अर्थिक दुर्व्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण लोगों को शहर में आकर नौकरी करनी पड़ी और नगरीकरण में वृद्धि होने लगी। अंग्रेजों की आर्थिक व्यवस्था में भारतीय नेतागण काफी क्षुब्ध थे। दादाभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, महादेव रानाडे जैसे नेताओं के विचार जनता में फैलने लगे और सन् 1907 में आर्थिक हितों की रक्षा और विदेशी शोषण समाप्त करने के लिये "बहिष्कार आंदोलन" और "स्वदेशी आन्दोलन" का प्रारम्भ हुआ। बीसवीं शताब्दी भारत के औद्योगिक विकास की महत्त्वपूर्ण सदी है। इस समय देश के आर्थिक ढांचे में व्यापारी वर्गअपना प्रमुख स्थान बना रहा था और यही वर्ग आगे विकसित होकर पूंजीपति वर्ग बना जिसके नेतृत्व में भारत में औद्योगिक विकास का प्रारम्भ हुआ।

भारतीय व्यापारी वर्ग ने प्रथम महायुद्ध के समय उद्योगों में अपनी पूंजी लगाकर अपनी शक्तिशाली स्थापना कर ली। चाय बागान और जूट की मिलें विदेशी पूंजीपतियों के हाथ से निकलकर भारतीय पूंजीपतियों के हाथ में आ गई। इस प्रकार एक ओर राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि हुई दूसरी और सामान्य जनता गरीब होती गई। जितनी अधिक आर्थिक विषमता बढ़ती गई, भारत में समाजवादी सिद्धान्तों का प्रचार भी उतनी तीव्रता से बढ़ता गया। प्रथम महायुद्ध के बाद भारत का बुद्धिजीवी वर्ग मार्क्स के प्रभाव से असंपृक्त न रह सका.2

वर्माजी के "भूले बिसरे चित्र" में आर्थिक अभाव सामाजिक समस्याओं के कारण ही,

---

1. सर परसीवल ग्रिफिटस : माडर्न इण्डिया, पृष्ठ - 75 ।2। के०एम० पीनकर दिफाउन्डेशन्स आफ इण्डिया, पृष्ठ 179

तथा अंग्रेजों औरभारतीयों के आर्थिक संघर्ष के माध्यम से कृषि, उद्योग मिल मालिक और मजदूर समस्यायें चित्रित हुई हैं। " टेढ़ मेढ़े रास्ते" इस राजनैतिक उपन्यास में भी रामनाथ तिवारी के विरुद्ध परमेश्वर और झगडू मिश्र का संघर्ष शोषक जमींदार के विरुद्ध सशक्त क्रांति लाना चाहता है।लेखक ने इस संघर्ष द्वारा यहअभिव्यक्त कर दिया हैकि आज शोषित वर्ग शोषक वर्ग निम्न शोषित वर्ग का शोषण नहीं कर सकता है। अंग्रेजों द्वारा पैदा किया गया यह जमींदार वर्ग शोषण में उनको सहायता तो करता ही था साथ ही उसका पैसा रुपया अधिक-तर विलायत को ही जाता था जिससे देश दोहरे संकट के पाट में पिस रहा था। अंग्रेज मिस्टर डावसन इसका रहस्य उद्घाटित करते हुये जमींदार रामनाथ तिवारी से कहते है--" ये जमींदार, इनका अधिकांश रुपया विलायत में जाता है मोटरों की कीमत में, सिगरेट में, शराब में, विलायती कपड़ों में और न जाने भोग विलास की कितनी चीजों में। इंग्लैण्ड यह जानता था कि यह आर्थिक गुलामी हिन्दुस्तान के लिये राजनीतिक गुलामी से कहीं अधिक घातक है।"[1]

स्वतंत्रता की पूर्वावधि में भारत में औद्योगिक प्रगति हुई और इस दृष्टि से भारत का स्थान विश्व के आठ प्रमुख औद्योगिक देशों में गिना जाने लगा।"[2] परन्तु ज्ञातव्य है कि भारत की निर्धनता पूंजीपतियों के मजबूत शिकंजों में और कसती गई। भारत में मंहगाई बढ़ने के साथ ही नौकरी और बेकारी की समस्या भी तेजी से बढने लगी। "भूले बिसरे चित्र" में वर्माजी नेशिक्षित बेकारी के कतिपय चित्र अंकित किये हैं नवल कहता है--" न जाने कितने युवक पढ़ लिखकर बेकार घूम रहे हैं उनके अंदर कटुता भर गई है। हजारों युवक वकील बनगये हैं उन्हें खाने तक को नहीं मिलता, हजारों नवयुवक बी0 ए0 और एम0 ए0 पास करके दफ्तरों में चक्कर लगा रहे हैं। उन्हें काम नहीं है।"[3]

" कृषि नष्ट हो जाने से भारत को दूसरे देशों द्वारा प्राप्त अनाज पर निर्भर रहना पड़ा। निम्न मध्यवर्ग इस बढ़ती हुई मंहगाई से सबसे अधिक पिसा क्योंकि उसके रहन सहन का स्तर अधिक ऊँचा हो गया और इस प्रकार एक ओर औद्योगिक विकास तो हुआ पर दूसरी ओर निम्न मध्य वर्ग के सामने बेकारी की समस्या भयंकर रूप धारण करती गई।"[4]

---

1. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ 43-45
2. सर परसीवाल ग्रिफ्थस: माडर्न इंडिया, पृष्ठ 199
3. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ 550
4. सर पर्सीवल ग्रिफ्थस: माडर्न इंडिया, 119

आर्थिक व्यवस्था के टूटने से सार्वभौमिक रूप से अभिव्यक्त किया है। "भारत कितना असंतुष्ट देश है.... अमीर हिन्दुस्तानी गरीब हिन्दुस्तानी और शासक अंग्रेज सभी यहां पर असंतुष्ट दिखाई देते है।"[1] टेढ़े मेढ़े रास्ते उपन्यास में वीणा, प्रतिभा, मनमोहन, प्रभानाथ क्रान्तिकारी पात्र हैं, जो हिंसा और बल के सहारे धनी व्यापारियों पर डाका डालते हैं, ट्रेने लूटते हैं, क्योंकि क्रान्तिकारी पार्टी के धन के अभाव को दूर करना उनका उद्देश्य है, मन मोहन साम्राज्य विरोधी है और उच्चवर्ग व निम्न वर्ग का भेद मिटाना चाहता है वह उमानाथ से कहता है--" जब तक यह साम्राज्य कायम रहेगा, तब तक यह विषमता कायम रहेगी और इस विषमता में मिटाने के लिये साम्राज्य को मिटाना जरूरी है।[2] पूंजीपति और जमींदार, मजदूरों और किसानों का शोषण सदा से करते रहे हैं और स्वातंत्र्योत्तर करते रहेंगे। अत: उमानाथ विश्व क्रान्ति करके पूंजीपतियों को नष्ट करना चाहता है।[3]

सन् 1943 में जब भयंकर अकाल पड़ा था तब पूंजीपतियों और व्यापारियों ने अधिक लाभ कमाया और अपने को आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ किया। पर साधारण जनता के लिये यह जीवन और मरण का प्रश्न था। वर्माजी ने "सीधी सच्ची बातें" उपन्यास में इसका चित्र खींचा है। अंगनू शाह स्वयं को समाज सेवक होने का सवा सोलह आना दावा करते हैं, परन्तु सेवा की आड़ में जनता का भयानक शोषण करते हैं।[4] अंगनू शाह का कांग्रेस के नाम पर जमील की फूफी का मकान हड़पने का प्रयास शोषण का ज्वलंत उदाहरण है। इसी शोषण का वर्णन करते हुये सुमेर जगत प्रकाश से कहता है-" लगान बेतहासा बढ़ायाटीन्हिन है जमींदार साहेब और खुद बस गये हैं शहर में जाय के। उनकेर कारिन्दा अधम जोते है, बेदखली करकी.... और अंगनू शाह जमींदार बिरजू मिसिर के सांठ गांठ कर लीन्हिन है। आधेपरदे दाम टेके सूत कतावत है बेतहासा मुनाफा अधरी। उनके कहे मां न चले तो चरखा करधा से हाथधोवे का परे।[5] यह तो हुआ ग्रामीण महाजनों द्वारा गरीब जनता का शोषण जिससे गांवों को छोड़कर ग्रामीण जनता शहरों में बसने लगी है और उन्हें मजदूर बनने के लिये मजबूर होना पड़ा

---

1. लुइस फिशर: दि लाइफ आफ महात्मा गांधी, पृष्ठ 292
2. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ- 210
3. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ - 443
4. सीधी सच्ची बातें पृष्ठ - 94
5. सीधी सच्ची बातें पृष्ठ 84

द्वितीय महायुद्ध में इंगलेन्ड में कंट्रोल लगे, उस कंट्रोल के फलस्वरूप वहाँ ब्लैक मार्केट का जन्म हुआ और वह ब्लैक मार्केट हिन्दुस्तान में पहुंच गया। अनाज के दाम दुगने और तिगुने हो गये। चारों ओर एक भयानक अभाव की छाया फैल गयी जिसकी आड़ में पूंजीपतियों ने ब्लैक मेल द्वारा स्पंज की भांति जनता का शोषण किया और पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था के विकास के साथ वह ब्लैक मार्केट रक्तबीज की तरह नये रूप धारण करता गया। वस्तुतः इस शोषण ने सामान्य जनता का जीना दुर्लभ कर दिया और अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था इससे प्रभावित हुये बिना न रह सकी। "सीधी सच्ची बातें" उपन्यास में ही जसवंत कपूर कहते हैं-" अनाज के वितरणकी व्यवस्था दूसरे सम्प्रदाय के हाथों में सौंप दी है और ये सम्प्रदाय के लोग अवसर का लाभ उठाकर रातों रात लखपती या करोड़पति बन रहे हैं। "1"

भुखमरी, बीमारी, बेरोजगारी के साथ ही भारत की बढ़ती हुयी जनसंख्या भी आर्थिक स्थिति को खोखला करने में सहायक हुई। लुइस फिशर के शब्दों में--" भारत एक जन-संख्या प्रतिवर्ष पचास लाख के हिसाब से बढ़ रही थी जो राष्ट्र के लिये सबसे बड़ी समस्या थी। जो देश जितना गरीब होता है जनसंख्या उतनी ही तेजी से बढ़ती है और देश उतना ही गरीब होता जाता है। "2" स्वतंत्रता के पूर्व भारतियों का विश्वास था कि देश स्वतंत्र होकर एक सुदृढ़ एवं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर राष्ट्र बन जायेगा परन्तु उसकी आशा के अनुकूल सफलता न मिल सकी। 1947 ई0 में शासन की बागडोर संभालते हुये नेहरू जी ने कहा था" हमें निश्चित रूप से उत्पादन बढ़ाना चाहिये। हमें राष्ट्रीय संपत्ति बढ़ानी चाहिये और साथ ही राष्ट्रीय लाभांश भी। तभी भारतीय जनता के रहन-सहन को ऊपर उठा सकते हैं। "स्वतंत्र भारत में आर्थिक विकास की अनेक योजनायें बनीं। इसके साथ ही जमींदारी उन्मूलन हुआ। रियासतों का विलयन हुआ, जिसमें सामन्ती वर्ग की आर्थिक स्थिति को गहरा धक्का लगा परन्तु देश की सामान्य जनता शोषण चक्र से मुक्त न हो सकी। वर्मा जी ने "सबहिं नचावतराम गोसाईं", सामर्थ्य और सीमा", प्रश्न और मरीचिका" में इस सबका स्पष्ट चित्र अंकित किया है।

" सामर्थ्य और सीमा" के पुंजीपति रतनचंद्र मकोला, रानी मानकुमारी से कहता है-" इस देश की सरकार को बनाने में हम लोगों का हाथ है और हम लोग इस सरकार

---

1. सीधी सच्ची बातें, पृष्ठ- 460-61
2. लुइस फिशर: दि लाइफ आफ महात्मा गांधी, पृष्ठ-292

को पलट भी सकते हैं। यह सारी सरकार पूँजी के हाथ में बिकी हुई है। हमारे इशारों पर चीजों के दाम घटते बढ़ते हैं, हमारे ही इशारों पर उद्योग धंधों की स्थापना होती है, हमारे इशारों पर मंत्री नाचते हैं, हमारे इशारोंपर विधायक अपना मत देते हैं।..... हमारे लिये कोई नैतिकता नहीं, हमारे पास कोई आस्था नहीं क्योंकि हम सक्षम है समर्थ हैं। "1" सबहिं नचावत राम गोसाई" उपन्यास का उद्योगपति राधेश्याम जिसने जबर सिंह गृह मंत्री को खरीद कर रखा है वह पैसे की अगाध शक्ति का परिचय देते हुये अपनी पत्नी गंगरूपी से कहता है-"डरने की कोई बात नही इतना समझ लो कि राधेश्याम को कोई वार खाली नहीं जाता, एक से एक पारसा और चरित्रबान लोगों को खरीदा है मैंने। रुपये की ताकत बड़ी जबरदस्त होती है। "2" इस प्रकार वर्माजी ने पैसे का आंकलन करते हुये स्वतंत्र भारत की शासन नीति और अर्थ- नीति पर व्यंग्य के छींटे उछाले हैं। शासन सत्ता जिन लोगों के हाथ में है वे अपने स्वार्थों के समक्ष देश और जनता का कल्याण तृणवत् समझते है। जिसका परिणाम विकास सोपानों पर चल रहे राष्ट्र को भुगतना पड़ता है।

"सामर्थ्य और सीमा" का वासुदेव देवलंकर से कहता है-" मंत्री पूंजीपतियों को [illegible] करते हैं, सरकारी अफसर रिश्वत खाते हैं, ठेकेदार चोर बाजारी करता है, और मजदूर हरामखोरी करता है। किसी का कोई कसूर नही। बांध बंधेगे और टूटेंगें, कारखाने लगाये जायेंगे औरठप्प पड़े रहेंगे और जनता के लोग पैसे- पैसेपर जान देंगें और बेइमानियाँ करेंगे।इस तरह हमारे देश का निर्माण होता रहेगा। "3" प्रश्न और मरीचिका" उपन्यास के मुहम्मद शफी भारतीय राजनीति पूंजीपतियों की गुलामी केअतिरिक्त और कुछ स्वीकार ही नहीं करते हैं। "देश में उत्तरोत्तर आर्थिक समस्यायें घटने के स्थान पर बढ़ती गईं। वर्माजी ने इस सबका उत्तरदायित्व पूंजीपतियों पर डाला है। "प्रश्न और मरीचिका" में एक स्थान पर लिखते है-" देश के उद्योगपति ये सबके सब गद्दार हैं, शोषक हैं। उनका एक मात्र उद्देश्य है लम्बा मुनाफा। वह जनता का शोषण करते है टेक्स न अदा करके। देश के शत्रु देश के अन्दर हैं, देश के बाहर नहीं। हम अपने देश के अंदर ही युद्ध करते है, सेना की सहायता सेनहीं है, [illegible] सहायता से । "4"

---

1. सामर्थ्य और सीमा : पृष्ठ - 241-42
2. सबहिं नचावत राम गोसाई, पृष्ठ - 208
3. सामर्थ्य और सीमा पृष्ठ 24
4. प्रश्न और मरीचिका, पृष्ठ - 454

मध्यवर्गीय कृत्रिम प्रदर्शन प्रियता ने आर्थिक जीवन को खोखला कर दिया। स्वातंत्र्योत्तर पं०जवाहर लाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री तथा श्रीमती इंदिरा गांधी के हाथ में क्रमश: शासन का उत्तरदायित्व आया और इनके प्रयत्नों के बाद भी वर्तमान आर्थिक विषमता में कोई अंतर नहीं आया। और इनके प्रयत्नों के बाद भी वर्तमान आर्थिक विषमता में कोई अंतर नहीं आया। स्वतंत्र देश में देशवासी ही एक दूसरे का शोषण कर रहे हैं जबकि परतंत्र देश में विदेशी शोषक थे। अस्तु, वर्तमान भारत पूंजीपतियों की शोषक अर्थनीति से बुरी तरह निर्धन होता जा रहा है और प्रचुर भौतिक साधनों के होते हुये भी भारत एक शक्ति शाली और स्वावलम्बी देश नहीं बन पाया। स्वतंत्र भारत की आर्थिक स्थिति के खोखलेपन का वर्णन वर्मा जी ने "थकेपांव" सामर्थ्य और सीमा" सबहिं नचावत राम गोसाईं" प्रश्न और मरीचिका" में हुआ है। "प्रश्न और मरीचिका" में सन् 1947 से 1962 तक की आर्थिक समस्याओं का वर्णन है।

:- वर्गहीन समाज की संकल्पना :-

वर्माजी ने यह अनुभव किया कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में आर्थिक विषमता समाप्त नहीं हुई परन्तु दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। धनी व्यक्ति और अधिक धनवान हो गये। गरीब व्यक्ति गरीब होते गये। लूट खसोट का बाजार और भी गर्म हो गया। वर्मा जी सामाजिक व आर्थिक दशा पर व्यंग्य करते हुये कहते हैं- "हर तरह की आजादी मिली लूटने की, अमीर बनने की, बेइमानी करने की। हर तरह की आजादी मिली लूटने की, अमीर बनने की, बेइमानी करने की। हर तरह की आजादी। तब कुछ इने गिने अंग्रेजों के हाथ यह देश था वे लोग खुद तो लूटते थे किन्तु दूसरों को नहीं लूटने देते थे। लेकिन आज हिन्दुस्तान का हरेक आदमी अपने को इस देश का मालिक समझता है, लूट में एक होड़ सी लग गई है।"[1] धन संचय की प्रवृत्ति ने स्वतंत्रता संग्रामियों के त्याग, बलिदान और देशप्रेम पर पानी फेर दिया है।

पण्डित जवाहर लाल नेहरू और कांग्रेस ने मिश्रित अर्थ व्यवस्था निर्धारित की है, जिसका लाभ पूंजीपति बुरी तरह उठा रहे हैं। "पूंजीपति जीवन में सुख सुविधा, आराम के

---

1. प्रश्न और मरीचिका, पृष्ठ 353

लिये धन संचय नहीं करते अपितु रुपयों की शक्ति के रूप में संचित करते हैं।[1] ताकि दूसरों को खरीद सकें। "प्रश्न और मरीचिका" में वर्माजी ने मुंशी रामसहाय के माध्यम से सत्य को स्पष्ट किया है"आज दुनियां में शक्तिशाली वह है जिसके रुपया है। सभी कुछ तो बिक रहा है आज की दुनियां में-धर्म, ईमान, सत्ता अधिकार, पद, मर्यादा। सब कुछ खरीदा जा सकता है।[2] इस प्रकार स्वतंत्र भारत में महात्मा गांधी के आदर्शों पर चलने वाली कांग्रेस की छत्रछाया में अमीर बेतहाशा अमीर बनते जा रहे हैं और साधारण जनता अभावों में पल रही है।

भगवती चरण वर्मा ने "सामर्थ्य और सीमा" में भी पैसे वालों की शक्ति और उनके विकृत रूपों का स्पष्ट चित्र खींचा है मकोला, जिसकी दुनिया में सब कुछ विक्रय होता है वह मानवीय गुण स्नेह, प्रेम, ममता, सभी कुछ खरीदना चाहता है। खोखन लाल के आश्चर्य करने पर कहता है-" क्या नहीं बिकता इस दुनियां में खोखन लाल, मैंने तुमसे कहा न कि मैं रानी मानकुमारी को खरीदना चाहता हूं।[3]

रिश्वत में आमादमस्तक निमज्जित मंत्री जबर सिंह का यह कथन कितना आडम्बर-पूर्ण है-" हमारी सरकार ने जमींदारी समाप्त कर दी है। यह मेहनतकश मजदूरों का किसानों का राज है। शोषण और उत्पीड़न बंद।[4] इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत ऐसा विशाल देश है जिसकी प्राकृतिक पूंजी विशाल है, अपरिमित-मानव शक्ति है, वह राष्ट्रीय चरित्र के अभाव में प्रगति से वंचित हो कर शोषण उत्पीड़न के चक्र में फंसा हुआ अपने भाग्य भविष्य की ओर टकटकी लगाए देख रहा है। यह स्वातंत्र्योत्तर भारत की विषमता का सच्चा स्वरूप है जिसे वर्माजी अपने उपन्यास साहित्य में स्पष्ट करते है और साथ ही यह भी कहते है कि आदर्श वाद का युग देश स्वतंत्र होते ही समाप्त हो गया अब आदर्श एक नारा मात्र रह गया। असली चीज है अपनी सत्ता की रक्षा करना जो कि पैसे के बल पर ही होसकती है।

"वह फिर नहीं आई" उपन्यास में भी वर्मा जी ने शक्ति के सिद्धान्त की व्यापक चर्चा की है"सामर्थ्य सब कुछ कर सकता है अपनी भावना की तुष्टि के लिये। असमर्थ कुछ कर सकता

---

1. प्रश्न और मरीचिका पृष्ठ- 474
2. प्रश्न और मरीचिका पृष्ठ- 430
3. सामर्थ्य और सीमा, पृष्ठ- 231
4. सबहिं नचावत राम गुसाईं, पृष्ठ- 140

है। अपनी भावना की तुष्टि केलिये। असमर्थ कुछ कर सकता हैकुछ नहीं कर सकता, कानून से बाहरहै। "1" अर्थात् यह रुपया ही समाज में व्यक्ति की नियामक शक्ति है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्माजी ने पैसे के व्यापक महत्त्व को साधारण निम्नवर्गीय जीवन से लेकर ऊंचे से ऊंचे करोड़पति के जीवन के माध्यम से आंकने का प्रयत्न किया है। "थके पांव" में मध्यवर्गीय पारिवारिक विघटन की कथा पैसे के माध्यम से कहीं गई है। आर्थिक अभाव में बच्चों की शिक्षा नहीं होपाती, पुत्र का इलाज नहीं हो पाता, पुत्री अविवाहित रह जाती है और अन्त में केशव का ईमान पैसे की अभाव में बिककर रिश्वत का रूप ले लेता है।" आर्थिक सामर्थ्य और सम्पन्नता सफलता का रूप है, आर्थिक अभाव और घुटन असफलता का रूप है। आज समस्त शक्ति पूंजी में निहित है और यह पूंजीपति को संपूर्ण रूप से शक्तिशाली है।

आर्थिक विषमता के कारण ही सामाजिक विषमता है। और इस विषमता को विनष्ट करने के लिये पहले अमीरी गरीबी को मिटाना होगा। यहां वर्माजी वर्ग-संघर्ष को एक शाश्वत सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते हैं उनका विश्वास है कोई भी सामाजिक व्यवस्था तब तक इस वैषम्य को नष्ट करनेमेंपूर्णत: सक्षम नहीं हो सकती जब तक मनुष्य की दूषित प्रवृत्ति में सुधार न होगा। परन्तु रघुराज सिंह के माध्यम से "सामर्थ्य और सीमा" में वर्माजी आर्थिक प्रभुत्व का विरोध करते हुये दीख पड़ते हैं और इस वैषम्य को मिटाने की योजना प्रस्तुत करते हैं जो इस समस्या का समुचित हल कहा जा सकता है। "देश का निर्माण किया जा सकता है देशकी जनता की एक मात्र आर्थिक व सामाजिक विषमता को मिटाकर। हरेक व्यक्ति को यह मौका दिया जाना चाहिये कि वह विकसित होकर स्वयं अपना स्वामी हो। दूसरों पर निर्भरता दूसरों की गुलामी यह सबसे बड़ा सामाजिक अभिशाप है। "2"

:- सामाजिक राजनैतिक जीवन में आर्थिक वैषम्य :-

-----x-----x-----x-----x-----x------

सामाजिक राजनैतिक जीवन में आर्थिक विषमता स्वातंत्र्योत्तर और बढ़ती जाती है। उपन्यासकार का स्वानुभूत जीवन में जिस विषमता से साक्षात्कार हुआ है उसे अपनी

---

1. ~~सबहिं नचावत राम गुसाई~~
1. वह फिर नहीं आई, पृष्ठ- 47

2. सामर्थ्य और सीमा, पृष्ठ- 325

कृतियों में तटस्थ रूप से पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति किया है " सामर्थ्य और सीमा" में वह आर्थिक विषमता को शास्वत रूप से स्वीकार करते हैं। "अमीरी और गरीबी" कायम रहेगी, शक्ति का केन्द्र बदल गया है। आज शक्ति का केन्द्र उत्पादन और व्यापार में है, रचनात्मक मस्तिष्क में है। .1. वर्माजी चरित्र और ईमानदारी से परिस्थितियाँ सापेक्ष स्वीकार करते हैं, व्यक्ति अथवा समाज सापेक्ष नहीं। ज्ञानेश्वर राव शिवानंद शर्मा से कहते हैं "चरित्र, ईमानदारी ये सब आर्थिक परिस्थितियों के बदलते हुये पहलू हैं। देश की आर्थिक अवस्था यदि सम्हल जाये तो लोग सम्पन्न हो जायें तो यह बेईमानी और लूट खसोट गायब हो जाय। मानव-समाज में जब तक इस अभाव और असमानता से भरी हुई आर्थिक विषमता रहेगी, तब तक जिसे मध्यवर्ग वाले धर्म और ईमान कहते हैं उसके अजीब गरीब रूप हम लोगों को देखने को मिलेंगे। .2.

वर्माजी के उपन्यासों का मुख्य प्रतिपाद्य विषमता की पीड़ा से स्पंदित मानव है जो पैसे के व्यापक प्रभाव के आगे-चाहे अमीर हो या गरीब अपने अस्तित्व को मिटाते दिखाई पड़ता है। "आखिरी दांव" उपन्यास में इसी यथार्थ की अनुभूति जीवन में करता है। "जिसके पास पैसा है वह सब कुछ खरीद सकता है रूप, यौवन शरीर, आत्मा सब कुछ बिक रहे हैं पिशाच के हाथों चमेली, हम दोनों भी अपने को उस पिशाच के हाथों बेच चुके हैं। .3. "तीन वर्ष" उपन्यास का रमेश इसी आर्थिक वैषम्य में टूट जाता है, और वह अर्थ की महत्ता को इस प्रकार स्वीकार करता है। "दुनिया मे पैसे का ही साम्राज्य है, प्रत्येक व्यक्ति को पैसे की गुलामी करनी पड़ती है। ऐसी हालत में अपने व्यक्तित्व को बनाये रखना अपने को पीड़ित करना है दुखी होना है। .4. पैसे के अभाव में गार्हस्थ्य धर्म का स्वस्थ परिपालन नहीं हो पाता है। इसी भावना की अभिव्यक्ति "आखिरी दांव" उपन्यास में वर्माजी ने की है "गृहस्थी और गरीबी में वैर है। गृहस्थी अमीरों के लिये वरदान हो सकती है, लेकिन गरीबों के लिए अभिशाप है। गृहस्थी तभी जमाई जा सकती है जब पास में सम्पत्ति हो रुपया पैसा हो। .5.

---

1. सामर्थ्य और सीमा, पृष्ठ- 325
2. सीधी सच्ची बातें, पृष्ठ- 174
3. आखिरी दांव, पृष्ठ- 288
4. तीन वर्ष, पृष्ठ- 278
5. आखिरी दांव, पृष्ठ- 8

सामर्थ्य और सीमा, में भी वर्माजी ने पैसे की अपूर्व शक्ति का वर्णन किया है- मकोला जो देश के पूंजीपति हैं वह रूपये को ही महान शक्ति स्वीकार करता है। रूपया शक्ति है, रूपया देवता है, रूपया सब कुछ है। "1" आज की दुनिया को, आज़ की संस्कृति का आज की सभ्यता का सबसे बड़ा अभिशाप पैसा है। इस पैसेके पिशाच में सबसे गुलाम बनने की प्रबल अभिलाषा होती है। वर्माजी ने "टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यास में भी पैसे की अगाध शक्ति को स्वीकार किया है। एक क्लर्क को अपनी पदोन्नति के लिये सदैव अफसरों की खुशामद करनी पड़ती है। इस प्रकार मेहनत नहीं खुले आम आदमी बिकता है। यह अर्थ-मानव समाज के समस्त विकास और सभ्यता की उपलब्धि है। इस अर्थ को स्वीकार करना पड़ेगा लेकिन कार्य के रूप में नहीं। परन्तु आज यह कार्य ही कारण बन गया है। वास्तविक कारण है भावना। अर्थ इस भावना का भौतिक पहलू है। यह तो अर्थ की व्यावहारिक महत्ता हुई परन्तु सैद्धान्तिक धरातल पर भी इसके महत्त्व को नाकारा नहीं जा सकता है। विश्व विद्यालय के प्रोफेसर डा० शर्मा कहते हैं कि--" ये जितने राजनीतिक दर्शन है, ये सब अर्थ पर कायम हैं। समाज वाद का आधार ही अर्थ पर है। मार्क्सवाद अर्थ का दूसरा पहलू है। "2" अर्थकी मानव जीवन में उपयोगिता स्वयं सिद्ध है स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक हम देखते हैं कि इस आर्थिक मजबूरी के समक्ष मानव विवश दीख पड़ता है।

आर्थिक वैषम्यगत यह द्वन्द्व एक प्रकार से वर्मा जी का साहित्यिक दर्शन बन गया। मानव जीवन के कल्याणार्थ तथा समाज के अभिनवीकरण के लिये वह वैषम्य मिटा देना चाहते हैं। उपन्यासकार की यह आर्थिक संचेतना भारतीय वातावरण-प्रसूत प्रसूत पूर्णत: व्यावहारिक है। कलाकार जिस युग से गुजरता है उस युग की सामाजिक पृष्ठभूमि नजरन्दाज नहीं कर पाता है। वर्माजी ने तो देश की स्थिति खुली आँखों से देखी है तथा भारतीय समाज की समस्त विशेषताओं और उसके परम्परित गुणावगुणों का अनुभव स्वयं किया है। इनका युग प्रगति का युग रहा चारों ओर नये नये उद्योग, नवीन शिक्षा व्यवस्था, वैज्ञानिक आविष्कारों की धूम थी। अत: उनके युग प्रसूत प्रगतिशील सामाजिक व आर्थिक चित्र यदि सजीव उतार आये तो आश्चर्य क्या.

---

1. सामर्थ्य और सीमा पृष्ठ- 13
2. सीधी सच्ची बातें पृष्ठ- 274

:- सांस्कृतिक चेतना :-

----x-----x----

मानव जीवन में प्रगतोन्मुख समष्टिगत ज्ञानात्मक और विचारात्मक त्रयमयी क्रियात्मक अनुभव जो जन जीवन में संस्कारों का रूप ले लेते हैं संस्कृति कहलाती है। यह संस्कृति मानवीय या प्राकृतिक वातावरण से प्रभावित समुदाय विशेष के जीवन चिंतन और व्यवहार्य की आंतरिक प्रवृत्ति है, जो समाज द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है और सामाजिक सदस्यों द्वारा अर्जित भी की जाती है। "संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में,साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और आनंद में पाये जाने वाले रहन सहन और विचारों की अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है।"[1] संस्कृति के विकास में आदान-प्रदान का भाव निहित होता है क्यों मानव मात्र के वैयक्तिक व्यवहार संस्कृति के अंग कभी नहीं बन पाते जब उन्हें दूसरों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है तो वे संस्कृति में समाविष्ट हो जाते हैं। पारस्परिक सम्पर्क संस्कृति के विकास में प्रमुख उपादान है। डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में-" हमें किसी सिद्धान्त का त्याग इसलिये नहीं करना चाहिये कि वह अभारतीय है। हमें विदेशी सिद्धान्त भी गुणों की कसौटी पर ग्रहण करने चाहिये।[2]

संस्कृति का संबंध मनुष्य के सामाजिक, राजनैतिक धार्मिक दार्शनिक साहित्यिक एवं कलागत जीवन के विविध पहलुओं से है। भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति के पांच अवयवकर्म, दर्शन, इतिहास, वर्ण तथा रीति रिवाज हैं।[3] बाबू गुलाबराय संस्कृति के अन्तर्गत साहित्य, संगीत, कला, दर्शन, धर्म, लोक वार्ता, तथा राजनीति का समावेश करते हैं।[4]

डा0 सरनाम सिंह शर्मा का कथन है-" सभ्यताओं का विनाश और विकास हो सकता है, धर्मों का उत्थान पतन हो सकता है पर संस्कृति का मौलिक रूप निरंतन और चिरस्थाई है।[5] वैसे संस्कृति और सभ्यता में काफी अंतर है लेकिन वे एक दूसरे से असंयुक्त रह ही नहीं सकते क्योंकि किसी राष्ट्र के सांस्कृतिक पहलुओं के विकास में उस देश की

---

1. मैकाइवर एण्ड पेज : सोसाइटी, पृष्ठ 449
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी : विचार और वितर्क, पृष्ठ- 125
3. कल्याण : हिन्दू संस्कृति विशेषांक, पृष्ठ- 76
4. डा0 गुलाबराय : भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, आत्म निवेदन, पृष्ठ- 1
5. डा0 सरनाम सिंह शर्मा : साहित्य, सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ - 21

सभ्यता का प्रतिबिंब निहारा जा सकता है। संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज होती है, यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन, फूलों में सुगंध। •1•

:- साहित्य और संस्कृति :-

साहित्य किसी देश या काल की संस्कृति के ज्ञान का सर्वाधिक विश्वस्त प्रामाणिक आधार होता है। साहित्य में संस्कृति के जातीय मनोभाव सुरक्षित हो रहते हैं और इसके अतिरिक्त साहित्य मनुष्य को उस रागात्मक ऐश्वर्य की स्थिति तक पहुँचता है जहां सर्वत्र सुख और शांति रहती है तथा मन की कोकिल अपने मधुर गीत सप्तस्वरों में गुनगुनाती है। साहित्य, संस्कृति का वाहन है। दर्शन का सत्य जब सौन्दर्य के संयोग से सज्जित होकर अपने शिवत्व की अभिव्यक्ति के लिये मचल उठता है तो निश्चय ही उच्च कोटि के साहित्य की सर्जना होती है। किसी भी देश का साहित्य का साहित्य उसके विचारों और मनोभावों के इतिहास का परिचय देता है। "साहित्य मानव-जाति के उच्च सेउच्च और सुन्दर से सुंदर विचारों तथा भावों का वह गुच्छा है, जिसकी बाहरी सुन्दरता व भीतरी सुगंधि दोनों ही मन मोह लेते है। कोई जाति तब तक बड़ी नहीं होती जब तक उसके भाव और विचार उन्नत न हो। जब भाव व विचार उन्नत होगें तब उनका विकास उस जाति के साहित्य के रूप में ही हो सकता है। •2•

साहित्य संस्कृति के विकास में दिशा-निर्देशक का रोल अदा करता है और संस्कृति रोते हुये कलाकर को जगा देती है तथा साहित्य को प्रेरणा प्रदान करती है। किसी भी देश की संस्कृति को समझने के लिये वहां के विभिन्न शास्त्र, विद्या, कला आदि को जानना आवश्यकहोता है। साहित्यकार युग की प्रगति से प्रेरित होकर पुरातन की ओट से दुबकते हुये नूतन-युग का निर्माण करता है। परम्परा और प्रयोग के परस्पर संतुलन द्वारा मानव जाति ने अपनी संस्कृति तथा साहित्य का निर्माण किया है स्पष्ट है कि मानव जीवन के लिये संस्कृति और साहित्य दोनों नितांत आवश्यक हैं किसी एक के अभाव में जीवन का सर्वांगीण विकास होना असंभव है और मानव जाति का सौन्दर्य बोध एवं मूल्यबोध को आगत के लिये संचित भी नहीं किया जा सकता। "डा0 सरनाम सिंह शर्मा ने साहित्य को

---

1. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ - 652
2. डा0 राजेन्द्र प्रसाद : साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पृष्ठ - 10

संस्कृति का इतिहास कहकर उसे अतीत का प्रतिबिंब तथा अनागत का प्रदीप माना है।•1•

:- उपन्यास साहित्य और संस्कृति :-

कला या साहित्य का उद्देश्य होताहै जीवन को विविध आयामों में उद्घोटित तथा रूपायित करना। उपन्यास ने मानव जीवन की जटिल से जटिल पहेलियों को उजागर करने का जो काम अपने जुम्मे लिया, वह सो कठिन तो था ही, इसके अतिरिक्त अन्य किसी विधा की क्षमता के बाहर की चीज थी। विषमता की पीड़ा से पीड़ित बोझिल मानव की जटिल संस्कृति का चित्रण उपन्यास करने को आतुर हुआ और अभिव्यक्त मूल्यों को चित्रित करने लगा। उपन्यासकार का दायित्व भी अपेक्षाकृत अधिक बढ़ गया। भगवती चरण वर्मा के उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति की व्यापकता प्रेमचंद से कम नहीं है। उपन्यास आज की सभ्यता और संस्कृति की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। जीवन को समग्र रूप से चित्रित करने की कला इसने ही पाई है। आज का उपन्यास साहित्य युगीन संस्कारों से आक्रांत ही नहीं अपितु संस्कृति से अपना गहरा रिश्ता जोड़कर अपने समय के सांस्कृतिक तत्त्वों की अभिव्यक्ति में आतुर दिखाई पड़ता है वर्माजी के उपन्यासों का प्रतिपाद्य दीर्घकाल की सांस्कृतिक थाती अपने में समाहित किये है।

पाश्चात्य शिक्षा- दीक्षा ने भारत में शिक्षित और अशिक्षित दो भिन्न सांस्कृतिक वर्गों का निर्माण किया। एक ओर भौतिक साधनों से सम्पन्न शहरों में रहने वाले और साधनहीन, गाँवों के कठोर जीवन, अंधविश्वास भौतिक असुविधाओं में पलने वाले अशिक्षित वर्ग की सांस्कृतिक चेतना विकास न कर सके। इस प्रकार दो वर्गों की सांस्कृतिक चेतना ग्राम्य संस्कृति और नगर-संस्कृति के रूप मे विभाजित होगई। पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त नवयुवक जनता और जन संस्कृतियों को अपेक्षित दृष्टि से देखने लगे परिणाम स्वरूप दोनों में सदा-सदा के लिये संघर्षवातावरण अपने आप उत्पन्न हो गया।

अंग्रेजी शिक्षा ने एक ओर भारत वर्ष में अंग्रेजी संस्कृति का प्रचार किया एवं प्रसार किया जिससे एक ओर भारतीयों की राष्ट्रीय भावना के फलस्वरूप अतीत की सांस्कृतिक

---

1. डा० सरनाम सिंह : साहित्य, सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ- 19

प्रतिष्ठा होने लगी और दूसरी और आधुनिक शिक्षा प्राप्त नव युवक पाश्चात्य संस्कृति के वाहक बने। दो वर्गों में सांस्कृतिक संघर्षकीभूमिका यहीं से प्रारम्भ होती है। शिक्षित और अशिक्षित शासक और शासित भावना ने इस संघर्ष को और बढ़ा दिया। "भूले बिसरे चित्र" टेढ़े मेढ़े रास्ते" में वर्माजी ने सांस्कृतिक विडम्बना और संघर्ष की झांकी प्रस्तुत की है। वर्मा जी की ये औपन्यासिक चरित्र सृष्टियों इन्हीं दोनों अतिवादी विचारधाराओं को उद्घाटित करती है। तथा इन उपन्यासों में सन् 1885 से लेकर सन् 1948 ई0 तक की सांस्कृतिक चेतना अभिव्यक्त हुई है। इनमें पाश्चात्य और प्राच्य संस्कृतिका संघर्ष, विश्व बंधुत्व की भावना, नूतन सांस्कृतिक चेतना का अभ्युदय और मानवतावादी विचारधारा की प्रतिष्ठा का सशक्त आह्वान सुनाई पड़ता है। "टेढ़े मेढ़े रास्ते" के बाद हम देखते हैं कि। भारत की सम्पूर्ण संगठित शक्तियां स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्य में ब्रिटिश साम्राज्य से लोहा लेती दिखाई पड़ती हैं। गांधीवाद के साथ-साथ साम्यवाद व समाजवाद का आगमन हुआ जिससेगांधी जी के महान व्यक्तित्व की ज्योति क्षीण सी हो गई। मूल्यांकन की दृष्टि से कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक चेतना-राजनीतिक और सामाजिक चेतना से आक्रान्त होकर वर्माजी के उपन्यासों में अभिव्यक्त हुई है।

"प्रश्न और मरीचिका" उपन्यास में 1948 से सन् 1934 तक का भारतीय सांस्कृतिक उपलब्धियों का युग चित्रित हुआ है। वर्तमान भारत में विज्ञान, औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था, राष्ट्रीयता तथा जन-तांत्रिक भावना ने अभिनव संस्कृति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। व्यक्तिवादी विचारधारा के उन्मेष से प्रत्येक वर्ग की अपनी विचारधारा दूसरे से भिन्न हो गई। ऐसी युगीन परिस्थितियों में भी भगवती चरण वर्मा नवीन सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठ करने को प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। "भूले बिसरे चित्र" "रेखा" "सामर्थ्य और सीमा" सबहिं नचावत राम गोसाई" तथा "प्रश्न और मरीचिका" में एक ओर वह मानवीय आस्था और अनास्था के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करते हैं, तो दूसरी ओर एक नई संस्कृति, नयी सभ्यता की अभिव्यक्ति करते हैं जिससे मानव कल्याण हो सकता। वर्माजी ने अपने युग के आस्था और विश्वास को जन-जीवन की कसौटी पर कस कर बौद्धिक रूप से नवीन प्रगतिशील सांस्कृतिक चेतना के रूप में समुपस्थित किया है।

नूतन और पुरातन के संघर्ष में सामाजिक चेतना ने सांस्कृतिक विकास में महान योगदान दिया। यद्यपि देश की परतंत्रता और अंग्रेजों की शोषण नीति ने कम बाधायें

उपस्थित न कीं, तथापि इस युग में एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ जो सांस्कृति एवं राजनैतिक चेतना का अग्रदूत बना और जिसे हम मध्यवर्ग के नाम से जानते हैं। इस वर्ग में वकील, डाक्टर, प्राध्यापक, सामान्य व्यापारी, सरकारी कर्मचारी आदि थे। इसके पूर्व केवल दो वर्ग-एक तो सामन्तों का उच्च वर्ग और दूसरे किसान मजदूरों का निम्न वर्ग थे। इस प्रकार पूर्व परिचय से सम्पर्क से सामाजिक संस्कृति का निर्माण हुआ। इन दोनों वर्गों के संघर्ष का चित्रण वर्माजी के उपन्यासों में हुआ है। वर्माजी की नूतन कृतियों में शहरी संस्कृति का समर्थन लेखक के प्रगतिशील सचेतना का परिचायक है।

प्रत्येक युग की कुछ अपनी विशिष्ट परिस्थितियाँ और समस्यायें होती हैं जिनके आधार पर उस युग की संस्कृति का विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक वर्गों एवं युगीन मानवीय मूल्यों को ध्यान में रखते हुये यदि सांस्कृतिक वर्गीकरण किया जाय तो भिन्न सांस्कृतिक इकाइयां सामने आती है।

1. शहरी संस्कृति जिनमें उच्च तथा मध्य वर्ग होता है।
2. ग्रामीण जन संस्कृति जिनमें सामान्य विशाल जनता का समूह आता है।

द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका ने यह सिद्धकर दिया कि विभिन्न वर्गों की अपनी-अपनी विशेषतायें होती हैं। प्रत्येक समाज का रहन-सहन, आचार विचार और मानवीय मूल्य तदनुसार उनकी अपना अपनी संस्कृति होती है। प्रत्येक समाज की सांस्कृतिक रुचियां भिन्न हुआ करती हैं। इसलिये उनके जीवन संबंधी दृष्टिकोण और मानवीय मूल्य एक नहीं हो सकते ।

:- शहरी संस्कृति :-

----x----x---

प्रेमचन्द्रोत्तर उपन्यासों में वर्माजी के साहित्य में शहरी आभिजात्य व संस्कृति का चित्रण स्थूल खोके में सूक्ष्म रंगों की परिष्कृत अभिरूचि के साथ हुआ। लेकिन उनके उपन्यासों में प्रायः चरित्र काम जनित पीड़ा से आक्रान्त हैं। काम उनकी प्रमुख समस्या है। अधिकतर वे देश तथा समाज के कार्यक्रम में भाग नहीं लेते। कुछ ऐसी ही जो अपने अभीष्ट की सिद्धी प्राप्त करने के लिये ही राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेते हैं। दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि ये चरित्र अपना

अपना स्वास्थ्यपरिवारिक जीवन निर्वाह नहीं कर सकते, अपितु उनमें निरन्तर एक अनिर्णय तथा भटकाव की स्थिति दृष्टिव्य है। वस्तुत: तटस्थ रूप से वर्माजी ने इस वर्ग की सांस्कृतिक रूचि का विवेचन किया है।

" तीन वर्ष " उपन्यास की कथावस्तु विश्वविद्यालय का वातावरण है जहां आभिजात्य वर्ग शिक्षा के उद्देश्यसे नहीं अपितु फैशन तथा पाश्चात्य सदाचार सीखने जाता है। रमेश इस उपन्यास का निम्न मध्यवर्गीय पात्र है जो कर्मठ और अध्यावसायी है, परन्तु जमींदार अजित की सहायता से पढ़रहा है। प्रभा और अजित ऐसे युवक युवतियां हैं जो, प्रेम की लिप्सा लेकर ही विश्व विद्यालय में प्रवेश करते हैं और-काम तृप्ति का मार्ग ढूंढते है। रमेश और प्रभा दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है। प्रभा विवाह और प्रेम को एक नहीं मानती। प्रेम के नाम पर वह कार्टशिप तथा फ्लर्टेशन से आगे नहीं जा सकती । जबकि रमेश और प्रभा दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है। प्रभा विवाह और प्रेम को एक नहीं मानती। प्रेम के नाम पर वह कार्टशिप तथा फ्लर्टेशन से आगे नहीं जा सकती। जबकि रमेश प्रेम के लिये प्राण दे सकता है।[1] और उसके लिये प्रेम का अंत विवाह है।[2] प्रभा रमेश और अजित के माध्यम से वर्माजी ने आभिजात्य वर्ग की खोखली मान्यताओं का पर्दाफाश किया है, तो सच्चाई स्वयं सिद्ध हो जाती है। यद्यपि कुछ समीक्षकों का विचार है कि वर्माजी अराजक संस्कृति के प्रचारक है। परन्तु यह एक यथार्थ है। जिस पर थोथे आदर्शवादी प्रभा के समान धार्मान्धि मिट्टी डालने का प्रयास करते हैं जो सर्वथा उचित नहीं है। [3]

"टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यास का उमानाथ अपनी स्वच्छंद विलासी प्रवृत्ति के कारण ही अपनी पहली पत्नी महालक्ष्मी को छोड़कर विदेश में हिल्डा से विवाह कर लेता है। जबकि हिल्डा न तो सुन्दर है न महालक्ष्मी के समान त्यागमयी है। उमानाथ एक स्वार्थी स्वच्छन्द और अशिष्ट सामाजिक कार्यकर्ता है। "सामर्थ्य और सीमा" उपन्यास की रानी मानकुमारी के अद्वितीय सौन्दर्य का भोग उसके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति करना चाहता है। और रानी मानकुमारी नारी समाज की ऐसी पात्रा है जो सौन्दर्य शक्ति से सब कुछ प्राप्त करना चाहती है। वर्माजी अपने इस उपन्यास से यह चित्र सामना लाते हैं कि उच्च वर्गीय अपनी संस्कृति को भोग विलास तक ही सीमित रखते है।

---

1. तीन वर्ष पृष्ठ- 127
2. तीन वर्ष पृष्ठ- 129
3. डा० चंडी प्रसाद जोशी : हिन्दी उपन्यास-समाजशास्त्रीय, विवेचन, पृष्ठ- 305

" अपने खिलौने" उपन्यास में वर्माजी ने राजाओं,, पूंजीपतियों तथा उच्चाधिकारियों की जीवन संबंधी खोखली मान्यताओं का जीवंत चित्र उपस्थित किया है। इसके कथानक में उच्च वर्ग को कलाप्रियता के नाम पर पोषित की जाने वाली स्वार्थी मनोवृत्तियों का यथार्थ चित्र खींचा है वर्माजी ने आभिजात्य वर्ग की आर्थिक उन्माद की खोखली अवस्था का चित्रण किया है। मीना भारतीय और अन्नपूर्णा बंसल ऐसी महिलायें हैं जो अधिक से अधिक रूप प्रदर्शन द्वारा अपनी अच्छी कीमत वसूल करना चाहती हैं। इस दृष्टि से "अपने खिलौने" उपन्यास में चित्रित सांस्कृतिक जीवन "भूलेबिसरे चित्र" उपन्यास की भूमिका माना जा सकता है।

:- ग्रामीण-जन-संस्कृति :-
----x----x----x--

किसानों का सीधा साधा मन निश्छल हृदय मानवता का भी मन मोह लेता है। प्रेमचंद्रोत्तर साहित्य में नागर और ग्रामीण जीवन के बाह्यन्तरंग जीवन का जीवंतचित्र देखा जा सकता है। हम उनके साहित्य में गांव की सैर करते हैं। किसानों की निर्धनता का नग्न रूप देखते हैं। किसानों पर किये गये जमींदार महाजन तथा नौकरशाही के शोषण तथा अत्याचार को देखते हैं। देश के इस विशाल जनसमूह की कर्मठता, सरलता और अकृत्रिम संस्कृति वह दीप शिखा है, जो क्रांतिकालीन सांस्कृतिक झंझावतो में भी दिग्भ्रमित भारतियों को सुमार्ग दर्शन करवाती है। भगवती चरण वर्मा का ऐसा कोई उपन्यास नहीं है, जिसमें समग्र रूप से सामान्य-जन जीवन और ग्रामीण-संस्कृति चित्रण न हुआ हो।

वर्माजी ने "आखिरी दांव" उपन्यास में ग्रामीण पात्र रामेश्वर और चमेली को बंबई के यांत्रिक जीवन और अर्थाभाव में पिसते हुये चित्रित कर पैसे और नैतिकता का संघर्ष प्रस्तुत किया है। अर्थ समस्या के सम्मुख नैतिकता की पराजय होती है। वर्माजी ने ग्रामीण मानवीय मूल्यों और सांस्कृतिक आस्था की निष्कलुष साधना को सेठ शिवकुमार और शीतल प्रसाद द्वारा बिकते दिखा कर जन-संस्कृति का ध्वंसोन्मुखी रूप चित्रित कियाहै।

"सीधी सच्चीबातें" का जगत प्रकाश जब गर्मियों की छुट्टी में अपनी बहन के आग्रह से अपने गांव जाता है तो वह गांव की जनता को निर्धनता में पिसते हुये त्रस्त देखकर दंग रह जाता है। जमींदार, महाजन, पुलिस, पटवारी कानूनगो और सरकारी अफसरों के

भयानक शोषण से उजड़ते हुये ग्रामीण जनता और नष्ट होते हुये कुटीर उद्योगों के कारण आर्थिक अभाव से जर्जरित जन-जीवन का दयानीय रूप उद्घाटित करता है। ग्रामीण संस्कृति के प्रति सहानुभूति प्रगट करता है। अंग्रेजों की व्यापारिक नीति और स्वदेशी व्यक्तियों के शोषण ने कुटीर उद्योग एवं परम्परागत ग्रामीण पेशे नष्ट कर दिये जिससे भारतीय ग्रामीण जन संस्कृति यांत्रिक युग की थपेड़ों से ठकोर खाती हुई अभिशापित हो ग्राम पर असहाय, विधवा जमील की फूफी का घर मकान हड़पने का प्रयत्न करते हैं।[1] कदाचित जमींदारों की शोषण प्रवृत्ति ने जन-संस्कृति के महत्त्व की सदैव उपेक्षा की और उसे नष्ट करने के लिये प्रयत्नशील रहे। अन्यथा गांवो का जन-जीवन आजकल अपने चरम विकास पर होता।

सांस्कृतिक अध्ययन में शिक्षा, खानपान, आचार-विचार, वेशभूषा, रीति-रस्म, पर्व-त्यौहार, आमोद-प्रमोद आदि प्रमुख हैजिनका विवेचन यहां अपेक्षित है। सांस्कृतिक दृष्टि से उनका अध्ययन समीचीन ही है।

:- खान-पान :-
--x--x---

प्रागैतिहासिक युग से लेकर आज तक मानव जीवन में हुये विकासों का अध्ययन खान-पान के आधार पर किया जा सकता है। विभिन्न संस्कृतियों में जन्मे, पढ़े लिखे व्यक्तियों के रहन सहन में जहां अन्तर मिलेगा, वहीं उनके खान-पान में कम भिन्नता न होगी। उनकी यहीं विशेषता उन व्यक्तियों की रुचियों संस्कारों व प्रवृत्तियों में विविधता पैदा कर देती है। और विविध संस्कृतियों का निर्माण करती है।

वर्माजी के "चित्रलेखा" उपन्यास में मौर्य- युगीन खान-पान की झांकी मिलती है। उपन्यास में प्रारम्भ में हम चित्रलेखा और महासामन्त बीजगुप्त को सोने के पात्र में मदिरा पीते हुये पाते हैं। आर्यश्रेष्ठ मृत्युंजय की पुत्री के जन्म दिवस समारोह में आंत्रित अथिति भोजन गृह में जाकर सुन्दरी युवतियों द्वारा परोसा स्वादिष्ट भोजन करते है। भोजन एवं खान-पान के इस दृश्य द्वारा मौर्यवंश की सम्पन्नता का परिचय मिलता है। जो आभिजात्य संस्कृतिका प्रतिनिधित्व करता है।

नवाबों के युग में विविध प्रकार की सरस भोजन सामग्रियों के साथ नशीले पदार्थों के साथ पान आदि खाने का प्रचलन था। "पतन" उपन्यास में वर्माजी ने शासक वाजिदअली

---

1. सीधी सच्ची बातें, पृष्ठ- 94

शाह के पतनोन्मुखी जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। वर्माजी के अनुसार वाजिदअली शाह जो भोजन करते थे वही खानादूसरा खा लेता तो पागल हो जाता था। उनके कुचले हुये पान को खाकर एक महतर का पागल हो जाना।"[1] आदि। सांपों को पकड़कर उसका गोस्त मोर को खिलाना तथा मोर का गोस्त नवाब साहब को खिलाया जाना आदि। नवाब साहब के उत्तेजक पदार्थ के सेवन तथा भोग विलास के जीवन का परिचय देता है। क्योंकि व्यक्ति का जैसा खान-पान होगा वैसे ही विचार होंगे और वह अपने विचारों के अनुसार ही आचरण करेगा। यही उस युग की संस्कृति होगी।

"सामर्थ्य और सीमा" के नाहरसिंह का गोस्त खाना और शराब पीना ध्वन्सोन्मुख सामान्तवाद का परिचय देता है। "प्रश्न और मरीचिका" का उदयराज प्रत्येक समय सुरा में डूबा रहता है और वर्षा कटा सुंदरी पाकर भोग भी कर लेता है, जिससे पता चल जाता है कि वह आधुनिक युग की सामाजिक संस्कृति का प्रतिनिधि पात्र है। उसके आचरर विचारों में पूर्व और पश्चिम दोनों का समावेश है। "तीन वर्ष" उपन्यास में अजित पाश्चात्य शिक्षा संस्कृति में दीक्षित व्यक्ति है और रमेश भारतीय सनातनी परम्परा का है। यही कारण है कि अजित अपने मित्र रमेश को चाय के साथ केक, आमलेट कटे हुये सेब व छिले हुये केले खिलाता है। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ साथ भोजन की सामग्रियों में भी अनेक सुधार हुये और पौष्टिक आहारों का प्रचलन बढ़ा। आज विकसित युग में अनेक खाने पीने की वस्तुयें काम आती हैं। अपनी अपनी संस्कृति व रुचि के अनुसार खाद्य सामग्री का चुनाव होता है। और आज के प्रगतिशील युग में खान-पान में परिवर्तन तेजी से हो रहा है।

:- रीति- रिवाज :-

----x----x----

प्रत्येक संस्कृति के आचार-विचार और रीति रिवाज के नियम अपने होते हैं। जो दूसरी संस्कृति से अलग-अलग अस्तित्व रखते हुये भी सामान्य भावभूमि पर मानव कल्याण के लिये सतत प्रयत्नशील होकर विश्वसनीय संस्कृति का निर्माण करते हैं। अनेक देशों के विचारकों ने विभिन्न युगो में आदर्श मनुष्य के विभिन्न चित्र चित्रित किये हैं-" प्लेटो" का "दार्शनिक शासक" अरस्तु का" मनस्वी व्यक्ति। स्टेरकों का "विवेकी पुरुष" गीता का "स्थितप्रज्ञ, बौद्धों का "बोधिसत्व" ईसाइयों में नीत्से का "अतिमानव" आदि सब आदर्श पुरुष या उच्च संस्कृति की ही विभिन्न कल्पनायें हैं। -2-

---

1. पतन, पृष्ठ - 187
2. डा० देवराज : संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ - 296-97

भगवती चरण वर्मा एक आस्थावादी कलाकार हैं उन्हे गीता के कर्मयोग पर पूरी आस्था है वर्माजी व्यक्ति और समाज में सामन्जस्य आवश्यक मानते हैं। "समाज से सामन्जस्य स्थापित रखना व्यक्ति का कर्तव्य है और असामाजिकता को हम मोटे तौर से विकृति मानते हैं। लेकिन यह असामाजिकता वैयक्तिक तत्त्व है इसलिये विकृति भी वैयक्तिक तत्त्व है। "1. व्यक्ति उस सीमा तक स्वतंत्र रह सकता है, जब तक कोई सामाजिक हानि नहीं करता। पर जहां पर यह स्वतंत्रता अराजकता की ओर बढने लगे तो नियंत्रण आवश्यक हो जाता है व्यवहारिक जीवन में ऐसा संभव नहीं हो पाता, क्योंकि "वीर भोग्या वसुन्धरा" यह एक संसार का नियम है। इसलिये वर्माजी विषमता को मानव-जीवन का अनिवार्य और शाश्वत अंग मानते हैं। विषमता पशुता की उपज है जबतकमनुष्य में पशुता बनी रहेगी, विषमता का अंत असंभव है। मानवीय स्वभाव और आचार विचार की संरचना में पशुत्व और देवत्व दोनों का समाहारहोता है।

:- वेशभूषा = रहन-सहन :-

देश की सभ्यता व संस्कृति का संबंध इस देश काल की वेशभूषा से होता है। संस्कृति में परिवर्तन के साथ वेशभूषा में परिवर्तन आ जाता है यद्यपि अंग्रेजों के आगमन के काल से ही भारतीय जन-जीवन में अंग्रेजी वेशभूषा सम्मिलित हो गयी थी तथापि उस पर कहीं कहीं भारतीयता की छाप स्पष्ट ही दिखायी देती रही। प्राचीनकाल में राजकीय वस्त्रों में शुभ तथा मंगलमय अवसरों पर शिरस्त्राण या मुकुट धारण किये जाने का रिवाज था। धनाढ्य लोग उत्सवों के अवसर पर रेशमी वस्त्र धारण करते थे। स्त्रियां सुन्दरता पूर्वक बनाई हुई कानों की बालियां, मोतियों की मालायें आदि धारण करती थीं। अजंता के भित्ति के चित्र यह प्रकट करते है कि केश संवारने की कलायें उतनी ही आकर्षक सुन्दर और विविध थी। जितनी कि केश, मुख और होठों की सौन्दर्य वृद्धि के लिये रंग तथा लेप व्यवहार में आता था। आज प्रगतिशील युग में श्रृंगार प्रसाधनों की बड़ी तेजी से वृद्धि हो रही है। वर्मा जी के उपन्यास में इसका स्पष्ट चित्र देखने को मिलता है-" स्वर्ण तारों का लंहगा वह पहने हुये थी, जो रात्रि के उज्ज्वल प्रकाश में चकाचौंध कर रहा था। रत्नजटित आभूषणों से वह लदी थी। "2

1. रेखा, पृष्ठ - 298
2. चित्रलेखा, पृष्ठ - 37-38

अंग्रेजों के आगमन- काल से भारतीय जन जीवन में अंग्रेजी पढ़ी लिखे लोगों ने पाश्चात्य वेशभूषा धारण की तथा महिलाओं ने अनेक प्रकार की प्रसाधन सामग्रियों का प्रयोग करना शुरू किया। अमीर लोग हीरे-जवाहरात के नग की अंगूठी पहनने लगे थे। दिल्ली दरबार में सम्मिलित होने की लिये जाते समय रिपुदमान सिंह-कुंवरविजयपुर जो बनारस के डिप्टी कलेक्टर हैं, की वेशभूषा का चित्रण वर्माजी सामंती एवं अंग्रेजी संस्कृति सभ्यता के अनुसार करते हैं-" गठे बदन का और मझौले कद का आदमी, रंग सांवला, कानों में हीरे की तुरकियां पड़ी हुई, महीन रेशमी किनारों की धोती और रेशम का कुर्ता पहने हुये।"[1] भूले बिसरे चित्र की यह वेशभूषा सन् 1900 से लेकर 1930 ई0 तक के सांस्कृतिक जीवन की झांकी है।

वर्माजी भारतीय व पाश्चात्य संस्कृति के पहनावे में जूते के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुये कहते हैं-" हमारी भारतीय संस्कृति और परम्परा में जूते का बहुत निम्न स्थान माना जाता है।"[2] फिरभी विलायती सभ्यता में जूते को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। जूता देखकर आप किसी भी व्यक्ति का समाज में स्थान बता सकते है।"[3] अपने खिलौने उपन्यास में अशोक मीना की ड्रेस देखकर ईर्ष्या करता है वह मन में सोचता है"मान लो यह जूता ही गायब हो जाय तो मीना का वह हरे रंग वाला श्रृंगार ही फीका पड़ जायगा। बिना हरे जूते के वह असली पन्ने का शानदार, सेट, वह फ्रेन्च क्रेपसिल्क की जरतारी वाली हरी साड़ी, वह तो वह हरा मेकअप-सभी बेकार।"[4] वर्माजी ने इस प्रकार आधुनिक उच्च वर्गीय युवती के श्रृंगार, पहनावा और वेशभूषा का चित्रण कर कृत्रिम प्रसाधन सामग्रियों का उल्लेख किया है।

युग परिवर्तन के साथ साथ फिल्म जगत ने भी वेशभूषा एवं प्रसाधान सामग्रियों के कृत्रिम उपादानों में वृद्धि की है। वर्माजी ने इसका चित्रण "रेखा" उपन्यास में चित्रित किया है-" रेखा अपने बाल संवार चुकी थी। अलसाई हुई सीवह ड्रेसिंग-टेबल के सामने से हटी। उसने अपने हाथ में बंधी घड़ी देखी साढ़े नौ बज रहे थे..... रेखा फिर ड्रेसिंग-टेबल के सामने

---

1. भूले बिसरे चित्र पृष्ठ - 207
2. अपने खिलौने पृष्ठ - 75
3. अपने खिलौने पृष्ठ - 76
4. अपने खिलौने पृष्ठ - 83-84

बैठ गई। एक हफ्ता पहले उसने एक फिल्म देखी थी, उस फिल्म की हीरोइन ने धनुषाकार मछली के ढंग की बिंदी लगाई थी अपने माथेपर। उसने अपनी फूल के आकर की बिंदी हटाकर उसी तरह की बिंदी लगाई। -1-

वेशभूषा एवं साज-संवार बहुत हद तक अपने पहनने वाले व्यक्तियों का मानसिक गठन अभिव्यक्त कर देता है। इस तथ्य से हम इन्कार नहीं कर सकते है। "चित्रलेख" से लेकर "साधीसच्ची बाते" तक का विहंगावलोकन एक और दूसरे ओर युग के प्रगतिशील परिवर्तन के साथ साथ वेशभूषा एवं प्रसाधन सामग्रियों के उपादानों की वृद्धि पर भी प्रकाशडालता है।

:- आमोद-प्रमोद, पर्व आदि :-
------x------x------x----

जीवन में नीरसता एवं श्रम की थकावट को दूर करने के लियेमनोरंजन की आवश्यकता होती है। मनोरंजन मानवीय मन और तन में नूतन शक्ति का संचार कर कार्य करने की अदभुत शक्ति प्रदान करते हैं। पर्व-त्यौहारों का जन्म इसलिये हुआ और बाद में उनके धार्मिक कारण जोड़ दिये गये। वैदिक काल से लेकर आज तक विभिन्न प्रकार के मनोरंजन के साधनों का उल्लेख मिलता है जिनसे हम युगीन जीवन से तो परिचित होते हैं साथ ही प्रगतिशील युग की संस्कृति का भी पता चलाता है।

वैदिक काल में युद्ध नृत्य, रथधावन, आखेट मनोरंजन के साधन थे। आगे चलकर समाज में मनोरंजन के साधनोंमें उद्यान-विहार, जुआघरों, नृत्य-भवनों आदि का निर्माण हुआ तदुपरान्त जैसे-जैसे समय चक्र अबाध गति से बढ़ता गया मनोरंजन के उपादान भी बढ़ते गये। शतरंज का खेल नटों की क्रीड़ायें आदि का प्रचलन हुआ। और आज के युग में तो क्रीडा को आमोद प्रमोद को एक प्रमुख आधिपत्य प्राप्त हुआ।

" आखिरी दांव" उपन्यास में वर्माजी ने आधुनिक युग के लोकप्रिय मनोरंजन "सिनेमा" का बहुरंगी चित्रण किया है। और साथ ही पर्व-त्यौहारों की महत्ता भी भी उद्घाटित की है। "नवरात्री" का पर्व बंबई में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। विशेषतम गुजरातियों में घर घर में गरबा नृत्य होते है, उत्सव होते हैं। -2- लोग इस त्यौहार पर खूब मनोरंजन करते हैं। उत्सवों, मनोरंजनों का वास्तविक उद्देश्य व्यस्तता के श्रम से पीड़ित मानव का मनोरंजन

---

1. रेखा, पृष्ठ- 78
2. आखिरी दांव, पृष्ठ - 42

करना है।

वर्माजी ने अपने "चित्रलेखा" उपन्यास में मौर्य युगीन आमोद प्रमोद आदि का वर्णन किया है। उद्यानों में विहार करना, सुरापीना, जलक्रीड़ा रथधावन आदि मनोरंजनके साधन थे। विशेष उपलक्ष्यों पर युवक युवतियां एकत्र होकर वीणा एवं मृदंग की थाप पर तरह तरह के गीत गाते थे और मनोरंजन करते थे। यह परम्परा अपने स्वस्थ रूप में आज भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नाम से विकास कर रही है, जिसमें संगीत, नृत्य तथा अभिनय का विशिष्ट महत्त्व है। फिल्म में इन तीनों मनोरंजन उपादानों को एक साथ रूपायित कियागया है कदाचित यही कारण है कि आज के मनोरंजनके साधनों में फिल्मों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रेमचंद के परवर्ती उपन्यास स्थूल चित्रण के स्थान पर सूक्ष्म की ओर उन्मुख हुआ। यह एक प्रकार से स्थूल के प्रति सूक्ष्म का यथार्थवादी विद्रोह था, जिससे युगीन उपन्यासकार बंधित न रह सके। यही कारण है कि वर्माजी के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना स्थूल रूप से मुखरित हो रहा है व कला, सौन्दर्य, राजनीति व समाज सेवा द्वारा सांस्कृतिक चेतना प्रगतोन्मुख होती हुई चित्रित की गई है।

:- धार्मिक चेतना :-
----x----x---

धर्म ने राष्ट्रीयता को प्रेरित किया, पुनर्जागरण को व्यापकता तथा गहराई प्रदान की। धर्म सामाजिक जीवन को निर्देशित तथा नियंत्रित करता है। मध्ययुगीन भारतीय समाज-व्यवस्था की स्थिरता को गतिशील बनाने के लिये भक्ति आंदोलन चले लेकिन नवीन दर्शन के स्थान पर प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों को पुनर्जीवित किया गया। अंग्रेजी राज्य की स्थापना और विस्तार के साथ-साथ धर्मिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन उपस्थित हुआ। फलतः प्रगतिशील युग के नव आलोक में धार्मिक भावना से उद्भूत सांस्कृतिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। इन सांस्कृतिक आंदोलना की विशेषता यह है कि उन्होंने धर्म के वास्तविक स्वरूप को निर्धारित किया। भगवती चरण वर्मा का क्षोभ यद्यपि धर्म तथा धार्मिक संस्थाओं पर उतरा है तथापि उनकी विचारधारा आस्थावादी है। उनके उपन्यासों के पात्र ईश्वर पर विश्वास करते हैं परन्तु वे धर्म के जर्जरस्वरूप को स्वीकार नहीं

कर पाते हैं।

वर्माजी ने अपनी भूले बिसरे चित्र उपन्यास में धर्म के दो रूपों की व्याख्या की है। एक तो धर्म का सामाजिक पक्ष दूसरा व्यक्तिगत पक्ष है, जिसमें लेखक सामाजिक पक्ष दूसरा व्यक्तिगत पक्ष है, जिसमें लेखक सामाजिक पक्ष को ही अधिक महत्वपूर्ण मानवता है। क्योंकि धर्म के इसी रूप से समाज संबद्ध होने के कारण प्रभावित होता रहता है। समाज छुआ छूत को मानता है, समाज वर्गों में ऊँच-नीच का भेद भाव करता है, यह सब हमें स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि हम सब समाज द्वारा शासित है ह सबकी रक्षा समाज करता है।... इस सामाजिक धर्म के बाद वैयक्तिक धर्म आता है- दयात्याग, ममता, प्रेम, सत्य, अहिंसा आदि का। लेकिन यह धर्म व्यक्तिगत जीवन से संबद्ध है समाज से नहीं हम वैयक्तिक जीवन का पालन करते हुये सामाजिक धर्म का पालन करने को बाध्य हैं।[1] मुंशीराम सहाय का यह कथन युगीन धार्मिक जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति है।

वर्माजी धर्म और मज़हब में अन्तर मानते हैं। "मजहब युट एक सामाजिक इकाई है। मजहब का मकशद है समाज को कायम रखना, समाज को ताकतबर बनाना, क्योंकि यह समाज ही इन्सानियत का ठोस रूप है। मजहब सामाजिक है वह वैयक्तिक हैही नहीं। मंदिर बनवाना, धर्मशालायें बनवाना, सदावर्त बांटना ताकि चोर बाजारी में, धोखाधड़ी में भगवान हमारी मदद करें, यह इस वैयक्तिक मजहब की कुरूपता है। हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उसमें धर्म को सामाजिक नहीं, उसे उसने वैयक्तिक माना है।"[2] हिन्दू धर्म के इसी दृष्टिकोण से शोषणचक्र सदा चलता रहा है और उसे धार्मिक समर्थन भी मिलता रहा। "अपनेखिलौने" उपन्यास के अशोक और "सामर्थ्य और सीमा" के रतनचंद मकोला दोनों पूँजीपति हैं और उनका विश्वास है धर्म मेरा जीवन है, धर्म मेरा अस्तित्व है परन्तु इसी के सहारे गरीबों का शोषण करते हैं।

"सीधी सच्ची बातें" उपन्यास में सेठ चिमनलाल अपने मिल के कर्मचारियों की छटनी कर उन्हें काम देने पर राजी नहीं हैं, परन्तु बेकार होने वालों के दर्द बैराल के फण्ड में हजार पांच सौ रूपया देने को तैयारहै, क्योंकि दान करना व्यक्ति का धर्म है।[3] इस प्रकार लम्बा मुनाफा उठाकर पूंजीपति वर्ग धर्म की ओट में गरीबों का शोषण जाल फरेब

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ- 256
2. सीधी सच्ची बातें, पृष्ठ- 210
3. सीधी सच्ची बातें, पृष्ठ- 70

एवं चोर बाजारी को प्रोत्साहित किया है। "सबहिं नचावत राम गुसाईं" उपन्यास के सेठ राधेश्याम धर्म के नाम पर नगरपालिका की जमीन हथिया कर उस पर मंदिर बनवाते हैं और फिर मंदिर के नीचे तहखाने में बेईमानी का रुपया सहेज कर रखते हैं। "1" धर्म के विकृत स्वरूप पर लेखक ने व्यंग्य प्रहार किये हैं।

वर्माजी ने इस्लाम धर्म की चर्चा भी अपने उपन्यासों में की है। लेखक का विचार है कि इस्लाम अपनी अत्यधिक संकीर्णता के कारण विवेकहीन होकर वैयक्तिक स्वतंत्रता को ही समाप्त कर देता है, जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्वतंत्र रूप से विकास नहीं हो पाता है। "इस्लाम में अपनी कमजोरियां हैं। उसमें सामाजिकता तो है लेकिन इतनी संकुचित है कि व्यक्तिवाद से भी अधिक बदशक्ल और खतरनाक है। यह संकुचित सामाजिकता हैवानियत का जामा पहनकर कत्लेआम और भयानक खून- खराबे का रूप धारण कर सकती है, बड़े-बड़े युद्धों का कारण बन सकती है, जिसमें बेशुमार बेगुनाह लोग मौत के घाट उतार दिये जायें।"2" इसीलिये वर्माजी दोनों धर्मों की विकृतियों पर बराबर व्यंग्य करते हैं और इन दोनों के विकृत-रूप को मानव मात्र के लिये अहितकर मानते हैं।

"भूले बिसरे चित्र" उपन्यास में मुंशी शिवलाल हिन्दू धर्म के ढोंग पर व्यंग्य करते हैं "कुछ सुद्धी-धर माँ गंगाजी की, जो बोतल है तो दो-चार बूंद गंगाजी दारू माँ छोड़ लीन्हेव गंगाजल से जब कुछ शुद्ध हुई जात है।"3" गंगाजल से शुद्ध होने की भावना के पीछे हिन्दू हिन्दू धर्म के खोखले संस्कारों पर ही स्पष्ट रूप से व्यंग्य किया गया है। मुंशी शिवलाल का निम्नवर्ण वाली स्त्री के पर्यंकशायिनी बनने में धर्म नष्ट नहीं होता, परन्तु उसके हाथ का बना भोजन करने से धर्म पर आंच आ जाती है।"4" हिन्दूधर्म की यह शोषण प्रक्रिया केवल नारी के शोषण तक सीमित नहीं अपितु हिन्दूधर्म पर व्यंग्य करते हुये वर्माजी कहते हैं- "समाज का धर्म है कि वह जुल्म और लूट-खसोट को रोके, लेकिन तुम्हारे समाजने इस जुल्म और शोषण को मंजूर करके ऐसे कानून बनाये है जिनमे इस जुल्म और शोषण को खुली छूट है और लूट को रोकने के लिये समाज ने दान-दया को अहमियत दी। मैं कहता हूँ कि अगर

---

1. सबहिं नचावत राम गुसाईं, पृष्ठ - 38
2. सीधी सच्ची बातें, पृष्ठ - 210
3. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 12
4. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 102- 104

यह जुल्म और शोषण बंद कर दिया जाये तो दान दया की जरूरत ही न होगी। समाज की नींव न्याय और अधिकार पर होनी चाहिये, इस दान दया पर टिक नहीं सकती।"[1]
वर्माजी को धर्म का वह रूप स्वीकार है, जो मनुष्य में सद्भावना जगाकर मानवता के विकास की भावना को प्रेरित करता है। हिन्दू धर्म का व्यक्तिपरक दृष्टिकोण अत्यंत उदार और परिष्कृत है, पर जहाँ कहीं सामाजिक रूप धारण करता है वह दान, दया और शोषण की विकृतियों से ग्रसित होकर अत्यंत पूंजीवादी बन जाता।। यही कारण है हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म में समझौता न हो सका। भारतीय मुसलमानों ने धीरे-धीरे उन सभी हिन्दू धर्म की विकृतियों को अपना लिया जिनके कारण हिन्दू धर्म का पतन हो रहा था, परन्तु हिन्दू धर्म की उदारता को आत्मसात् न कर सके। हिन्दुस्तान में रहकर भी अपनी जड़ें मक्के मदीने से जोड़े रहे। "इस मुसलमान की जड़ें हिन्दुस्तान में नहीं हैं, इसकी जड़ें तुर्की आकर मक्का-मदीना में है।"[2]

बर्माजी के उपन्यास" प्रश्न और मरीचिका" में यह यथार्थ रूप से उद्घाटित होता है कि हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक कट्टरता ने देश विभाजन कराया, गांधी जी की मृत्यु का कारण बनी तथा उदयराज सुरैया के प्रेम को उजाड़ दिया।"[3]"इस प्रकार स्पष्ट है कि युग के संक्रमणशील आयाम में हिन्दुओं में सामाजिक भेद-भाव गायब होता रहा, जब कि मुसलमानों में कट्टरता और असहिष्णुता बढ़ती रही। "सीधी सच्ची बातें" उपन्यास का जगत प्रकाश कहता है, "धर्म का काम है मनुष्यों में सद्भावना जगाना। धर्म समाज के लिये नहीं होता वह तो व्यक्ति के लिये होता है। "[4]" व्यक्तिगत धर्म का सिद्धान्त जो प्रसाद जी के उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है, उसे डा० राधाकृष्णन् ने भी प्रस्तुत किया है। परन्तु वर्माजी के उपन्यासों में इसे व्यापकता मिली है। धर्म निरूपण में वैसे प्रेमचंद और प्रसाद से भगवती चरण वर्माजी की वैचारिक प्रक्रियायें भिन्न हैं, लेकिन, वह एक बिन्दु पर मिलते दिखाई पड़ती हैं। जहाँ वे रूढ़िगत अव्यवहार्य हिन्दू धर्म से व्यक्ति को मुक्ति दिलाना चाहते हैं। वर्माजी का मत है कि मजहब सामाजिक इकाई है यदि मजहब वैयक्तिक चीज होती तो हिन्दुस्तान का बंटवारा न होता। [5]

---

1. सीधी सच्ची बातें पृष्ठ- 208
2. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 332
3. प्रश्न और मरीचिका, पृष्ठ- 112
4. सीधी सच्ची बातें पृष्ठ- 208
5. प्रश्न और मरीचिका पृष्ठ - 104

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के आक्रमण के प्रभाव से बचने के लिये स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की। अपने प्रगतिवादी विचारों से आर्य समाज सम्पूर्ण भारत पर हावी हो गया। अंग्रेज दंग रह गये। वर्माजी ने अपने उपन्यास साहित्य में आर्य समाज, इस्लाम सनातन, ईसाई धर्म आदि का जो संघर्ष प्रस्तुत किया है, वह तत्कालीन साम्प्रदायिक संघर्षों का यथार्थ चित्र है। आर्य समाज यद्यपि वैदिक युग की संस्कृति से प्रभावित था, तथापि प्रचलित रूढ़िवादी सनातन धर्म के तमसाच्छन्न वातावरण में नव चेतना का आलोक मालूम पड़ा। वर्माजी भी इस आलोक से अछूते न रह सके। आर्य समाज के प्रभाव से ही उनका सारा परिवार सामिष से निरामिषभोजी हो गया।

आर्य समाजी स्वामी जटिलानंद, अल्लाया बहस तथा फादर राम इलाही मसीह के मध्य हुये शास्त्रार्थ का चित्रण इसी उद्देश्य से हुआ है। इनके माध्यम से वर्माजी ने धार्मिक उपदेशों के छद्म रूप की यथार्थ अभिव्यक्ति की है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों से ही हम सरकारी अफसरों में साम्प्रदायिक भावना को बढ़ते हुये देखते हैं। यद्यपि इन अफसरों के व्यक्तिगत जीवन में धर्म का कोई स्थान न था, तथापि धर्म को सामाजिक कवच अवश्य बनाये हुये थे। टेढ़े मेढ़े रास्ते उपन्यास का उमानाथ जब जर्मनी से लौटता है तो उसके जात वाले अपने में सम्मिलित करने की लिये प्रायश्चित विधान करते हैं। परन्तु वह उसे अस्वीकार कर देता है। और जाति बहिष्कृत भी नहीं होता॥ .1. इसमें उसे पुरानी पीढ़ी के झगड़ू मिश्र का समर्थन मिलना नूतन प्रगतिशील धार्मिक मान्यताओं का अभिनंदन है। वर्माजी ने आर्यसमाज की प्रगतिवादी विचारधारा में एक सम्पूर्ण युगको व्यापकरूप से प्रभावित किया है।

"सबहिं नाचवत राम गुसाईं" उपन्यास में राजा पृथ्वीपाल सिंह का विवाह सिल्वेनिया जोजेफ के साथ उसे शुद्धि द्वारा हिन्दू बना कर, कर दिया जाता है। .2. यह आर्य समाज का ही छुआछूत मिटाने का प्रोग्राम है। सिल्वेनिया अंग्रेज युवती को शुद्ध कर उसका नाम शैलजा रखा गया। इसी प्रकार "भूले बिसरे चित्र" की वेश्या अलका आर्य समाज मंदिर में शुद्ध होकर हिन्दू बन गई और उसने सत्यव्रत शर्मा से विवाह कर अपना नाम माया शर्मा रख लिया। स्पष्ट है आज जहां सभी धर्म अपना अपना अस्तित्व खो बैठे हैं, वहां आर्य समाज की प्रगतिवादी विचारधारा उसे जीवित बनाये है। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, अछूतोद्धार वर्तमान समाज में प्रचलित हो गये हैं।

असंदिग्ध रूप से हम कह सकते हैं कि वर्माजी थे एक ओर तो आर्य समाज की

---

1. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ- 129   2। सबहि नचावत राम गोसाईं, पृष्ठ 104

प्रगतिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति कर उसका समर्थन किया है तथा दूसरी ओर जहाँ कहीं कोई बुराई दिखाई दी तो उस पर प्रहार करने में भी नहीं चूके हैं। मानवीय भूमि पर धर्म एवं धार्मिक सम्प्रदायों का मूल्यांकन होने के कारण लेखक युगीन धार्मिक सम्प्रदायों की गतिविधियों से अवगत होकर हमें धार्मिक चेतना का यथार्थ बोध करा देता है। अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति ने भारतियों को एक नई दृष्टि प्रदान की। राजाराम मोहन राय और स्वामी दयानंद सरस्वती सदृश्य महामानवों ने अपने सुधारों द्वारा हिन्दू धर्म का खोखलापन दूर किया जिससे हिन्दू धर्म इस्लाम और ईसाइयत के आक्रमक प्रभाव से अपनी रक्षा कर सका।

"सामर्थ्य और सीमा" में वर्मा जी द्वारा धर्म की आस्था पर कष्ट व्यक्त किया है यह धर्म ही तो मनुष्य की कमजोरी है इसका सामना करना होगा इस उपन्यास में शर्माजी ने देवलंकर से-" शर्माजी, क्या आपको वास्तव में धर्म और ईमान पर आस्था है। शर्मा जी भड़क उठे"किस साले को धर्म और ईमान पर आस्था रह गई है। हम सबके सब निहायत पतित आदमी हैं। खुल्लम खुल्ला हम कमजोरों को लूटते हैं,भोले भोलेऔर अज्ञान से युक्त आदमियों के साथ हम बेईमानी करते हैं। यह धर्म और ईमान हमारी सफलता और सम्पन्नता के मार्ग पर भयानक रूप से खड़ी हो जाने वाली बाधा है। उस ने शायद ठीक ही कहा है कि हमने कमजोर अपाहिज और मूर्ख जनता को लूटने के लिये धर्म और ईमान को गढ़ा है, आप मार्क्सवादी हैं, मै भी मार्क्सवादी बनना चाहता हूँ।"[1]

आज के युग में सबसे अधिक त्रस्त है बुद्धिजीवी मध्यमवर्ग। वर्मा जी मध्यवर्गीय साहित्यकार होने के नाते इस वर्ग की समस्याओं और कुंठाओं, विकृतियों को प्रगतिशील दृष्टि से चित्रित करने में पूर्ण सक्षम रहे हैं।

---

1. सामर्थ्य और सीमा, पृष्ठ - 108

:- राजनैतिक चेतना :-
----x----x----

सच्चा साहित्यकार जिस मिट्टी पर जीता है, जिस समाज में रहता है और जिस युग के राजनीतिक परिवेश में उसके व्यक्तित्व का विकासहोता है उसकी झांकी साहित्य के सिवाय और कहाँ देखी जा सकती है। कलाकार जितना प्रतिभासम्पन्न तथा जागरूक होगा सामयिक घटनाओं एवं गतिविधियों से उतना ही प्रभावित होगा। इस कोटि का साहित्य सत्साहित्य की संज्ञा से भावकों द्वारा अभिहित किया जाता है।

प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने मार्क्स से प्रेरणा ग्रहण कर अपने साहित्य का निर्माण किया। फलत: प्रगतिवादी कहलाने वाला जितना भी साहित्य लाल निशान के नाम पर सृजित हुआ, उसमें न रस था, न चमत्कारपूर्ण कृतत्व, क्योंकि साम्यवादी इन बौद्धिक खिलाड़ियों ने जो कुछ लिखा था वह न तो भारत के किसानों का था और न मजदूरों का परन्तु उपन्यास जगत में प्रेमचंद एक ऐसे लेखक हैं जिनका साहित्य सामन्जस्य वादी है। क्योंकि उनमें समाज-राजनीति का सच्चा चित्र चित्रित हुआ है। इस साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता "बहुजन हिताय" की भावना है। यही कारण है उनका साहित्य एक संपूर्ण युग का दस्तावेज का मसौदा है।

आधुनिक युग में भगवती चरण वर्मा का उपन्यास साहित्य इसी कोटि का है। बल्कि यह कहना होगा कि पात्रों के प्रति वर्माजी ने जितना अपने को तटस्थ रखा, प्रेमचंद न रख सके। अत: इस रूप में भी वर्माजी का अपना महत्त्व है। उन्हें किसी वाद में खींच तान कर बांधना उनके साथ अन्याय होगा। हां, यह अवश्य है कि इनके साहित्य में प्रगतिवादी दृष्टिकोण के लक्षण स्पष्ट ही परिलक्षित होते हैं। जबकि वह स्वयं अपने को प्रगतिवादी नहीं मानते। वर्माजी ने युगीन-सामाजिक राजनैतिक विचार धाराओं का मनन चिंतन करने के बाद अपने स्वर में उन्हें अभिव्यक्त दी है। इस प्रकार युग की समग्र प्रगतोन्मुख राजनीतिक झांकी वर्माजी के उपन्यासों में रूपयित हुई है।

साहित्यकारजिस प्रकार सर्वस्वतंत्र होकर बोलना चाहता है, वह स्वतंत्रता किसी भी राजनीतिक दल को हमेशा अनुकूल नहीं बैठती। और राजनीति का सर्वथा त्याग किया जाय तो साहित्य के हाथ से एक कारगर यंत्र छूट जाता है। रास्ता एक ही है कि साहित्यिक

राजनीति में जाने पर भी, दल से मतभेद होने पर भी अपनी ही बात कहे। "सन सौपि मन से नहीं सकी कहावे सोय।"[1] राजनीति में रहते हुये भी यदि साहित्यकार किसी बात का प्रचारक न बने और अपने संवेदन शील हृदय से युग प्रभाव को ग्रहण करते हुये अपने विचार अभिव्यक्त करे तो वह सच्चे अर्थों में अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर ले जाता है। वस्तुत: हिन्दी साहित्य में वर्माजी ऐसे ही कलाकार हैं जो न कभी राजनीति में रहे और न उसका विष ही उनमें व्याप्त हो सका।

उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक आंदोलन भी राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक हैं। धर्म ने राष्ट्रीयता को प्रेरित किया।[2] इन आंदोलनोंने ही भारतीय जनता में आत्म गौरव को जन्म दिया। जिससें देशवासियों में स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने की महान शक्तिका अभ्युदय हुआ। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त तक धीरे-धीरे कांग्रेस में एक ऐसे दल का उदय हुआ जिसका विश्वास अंग्रेजों की न्याय परता से हट गया और उसने अपनी दृढ़ धारण निर्मित करली कि कोरे भाषणों के सहारे अंग्रेजी सरकार से कुछ न मिल सकेगा। इसके लिये अंग्रेजों के विरुद्ध ठोस कदम उठाना पड़ेगा। इस दल के अग्रगण्य नेता बालगंगाधर तिलक थे। अंग्रेजों को चुनौती देते हुये अपने पत्र "केसरी" में उन्होंने अनेक बार सरकार को चेतावनी दी-उसकी दमन-नीति के लिये। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीयता का जन्म भारतीय और ब्रिटिश स्वार्थों के संघर्ष की क्रोड में हुआ है और यह संघर्ष जितना तीव्र होता गया राष्ट्रीयता का स्वर भी उतना ही तीव्र उग्र होता गया।

:- वर्माजी के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना :-

विश्व की घटनायें जहां एक ओर सामान्य जन-जीवन के दर्शन को प्रभावित करती हैं वहीं साहित्यकार के जीवन को और भी तीव्रता से प्रभावित करती हैं। दो-दो विश्व युद्धों की भीषण रक्त-क्रान्ति से विश्व कांप उठा था जबकि इसके अतिरिक्त अनेक परतंत्र देशों में स्वतंत्रार्थ क्रान्तियों ने मानवता का हृदय विदीर्ण कर दिया था। विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति ने उन्नयन का संदेश दिया और वहीं महानाश की भीषण गर्जना से विश्व कंपित हो उठा। भारत संक्रांतकालीन अपने स्वतंत्रता संग्राम से जूझ रहा था, इधर युग चेतना कलाकार अपनी कलम से साहित्यिक पृष्ठोंमें प्रगति का सुधार

---

1. रामधारी सिंह दिनकर : साहित्यमुखी, पृष्ठ - 27
2. गुरुमुख निहाल सिंह : भारत का वैधानिक एक राष्ट्रीय विकास, पृष्ठ - 127

की ओर अग्रसर होने का। चित्र-खींच रहा था। इस प्रकार हम देखते हैं विश्व एवं राष्ट्र का यह घटना संकुल काल वर्माजी के उपन्यास साहित्य की पृष्ठ भूमि है।

वर्माजी के साहित्य में जो राजनीति का स्वर उभरा है वह न तो प्रचारवादी है और नहीं किसी पार्टी का पक्षधर बनकर आया है अपितु युग की प्रगति का यथार्थ चित्र है। राजनीतिक हलचलों से तटस्थता बनाये रखना सफल कलाकार की महान प्रतिभा का परिचय देता है। परन्तु इसका रहस्य यह है कि वर्माजी ने कभी किसी राजनीतिक दल में भाग नहीं लिया और न प्रशंसक ही रहे। वे मुखौटा धारी राजनीतिकों के मुखौटों को बेनकाब करने में कहीं नहीं चूके हैं। और उनकी पोल पट्टियों को खोल कर जनता के समक्ष रखकर उनकी दुरंगी झांकी चित्रित की है। वर्माजी की सहज प्रतिभा नवीनता का अभिनंदन करती हुई अन्धानुकरण के सदा प्रतिकूल रही है। इसका प्रमुख कारण साहित्यकारके साथ साथ वर्माजी का विचारक होना है। विचारकों की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुये दिनकर जी ने लिखा है-"महान विचारक के खेत में एक ही क्यारी नहीं होती जिसमें एक ही तरह को पौधे उगते हों, वह बराबर अनेक सत्यों की क्यारियाँ तैयार करता रहता है जो भी सत्य जीवंत है वह उसकी किसी न किसी क्यारी में जड़ पकड़ लेते हैं।"[1]

औपन्यासिक जगत् में वर्माजी का लेखन कार्य सन् 1928 ई0 में पतन उपन्यास से आरम्भ होता है। तथापि उन्होंने ताजे अतीत के इतिहास में बैठकर तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों को अपने उपन्यासों का प्रतिपाद्य बनाया। "भूले बिसरे चित्र" "टेढ़े मेढ़े रास्ते" और सीधी सच्ची बातें" उपन्यास में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व सन् 1855 ई0 से लेकर सन् 1948 ई0 के भारत की विशाल पृष्ठभूमि में स्वाधीनता आंदोलन के विविध रूप प्रकट हुये हैं। भूले बिसरे चित्र के अतीत खण्ड से ही स्वाधीन भारत का बीजारोपण और उसे साकार बनाने का अभियान हुआ था जिसकी बहुमुखी गतिविधियां और आंदोलन की कार्य प्रणालियां "टेढ़े मेढ़े रास्ते" और सीधी सच्ची बातो में हम सफलता के सोपानों पर चढ़ते हुये "प्रश्न और मरीचिका" के गंतव्य पर पहुँचते हैं और ध्येय में सफलता भी मिलती है। दीर्घकाल की विदेशी दासता से भारत को हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में राष्ट्र विभाजन, तज्जन्य सांप्रदायिक दंगो, मारकाट लूट खसोट, लाखों बेघरवार शरणार्थी हो जाने, अपने प्रिय जनों से विलग हो जाने और राष्ट्रपिता के बलिदान हो जाने आदि की हृदय द्रावक, वीभत्स, नृशंस एवं रोंगटे खड़े कर देने वाली घटनाओं के बीच स्वतंत्रता प्राप्त हुई और स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों-नेताओं की निष्ठा, आत्मबलिदान एवं तपस्या न जाने कहाँ एकाएक तिरोहित हो गई। देश की भावी आशाओं पर पानी फिर गया। इसका समग्र चित्रण ही तो "प्रश्न

---

[1] रामधारी सिंह दिनकर : साहित्य मुखी, पृष्ठ - 12

और मरीचिका" का प्रतिपाद्य है, वर्माजी इन सभी राजनीतिक जीवन के व्यंग्यचित्र चित्रित करते हैं।

वर्माजी के युग में देश विदेशी शिकंजों में बुरी तरह तड़फड़ा रहा था। "राजनीति के अतिरिक्त आर्थिक कठिनाइयां(अकाल आदि) जोर के साथ देश में बढ़ गई थी थोड़े लोगों के आलस्य और स्वार्थ के कारण बहुतों की शारीरिक यातनायें बढ़ रही थीं और इससे लोगों की बढ़ती हुई अशांति संकट की सीमा तक बड़ी तेजी से जा रही थी। 1867 ई0 के दुर्भिक्ष, रेलों पर किये गये अपव्यय तथा मेवों 1870 ई0 को शासन विकेन्द्रीकरण की योजना से जनता के ऊपर आर्थिक संकट का बोझ बढ़ गया।"[1]

"भूले बिसरे चित्र" के प्रारंभिक दो खण्डों में हम देखते हैं कि जिस महारानी विक्टोरिया ने उदारवादी नीति की घोषणा की थी उसी के शासन काल में देशी राज्यों द्वारा संरक्षण की नीति अपनाई गयी जिससे समस्त भारत का एकीकरण न हो सका। भारतियों को उच्च नौकरियों से बंचित रखा गया। यही कारण है कि डिप्टी कलाक्टर गंगा प्रसाद जिसने असहयोग आंदोलन दबाने में जो काम किया था, उसकी ऊँचे अधिकारियों में चर्चा थी और समझता था बहुत जल्दी ही तरक्की होगी और ज्वाईंट मजिस्ट्रेड के स्थाई पद पर नियुक्ति हो जायेंगी। परन्तु उसकी आशायें पूरी नहीं हो पाती है क्यों कि वह अंग्रेज नहीं हिन्दुस्तानी है। अंग्रेज कलाक्टर इस रहस्य का उद्घाटन करते हुये कहता है, "मै समझता हूँ कि उस समय असहयोग आंदोलन तेजी से चल रहा था और उस आंदोलन का मुकाबला करने के लिये एक योग्य व अनुभवी आदमी की अवश्यकता थी इस लिये तुम्हे यहां बुलाया गया है (तबादले के रूप में)...... मिस्टर गंगाप्रसाद यह जो आई0 सी0 एस0 नाम की संस्था है और जिसमें काबिल नवयुवक अंग्रेज लिये होते हैं.... हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राज्य की नीव इसी आई0 सी0 एस0 पर है। जिम्मेदारी वाली जितनी सरकारी नौकरियां है उनमें आई0 सी0 एस0 ही रखा जाता है। अंग्रेज, अंग्रेज है, हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी है। एक शासक है दूसरा शासित यह आई0 सी0 एस0 शासक वर्ग की संस्था है।"[2] अतएव हिन्दुस्तानियों को इससे वंचितरखा गया तथा उनके साथ अंग्रेज समाजनता का व्यवहार न

---

1. डा0 पट्टाभि सीता रमैया : कांग्रेस का इतिहास भाग-1, पृष्ठ = 6-7
2. भूले बिसरे चित्र पृष्ठ 42

इस उपन्यास के प्रथम व द्वितीय खण्ड में हम देखते हैं कि सामंतीय परम्परा के ह्रास द्वारा एक ओर मध्यवर्ग पनपा और दूसरी ओर पूंजीपति वर्ग का अस्तित्व सामने आया। गंगाप्रसाद के माध्यम से मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी तथा प्रभुदयाल महाजन के पुत्र लक्ष्मीचंद्र के माध्यम से पूंजीपति के स्वरूप के विकास का चित्रण हुआ है। लक्ष्मीचंद अपनी जायदाद बेचकर मिलें खोल देता है वह एक बहुत बड़ा पूंजीपति बन बैठता है और उसको इस निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर होते हुये युग में मान्यतायें बदल जाती है एवं स्वभाव बदल जाता है। सन् 1900 ई0 में तक आते-आते भारतीय पूंजीपतियों ने यह पूरी तरह अध्ययन कर लिया कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद उनके वर्ग के विकास में शक्तिशाली बाधक रोड़ा है। अत: अपने विकास को कायम रखने के लिये उन्होंने कांग्रेस में गठबंधन किया। देश में एक सिरे तक स्वदेशी प्रचार हुआ और देशी उद्योग धंधों के हेतु संरक्षण की मांग की गयी। भारत की बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना को रोकने के लिये अंग्रेजों ने हिन्दू मुस्लिम में फूट के बीज बो दिये तथा अपनी कूट-नीति द्वारा हिन्दुओं के विरूद्ध प्रेरित कर मुसलमानों को विरोधी बना दिया।"[1]"

उन्नीसवीं शताब्दी संसार के इतिहास को नई दिशा में मोड़ने वाली शताब्दी है।तत्कालीन परिस्थितियों ने उस नवीन विचारधारा को जन्म दिया, जिसे राष्ट्रीयता कहते हैं...... राष्ट्रीयता भारत के लिये नवीन विश्वास थी।"[2]" प्रगतिशील राजनैतिक चेतना का नेतृत्व प्रमुख रूप से मध्यवर्ग के वकील तथा डाक्टरों के हाथ चला गया, जिनके द्वारा वर्षों तक आन्दोलन संचालन होता रहा। भारतीय स्वातंत्र्य की भावना, भारतीयों तथा ब्रिटिश स्वार्थों के संघर्ष का परिणाम है। इन्हीं दिनों बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलनों ने जोर पकड़ा जो नवीन जागृति और नया तेज देश में इस छोर से लेकर उस छोर तक फैल गया था। उसका मूल कारण बंग-भंग था।"[3]" राष्ट्रीय जाग्रति के साथ अंग्रेजों का दमन चक्र निरंतर चलता रहा लेकिन पराधीन भारत में स्वतंत्रता की लहर जब एक बार आ गयी तो उसे रोकना अंग्रेजों के बल बूते के बार हो गया। भारतीय तारूण्य विदेशी सत्ता को उखाड़

---

1. शम्भुनाथ सिंह : छायावाद युग पृष्ठ 45
2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य पृष्ठ - 256
3. डा0 पट्टाभि सीता रमैया : कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ - 110

फेंकने के लिये बावला हो गया। जगह-जगह क्रांतिकारी षड्यंत्र होने लगे। जिसका चित्रण वर्माजी ने "भूले बिसरे चित्र" के द्वितीय खण्ड में किया है।

उपन्यास "भूले बिसरे चित्र" के तीसरे खण्ड में राजनीतिक चेतना करवट बदलती है। दिल्ली दरबार की प्रतिक्रिया मध्यवर्गीय सरकारी अफसरों पर दो रूपों में दिखाई पड़ती है। एक अंग्रेजी शासन का विरोधी वर्ग है जो अंग्रेजों के प्रत्येक कार्य को संशय, अविश्वास और तिरस्कार की दृष्टि से देखता था और दूसरा पाश्चात्य शिक्षा संस्कृति की क्रोड में पला प्रगतिशील वर्ग था जो अंग्रेजों को भारत के क्रमिक विकास का प्रतीक मानते हुये उसके कार्य में औचित्य पाता था। प्रथम वर्ग के प्रतिनिधि प्राचीन भारतीय परम्परानुगामी हिन्दू मुस्लिम थे और दूसरे में अभिनव सभ्यता संस्कृति के समर्थक सरकारी नौकर देशी रियासतों के सामंत-ताल्लुकेदार जमींदार थे। लाला रिपुदमन सिंह सामंतीय परिवार के एक ऐसे ही सरकारी अफसर हैं जो अंग्रेजीशासन को मुस्लिम शाहंशाहों के शासन से कहीं अधिक लोकोपकारी मानते हैं। "दुनियां का पांचवाहिस्सा इस ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत है, दुनियां का सबसे अधिक वैभवशाली और शक्तिशाली साम्राज्य। इस ब्रिटिश साम्राज्य का शांहशाह आ रहा है यहां अपना दरबार करने के लिये और जनता में अपने बादशाह के प्रतिप्रेम है, श्रद्धा है। मुसलमान शासन के अत्याचारों और अराजकता को दूर करके अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान में शांति कायम की है।"[1]

मध्यवर्गीय प्रगतिशाली वर्ग महात्मागांधी और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में आस्था और विश्वास रखते हुये स्वतंत्रता संग्राम को बल प्रदान कर रहा था। ज्ञान प्रकाश सत्यव्रत, मायाशर्मा, विद्या,नवल, आदि ऐसी ही पात्र हैं जिनके माध्यम से उपन्यासकार ने तत्कालीन राजनीतिक चेतना का सटीक चित्र प्रस्तुत किया है। गंगा प्रसाद पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति में पला हुआ एक ऐसा सरकारी अफसर है जो मन से स्वतंत्रता आंदोलन के साथ है। और महात्मा गांधी की नीति में अनन्य आस्था रखता है। अंग्रेज पूंजीपति हेरीसन द्वारा गांधी का अपमान किये जाने पर वह अपना मानसिक असंतुलन खो बैठता है और जिसका मूल्य उसे जीवन पर्यन्त चुकाना पड़ता है। गंगाप्रसाद हेरीसन से कहता है-" यह तुम्हारा कमीनापन और लुच्चापन है जो तुम उस महापुरूष को गालियां दे रहे हो। हम उसकीराजनीति से भलेही सहमत न हो लेकिन उसकी महत्ता-ईमानदारी और शराफत से इन्कार नहीं कर सकते।"[2]

---

1. भूले बिसरे चित्र, उ   पृष्ठ - 216
2. सोवियत संघकी कम्युनिस्टपार्टी का इतिहास डॉ0 ज्ञानेश्वर शर्मा।

परन्तु यही गंगाप्रसाद बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता से क्षुब्ध होकर स्वतंत्रता आंदोलन का विरोधी ही नहीं बनता वरन् नृशंस शासक के रूप में उसका निर्दयता पूर्वकदमन भी करता है। गंगाप्रसाद उन अधिकांश अफसरों का प्रतिनिधित्व करता है जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के सक्रिय कार्यकर्ताओं को सदैव संरक्षण दिया। इस प्रकार हम देखते है कि स्वतंत्रता संग्रामियों एवं देश भक्तों की मांग "डोमिनियन स्टेट" प्राप्त करने तक सीमित थी। जो कि वर्माजी ने अपने उपन्यास "भूले बिसरे चित्र" में स्पष्ट की है। दिल्ली दरबार के प्रबंध में जाने पर गंगाप्रसाद ने भारतियों की निस्सहाय स्थिति देखी और अनुभव की। "रास्ते चलते हुये अंग्रेज सिपाही और उनके अफसर, इन लोगों के लिये इन मजदूरों का अस्तित्व जानवरों के झुंड के अस्तित्व के समान था, जिसकी ओर ध्यान देने की इन्हें कोई आवश्यकता न थी".[1]

:- राष्ट्रीय चेतना :-

----x----x----

भारतीय जन जीवन को प्रथम महायुद्ध ने विशेष रूप से प्रभावित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं के प्रारम्भ से ही जर्मनी निरंतर शक्तिशाली होता जा रहा था, जिससे विश्वयुद्ध की आशंका तत्कालीन जनमन में छा गई। मार्क्सवादियों की विचार धारा के अनुसार पूंजीवादी शक्तियों के बीच संसारके पुनर्विभजन की समस्या ही प्रथम महायुद्ध का करण थी।[2]

भूले बिसरे चित्र में यही तथ्य देखिये- ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य मिस्टर ग्रिफ्थय भी पार्लियामेंट हिन्दुस्तान को स्वराज देगा या नहीं। वह कहते हैं "पिछले महायुद्ध में ब्रिटेन ने जो विजय प्राप्त की है वह भारतीय सैनिकों के बल पर ही। हिन्दुस्तान की इक्तीस करोड़ की आबादी ब्रिटिश साम्राज्य की सबसे बड़ी शक्ति है। ब्रिटेन के लिये हिन्दुस्तान को खोदेने के अर्थ होंगे ब्रिटेन की महत्ता का विनाश।"[3] अंग्रेज सरकार भारत की यह शक्ति कभी नहीं खोना चाहती थी और भारतीय अपने देश को उन्नयन की ओर ले जाना चाहते थे। फलत: दोनों में संघर्ष स्वाभाविक था और यह संघर्ष जितना तीव्र होता गया देश प्रेम की भावना बढ़ती गई। निराशा तथा क्षोभसे भरे भारत में दुगने उत्साह से औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को पुन: संगठित किया। सन् 1918 ई0 तक

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 421
2. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 217
3. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 323

राष्ट्रीयताकी भावना संपूर्णभारत में राजनीतिकक्षितिज को स्पर्शकरते हुये फैल गयी।

"भूले बिसरे चित्र" का चौथा-पांचवा खण्ड का कथानक ज्ञानप्रकाश की नवजाग्रत राष्ट्रीय भावना और गांधीवादी आस्था की अभिव्यक्ति करता है। इंगलैण्ड के प्रवासकाल में उसे जो अनुभव हुये, उसी से अंग्रेजी शासन के विरूद्ध उसके अन्तर्हृदय में कटुता भर गई। ज्ञान प्रकाश देश के स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग लेने के लिये तैयार है। क्योंकि वह देश में आ रही नई चेतना का दर्शन करना चाहता है। [1] वह गंगाप्रसाद को भी राजनीतिक हलचल में अपने साथ घसीटना चाहता है जो अपने अधिकार के नशे में धुत और विदशों में भारतियों की अपमान जनक स्थिति से अपरिचित है। गंगाप्रसाद द्वारा कांग्रेस छोड़ देने का आग्रह करने पर वह ब्रिटिश की सरकार नौकरशाही पर व्यंग्य करते हुये कहता है "बिलकुल यही बात तुमसे सुनने की आशा थी बरखुरदार, डिप्टी कलक्टर हो न मौज करते हो चैन की जिंदगी है। लेकिन मुझसे पूछो मैं जो यूरोप से लौट रहा हूँ। हम लोग गुलाम हैं, हम लोग असभ्य हैं, हम लोग अछूत हैं तुमने यह अनुभव नहीं किया क्योंकि तुम्हें हिन्दुस्तान से बाहर निकलकर यह अनुभव करने का मौका नहीं मिला। [2] ज्ञान प्रकाश की यह प्रतिक्रिया अकेले ज्ञानप्रकाश की ही नहीं कांग्रेस के अधिकांश चोटी के नेताओं की थी। यूरोप के प्रवास काल में उन लोगों ने जिस हीनता का अनुभव किया, उसकी व्यापक प्रक्रिया स्वतंत्रता-आंदोलन की ओर उन्हें प्रेरित करती रही।

:- हिन्दू मुस्लिम एकता के दर्शन :-
-----x-----x-----x-----x-----

अमृतसर कांग्रेस में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें कहा गया कि "सुधार कानून अपूर्ण, असन्तोषजनक एवं निराशापूर्ण है। [3] गांधीवादी नेता ज्ञानप्रकाश के शब्दों में "गांधीजी के रूप में हमारे देश को जो नेता मिला है, वह कल्पना जगत् का नेता नहीं है। कांग्रेस निष्क्रियता को छोड़कर सक्रियता पर आ रही है। [4] गांधी जी के आंदोलन प्रारंम्भ करने के साथ देश के कोने-कोने में हड़तालें हुई, जुलूस निकाले गये और पुलिस जनता में अनेक टक्करें हुईं। इस असहयोग आंदोलन में हिन्दू मुस्लिम एकता का जो

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 314
2. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 316
3. डा० पट्टाभि सीता रमैया: कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ - 103
4. भूलेबिसरे चित्र, पृष्ठ - 328

दृश्य दिखाई पड़ा वह युगों तक दुर्लभ हो गया। ज्ञानप्रकाश कहता है-" असहयोग एक तरह से आरंभ हो गया है... देश के मुसलमानों में इस समय अंग्रेजों के विरुद्ध प्रबल भावना जाग उठी है। मद्रास से जो खिलाफत परिषद् हुई थी, उसमें देश के मुसलमानों ने असहयोग आंदोलन के सिद्धान्तों को स्वीकार करलिया है। वे मूलत: भारत वर्ष के निवासी हैं यह भी मुसलमानों ने स्वीकारकर लिया है। "1"

जनता के उमड़ते हुये उत्साह और असन्तोष की भूमिका में गांधी जी ने 10 मार्च सन् 1920 को घोषणा की थी "यदि तुर्की के साथ संधिवार्ता भारत के मुसलमानों के भावों के अनुकूल न हुई तो मै असहयोग आंदोलन शुरू कर दूंगा। "2" अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन की एक योजना बनाई गई जो दिसम्बर सन् 1920 के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में स्वीकृत हो गई। इसकी प्रारंभिक अवस्था में सरकारी उपाधियों का परित्याग, धारा सभाओं, अदालतों का बहिष्कार, घर-घर में चरखा चलाने की योजनायें क्रियान्वित हुई। भगवती चरण वर्मा ने अपने उपन्यास में इस चेतना की अभिव्यक्ति कतिपय पात्रों के माध्यम से व्यक्त की है।

"अलीरजा सिटीमजिस्ट्रेट, गंगाप्रसाद से कहता है।"फरहतुल्लाने ऐलान कर दिया है कि महात्मागांधी और कांग्रेस के हुक्म से उन्होंने आज सेवकालत छोड़ दी। यही नहीं थानेदार विक्रमसिंह ने अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। जुलूस खत्म होने के बाद शानदार मीटिंग हो रही है... मैं तो उल्टे पांव भागा वहां से, क्योंकि एक दफा मेरे जी में आया कि मैं भी इस्तीफा दे दूँ। क्या जोश था वहां, क्या सरगर्मी थी। "3" गांधी की योजना अनुसार आंदोलन आरंभ हुआ। जनता ने पूरे उत्साह के साथ इस कार्यक्रम को अपनाया। गांधी जी ने भारतीय जनता को विश्वास दिलाते हुये कहा-31 दिसम्बर सन् 1921 तक स्वराज्य न मिला तो हम जीवित नहीं रहेंगे। इससे जनता का उत्साह और विश्वास अधिक बढ़ गया, साथ ही पुलिस का दमन भी बढ़ा। "4" आंदोलन चल रहा था बड़ी तेजी के साथ एक अजीब ढंग से। हड़तालें हो रहीं थीं, चरखा चलाया जा रहा था, खादी और स्वदेशी का प्रचार हो रहा था, विदेशी माल का बहिष्कार किया जा रहा था, जुलूस निकलते थे।

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 347
2. डा० पट्टाभि सीता रमैया: कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ - 105
3. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 360
4. रजनी पामदत्त: इण्डिया टुडे पृष्ठ - 286

खुल्लम खुल्ला सरकार की निंदाकी जाती थी। अँग्रेजो को गालियाँ दी जाती थीं।"[1]

सरकार जितना ही इस आंदोलन को दबाने का प्रयत्न कर रही थी उतना ही आंदोलन बढ़ता जा रहा था। इसका रहस्य ज्वालाप्रसाद, ज्ञानप्रकाश से अभिव्यक्त करते हुये कहते हैं-" तुम्हारे इस आंदोलन को मुसलमानों से बहुत बड़ा बल मिला है। मैं मान गया महात्मा गांधी की सूझ को। अली भाइयों की गिरफतारी से तो जैसे देश में आग ही लग गई।"[2] कलकत्ता कांग्रेसके अधिवेशन में गांधी जी ने खिलाफत लीग को कांग्रेस में सम्मिलित कर लिया था और मौलाना मुहम्मद अली और शौकतअली कांग्रेसी नेता बन गयें। इससे कांग्रेस की विघटित शक्ति का पुनर्गठन हुआ। जिससे आंदोलन को बढ़ने में एक महान शक्ति प्राप्त हुई। सरकार के पास अब कोई अस्त्र न था जिसकी सहायता से आंदोलन को नियंत्रित कर पाती, सिवाय दमन के। "भूले बिसरे चित्र" में वर्माजी ने कानपुर की अदालत का जो चित्र खींचा है वह देखिये-वास्तविकता की ओर ले जाता है। उस समय अपराधियों ने न्याय और न्यायधीश दोनों की अवहेलना की है। "गंगाप्रसाद ज्वाइंट मजिस्ट्रेट ने जब सफाई सुननी चाही तो जगमोहन नामके कैदी ने कहा "मैं इस विदेशी शासन की अदालत को नहीं मानता। यह तो ब्रिटिश सरकार जुल्म पर जुल्म करती जाती है। जलियां वाला बाग हत्याकांड इसने किया, इसने बंबई की निहत्थी जनता की भीड़ पर गोलियां चलाईं।"[3]

युगीन राष्ट्रीय प्रेम ने जब आंदोलन का रूप ले लिया, जिससे धरती पुलक उठी, अंतर विहंस उठा, सारे भारत में आजादी की लहर दौड़ गई। "नवल" जैसे छोटे-छोटे बच्चों में भी नई उमंगें पेग लेने लगी और वह क्रांति का विप्लव गायन करने लगे। " कह रहे हैं करांची के कैदी हम तो जा रहे हैं दो-दो बरस को"[4] सन् 1921 ई0 के जन आन्दोलन ने सरकार को चिंतित बना दिया। उसे इस बात का भय था कि सार्वजनिक विद्रोह शहरों से होते हुये कहीं करोड़ों किसानों के बीच पहुँच गया तो अंग्रेजीशासन की जड़ें हिल जायेंगी।"[5]

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 369
2. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 361
3. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 392
4. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 375
5. रमूभूले बिसरे चित्र, : इंडिया टुडे- पृ ष्ठ - 284

:- भारतीय नारी का पहला क्रान्तिकारी कदम :-

----x----x----x----x----x----x----

जनता में अद्भुत उत्साह बढ़ता जा रहा था। लोग आंदोलन के लिये बलावले हो रहे थे। तत्युगीन आंदोलनों की सबसे बड़ी विशेषता तो थी कि इसमें नारियों ने भी प्रथम बार पुरूषों से कंधा से कंधा मिलाकर सहयोग ही नहीं दिया अपितु डट कर भाग लिया। माया शर्मा तथा गंगादेवी ऐसी ही महिलायें हैं जो स्वदेश और स्वराज्य आंदोलनों में भाग लेती हैं और जेल तक जाती हैं। विदेशी कपड़ों की होली जलाती हैं। भारतीय नारी का बीसवीं सदी में यह पहला क्रान्तिकारी रोल था जो स्वदेशी और स्वराज्य आंदोलनों में देखने को मिला जिसे वर्माजी अपने उपन्यास "भूले बिसरे चित्र" में "सीधी सच्ची बातें, "टेढ़े मेढ़े रास्ते, आदि में सुचारू रूप से अभिव्यक्त करते हैं। समाज प्रगति की ओर निरंतर किस गति से बढ़ रहा है यह तथ्य पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है। "भूले बिसरे चित्र" उपन्यास की विद्या ऐसी ही विद्रोही नारी है। शिक्षित होने के नाते वह अपना स्वावलंबी जीवन व्यतीत करती है और राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेती है। नवल तथा ज्ञान प्रकाश से कहती है-" मैं इस घृणा और गुलामी का वातावरण चूर,चूर करके अपना मार्ग स्वयं निकाल लूंगी।"[1] इस प्रकार इस क्रान्तिकारी युग में विद्या नवीनचेतना की प्रतीक है।

"टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यास की राजेश्वरी महालक्ष्मी तथा अंग्रेज युवती आदि के अतिरिक्त वीणा और प्रतिभा परतंत्र भारत की स्वतंत्रचेता नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। दोनों कलकत्ता विश्वविद्यालय की छात्रायें हैं और अपने छात्र जीवन में क्रान्ति-कारी पार्टी में सम्मिलित होकर स्वतंत्र भारत के सपने संजोये हुये हैं। "प्रश्न औरमरीचिका" में सपशर्मा राजनीति में भाग लेते हुये अपने को घर बाहर दोनों में इस प्रकार संतुलन रखती है कि प्रत्येक क्षेत्र में सफलता उसके चरण चूम लेती है। लोकसभा के चुनाव में भारी बहुमत से विजयी होती है।[2] "सीधी सच्ची बातें" उपन्यास की कुलसुम आधुनिक युग चेतना के प्रवाह को आत्मसात करती और वर्माजी ने यह दिखाया है कि उस स्वतंत्र युग में नारी एक ओर कम्युनिष्ट है तो दूसरी ओर ए० आई० सी० सी० की मेम्बर बन कर देश हित में लग जाती है।

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 518
2. ~~भूले-बिसरे-चित्र,~~
2. "प्रश्न और मरीचिका पृष्ठ - 222

:- आन्दोलन की असफलता :-

----x----x----x----

सरकार ने अधिवेशन के बाद थोड़े दिन तक देश की भावना का अध्ययनकर गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया। •1• सारे देश में सन्नाटा था। कहीं कोई विरोध नहीं परन्तु जैसे ही गांधी जी की गिरफ्तार का समाचार समग्र देश में फैला कतिपय नगरों में जबर्दस्त हड़तालें हुई, दुकाने बंद रहीं। नगरों में सशस्त्र पुलिस के कारण दंगे फसाद कम हुये। लोगों में एक घुटन से भरी करूणा और पीड़ा भर गई। जनता के शेष उत्साह को ब्रिटिश सरकार के दमनकारी चक्रने कुचल कर रख दिया। स्वतंत्रता आंदोलन जिस समय अपनी चरम सीमा पर पहुँचने जा रहा था ठीक उसी समय उसे रोक देने से देश भर में क्रोध, क्षोभ और निराशा छा गई।

सन् 1924 के बाद सारे उत्तर भारत में क्रांतिकारी आंदोलनों की धूम हीमच गई फलत: भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद आदि ने मार्क्सवादी सिद्धांतों को अपनाया ये लोग क्रांति के बाद साम्यवादी प्रगतिशील सरकार की स्थापना करना चाहते थे। •2• भूले बिसरे चित्र" के पांचवे खण्ड में अपने युग की राजनैतिक चेतना ।गांधीवाद। से सबसे अधिक प्रभावित ज्वालाप्रसाद की तीसरी पीढ़ी का युवक नवलकिशोर है। अपने बाबा ज्ञानप्रकाश से प्रभावित होकर गांधीजी के सिद्धान्तों का समर्थक बन जाता है और कांग्रेसी सदस्य बनकर प्रगति केपथ पर अग्रसर हो जाता है।भारतीय जन शक्ति एक ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की दासता तथा दूसरी और देशी पूंजीपतियों के शोषण से मुक्ति पाने के लिये संघर्षरत थी। कांग्रेस का लक्ष्य अब औपनिवेशिक स्वतंत्रता नहीं रह गया था अपितु पूर्ण स्वतंत्रता था।लोग बिना किसी आंदोलन के बात बात में जेलों में बंद किये जाते थे। देश की चेतना मध्यवर्ग की पुकार से जाग उठी। •3•

"भूले बिसरे चित्र" उपन्यास के उत्तरार्द्ध में एक अभिनव चेतना के दर्शन गांधीजी के नमक कानून तोड़ने के साथ होते हैं। इलाहाबाद में नवल व ज्ञान प्रकाश पहले ही दिन नमक कानून भंग करते हैं और जेल जाते हैं। नवल के अन्तर्मन का चित्रण करते हुये लेखक कहता है- नवल ने अपने अंदर एक नई उमंग को धीरे-धीरे जन्म लेते अनुभव किया.... अब एक नयी दृढ़ता उसके अन्दर आ गई और थोड़ी देर बाद नवल को लगा कि वह एकाएक बदल गया, एक असीम उल्लास एक अडिग संकल्पना। •4•

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ- 419
2. वासुदेव: अमर शहीद चंद्रशेखर आज़ाद, पृष्ठ - 26
3. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ- 499
4. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 447

ज्वालाप्रसाद जिन्होंने अपना युग देखा है और नये युग को समझा है आज पचास साल में क्या से क्या हो गया है सब कुछ बदल गया एकदम बदल गया। युग बदल गया"।[1] ज्वालाप्रसाद का यह कथनयुगीन प्रगतिशील चेतना को तटस्थ रूप में उद्घटित करता है क्योंकि उसमें नवीन चेतना के प्रतिन तो आक्रोश है और न पुरानी मान्यताओं के प्रति आसक्ति है। भगवती चरण वर्मा अभिनव और पुरातन पीढ़ी के विचार और युग के अन्तराल को निर्देशितकरते हुये कहते हैं--" दो बूढ़े जिन्होंने युग देखा था, जिंदगी के अनेक उतार चढ़ाव देखे थे जिन्होंने, जिनके पास अनुभवों का भंडार था, विवश थे, निरुत्तर थे। और दूर हजारों लाखों करोड़ों आदमी जीवन और गति से प्रेरित नवीन उमंग और उल्लास लिये हुये एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिये चले जा रहे थे।"[2] नवल आदर्शवाद के उषाकाल का प्रतीक है। गांधीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, प्रगतिवाद विवेच्य उपन्यास में सर्वांगीण रूप से चित्रित हुये हैं।

"टेढ़े मेढ़े रास्ते " उपन्यास का कथानक सन् 1950 के मई माह के तीसरे सप्ताह से प्रारम्भ होता है। जबकि मई5 तथा 1930 ई0 को गांधी जी ब्रिटिश सरकार द्वारा गिरफ्तार किये जाते हैं। गांधीजी की गिरफ्तारी से संपूर्ण देश में आंदोलनोंकी लहर-सी दौड़ जाती है। अतएव वर्माजी ने इस उपन्यास में सन् 1930 के आस-पास की राजनीतिक हलचलों को आत्मसात कर यथार्थ आंकलन किया है। दयानाथ गांधीवाद से, उमानाथ मार्क्सवाद से और प्रभानाथ आतंकवादी विचारधारा से प्रभावित है। रमानाथ के माध्यमसे सामंतवादी विचारधारा को अभिव्यंजना की गई है। रामनाथतिवारी का दूसरा पुत्र उमानाथ विदेशी शिक्षा प्राप्त कर समाजवादी विचारधारा का कामरेड बन कर लौटता है। भारत में नये सिरे सेमार्क्सवादी सिद्धान्तों को अपना कर नई आर्थिक क्रांति का सूत्रपात करना चाहता है। वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहता है। इसके लिये वह भारत में कम्युनिस्ट पार्टी का सबसे बड़ा अधिकारी नियुक्त किया जाता है। पूंजीपति और जमींदार, मजदूरों और किसानों का शोषण सदा से करते आ रहे हैं अतएव विश्व-क्रान्ति करकेवह समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना चाहता है। उमानाथ का स्पष्ट मत है--" इस राष्ट्रीयता की लड़ाई में हमें, हम मजदूरों को, हम किसानों को न कोई दिलचस्पी हो सकती है, और न कोई

---

1. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 449-560
2. भूले बिसरे चित्र, पृष्ठ - 560

होनी चाहिये। हमें पूंजीपतियों से लड़ना है।हमें श्रेणीवाद के सिद्धांत का विनाश करना है तभी हमें वास्तविक स्वतंत्रता मिलेगी॥ •1•

" टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यास में मनमोहन, प्रभानाथ, वीणा, प्रतिभा आदि आतंकवादी पात्र हैं। जिनके माध्यम से वर्माजी युगीन क्रांतिकारी भारतियों की स्वतंत्रता को हिंसा तथा क्रांति द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे डाके डालते हैं, बैंक लूटते हैं तमाम हत्यायें करते हैं॥" हमारे दल की सारी बुनियाद हिंसा के बल पर है। उसी हिंसा और बल का हमें सहारा लेना होगा। •2• स्वतंत्रता आंदोलन क्रांतिकारियों के हाथ में पड़ कर इतना उग्र हो गया कि सेना में विद्रोह फैल गया। जिससे सरकार और गांधी जी दोनों अपने अपने ढंग से चिंतित हो उठे। पेशाबर में गढ़वाली सेना ने निहत्थी जनता पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया॥ इससे ब्रिटिश सरकार की आंखें खुल गईं। भगवती चरण वर्मा ने इन सभी ज्वलंत समस्याओं घटनाओं का आंकलन कर अपने उपन्यास "सीधी सच्ची बातें" में किया है।

:- सामन्तवादी शासन का विरोध :-

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में जब राष्ट्रीय आंदोलन व्यापक रूप से सामने आया, ऐसे समय में अंग्रेजों ने देशी राजाओं ॥जमींदार, ताल्लुकेदार॥ के संरक्षण देने की नीति की घोषणाकर अपनी कूटनीति को सफल बनाया। देशी राजाओं की सहायता से राष्ट्रीय आंदोलन का दमन करने में सरकार को कांटे से कांटा निकालनेवाली नीति सुरूचिकर लगी।राजाओं का अस्तित्व सरकार की कृपा पर निर्भर था तथा उनके यह हित में था कि भारत स्वतंत्र न हो। अतएव सामन्तों ने सरकारी दमन नीति में सहयोग दिया और राष्ट्रीय आंदोलनों का विरोध किया। "टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यास का रामनाथ ऐसा ही सामंत है जो राजनीतिक आंदोलनों को अपना विरोधी मानकर अपने ही पुत्रों से वैर ठान लेता है। रामनाथ का मंझला पुत्र उमानाथ देश में बढ़ते हुये साम्राज्यवाद व पूंजीवाद का विरोध करता है तो रामनाथ तिवारी का यह कथन --" अगर यह कांग्रेस का मूवमेंट केवल गावर्नमेंट के ही खिलाफ होता तो मैं चुप रह जाता, लेकिन मैं देखता हूँ कि हम जमींदारों का स्वार्थ गवर्नमेंट के साथ बुरी तरह बंध गया है। "3

---

1. टेढ़े मेढ़े रास्ते पृष्ठ नं. 442
2. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ : 210
3. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ " 42

कितना सत्य है। वास्तव में साम्राज्यवादी शासन के साथ सामन्तों के हितों का गठबंधन हो चुका था और राष्ट्रीय आंदोलन साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह था।

भारत में अंग्रेजी शासन-व्यवस्था दो वर्गों द्वारा संचालित थी। पहला वर्ग था उसके द्वारा निर्मित सरकारी अफसरों का और दूसरा वर्ग था जमींदारों और ताल्लुकेदारों का जमींदारों की विशिष्ट स्थिति का परिचय रामनाथ को इस कथन से स्पष्ट हो जाता है। "मिस्टर डावसन आप डिप्टी कमिश्नर होकर आये हैं, लेकिन इसके माने यह नहीं कि आप हम लोगों से इस तरह की बातें करें। यह याद रखियेगा कि आप उस सरकार की नौकरी कर रहे हैं जो जमींदारों के बल पर कायम है.... जमींदारों और ताल्लुकेदारों को अपना शत्रु बना लेना सरकार के लिये आत्महत्या कर लेना होगा।"1

सामन्तों और राजाओं को क्रूरतापूर्ण शासन करने का प्रशिक्षण विदेशी शिक्षा के माध्यम से दिया जाता था कि ये लोग जनता में अपनी लोकप्रियता खो दें और सामान्य जनता इनसे घृणा करने लगे, जिससे अंग्रेजी सरकार के प्रति आस्था सामान्य जनता में बढ़े। जनता दोहरे शासन में पिस रही थी एक तो सामन्तों द्वारा दूसरे अंग्रेजी सरकार द्वारा। परन्तु साराधन किसी न किसी रूप में विदेशही जाता था अंग्रेज शासकों द्वारा देशी राजाओं का भी परोक्ष रूप से शोषण होता था जिसका शोषण होता था जिसे शोषक तो जानते थे पर सामान्य जनता और सामन्त नहीं समझ पा रहे थे। मि0 डावसन रामनाथ तिवारी से कहते हैं--" ये जमींदार इनका अधिकांश रूपया विलायत जाता है मोटरों की कीमत में, सिगरेट में, शराब में, विलायती कपड़ों में और न जाने भोग विलास की किनी चीजोंमें।"2 इसलिये अंग्रेजो ने अपने स्वार्थों को पूर्ण करने के लिये इस उपजीवी वर्ग का निर्माण किया था जो पराश्रयी बन कर बहुत दिनों तक जीवित रहा। और अपने अवलंब के हटते ही स्वातंत्र्योत्तर भारत में उसका अस्तित्व नष्ट हो गया। भगवती चरण वर्मा ने सामन्तोंजमींदारों का जो स्वरूप अपने उपन्यासों में वर्णित किया है वह नितांत अकर्मण्यऔर शोषक वर्गोंका समुदाय है। "सीधी सच्ची बातें" उपन्यास में लेखक ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अंग्रेजों से अधिक अत्याचार भारतीय सामन्त करते थे। "टेढ़े मेढ़े रास्ते" उपन्यास का रामनाथ तिवारी अपने वर्ग का प्रतिनिधि है। भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति की कामना करने वाले वीरों को अपने राजनीतिक आंदोलनों में जहां एक ओर अंग्रेज शासकों का सामना करना पड़ता था, वहीं दूसरी ओर उनके द्वारा पालित पोषित देशी शासकों के चंगुल से मुक्त होने के लिये विद्रोह

---

1. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ - 41
2. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ - 43

करना पड़ता था क्योंकि इसके बिना शोषक शोषित वर्ग की परम्परित भूमिकायें समाप्त नहीं की जा सकती थी। समग्र तथ्यों के अवलोकन के बाद यह स्पष्ट है कि सामन्त वर्ग जो अंग्रेजों का हिमायती था इसने राजनीतिक आंदोलनों स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयासों में सदैव व्यवधान उपस्थित किया जो कि देश की प्रगति में एक बाधा रूप में स्थित रहा। फलत: गुलामी की अवधि तो बढ़ी ही, साथ ही जनता पर महान अत्याचार हुये।

भारतीय समाज में बौद्धिक कहलाने का गौरव मध्यवर्ग को ही प्राप्त हुआ। अत: उसकी दृष्टि एक मात्र भौतिक स्वार्थों तक ही सीमित नहीं रही अपितु विभिन्न राजनीतिक विचार दर्शन द्वारा देश-सेवा तथा समाज सेवा की ओर गई। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में ही स्वाधीनता की भावना और प्रगतिशील राष्ट्रीय चेतना सर्वप्रथम जाग्रत हुई जिसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलनों का जन्म हुआ। फलत: स्वतंत्रता-आंदोलनों का नेतृत्व अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों के हाथ में ही रहा, परन्तु इसी वर्ग से कटकर एक समुदाय अलग हो गया जो भारतीय सरकारी अफसरों का था-उसने आन्दोलनों के दमन में ब्रिटिश सरकार का सदैव सहयोग प्रदान किया। भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में दोनों टाइप के पात्र मिलते हैं। "भूले बिसरे चित्र" टेढ़े मेढ़े रास्ते" तथा "सीधी सच्ची बातें" उपन्यासों के क्रमशः गंगा प्रसाद विशम्भरदयाल और रूपलाल ब्रिटिश नौकरशाही के प्रतिनिधि है तथा ज्ञानप्रकाश और नवल, मार्कण्डेय, दयानाथ, प्रभानाथ, वीणामुकर्जी, जगतप्रकाश जसवंत कपूर आदि शिक्षित प्रगति वादी देश भक्तों के प्रतिनिधि हैं। राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास बहुत कुछ मध्यवर्ग के पढ़े लिखे देश भक्तों और नौकरशाही के परस्पर विरोधी दलों की सच्ची कहानी है।

:- राजतंत्र बनाम शोषण :-

-----x-----x-----x-----

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के मार्ग में दो ऐसे शोषित वर्ग किसान और मजदूर वर्ग दिखाई पड़ते हैं जिन्होंने राजनीतिक आंदोलनों में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, परन्तु राजनीतिज्ञों का ध्यान इनकी ओर आकर्षित नहीं हो सका। सन् 1921 में गुण्टूर में किसानों ने लगानबंदी आंदोलन की शोषक वर्गों की शक्तियों को खुली चुनौती दी। सरकार बड़े प्रयत्नों के बावजूद भी 5 प्रतिशत लगान वसूल न कर सकी मजदूर वर्ग का संबंध शहरों से था अत: उनमें युगीन जागरूकता आती गई। प्रथम महायुद्ध के बाद के आंदोलनों में जनता और नेता की विरोधी गति के मूल में उनकी वर्ग भावना ही परोक्ष रूप से कार्य कर रही थी। इस परिस्थिति का विश्लेषण करते हुये एक मार्क्सवादी ने लिखा

है--" एक तरफ देश का पूंजीपति वर्ग अंग्रेज सरकार पर अधिक से अधिक दबाव डालकर अपने लिये कुछ राजनीतिक तथा आर्थिक सुविधायें चाहता था, दूसरी तरफ किसानों मजदूरों और मध्यवर्ग के लोगों की आर्थिक तबाही और राजनीतिक अपमान से उत्पन्न क्रांतिकारी स्थिति को इतनी छूट भी नहीं देना चाहता था कि आगे चलकर वह स्वयं उस आग का शिकार बने इसी कारण से पूंजीपति वर्ग हर तरह निर्णायक जन संघर्ष के खिलाफ था"[1] मजदूर और किसान आंदोलनों ने राष्ट्रीय चेतना का व्यापक प्रसार किया, जिससे राजनीतिक आंदोलनों को बहुत बल मिला। वर्माजी की दृष्टि से यह शोषित वर्गों की महान साधना और त्याग ओझल न हो सका। जिसे कांग्रेसी राजनीतिकों ने विस्मृति की गोद में डाल देना ही उचित समझा। वर्माजी के उपन्यासों में हम देखते हैं कि शोषित वर्गों ने विद्रोह द्वारा शोषकों को चुनौती देते हुये राजनीतिक चेतना का विकास ही नहीं किया अपितु राजनीतिक आंदोलनों को गति प्रदान की है।

प्रगतिचेतना के आलोक में कर्मजीवी धरती के सच्चे सपूत ने शोषण से मुक्ति पाने के लिये जमींदार वर्ग के विरुद्ध आंदोलन को सक्रिय किया। जमींदार चौंक उठा मानों सोते में किसी ने चांटा मार दिया हो। वह सोचने लगा अभी-अभी कल जो हमारे सामने बोलने में भी कांपता था, आज कैसे बदला लेने के लिये खड़ा हो गया। अपने स्वतंत्र प्रयासों से संगठित होकर किसानों ने मुक्ति आंदोलन का सूत्रपात किया। वर्माजी ने शक्ति के प्रतीक किसानों का द्विमुखी विद्रोही रूप अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। टेढ़े मेढ़े रास्ते उपन्यास में लेखक ने युग की नई चेतना के आलोक में सामाजिक पृष्ठभूमि पर राजनैतिक जीवन में शोषितवर्ग की बढ़ती हुई संगठित शक्ति को अभिव्यक्त किया है। रामनाथ तिवारी के विरुद्ध परमेश्वर और झगड़ू मिश्र का संघर्ष साधारण नहीं है अपितु जमींदार और किसान का संघर्ष है जिसमें किसान अपनी नई शक्ति से परिचित होकर शोषण समाप्त कर सशक्त क्रांति करना चाहता है। मैनेजर रामसिंह की हत्या और किसानों की संगठित शक्ति से सामना, जमींदार रामनाथ तिवारी की पराजय शोषण युग के अंत की उद्घोषणा है और शोषितों की प्रगतिशील चेतना का परिचायक है। झगड़ू मिश्र ने जनता को शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध क्रांति करने के लिये प्रेरित किया। झगड़ू मिश्र का निर्णय --" मृत्यु क्यों न क्यों तो अवश्य आई, तो फिर कायरता पूर्वक जिंदा रहने से कौन लाभ।"[2] परमानंद सुकुल तथा

---

1. शिव शर्मा : राष्ट्रीय आन्दोलन के सौवर्ष, शीर्षक निबन्ध, स्वतंत्र भारत, 23जून 1957पृ0-2
2. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पृष्ठ 344.

मुन्नू दुबे के नेतृत्व में क्रांति हुई। जिससे यह स्पष्ट हो गया कि भविष्य में शोषित वर्गों की शक्ति के समक्ष बड़ी से बड़ी शक्ति को झुकना पड़ेगा। "नाचहि नचावत राम गुसाईं" उपन्यास में किसानों का आन्दोलन सरकार को चिंता में डाल देता है और किसी सीमा तक सरकार को किसानों के सम्मुख झुकना पड़ता है। लेखक का कहना है कि आज शोषक वर्ग की बनिस्बत शोषित समझ गये हैं। अतएव उनका शोषण कर पाना कठिन है।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के उत्तरार्द्ध में पहली बार भारतीय राजनीतिक रंग मंच पर मजदूरों का अस्तित्व प्रकाश में आया। दोहरे शोषण से मुक्त होने के लिये मजदूरों ने एक ओर मिल मालिकों से मोर्चा लिया तो दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार से अधिकारों का संघर्ष किया। औद्योगीकरण के विकास से समानोत्तर मजदूर वर्ग की समस्यायें बढ़ती गईं और उनमें मार्क्सवादी दर्शन का प्रचार हुआ। सन् 1929 ई0 तक 'अखिल भारतीय मजदूर संघ' पर साम्यवादी दल ने अपना अधिकार जमा लिया। सुधारवादी नीति पर क्रांतिकारी नीति ने अपना रंग जमाया। समाजवादी रूस में मजदूरों का राज्य स्थापित हो जाने के बाद भारतीय मजदूरों में पूँजीपति वर्ग का शोषण समाप्त करने को कटिबद्ध हुये। भगवती चरण वर्मा ! सीधी सच्ची बातें" टेढ़े मेढ़े रास्ते" आदि उपन्यासों में मजदूरों की समस्याओं और आंदोलनों का तटस्थ, रूप से चित्रण कर शोषितों की उभरती हुई शक्ति का उद्घाटन करते हैं जिससे शोषक वर्ग भयभीत-सा हो जाता है।

:- वर्माजी की प्रगति शील चिंतन की सीमायें :-

----x----x----x----x----x----x----

वर्माजी का युग पूँजीवादी संस्कृति की संकटापन्नावस्था का युग था। अतः जब तक प्रगतिशील लेखक आधुनिक जीवन की वास्तविकता की चेतना प्राप्त नहीं कर लेते वे एक सच्चा क्रान्तिकारी साहित्य उत्पन्न नहीं कर सकते। क्योंकि असंगठित अन्तर्वृत्तियाँ मनुष्य के भाव जगत की आवश्यकताओं के प्रति मानवता की अन्तर्वृत्तियों में परिवर्तन नहीं कर सकतीं। भगवती चरण वर्मा इसी अवगुण से सीमाबद्ध हैं। वे आधुनिक जीवन से संतुष्ट नहीं है और न वे निष्क्रिय होकर आत्म समर्पण ही करनाचाहते हैं। वे जीवन में परिवर्तन चाहते हैं

और चूंकि विश्व की क्रांतिकारी शक्तियों की पदचाप उन्हें सुनाई पड़ती रही है इसलिये आशान्वित है और उत्कंठित नेत्रों से क्रांति के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वर्माजी इस क्रांति का स्वागत करने को तैयार हैं, क्योंकि क्रांति कदाचित इस जगत के हाहाकार उत्पीड़न को खत्म कर देगी इसलिये क्रान्ति के प्रति उनकी रागात्मक सहानुभूति है लेकिन चूंकि क्रांतिकारी शासकों, क्रांतिकारी श्रमिक जनता उसके संगठन आंदोलन से उनका कोई सम्पर्क नहीं है और न था उनकी विचारधारा से परिचित है, इसलिये क्रांति की सही रूपरेखा नहीं बना पाते। वे समझते हैं कि कोई प्रचण्ड ज्वाला मुखी फूटने को है जो अपने तप्त आग्नेय लावा से विश्व के विषाद उसके चीत्कार को भस्म कर देगा। उसके बाद क्या होगा वे अभी अनुमान नहीं कर पाये हैं। फलस्वरूप वर्मा जी के उपन्यासों में प्रगतिशील चिंतन की कुछ सीमायें है जिनका उल्लेख कर देना अनिवार्य है।

वर्माजी आचार्य नहीं, सृजनात्मक साहित्यकार थे, उनका लक्ष्य मूलत: साहित्य सृजन करना था। सिद्धान्त प्रतिपादन उनके लिये साधन बन कर आया था। वर्माजी का एक पत्रकार के रूप में साहित्य क्षेत्र में पदार्पण हुआ प्रगतिशील दृष्टिकोण इस विधा की सीमा में ही है। अपनी रचना "मानव" में इन्होंने प्रगतिशील कवितायें लिखी हैं परन्तु व्यापक साहित्य के परिवेश में नहीं आ पाई। धीरे-धीरे वर्माजी नाटककार, कहानीकार व उपन्यासकार के रूप में जनता के समक्ष आये और वह जनता को जगाना चाहते थे। अत: उन्होंने आदर्श व यथार्थ दोनों का समन्वित रूप अपनाया। सौन्दर्य के लिये सौन्दर्य से प्रेम किया। वर्माजी ने स्वतंत्र भारत की दीन-हीन दशा के जो यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये उससे सबसे बड़ी उपलब्धि यह हुई कि वर्माजी के माध्यम से उपन्यास साहित्य जीवन के काफी नजदीक आकर खड़ा हो गया, उसमें कला की असंतिगबंद हो गई और नवीन जीवन का स्पंदन सुनाई देने लगा।

वर्माजी के उपलब्ध सम्पूर्ण उपन्यासों के अध्ययन विश्लेषण के उपरान्त मैं निःसंकोच कह सकती हूँ। कि इनके कतिपय उपन्यासों को छोड़कर सभी उपन्यासों में प्रगतिशील दृष्टि-कोण समाहित है फिर भी उनके प्रगतिशील चिंतन की कुछ सीमायें उनकी शक्ति भी हैं। फिर भी आखिर वे सीमायें तो हैं ही जिनका उल्लेख किये बिना विषय अधूरा रह जायेगा और वर्माजी का प्रगतिशील चिंतन मात्र प्रशस्ति हो जायेगा, निष्पक्ष विवेचन नहीं।

वर्मा जी की प्रगतिशीलचिंतन की पहली सीमा है-विचार धारा का अभाव। एक

सिद्धान्त पर वे दृढ़ नहीं रहे। आज वह गांधीवादी हैं, तो कल वह मार्क्सवादी हो गये। फलस्वरूप वर्माजी के उपन्यासों में स्वत:व्याघात घर कर गये। लेखक की संदेहास्पद स्थिति होने से पाठक भी संदेह के झूले में झूलने लगता है। उसकी स्थिति कुछ ऐसी हो जाती है जैसे चौराहे पर खड़े उस व्यक्ति की हो जिसके चारों ओर रास्ते गुजर रहे हों और उसे गन्तव्य स्थान का पता नहीं हो। उदाहरणार्थ एक स्थान पर वर्माजी यदि किसी बात का समर्थन करते हैं तो दूसरे स्थान पर उसी बात का खण्डन करते नजर आते हैं। उनके उपन्यासों में दोनों प्रकार के पात्र सक्रिय रहते हैं। एक उपन्यास में यदि स्त्री शिक्षा और स्वतंत्रता की बात कहते हैं तो दूसरे में वह उस पर कुल मर्यादा व पतिव्रता व्रत का आदर्श थोप देते हैं। धर्म के प्रति भी स्वयं आस्था नहीं रखते हैं लेकिन अन्य किसी की आस्था पर प्रहार भी नहीं करते। कहीं पर गांधीवादी विचारधारा से सब कुछ बदल देने के पक्ष में हैं किन्तु रक्त क्रान्ति नहीं चाहते हुये भी रक्त क्रान्ति को समर्थन देने लगते हैं।

वर्माजी की प्रगतिशीलचिंतन की दूसरी सीमा है क्रांति की आवश्यकताओं की चेतना का अभाव। वर्माजी ने जिस क्रांति का वर्णन किया है वह वास्तव में क्रान्ति नहीं अराजकता है। क्रांति में संगठित एवं स्वउत्पन्न उच्चसंगठित शक्तियों का सामन्जयस्य रहता है। अराजकता में आतंकवाद और व्यक्तिवाद की प्रमुखता रहती है। क्रांति के विध्वंस में नव जीवन की रूपरेखा समायी रहती है। इनके उपन्यासों में क्रांति की स्पष्ट कल्पना का अभाव है केवल नई-नई अतिशयोक्तियों की सृष्टि की क्रांति का चित्रण किया गया है। उसमें क्रांति का विध्वंसात्मक रूप विद्यमान है, रचनात्मक रूप अगोचर है। अतः वे यद्यपि विस्फोटक "विद्रोह" की द्योतक है पर क्रांतिकारी नहीं, उनका नाशवाद मूलत: मानववादी होते हुये भी संस्कृति विरोधी है।

वर्माजी ने वर्तमान योरोपीय युद्ध का वर्णन करते हुये प्रश्न किया है कि क्या दुख पीड़ित मानवता को कभी शांति और हर्ष प्राप्त होगा और हिंसा के ताण्डव नर्तन का कभी अंत होगा। क्या गांधी का अहिंसा का संदेश संसार को त्राण दिला सकेगा, अवचेतन विचारधारा ने भगवती बाबू को साम्राज्यवाद प्रचार का निरूपाय शिकार बना दिया है। उन्होंने फासिस्ट हिटलर और कम्युनिस्ट स्टेलिन को एक ही कोटि में रख दिया है। एक साम्राज्यवादी स्वार्थों के वशीभूत होकर लड़ रहा है। दूसरा क्रांति के प्रतीक साम्यवादी राष्ट्रों की रक्षा के निमित्त। लेकिन उनकी प्रेरणा के स्त्रोत ब्रिटिश साम्राज्यवादी प्रचार

केन्द्र ने तो इस भेद पर असत्य की यवनिका डाल रखी है, फिर विचारधारा की रोशनी कहां कि वर्माजी इस यवनिका के पीछे छिपे सत्य को देख लें। वे क्रान्ति के सूक्ष्म द्वन्द्वात्मक रूप को नहीं समझ सकते। विचारों की इसी अपरिपक्वता ने वर्माजी के कुछ उपन्यासों के चारों ओर संकीर्ण परिधि खींच दी है।

वर्माजी किसी विचार सिद्धान्त अथवा आदर्श पर रूढ़ि नहीं रहे। उनका मूल दृष्टिकोण उपयोगितावादी था। उन्हें जिस सिद्धान्त में जब तक उपयोगिता नजर आई उसे अपनाया और बाद में उसे जब चाहा दूर कर दिया। निश्चित मत के अभाव के कारण सुख, शान्ति, न्याय, प्रेम और स्वतंत्रता की उनकी कल्पना अधूरी, अस्पष्ट, अमूर्त तथा आदर्शवादी हैं और नये जीवन की कल्पना करने में असमर्थ हैं। यहां भी प्रत्येक का अपना अलग अलगस्वभाव होता है फिर भी इस तथ्य को नहीं नकारा जा सकता है कि उनका विचार पक्ष लचीला गतिशील है और परिस्थिति के अनुकूल यह लेखक की अपनी एक सीमा है।

वर्माजी के प्रगतिशील चिंतन की सबसे महत्वपूर्ण सीमा है उनका भाग्यवादी व नियतिवादी दृष्टिकोण। यद्यपि आद्यान्त कर्म पर उनका विश्वास रहा है लेकिन स्वयं अपने जीवन के थपेड़ों ने उन्हें भाग्यवादी बना दिया। वर्माजी ने कई स्थलों पर मनुष्य कोपरिस्थितियों का दास कहा है, यही भाग्यवादी दृष्टि घोर निराशा की सूचिका है। सामाजिक जीवन से हारे हुये व्यक्ति की वेदना की महिमा के गीत वर्माजी के उपन्यासों में गाये गये हैं पर इतना निःसंकोच कह सकती हूँ कि इस पराजित क्रांति में भी विद्रोह का क्षुब्ध स्वर बराबर बना रहा। भले ही वह विद्रोह अन्ततः निष्फल ही क्यों न मालूम पड़े। इसे एक प्रकार का धर्मी जीवन दर्शन भी कहा जा सकता है। अतः वर्माजी की यह एक ऐसी सीमा है जहां वे समष्टि के लिये व्यष्टि पर काबू नहीं पा सके। फलतः इनके कुछ उपन्यासों में व्यक्त भावनायें जीवन या क्रांति की आवश्यकताओं के प्रति सचेत नहीं है इसलिये वे ध्वंसात्मक या नाशवादी हैं। नवांकुरित जीवन और नव-जात भविष्य की रूप रेखा के विशिष्ट सौन्दर्य की कल्पना का उनमें अभाव है।

वर्माजी की प्रगतिशील चिंतन की पांचवी सीमा है, गांवों के वातावरण के प्रति अनास्था। उनके संस्कारों में शहरों के प्रति मोह हमेशा रहा। उन्होंने अपने उपन्यासों में देश व काल के रूप में शहरी वातावरण ही प्रस्तुत किया है। प्रगतिचेता कलाकार शहर व गांव

से काट कर नहीं चल सकता और फिर आज के युग में गांवों में ही रूढ़ियां पनप रहीं हैं, जिन्हें दूर करना प्रत्येक कलाकार का दायित्व है। गांवों के वातावरण व अस्तित्व को हेय समझना एक सफल कलाकार के लिये प्रश्नवाचक चिह्न है।

इस प्रकार अपनी सीमाओं के बावजूद भी वर्माजी ने अपने उपन्यासों विशेषकर भूले बिसरे चित्र, सीधी सच्ची बातें, टेढ़े मेढ़े रास्ते, प्रश्न और मरीचिका में प्रगतिशील दृष्टिकोण समग्रता से अपनाया है। अपने विचारों की कठिन साधना को व्यावहारिक जामा पहनाकर लेखक ने अपेक्षित दायित्व को निभाया है। तद्युगीन भारत की राजनीतिक हलचल जनता की मनोवृत्ति, नैतिक दुर्बलताओं, विभिन्न वर्गों और संस्थाओं की विकृतियाँ, आपसी मत भेदों तथा अन्य सामाजिक बुराइयों की खरी-खरी बाते बताई है। गांधी जी के अहिंसा आदि सिद्धान्तों की सबलता और दुर्बलता, समाजवाद के आकर्षण प्रोग्रेसिव कहलाने वाले व्यक्तियों के ढोंग का खोखलापन आदि बड़ी यथार्थ शैली में रखकर अपने प्रगतिशील आधुनिक विचारों को व्यक्त किया है।

समाहार :-
--x--x--

नीति उपदेश प्रधान, अद्भुत कथानक चमत्कार बहुल स्वच्छंद कल्पना प्रेरित प्रारम्भिक उपन्यासों से आगे बढ़कर वर्माजी ने उपन्यास को यथार्थ जीवन चित्रण का उत्कृष्ट साधन बनाया और उसे अभूतपूर्व साहित्य गुरुता प्रदान की। वह युग सामाजिक राजनीतिक जागरण का था। एक ओर तो प्राचीन सामाजिक व्यवस्था की विषमता से उनके प्रति संदेह उत्पन्न होता जा रहा था और दूसरी ओर एक उत्कृष्ट राजनीतिक चेतना का उदय हुआ था। किन्तु राजनीतिक उद्देश्य जितना स्पष्ट था उतना सामाजिक उद्देश्य नहीं। सामाजिक विकृति के प्रति असंतोष था, सामाजिक विषमता से उत्पीड़ित व्यक्ति के प्रति सहानुभूति थी किन्तु सामाजिक मूल्यों तथा वैयक्तिक मूल्यों की सीमायें स्थिर नहीं हुई थीं। ज्ञान विज्ञान के नये प्रकाश में परम्परा प्राप्त सामाजिक मान्यतायें त्रुटि पूर्ण मालूम हो रहीं थीं किन्तु व्यक्ति पर इनका संस्कारजन्य इतना प्रबल प्रभाव था कि इनका छोड़ना कठिन हो रहा था। यही कारण है कि उस युग के उपन्यास लेखकों ने सामाजिक आर्थिक राजनैतिक समस्याओं को उठाया और परिस्थिति की विषमाता को उसके यथार्थ परिवेश में चित्रित किया तथा नवीन प्रगतिशील धरातल पर मानव मूल्यों को स्थापित किया वर्माजी की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है कि चित्रण में इन्होंने यथार्थ वादी शैली का उपयोग किया किन्तु उद्देश्य में यह आदर्शवादी रही।

वर्माजी की रचनाओं पर दृष्टिपात करने से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि उनकी विचारधारा के मूल में श्रेणी सजगता, शोषत वर्ग के प्रति सहानुभूति विस्तार व्यापकता, समग्र जीवन दृष्टि, युग जीवन को अभिव्यक्ति करने की शक्ति राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के प्रत्याक्षीकरण की क्षमता मिलती है वह अपूर्व है। उस अवकाश में हो चित्रण की यथार्थवादी कला का विकास हुआ। परम्परित समाज व्यवस्था तथा नैतिकता के प्रति संदेह भावना उठी और नवीन सामाजिक मूल्यों की ओर संकेत किया गया।

वर्माजी के युग में वैज्ञानिक विचारधारा की प्रमुखता ने वस्तुओं को देखने परखने की नवीन दृष्टि दी। एक ओर तो जन साधारण की आर्थिक अवस्था बिगड़ती गई दूसरी और सामाजिक राजनैतिक चेतना उद्बुद्ध होती गई।भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता बढ़ी समाज एवं व्यक्ति की सीमाओं के संघर्ष में दिनोंदिन व्यक्ति के महत्त्व पर आग्रह होता रहा है। वर्माजी के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ की विरूपता को प्रत्यक्ष कर मानवीय दुख वेदना एवं आचरण की असंगति के कारणों का अन्वेषण करने की अद्भुत क्षमता है। फलस्वरूप इनकी रचनाओं में सामाजिक राजनैतिकचेतना प्रबुद्ध हो उठी। सामाजिक बंधन अस्वीकार किये जाने लगे और सांस्थिक स्वार्थों के विरूद्ध विद्रोह का सूत्रपात हुआ। " तीन वर्ष" उपन्यास की "प्रभा विवाह को स्त्री व पुरूष के बीच में आर्थिक संबंध के रूप में मानती है। "आखिरी दांव" की "चमेली" पति के अत्याचार से ऊब कर भाग निकली है। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि इनके कई उपन्यासों में मान्य सामाजिक बंधनों के विरूद्ध विद्रोह की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

सामाजिक कुरीतियो, अंध विश्वासों, धार्मिक आडम्बरों का खुल्लम खुल्ला विद्रोह, पीड़ित व्यथित वर्ग के प्रति करूणा, आर्थिक प्रभुत्व का विरोध,राजनैतिक हलचलें आदि तमाम मनोदशाओं का चित्रण करते समय लेखक की शिल्पगत विशेषतायें भी प्राय: अपूर्व हैं। घटना-संयोग-प्रमुखता, सुनियोजित कथानक सरल एवं स्वत: प्रवाही वर्णन रीति, कामनोभावना की विकृति, सुबोध शैली आदि वर्माजी की अद्भुत क्षमता है।

========x ======

अध्याय 4 :-

===xx===xxx

:- वर्मा जी की कहानी कला का अनुशीलन :-

=======xxxxx=======xxxxxx=======

:- कहानीकार : भगवती चरणवर्मा :-

======xxxxx======xxxxx=====

हिन्दी कथा- साहित्य जब आकार धारण करने लगा था तब भगवती बाबू ने कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया था। अपनी कहानियों के द्वारा उन्होंने हिन्दी कहानी को शक्ति और गति प्रदान की। उनकी कहानियां पूर्णत: सामाजिक पृष्ठ भूमि पर लिखी गई हैं। जहां कथ्य में उन्होंने पैनेपन पर जोर दिया हैवहीं शिल्प में वे पाठकीय चेतना की संतुष्टि की बात नहीं भूले। इसलिए उनकी हर कहानी रोचक है। यह माना जा सकता है कि उनकी हर कहानी गहरी नहीं है किन्तु उनकी हरकहानी मन को बांधने में सक्षम है। रमेश बक्षी के शब्दों मे "श्री भगवतीचरण वर्मा की कहानियां औत्सुक्य की दृष्टि से "कम्प-लीट" होती है। इंस्टालमेण्ट, विक्टोरिया क्रास, प्रायश्चित, दो बाँके आदि छोटी-छोटी ट्रिक कहानियां हैं जिनमें चरमसीमा पर सारा औत्सुक्य केन्द्रित हो जाता है और हमारी पूर्व कल्पना शॉक देकर अप्रत्याशित अंत से कहानी को विशेष रोचक बना देती है।"[1]

जीवन विविधि रूपों को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। उनकी कहानियों का विश्लेषण डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल ने इन शब्दो में किया है, " इनकी कहानियों के व्यापक शिल्प-विधान में दो रूप पूर्णत: स्पष्ट हैं, प्रथम इनकी कहानियाँ चरित्र-प्रधान हैं, फलत: यह रेखाचित्र के समीप है, जैसे दो पहलू, विवशता, पराजय और मृत्यु प्रेजेण्ट्स और इंस्टालमेण्ट, द्वितीय इनकी कहानियाँ बौद्धिक विचारों और समस्याओं को लेकर लिखी गई हैं, फलत: शैली विधान में ये व्यक्तिगत निबन्ध ही गई हैं, जैसे - दो बाँके, पराजय और मृत्यु, कायरता और प्रायश्चित आदि।"[2]

इंस्टालमेंट :-

-----x-----

" इंस्टालमेंट" भगवती बाबू का पहला कहानी संग्रह है इनकी कहानियों को पढ़कर लगता है कि कहानी कहना ही लेखक का उद्देश्य है। किसी होटल में या किसी मित्र की बैठक में कोई कहानी कहना प्रारम्भ कर देता है- कई कहानियों में यही तरीका

---

1. कहानी में औत्सुक्य का अनुतत्व : पृष्ठ 57. रमेश बक्षी
2. हिन्दी कहानियों का शिल्प विकास : पृष्ठ, 71 डॉ0 लक्ष्मीनारायण लाल

अपनाया गया है। कुछ कहानियाँ घटना प्रधान हैं। प्रेजेन्ट्स, वर्ना हम भी आदमी थे काम के, कुँवर साहब मर गए, एक अनुभव, एक विचित्र चक्कर है, परिचय ही यात्री, इंस्टालमेंट ऐसी ही कहानियाँ हैं। भगवती बाबू का किस्सागो स्वरूप इन कहानियों में सामने आता है। लेखक मौज में है और उसकी कहानियाँ के पात्र भी मौज में है कुछ इस तरह की प्रति क्रिया इन कहानियों को पढ़कर होती है। भगवती बाबू के अन्दर एक पैनी दृष्टि वाला व्यंग्यकार विद्यमान है, जो इन कहानियों के पीछे से जीवन की विसंगतियों पर, मौज में ही सही, मुस्कुराता रहता है।

इस संग्रह में उनकी विक्टोरिया क्रास, मुगलों ने सल्तनत बख्श दी, प्रायश्चित जैसी प्रसिद्ध कहानियाँ भी संकलित है। यूं तो विक्टोरिया क्रास भी एक संयोग प्रधान कहानी है। न केवल संयोग- प्रधान बल्कि कॉमिक की तरह गुदगुदानेवाली। किन्तु इनके उपरान्त भी वह उस विचारधारा के कारण महत्त्वपूर्ण है जिसे लेखक इस कहानी के माध्यम से सामने रखना चाहता है। लेखक मानता है कि जीवन में न जाने कितनी शक्तियाँ काम करती रहती हैं। जहाँ विभिन्न कार्यों के कारणों की शृंखला समझ में आ जाती है, वहीं कुछ बातें ऐसी भी घटित होती हैं जिन्हें लेखक धुप्पल कहता है। कई बार वीरता के कार्य भी मात्र संयोगवश होजाते हैं और कोई व्यक्ति महान वीरके रूप में प्रतिष्ठत हो जाता है इस बात को सिद्ध करके विक्टोरिया क्रास में लेखक अपने प्रारब्धवादी विचारों की पुष्टि करता है।

मुगलों ने सल्तनत बख्श दी ऊपरी तौर पर हीरो जो की उड़नछू महसूस होती है। वस्तुत: हल्की-फुल्की शैली में विद्यमान सूक्ष्म व्यंग्य प्रबुद्धपाठक ही पकड़ सकता है।" प्रायश्चित" भगवती बाबू की अत्यन्त प्रसिद्ध व्यंग्य रचना है। यदि लेखक ने उसके अन्त को मनोरंजक बनाने का लोभ संवरण का लिया होता तो रचना की शक्ति निश्चय ही बढ़ जाती। अर्थ- पिशाच, बेकारी का अभिशाप, बाया एक पेग आदि कहानियाँ आधुनिक सभ्यता की अर्थ- लिप्सा का चित्रण करती हैं।भगवती बाबू के नाटकों और उपन्यासों में भी आधुनिक सभ्यता के प्रति असंतोष व्यक्त किया गया है। यह आक्रोश इन कहानियों में कहीं-कहीं सतही लगता है। इसमें अर्थलोलुप युग की क्रूरता की चर्चा अधिक है, उसे महसूस करने की क्षमता कम है। उन्हें पढ़कर यूं आभास होता है, जैसे फल को पूर्ण विकसित होने के पहले जल्दी पका दिया गया है।

दो बाँके :-
===x===

डॉ0 अष्टभुज पाण्डेय के अनुसार " वर्माजी के कथानक सरल, एकोन्भाव क्षिप्र और यथार्थ होते हैं।[1]" उक्त कथन की सत्यता दो बाँके संकलन से सिद्ध होती है। इस संकलन की विशेषता इसकी छोटी-छोटी किन्तु तीव्र भावबोध की कहानियां हैं। ये कहानियां दास्तगोई की कहानियाँ हैं।

इस संकलन की छोटी-छोटी कहानियां जो जीवन मूल्यों के प्रश्नों को बड़े तीखे रूपमें सामने रखती है वास्तव में हिन्दी कथा- साहित्यकी निधियां हैं। दो पहलू छोटी कहानी है किन्तु मानव जीवन के दो चित्रों को प्रस्तुत करके लेखक जीवन की सार्थकता का तीखा प्रश्न उठाता है। इसी तरह "काश" कि मैं कह सकता का प्रश्न है, किसने शरीर बेचा- किसने आत्मा बेची-और क्यों? "विवशता" और" नाजिर मुंशी" बड़ी सशक्त रचनाएं हैं। विशेषकर नाजिर मुंशी में बड़ी गहराई और मार्मिकता है। बदलते संदर्भों में घिसते हुए मानवीय रिश्तों और आदमी के सहज व्यक्तित्व के टूटने की ट्रेजेडी यह कहानी बड़ी खूबी से प्रस्तुत करती है। सम्पूर्ण युग की विकृत होती हुई मानवीय सहजता और मरती हुई आत्मा का प्रतिनिधित्व नाजिर मुंशी कहानी करती है।

कुछ कहानियाँ "लाइट मूड" की हैं। वास्तव में भगवती बाबू साहित्य के रंजनकारी पक्ष के प्रतिकाफी सचेत हैं, अत: प्रहसन और ससीफेनुमा कहानियां भी उन्होंने लिखी है। उनकी ऐसी कहानियां सफल और सुरूचिपूर्ण हास्य का उदाहरण प्रस्तुत करती है। तिजारत का नया तरीका, अनशन, लाला तिकड़मी लाल ऐसी ही कहानियां हैं। किन्तु जिन कहानियों में व्यंग्य उभरा है, वे अत्यन्त सशक्त रचनाएं बन गई हैं। ऐसी कहानियों में रंजनकारी तत्त्व तथा वजन दोनों ही विधमान हैं। इस कोटिमें" कुंवर साहब का कुत्ता" औरदो बाँके कहानियां रखी जासकती हैं। दो बाँके तो अपने कथ्य और शैली की ताजगी के कारण हिन्दी की अत्यन्त सफल और प्रसिद्ध कहानियों में से है।

इन कहानियों की चुस्त भाषा और कसा हुआ शिल्प अपने आप में उदाहरण हैं। एक-एक शब्द अपनी जगह, जुड़ा हुआ लगता है और अपने अंदर के सारे अर्थ और रस

---

1. हिन्दी कहानी शिल्प और इतिहास, पृष्ठ - 32 , अष्टभुज पाण्डेय

को उजागर कर देता है। भाषा में विद्यमान व्यंग्य में कितनी अर्थवत्ता और सार्थकता हो सकती हैं इसका प्रमाण इन कहानियों की भाषा है। इन कहानियों को पढ़कर चेखव और मंटो की याद सहज ही आ जाती हैम:- कुंवर साहब का कुत्ता" की उद्धृत पंक्तियां" देखने लायक हैं-- गधा तो गधा। अलसेशियन को उसका यह व्यवहार तनिक भी अच्छा नहीं लगा यह कुंवर साहब का कुत्ता था, जर्मनी से आया था। अहिंसा पर से रत्ती भर भी विश्वास न था। साथ ही अपने अधिकार का उसे गर्व था। गधे के अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रभाव उस अलसेशियन पर ऐसा ही पड़ा जैसा कांग्रेस वालेंटियर के बैठ जाने का प्रभाव लाठी-चार्ज के लिए तैयार पुलिस वालेपर पड़ता। उसने गधे पर धावा बोल दिया।

राख और चिन्गारी :-
----x----x-------

"राख और चिंगारी" कहानी- संग्रह पूंजीवादी युग में अर्थ के कसते हुए पंजों में सिसकती मानवीय मजबूरियों का संसार प्रस्तुत करता है। इस संकलन में"राख और चिंगारी। वह फिर नहीं आई" आवारे और" खिलावन का नरक" सशक्त रचनाएं हैं। "राख और चिंगारी" आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए आदमी की बात कहती तो जरूर है पर कहानी का लहजा रोमांटिक हो गया है। वह फिर नहीं आई" कहानी के प्लाट पर लेखक ने बाद में एक लघु उपन्यास भी लिखा है किन्तु कहानी उपन्यास से अधिक सशक्त है। पात्रों की विवशता और घुटन को कहानी में अच्छा उभार मिला है। "खिलावन का नरक" मानवीय रिश्तों के आर्थिक पहलू को सामने रखती है। पैसा रिश्तों के टांकों को किस तरह तोड़ देता है इसे कहानी में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

संकलन की सर्वश्रेष्ठ कहानी "आवारे" है जिसमें कुछ बेकार नवयुवक परिस्थितियों से जूझते हुए एक साथ रहते हैं। यद्यपि उनमें से कोई भी नितांत मजबूर नहीं है और न ही उनके जीवन के कोई महान उद्देश्य है किन्तु वे सभी स्वाभिमानी हैं और अपने-अपने मोर्चों पर जूझ रहे हैं। सभी को जीवन के अद्भुत अनुभव धीरे-धीरे प्राप्त हो रहे हैं अपने से कहीं अधिक कड़वे दूसरों के अनुभव ही उन सभी के लिए मलहम का काम करते हैं। पूरी कहानी [illegible] की शैली में लिखी गई है किन्तु इस कहानी में परिस्थितयों के नीचे मानवीय दर्द

हास्य पर केन्द्रित है। कहानी का अंत अत्यंत प्रभावशाली है जो कहानी को तरल प्रहसन की जगह गंभीर बात बना देता है।

"वर्मा ने एक-एक सिगरेट उन लोगों को दी-कमरे में सिगरेट का धुंआ भर गया। इस एक छोटे कमरे में भेड़ों की तरह रहने वाले वे पांचों युवक लेटे थे और सिगरेट पी रहे थे जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। भावना और चेतना से शून्य। और धीरे-धीरे वे पांचों युवक सो गए सुबह उठकर नित्य की तरह बेकारी, गैर जिम्मेदारी की जिन्दगी बिताने के लिए।"

मोर्चाबंदी : एक दृष्टि :-
----x------x------x---

मोर्चाबंदी 1976 में प्रकाशित भगवती बाबू की कहानी संकलन है जिसमें उनकी वे कहानियां संकलित हैं जो उन्होंने विशेष तौर पर "सारिका" के लिए लिखी थी। अपने काफी लम्बे सृजन- काल में भगवती बाबू विगत कई वर्षों से उपन्यास लेखन में जुटे हुए थे। यूं, हिन्दी का पाठक उनकी सदाबहार कहानियां" दो बांके " और मुगलों ने सल्तनत बख्श दी" भूला नहीं है। मोर्चाबंदी की कहानियों पढ़कर यह आभास होता है कि भगवती बाबू का अंदाजे- बयां अभी भी वैसा ही है.

संग्रह में बारह कहानियां हैं। ये सारी कहानियां आधुनिक भारत में पनपने वालें भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और राजनैतिक तिकड़म बाजी का दस्तावेज कहीं जा सकती हैं। भगवती बाबू ने अपने उपन्यासों की ही तरह इन कहानियों में भी उच्चवर्ग तथा उच्च मध्यवर्ग को ही अपना निशाना बनाया है। इन कहानियों में निम्न वर्ग के लोगों की व्यथा अथवा भारत के आम आदमी के जीवन की पीड़ा नहीं है किन्तु भारत के आम आदमी के दर्द के लिए लेखक जिन्हें जिम्मेदार समझता है उनके नकाब उसने अवश्य नोचे हैं।

इन कहानियों में भगवती बाबू अपनी पुरानी यानी "जग का मुजरा देख" की मुद्रा में हैं। अपने लहजे के कारण ये कहानियां अपनी समकालीन कहानियों से भिन्न दिखलाई पड़ती हैं किन्तु ये गुजरे वक्त की भी नहीं मालूम पड़तीं। भगवती बाबू के व्यक्तित्व में दो- तीन पीढ़ियों की विशेषताऐं घुली-मिली हैं। अपनी अगली पीढ़ी की विशिष्टताओं को आत्मसात करके भी भगवती बाबू के अन्दर का किस्सागो इस संकलन में भी उपस्थित है। 'सौदा निकल गया', 'मोर्चाबंदी', 'गुन न हिरानी गुन गाहक हिरानी है' जैसी कहानियां इसका प्रमाण है। भगवती बाबू कहानी में अवसर निकालते हैं और फिर

किसी बुजुर्ग की तरह पात्रों की पिछली दास्तान सुनाते हैं।

आधुनिक युग पर अर्थसत्ता और राजनैतिकसत्ता का जो भयंकर दबाव पड़ रहा है उसने सभ्यता-संस्कृति, मानवीय रिश्ते और जीवन मूल्यों में अरुचि और अनास्था उत्पन्न कर दी है। भारतकी भ्रष्ट राजनीति और बेईमान अर्थ- व्यवस्था इतनी स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि आज का कोई भी साहित्यकार उसे अनदेखा नहीं कर सकता साहित्य कार को इसे अनदेखा करना भी नहीं चाहिए। संकलन की कहानियाँ- रंगीले लाल तीर्थयात्री खानदानी हरामजादे, गनेसीलाल का रामराज हमारे इसी बदले हुए परिवेश की की कहानियाँ हैं जहाँ ईमानदार आदमी अपने को अजनबी अनुभव करता है। भगवती बाबू ने हमेशा ही राजनीति को मक्कारों का धंधा माना है। खानदानी हरामजादे में संजीवन पाण्डेय की सफलता का यही रहस्य हैं। जब उजड्ड और अवसरवादी संजीवन का पिता गोबिरधन का पिता उसकी शिकायतकाग्रेसाध्यक्ष शोभालाल यादव से करता है तो शोभा लाल यादव संजीवन को शाबाशी देता हैं-" बहुत ठीक किया तुमने। देश को तुम्हारे जैसे साहसी और चरित्रवान नवयुवकों की आवश्यकता है।" फिर उन्होंने गोबरधन को डाँटा "तुम्हें शर्म नही आती। यह तुम्हारा पुत्र गुदड़ीका लाल है। यह किसी दिन तुम्हारे कुल को उजागर करेगा। "संकलन की कुछ कहानियाँ केवल मनोरंजनार्थ लिखी गई हैं इनके माध्यम से लेखक कुछ विशिष्ट नहीं कहना चाहता। वह मौज में है और सकरीबन अष्टाष्टक बैठक में सुनाई गई किसी घटना की तरह कुछ सुना रहा है। सौदा निकल गया, संकट, वसीयत, समझौता, मोर्चाबंदी कहानियाँ प्रहसननुमा है। हाँ, इनमें आधुनिक युग में पनपने वाले चरित्र के संकट और मतलब परस्ती को अवश्य सामने रखा गया है। कहीं-कहीं प्रहसन की प्रवृत्ति अधिक खिंच गई है जैसे गनेसीलाल का रामराज में। हास्य व्यंग्य में इतने अधिक स्पष्ट होने की आवश्यकता होती भी नहीं है। वस्तुत: भगवती बाबू जहां मौज में आते हैं वहीं कहानी पर से उनकी पकड़ ढीली पड़ने लगती है। उनका कथा-साहित्य बहुधा ही उस कल्पनाजन्य [illegible] का शिकार बना है जो उनकी मस्ती-भरी तबियत से पैदा होती हैं। जहां ऐसा नहीं होता वहां भगवती बाबू का हास्यकार सपाट बयानी में भी ऐसा जानदार वर्णन करता है कि पाठक हसे बिना नहीं रह सकता। बेसुरे भक्तों की ओम जय जगदीश हरे आरती- गायन का वर्णन मोर्चाबंदी में दर्शनीय हैं।

" और तभी लाल संजीवन सिंह को अनुभव हुआकि वह किसी ऐसे माहौल में आ

फंसे हों जहां हरेक व्यक्ति चीख रहा था, चाहे वह स्त्री हो, चाहे पुरूष हो। कहीं भैंस रंभा रही थी, कहीं कौवा-कांव-कांव कर रहा था, कहीं गधा रेंक रहा था, कहीं बकरी मिमया रही थी। उन्हें लगा कि उनके कान के परदे छिलने लगे हैं और जल्दी ही ये परदे फट भी जायेंगे। घबराकर उन्होंने इधर-उधर देखा और फिर घूमकर वह तेजी के साथ वहां से भागे।"

भगवती बाबू अपनी पुरानी कहानियों में भी प्रमुखत: व्यंग्य को लेकर आए थे। उन्होंने सबहिं नचावत राम गुसाईं जैसा व्यंग्य उपन्यास भी लिखा। भूले-बिसरे चित्र, टेढ़े मेढ़े रास्ते और प्रश्न और मरीचिका जैसे गंभीर उपन्यासों में भी जीवन और व्यक्ति चरित्र की विसंगतियों को पकड़ने की क्षमता रखने वालाउनका व्यंग्य-बोध उभरता रहा है। इस संकलन की कहानियों में भी वे व्यंग्य की सूक्ष्म मार कर सके हैं। रंगीले लाल तीर्थ-यात्री में सेरू बनवारी लाल ने अपने तीसरे लड़के को धर्म पर छापा पड़ने पर बेईमानी के आरोप में जेल जाने के लिए नियुक्त किया है। राष्ट्रीय नेताओं ने स्वाधीनता-आंदोलन के समय जेलों को तीर्थ की संज्ञा दी थी --- इसी आधार पर रंगीले लाल अपना उपनाम" तीर्थयात्री" रखता है। बनवारीलाल का तर्क है """ हरेक आदमी को स्वतंत्रापूर्वक अपनी जिन्दगी जीने का अधिकार है। तो सरकार ने हमारी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता छीन ली है जहां देखो कोटापरमिट, ~~लिखा- पूरी~~ लिखा-पढ़ी खाना-पूरी--- जिन्दगी हराम कर दी इन ससुरों में अब तुम्ही बताओ हम व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कैसे रक्षा करें?

मोर्चाबन्दी कहानी में मन्दिर के जीर्णोद्धार के बाद प्रतिमा का प्रतिष्ठा इस प्रकार होती है --" इस बीच लखनऊ म्यूजियम के दरबान को रूपया देकर चंद्रिका महाराज वहां से विष्णु भगवान की एक पत्थर की मूर्ति उठा लाए, एक कुम्हार से उन्होंने उसे इस तरह रंगाया कि कोई उसे म्यूजियम वाली मूर्ति पहचान न सके।"

समाज की बुराइयों, मनुष्य की कमजोरियों, चरित्र के विरोधाभासों और स्थिति की विसंगतियों को भगवती बाबू बड़े ही मासूम अंदाज में सामने रखते हैं। खानदानी हरामजादें में संजीवन द्वारा आम की चोरी द्रष्टव्य है- गुरू का आदेश एक हजार लंगड़ा आम शाम तक सुमेर मिसिर के यहां हाजिर कर दिए गए। तो सुमेर ने पचास-साठ आम तो लौंडों

में बाँटे, बाकी बस्ती में बेच आए जाकर। संजीवन को यह हरकत पसंद नहीं आई। गन्नू बाबू के बाग से आम तोड़ लाना तो हंसी-खेल था, लेकिन उन आमों का बस्ती में बेचना चोरी थी।" भगवती बाबू का व्यंग्य सार्थक है और ध्यान भी आकृष्टकरता है पर उसमें सायापन नहीं है। उनका व्यंग्य आक्रोशहीन है। इसे हम उनकी लेखन-शैली भी मान सकते हैं। इसी बिन्दु पर यह स्वीकार करना होगा किलेखक का जीवन-दर्शन उसकी शैली को भी प्रभावित करता है। भगवती बाबू मानते हैं कि लेखक की पाठक से प्रतिबद्धता इसी माने में है कि वह पाठक को मनोरंजन प्रदान करे। उनका ऐसा मानना उनके व्यंग्य को हास्य और हास्यको प्रहासन बना देता है। यही कारण है कि गनेसीलाल का रामराज और वसीयत जैसी प्रखर"थीम" की कहानियां मात्र हंसने-हँसाने का साधन बन गई हैं। अपनी बात को प्रस्तुत करने के लिए भगवती बाबू कल्पना की उड़ान भरते हैं जो उनकी कहानियों को घटना-बहुल बना देतीहै। भगवती बाबू इसे बेईमान व्यवस्था पर प्रहारात्मक व्यंग्य करने और उससे विद्रोह करने में सार नहीं देखते। वे इसे समय का चक्र या नियति का खेल मानते हैं और इस चक्र में किसी तरह अपने को फिटकरे भूले और भ्रमे हुएलोगों को हंसाना भर चाहते हैं। उनकी इस विचारधारा के कारण ही" क्षमायाचना" के रविप्रकाश, मंगाले लाल तीर्थयात्री" के अविनाश चंद्र, और गनेसीलाल का रामराज" के त्यागीजीइस गलत व्यवस्था से अपनी सक्रिय असहमति भी व्यक्त नहीं करते।

वर्मा जी के व्यक्तित्व में दीवानों की मस्ती और अजीब फक्कड़पन का समन्वय है। इसकी प्रतिक्रिया इनकी कहानियों में देखी जा सकती है। जीवन की कठोर विषमताओं से इन्होंने सदैव संघर्ष किया है, प्रेमचंद की भाँति इनका जीवन एक निरंतर संग्राम का जीवन रहा है। इसलिए इसकी कटु अनुभूतियों से इनका गहरा परिचय रहा है।

जीवन के कटु अनुभवों ने इनको जीवन के प्रति एक क्रान्तिकारी का स्वरूप दे दिया जिससे इनकी लेखनी से सदा विद्रोह की चिनगारी निकलती रही है और उससे इनका समस्त साहित्य प्रभावित हुआ है। वर्माजी के शब्दों में--" दुनियां में मैंने अभी तक दुनिया वालों की नजर में खोया है, पाया कुछ नहीं, पर अपनी नजर में मैंने एक महान अनुभव पाया है और मै समझता हूँ कि मै जीवन के सत्य के बहुत निकट हूँ।"[1]

जीवन की सच्ची अनुभूतियों से व्यापक संपर्क होने के कारण वर्माजी ने नग्न

---

1. धूपबल - पृष्ठ - 19, भगवती चरण वर्मा।

यथार्थ का चित्रण अपने साहित्य में किया है, और इस दिशा से उनकी तुलना पंडित बेचन शर्मा "उग्र" से भली भाँति की जा सकती है। "उग्र" का यथार्थवाद जहाँ सीमा का अतिक्रमण करता हुआ, अश्लीलता की परिधि तक पहुँच जाता है वहाँ वर्मा जी का यथार्थ संयमित और नियंत्रित है, परन्तु जीवन के प्रति घोर असंतोष की भावना इनके साहित्य में वर्तमान है, दूसरे सीमा करने में किसी को कोई संकोच नहीं है, इसलिए रूढ़िवादी विचार धारा का उन्होंने बड़े खुले शब्दो में विद्रोह किया है। पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, ईश्वरतक में उनका विश्वास नहीं है। वर्माजी का कहना है कि वे कोरे बुद्धिवादी हैं और उनका देवता एक मात्र ज्ञान है, जिसके अतिरिक्त किसी और देवी शक्ति के आगे वे सिर नहीं झुकाते। इनका अगाध विश्वास है कि बुद्धि से ही जीवन की सारी विषमताएं सुलझ जायेंगी, इसलिए वे सच्चे प्रगतिवादी के रूप में जीवन की प्रगति चाहते हैं, वे प्राचीनता के विरोधी हैं और मौलिकता के समर्थक। न उनका किसी धर्म से नाता है, न किसी साहित्यिकवाद और परंपरा की लीक पकड़ कर उन्होंने चलना चाहा है। पर उनके जीवन तथा साहित्य दोनों में मस्ती, फक्कड़पन तथा वैयक्तिकता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है।

यद्यपि वर्मा जी की प्रारंभिक रूचि एवं रूझान काव्य-जगत की ओर हुई थी उनकी कविताओं की संख्या भी कम नहीं है पर हिन्दी साहित्य में उनकी ख्याति कहानीकार के रूप में ही विशेष रूप से है। उन्होंने स्वयं लिखा है-" मैं कवि बाद में हूँ कहानी लेखक और उपन्यास, लेखक पहिले।"[1]

कहानीकार के रूप में वर्माजी को व्यक्तिवादी तथा स्वच्छंदाता प्रिय कहानीकार के रूप में रखा जा सकता है। वर्माजी की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें वर्माजी का व्यक्तित्व पारे की भाँति ढुल मुल झलकता हुआ दिखाई पड़ता है, जिसमें एक अजीब तरल मस्ती तथा सजीवता है। इसी मस्ती का परिचय हमें इनके काव्य, उपन्यास कहानी और जीवन में सर्वत्र दीख पड़ता है। "प्रेम संगीत" की यह पंक्ति इस आशय को स्पष्ट कर देती है-

" हम दीवानों की क्या हस्ती, आज यहाँ कल वहाँ चले।
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहाँ चले।।[2]

---

1. साहित्य संदेश : उपन्यास अंक, पृष्ठ - 80
2. प्रेम संगीत : पृष्ठ - 18, भगवती चरण वर्मा

जिंदा दिली इनके साहित्य का प्राण है, जो इनकी कहानियों में भी स्पंदित होता दिखाई देता है। ऐसी जिंदादिली जो इनके व्यक्तित्व की आभा से पूरे साहित्य को आलोकित करती रहती है। यही कारण है कि इनको कहानी कारों के किसी वर्ग या संप्रदाय में हम नहीं रखते, यद्यपि हिन्दी के अनेक कहानी कारों से इनकी समता की जा सकती है। सजीवता मे यह प्रेमचंद के निकट लाए जाते है कहानियों का वातावरण चित्रण प्रसाद जैसा है, पात्रों के मनोविज्ञान निदर्शन में ये जैनेन्द्र से मिलते-जुलते हैं। जीवन के प्रति आक्रोश और विद्रोह की भावना इसमें अज्ञेय जैसी हैं, नग्न यथार्थवाद का चित्रण इन्होंने " उग्र" की भाँति किया है, पर वास्तव में वर्माजी किसी के अनुयायी नहीं है वरन् इन तमाम गुणों के रसायनिक समन्वय से इनके कथाकार के व्यक्तित्व को एक निराला व एकांतरूप प्रदान किया है। मनोविज्ञान और दर्शन का सम्मन्वय उनके कथा साहित्य में इनकी मौलिकता का परिचायक है। वर्मा जी ने कहानी में वर्ण्य वस्तु तथा उद्देश्य से अधिक शैली को अधिक महत्त्व दिया है। इससंबंध में वर्माजी ने "दोबांके" कहानी संग्रह की भूमिका मे लिखा है -" क्या लिखा जाता है और क्यों लिखा जाता है, किसी भी कलाकार की कृति को पढ़ने के समय ऐसे प्रश्नों को उठाना कलाकार के साथ ही नहीं, वरन् कला के साथ अन्याय करना है और लोगों को देखना चाहिए कि किस तरह लिखा जाता है"।[1]

जीवन की विषमताओं का चित्रण अधिक करने का इनका आशय इतना ही है कि उससे आकुल होकर मानव सुंदरता की ओर आकर्षित हो। इस प्रकार की प्रतिक्रिया मानव-मन में स्वाभाविक है। जब हम अंधकार से ऊब जाते हैं तो प्रकाश की ओर तीव्रता से बढ़ते हैं। रात्रि की निविड़ तमिस्त्रा हममें प्रात:कालीन उषा की शोभा निरखने के लिए प्राणमयी स्फूर्ति पैदा करती है। साहित्य में विषमता का अत्यधिक चित्रण वर्माजी ने इसी लिए किया है। वर्माजी ने स्वयं भी लिखा है-

" लम्बी-लम्बी बातों की ~~[illegible]~~लम्बे लम्बे सिद्धान्तों की जरूरत नहीं है। मैं तो केवल एक बात जानता हूँ। साहित्य कुरूपता के प्रति मनुष्य में ग्लानि उत्पन्न कर सुंदरता के प्रति आकर्षण उत्पन्न करता है"।[2]

---

1. दो बाँके (कहानी संग्रह) भूमिका, पृष्ठ - 4, भगवती चरण वर्मा
2. साहित्य की मान्यताएँ- भगवती चरण वर्मा , पृष्ठ - 21

इन पंक्तियों में वर्माजी ने अपनी कहानी कला की पूरी स्प्रिट ही पाठक के सामने उतारकर रख दी है। उनका कहना है कि कहानी का विषय अच्छा बुरा कुछ भी हो, यदि उसकी शैली सजीव और सुंदर है। यदि उसके कहने का ढंग रोचक और आकर्षक है। तो उसी में कहानी की उत्तमता और सफलता की कसौटी है। वर्माजी की कहानी का यही टेक्नीक है, जिसको आधार मानकर उन्होंने सफल कहानियों की रचना की है।

वर्माजी की कहानियों में जीवन की विपन्नता, अवसाद तथा विषमता का सफल चित्रण मिलता है, जिसकी अनुभूति में पगकर वर्माजी स्वयं इतने कहानीकार हुए हैं। थोथे और कोरे आदर्शवाद के चित्रण में इनका विश्वास नहीं है। आज का मानव सामाजिक विपन्नताओं की चक्की में पिसकर जर्जर हो रहा है, वर्माजी ने इसको बहुत अच्छे ढंग से अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है।

वर्माजी अपनी कहानियों में मुहावरेदार तथा स्थानीय चित्रण को लिये हुए चुलबुलाती और चटपटी भाषा का प्रयोग करते हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण उनकी कहानियाँ आद्यन्त पाठक के मन पर घर-सा कर लेती हैं तथा अपना अमिट प्रभाव छोड जाती हैं। यद्यपि उन्होंने अधिक कहानियाँ नहीं लिखी हैं, पर उनकी थोड़ी कहानियों से भी कला का बेजोड़ मिसाल प्राप्त होती है। यही कारण है कि वे हिन्दी के सफल कहानीकारों में गिने जाते हैं।

=======xxxxxxx======

अध्याय-- 5

एकांकी नाटककार : भगवती चरण वर्मा

:= एकांकी नाटक कार : भगवती चरणवर्मा :-

------x------x------x------x--------

साहित्य समाज की विचार धाराओं से सदैव प्रभावित होता रहा है। आधुनिक युग में ज्यों-ज्यों विज्ञान का विकास हुआ समय व स्थान की दूरी कम हुई। त्यों-त्यों मानव जीवन की क्षिप्रगति से अपनी परिसमाप्ति की ओर अग्रसर हुआ। विज्ञान युग की सबसे बड़ी बात इसी क्षिप्रगति की है। जीवन के सभी क्षेत्रो में हम क्षिप्रगति को अपनाए हुए चल रहे हैं अब बुद्धि के द्वारा प्रकृति के उपकरणों में ही ऐसा साधन खोज निकाले गए हैं जिनसे समय और स्थान की गति दूर हुई। मनुष्य का मस्तिष्क अधिक तीव्र गति से चलने लगा। इसका परिणाम मानव मन का चंचल होना हुआ। जीवन तीव्रगति से चलने लगा। अब साहित्य के मानदण्ड भी इससे प्रभावित हुये। प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्र में जिस गंभीर जीवन का प्रभावित करने वाले जीवन रस की भूमिका का महत्त्व था, वह हटता गया उसके स्थान पर शब्दों के चमत्कार अथवा साधारण जीवन के भावों को अथवा मनोवेगों को साधारण रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। हिन्दी कविता का जो वर्तमान स्वरूप है उसमें रसवाद की भूमिका का पूर्ण अभाव हो गया है यह विज्ञान द्वारा चालित जीवन की क्षिप्र गति के कारण ही हुआ है अब रस के गम्भीर एवं स्थायी भाव को अनुभव करने का अवकाश कहाँ है। जीवन की अनेक अन्यसमस्यायें प्रस्तुत हैं और क्षिप्रगति के कारण मनुष्य इन गहराइयों में प्रवेश नहीं करना चाहता जैसे पहले हम मनुष्य के आकाश में उड़ने की कल्पना करते थे फिर विज्ञान द्वारा अविष्कृत वायुयानों से अब यह संभव हो गया तो हम वायुयानोंमें क्षिप्र गति का फार्मूला लगाकर स्थान और समय के अंतर को अधिक कम करने का प्रयत्न करने लगे। इस क्षिप्रगति के सिद्धान्त का प्रभाव हम साहित्य विचारधारा एवं साहित्यके अनेक रूपोंपर भी देखते हैं।

प्राचीन काल में नाटक अनेक अंको का तथा रस के गंभीर निरूपण को लेकर चलने वाला साहित्य का एक प्रमुख अंग था। वर्तमान युग में अनेकांकी -नाटकों का प्रदर्शन धैर्य के साथ देखने एवं रस के गंभीर निरूपण का स्थायी प्रभाव ग्रहण करने का समय ही कहाँ रहा? विज्ञान प्रधान इस युग की विचार धारा में हम कम से कम समय में अधिक आनंद प्राप्त करना चाहते हैं। और ऐसा करने में रस का पूर्ण परिणाम नहीं हो पाता। इसलिए जो आनंद हमे मिलता है वह बुद्धि को भले ही परितृप्त करदे ब्रह्मानंद सहोदर नहीं बन पाता। उसके

मनो भावों को उद्दीप्त करने उदीप्त करके जगाने की उतनी सामर्थ्य नहीं है जितनी बुद्धि को झकझोर कर कुछ विचार करने की ओर प्रेरित करने की । उसमें हमे विचार मिलता है। हमारे मनो भाव जागृत होकर पूर्ण परिपाक को प्राप्त नहीं होते और न ही स्थायी रस जनित आनंद ही मिलता।

उपर्युक्त परिस्थितियों में हमारे एकांकी नाटकों का विकास हुआ। विज्ञान युग की क्षिप्रगति ने इसे यह रूप प्रदान किया किंतु अपने वर्तमान रूप में यह प्राचीन नाटको से पृथक् हो गया। प्राणधार का अंतर बड़ा महत्त्वपूर्ण अंतर है इसी से नाटकीय रचना विधान के अन्य तत्वों का स्वरूप भी बहुत कुछ परिवर्तित हुआ है । सचपूछो तो नाटकीय रचना विधान अंतर हो गया है।

अस्तु" आज के अर्थ संकुल युग में समय संकोच मुख्य समस्या है। अत: उपन्यास के स्थान पर कहानी, काव्य के स्थान पर गीत, के समान नाटकों के स्थान पर एकांकी नाटको की प्रतिष्ठा बढ़ रही है। ‡.। हिन्दी रंगमचीय नाटकों का विकास, पृष्ठ 416, बलवंत गार्गी

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों की विकसित होती हुई परम्परा में भगवतीचरण वर्मा का भी योगदान रहा है। भगवती बाबू ने अधिक नाटक नहीं लिखे है पर जितना भी उन्होंने लिखा है उस आधार पर उन्हें सफल नाटक लेखक कहा जा सकता है। उन्होंने दो पूर्ण नाटक और कुछ एकांकी लिखे है। उनके एकांकी अधिक सफल कहे जा सकते हैं। उनके नाट्य साहित्य में उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता दिखलाई पड़ती है वैसा नाटकों में नही- ठीक महादेवी की तरह जो काव्य में तो अंतर्मुख हैं पर गद्य में नहीं। डॉ0 विजय वापट के अनुसार "कथानक में विशेष रूचि न लेकर नाटककार ।भगवती बाबू। ने जीवन के किसी महत्त्वपूर्ण पहलू या विशेष दृष्टिकोण को हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है"।।

अपने नाटकों तथा एकांकियों को उन्होंने अधिकाधिक मंचीय बनाने का प्रयास किया है जिसमें उन्हें सफलता भी मिली है।

1. बुझता दीपक :-

-----x-----x---

इसमें भगवती बाबू के तीन एकांकी और एक नाटक

---

1. प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य, पृष्ठ - 1 , डॉ0 विजय वापट,

संगृहीत हैं। तीनों एकांकी और नाटक अभिनेयता की कसौटी पर खरे उतरते हैं। " दो कलाकार" और सबसे बड़ा आदमी" हास्य-प्रधान एकांकी है। लेखक ने स्वयं ही भूमिका में लिखा है. "ये दोनों नाटक मैंने चुटकुलों के तौर पर लिखे थे। " 1. " दो कलाकार" में एक लेखक और एक चित्रकार की फटीचर हालत दिखलाई गई है और परिस्थितियों में नाटकीयता उत्पन्न करके हास्य की सृष्टि की गई है। दूसरा एकांकी सबसे बड़ा आदमी अपेक्षाकृत प्रसिद्ध एकांकी है जिसमें लोगों को बेवकूफ बनाकर जेबें साफ कर देने वाले आदमी को सबसेबड़ा आदमी घोषित किया गया है। उक्त दोनों एकांकी हल्के फुल्के एकांकी हैं किन्तु दोनों ही अपने में मंचीकरण की संभावनाएं छिपाए हुए हैं, जोकि आधुनिक एकांकी की सबसे बड़ी शर्त है।

तीसरा एकांकी" चौपाल मे" व्यंग्य प्रधान एकांकी है जिसमें ग्रामीण समाज के बड़े लोगों की मनोवृत्ति दिखलाई गई है। गांव के सभी बड़े लोग जोकि जाति प्रथा तथा छुआ-छूत जैसी कुरीतियों से घिरे हैं-- पंडित सत्यनारायण की अलोचना इस बातपर करते हैं कि वह एकचमार लड़की से शादी करना चाहता है। स्वयं पंडित सत्यनारायण इस बात को सुन आग-बबूला हैं तथा गाँव आई हुई कांग्रेस कार्यकर्त्री माधवी और जानकी को खरीखोटी सुना देते है। बच्चू ठाकुर इस बात पर क्रोधित हैं कि जब वे शहर गए थे तब रामनारायण ने उन्हें चमार के हाथ का बनाया भोजन खिलाया था कि जब माधवी और जानकी के रात रुकने की समस्या आती और लोगों का मालूम होता है कि माधवी बदचलनी के अपराध में घर ठहराने के लिए लालायित हो जाते है। सभी के मुखोटों को नोचकर लेखक उनके चरित्र की वीभत्सता दिखलाने में सफल हो जाताहै।

बुझता दीपक पूर्ण नाटक है। राजनैतिक और सामाजिक जीवन में चरित्र का जो संकट विद्यमान है उस संकटको नाटक की वस्तु बनायागया है हर क्षेत्र में फैले हुए भ्रष्टाचार और निहित स्वार्थों का कैसा दबाब ईमानदार आदमी पर चारों ओर से पड़ता है इसका अत्यंत मार्मिक चित्रण लेखकने इस नाटक में किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दिन-प्रतिदिन भारी घाटा उसे उठाना पड़ता है। अंत में उसे अनुभव होता है कि उसकी पत्नी और उसके लड़के को भी उसकी बीमारी से कहीं अधिक चिंता और रूचि उसकी तिजोरी की चाबी

---

1. बुझता दीपक, पृष्ठ-2, भगवती चरण वर्मा

की है। अपनी सही स्थिति का आभास मिलने पर वह विक्षिप्त हो जाता है। पागल होने से पहले उसके जीवन का यह सत्य अपनी समस्त कुरूपता के साथ, उसके आगे उद्घाटित हो जाता है कि वह स्पष्ट हो नहीं बल्कि रूपया उसे खा गया है।

नाटक के अंतिम दृश्य में किशोरी लाल का आगमन भले ही नाटकीय परिस्थितियों को जन्म देता है पर वह नाटक के कथ्य को विस्तृत कैनवास प्रदान करने के बदले उसे संकुचित बना देता है। किशोरी का अवतरण समस्त समस्या को युगीन बनाने के बदले उसे सेठ मानिकचंद की व्यक्तिगत समस्या बना देता है और नाटक पुराने ढंग की मसी हाई मुद्रा में आ जाता है कि हर व्यक्ति को उसके पाप का फल भुगतना पड़ता है दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में लेखक ने वस्तु को जो विस्तार दे दिया था उसका अंत में संकोच हो गया है। यह दृश्य अपने तीखे और बेबाक कथोपकथन के कारण काफी प्रभावशाली बन गया है। लेखक जो कुछ कहना चाहता है उसका अधिकांश यहाकहा जा सका है। जयपाल के संवाद घटना के अन्दर छिपे हुए व्यापक सत्य को उजागर कर सके हैं। वह कहता है, "दिमाग तो हर पैसे वाले का खराब हो जाया करता है, अगर आप पैसा पैदा करने की प्रवृत्ति को बीमारी समझ लेंतो आज के युग का नक्शा भी उसी के संवाद से खिंच पाता है, "कोई किसी का नहीं छोडता-पैसे की घृणित दुनिया में प्रेम, सहानुभूति, ममता, त्याग, दया आदि का कोई विधान ही नहीं है।" और इस युग में ईमानदार की नियति उसी के शब्दों में यह है, " मुझे कुछ ऐसा लगता है कि दुनिया की नजर में ईमानदारी और सत्य पागलपन हैं और इस हिसाब से न आप पागल हैं, न मानिकचंद पागल है। --- पागल तो शायद मैं हूँ। "।.

यह नाटक उस समय लिखा गया था जब हिन्दी में मंचीय नाटकों का अभाव था। अतः इसका मंचीय होना इसकी विशेषता मानी जा सकती है। यद्यपि दिशा परिवर्तन कुछ देश की स्थिति किस तरह बराबर होती है और किस तरह कृष्ण कुमार और विरंजन जैसे गलत व्यक्ति हर क्षेत्र में राधेश्याम शर्मा जैसे सही आदमियों को दबाकर ऊपर उठ गए-यह दर्शाना नाटक का उद्देश्य रहा है। देशोमें एक वर्ग ऐसा भी है जो समझदार है और उसमें बुराईयों से लड़ने को ताकत भी है किन्तु यह वर्ग न केवल देशकी वर्तमान परिस्थितियों से उदासीन है बल्कि पैसे को सबसे अधिक महत्व देकर व्यक्तिगत उन्नति को सब कुछ मान बैठा है। सुषमा, उन्हीं बुद्धिजीवियों में से है जो ईमानदारी का आदर तो करते हैं किन्तु ईमानदार व्यक्ति के कंधे से कंधा लगाकर नहीं चलते जब तक ऐसे व्यक्ति आगे बढ़कर अपने

---

1. बुझता दीपक, पृष्ठ - 37, भगवती चरण वर्मा

गुणों का स्नेह-- दान नहीं करेगें तब तक मानवताका दीपक नहीं जल सका। नाटक का अंत इस आशा के साथ हुआ है कि एक दिन यह सच हो सकेगा।

:- रूपया तुम्हें खा गया :-
----x----x----x--

इस नाटक में लेखक आधुनिक समाज की अर्थ लिप्सा पर कठोर प्रहार करना चाहता है। आज का मनुष्य रूपया कमाने के पीछे इतना पागल है कि वह समस्त मानवीय गुणों को भूलकर अर्थ-पिशाच बन गया है। तीन अंकों का का यह नाटक वणिक- संस्कृति पर उसतरह प्रहार नहीं कर पाता जैसा कि लेखक चाहता है। सम्पूर्ण नाटक एक धनी व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन को ही उभार सका है। वास्तव में सेठ मानिकचंद के जीवन की विभिन्न घटनाओं का समावेश नाटक में इतना अधिक हो गया है कि नाटक सम्पूर्ण युग की कहानी नहीं बन सकता है।

सेठ मानिक चंद चोरी के रूपयों से करोड़पति बन जाता है और फिर रूपया उसके जीवन का केन्द्रीय भाव हो जाता है। रूपयों की हविश इतनी बढ़ जाती है कि उसके निजी सम्बन्ध और उन संबंधों से जुड़ी हुई ममता और प्रेम जैसी कोमल भावनाएं उसके जीवन से समाप्त हो जाती है। अपनी बीमारी में भी वह रूपया कमाने में लगा रहता है और अधिक है। नाटक की एक और उपलब्धि है- मानिकचंद का चरित्रांकन। मानिकचंद अर्थ पिशाच होते हुए भी अंत में सहानुभूति का पात्र दिखलाई पड़ता है। पैसा कमाने के पागलपन में वह पूर्णत: एकाकी हो जाता है। उसका परिवार भी पैसों के पीछे पागल है अत: उसके जीवन में जो आंतरिक शून्य निर्मित होता है उसका प्रभावशाली चित्रण नाटक में हो सका है।

निष्कर्षत :-

कहा जा सकता है एकांकी नाट्य कला की कसौटी पर भगवती चरण वर्मा द्वारा लिखित एकांकी- खरे उतरते हैं। वर्मा जी के एकांकी अभिनेयता की दृष्टि से तो सफल है ही साथ ही आधुनिक समाज की अर्थ लिप्सा पर व्यंग्यात्मक कठोर प्रहार भी करते हैं। उस समय आर्थिक विषमता एवं शोषण के कारण जो समाज मे संघर्ष बढ़ रहा था की भावना को व्यक्त करते हुए पूर्ण रूपेण गंधीवाद से प्रभावित हैं।

========xxx==========

अध्याय-- 6 :-

:- भगवती चरण वर्मा और उनकी निबंध कला :-

:- निबन्ध :-

भगवती बाबू ने हिन्दी के निबंध- साहित्य में भी अपना योगदान दिया है। उनके निबंधों में को हम दो वर्गों में रख सकते हैं। पहले वर्ग में उनके साहित्यिक निबंध है जिन में उन्होंने साहित्य की विधाओं पर अपने मत प्रकट किए हैं। दूसरे वर्ग में वे निबंध आते हैं जिनमें उन्होंने समाज की समस्याओं पर विचार किया है। इन दोनों ही प्रकार के निबंधों में लेखक अपनी व्यक्तिवादी विचारधारा का परिचय देता है। विशेषकर सामाजिक निबंधों में यह बात परिलक्षित होती हैं। समाज में प्रचलित कितनी ही मान्यताओं को लेखक अस्वीकार कर देता है।

साहित्य की मान्यताएं :-

इस संकलन के निबंधों के माध्यम से लेखक ने साहित्य के विभिन्न पक्षों पर तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपने विचार व्यक्त किए हैं पहले सात निबंध चिंतन-प्रधान हैं जिनमें लेखक साहित्य पर, शास्त्रीय मत- मतान्तरों में न उलझकर, अपना आत्म-मंथन सामने रखता है। वस्तुत: भगवती बाबू के साहित्य को अच्छी तरह समझने में ये निबन्ध अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकते हैं। लेखक किन्हीं ठोस और महत्त्वपूर्ण मान्यताओं की स्थापना तो नहीं कर सका है पर अपनी बात उसने साफ- साफ करने की हर जगह चेष्टा की है।

लेखक ने अपने पहले ही निबंध, भावना, बुद्धि और कर्म," में कला के विषय में अपनी विचार धारा प्रकट की है। वह साहित्य के जनरंजनकारी पक्ष को महत्त्व देता है, "कला में मनोरंजन प्रधान है, इसे स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं, और यहां एक प्रश्न मेरे अन्दर उठता है। मैं मनोरंजन को निकृष्ट एवं अनपेक्षित क्यों समझ लूँ?

किन्तु भगवती बाबू ऐसे मनोरंजन के पक्षपाती हैं जो आनंद के स्तर तक उठ सके साथ ही वह यह भी मानते हैं कि "कला का स्रोत भावना में अवश्य है। लेकिन कला अपना रूप ग्रहण करती है बुद्धि की सहायता से। [2]

---

1. भगवती चरण वर्मा : साहित्य की मान्यताएं, पृष्ठ - 6
2. भगवती चरण वर्मा : साहित्य की मान्यताएं, पृष्ठ - 9

अपनी व्यक्तिवादी विचारधारा के अनुसार भगवती बाबू साहित्य को नियमों में बांधे जाने का विरोध करते हैं। "साहित्य का स्रोत" में वे लिखते हैं", कला का स्रोत न भावना में है न बुद्धि में है। यह अंतः प्रेरणा एक रहस्य की भांति हरके मनुष्य के अन्दर स्थित है, इसकी मनुष्य के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण सत्ता है।"[1] साहित्य में विचारों की बौद्धिकता और दर्शन की अधिक घुसपैठ को वर्मा जी उचित नहीं मानते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि साहित्य भावनात्मक होना चाहिए, तथा उसमें किसी निश्चित सामाजिक, राजनैतिक विचारधारा के बजाय लेखक के व्यक्तित्व और उसकी अनुभूतियों की झलक होनी चाहिए। "साहित्य कला को प्राणवान बनाता है कलाकार या साहित्यकार के व्यक्तित्व का कलात्मक और साहित्य में निक्षेप- प्रत्येक प्राणवान और सफल साहित्य में साहित्यकार का व्यक्तित्व मूर्त होता है। व्यक्तित्व साहित्य कार के जीवन का अभिन्न भाग होने के कारण उसके कृतित्व का भी महत्त्वपूर्ण भाग हुआ करता है।"[2]

" साहित्य में शब्द का स्थान" निबन्ध में काफी कुछ नया और गम्भीर कहने की संभावनाएं थीं। विषय अत्यन्त मौलिक है किन्तु कोई गहरी बात लेखक कह नहीं सका है।

शेष निबंध चिंतन- प्रधान न होकर विश्लेषणात्मक है जिनमें साहित्य की विधाओं पर चर्चा है। लेखक ने उपन्यास कहानी, कविता, रेखाचित्र, निबन्ध, शब्दचित्र, नाटक पर अपने विचार रखे हैं। कविता पर लेखक के तीन निबंध हैं- 1. परम्परागत कविता:छायावाद 2. प्रगतिवाद : उपयोगिता अथवा प्रचार 3. प्रयोगवाद अपना नई कविता। लेखक छयावादी कविता का समर्थक है क्योंकि कविता की सभी मान्यताएं इस कविता में विद्यमान हैं-- यानी लेखक के मतानुसार, लय, छंद, अनुप्रास और अलंकार। प्रगतिवाद चूंकि साहित्यकार की व्यक्तिगत भावना को उपज नहीं हैं बरन् एक राजनीतिवाद है तथा भावना के क्षेत्र में यह कविता [illegible] है। अतः लेखक उसे उच्च कोटि की कविता स्वीकार नहीं करता। इस कविता में उसे" [illegible]" दिखलाई पड़ती है।

जहां तक भगवती बाबू की साहित्यिक मान्यताओं की जानकारी प्राप्त करने का प्रश्न है, निश्चय ही यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण है किन्तु साहित्य की विधाओं पर वे स्पष्ट विचार

---

1. साहित्य की मान्यताएं : पृष्ठ - 22 भगवती चरण वर्मा
2. वही - पृष्ठ - 59 वही

नहीं रखे गए हैं। इतना ही नहीं, कहीं- कहीं बड़े अजीब विरोधाभास निबन्धों में दिखला-ई पड़ते हैं। एक ओर लेखक साहित्य को भावनाओं से जुड़ा मानता है वहीं एक स्थान पर वह लिखता है, "एक बहुत बड़ी भ्रांत धारणा लोगों में फैली हुई है कि कलाकार भावना प्रधान प्राणी होता है।"[1]

कहीं-कहीं अर्थहीन जिज्ञासाओं पर चर्चा होने के कारण भी भ्रम पैदा हो गए हैं।

" परम्परागत कविता छायावाद" में लेखक ने एक प्रश्न उठाया है:" क्या छायावाद की कविता में प्रबन्ध काव्य लिखा जा सकता है?" वास्तव में छायावादी काव्य शैली के साथ यह प्रश्न जुड़ा ही नहीं है। प्रबन्ध काव्य अथवा काव्य के किसी भी स्वरूप की रचना का सम्बन्ध कवि की क्षमता से होता है। किसी विशिष्ट काल की रचना शैली से उसका सम्बन्ध जोड़ना उचित नहीं है। छायावादी युग में ही "आँसू" "कामायनी" और तुलसीदास जैसे सशक्त प्रबन्ध काव्यों की रचना इस प्रश्न का उत्तर है। भगवती बाबू की एक अन्य विचित्र मान्यता यह है --- " लम्बी कहानी रोमांस या घटना प्रधान कथ्य कहने में सफल होती है, लम्बीकहानी समस्यामूलक बड़ी ही मुश्किल से बन पाती है।" यहाँ भी भगवती बाबू कहानी के "फार्म" के महत्त्व के प्रति अतिरिक्त जागरूक दिखाई पड़ते है। वस्तुतः कहानी की लम्बाई से उसके कथ्य का कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता है।

यह बात स्पष्ट है कि उत्तरार्द्ध के निबन्ध उलझनपूर्ण हैं। वे न तो चिंतनप्रधान बन सके हैं और न ही आलोचनात्मक । वस्तुतः भगवती बाबू स्वयं भावना प्रधान व्यक्ति हैं अतः इस तरह की विश्लेषणात्मकसाहित्यिकनिबन्धों में यह असंतुलन स्वाभाविक है। सम्पूर्ण संकलन व्यक्तिवादी होते हुए भी सामाजिकता की सीमा को स्वीकार करते हैं।

"साहित्य का क्षेत्र भावना है और साहित्य का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है। सामाजिक रूप से यह लाभ"गुणकी कोटि का होना चाहिए। विकृति असामाजिक है। सामाजिक नियमों की रक्षा मानव की स्वाभाविक या सात्त्विक प्रवृत्ति ही करती है और इस लिए यह मनोरंजन असात्त्विक न होनाचाहिए।

---

1. साहित्य की मान्यतायें :साहित्य का स्रोत। , पृष्ठ - 29 भगवती चरण वर्मा
2. साहित्य की मान्यताएं , पृष्ठ - 38 , भगवती चरण वर्मा

हमारी उलझन :-
-----x-------

इस संकलन के निबन्ध विश्लेषणात्मक न होकर विवेचनात्मक हैं। इन निबंधों में सामाजिक समस्याओं और प्रचलित परम्पराओं पर लेखक के विचार प्राप्त होते हैं। "साहित्य की मान्यताएं" की ही तरह यह संकलन भी भगवती बाबू के विचारों को समझने के लिए अच्छा माध्यम है। भगवती बाबू के साहित्य के पीछे विद्यमान उनके जीवन दर्शन और विचार धाराओं की सभी गुत्थियां इस संकलन को पढ़कर आसानी से सुलझाई जा सकती हैं।

इन निबन्धों से स्पष्ट है कि लेखक की विचारधारा आधुनिक और कहीं-कहीं काफी क्रांतिकारी है। समाज की प्रचलित विचारधाराओं और परम्पराओं से लेखक सहमत नहीं है और कहीं - कहीं तो बिल्कुल असहमत है। " ईश्वर, परिग्रहण दान. श्रेणी भेद, निबन्धों में यह बात देखी जा सकती है। लेखक ईश्वर के सम्बन्ध में प्रचलित मान्यताओं से विरोध प्रदर्शित करता है और इस ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार कर देता है, जो मन्दिरों में बैठकर प्रसाद चढ़वाता है, घंटे बजवाता है। लेखक मानता है कि आस्था और विश्वास आवश्यक हैं क्योंकि उस के बिना जीवन लक्ष्यहीन है। किन्तु द्वैत अद्वैत की उलझनों में न फंसकर वह स्वीकार कर लेता है कि "जीवन की सार्थकता को समझना ही ईश्वर पर विश्वास करना है।" वह मानता है कि जीवन की अच्छाई को ही ईश्वर के रूप में स्वीकारा जा सकता है।

" परिग्रहण और दान" में लेखक की विचारधारा काफी मोक्षक है। दान की प्रचलित हिन्दू मान्यताओं को यह नकारता है। औसत भारतीय बेईमानी से कमाकर "दान" के द्वारा उस पाप से बचना चाहता है जो उसकी समझ से बेईमानी के कारण उसके सिर पर चढ़ जाता है। दान की प्रचलित शैली न केवल बेईमान को आश्वस्त करती है बल्कि दान देने और लेने वाले के बीच अस्वाभाविक रिश्ते को जन्म देती है। लेखक एक दूसरे की सहायता करने को मानव- धर्म मानता है क्योंकि उसके पीछे मानवीय करूणा है, पुण्य करने का घमण्ड नहीं। श्रेणी भेद में वह समाजवाद की प्रचलित मान्यता से भिन्न - सांस्कृतिक संदर्भ, में सबको ही क्लास बनाने के बजाय सभी को पशुता की अवस्था से ऊपर उठाकर मानवता की ओर ले चलने" का आग्रह करता है।

लेखक अपनी व्यक्तिवादी विचारधारा के अनुसार स्वीकार करता है कि मनुष्य की व्यक्तिगत चेतना ही उसे ज्ञान की ओर ले जा सकती है, उधारी का ज्ञान नहीं "विचार-विनिमय" में वह कहता है, दूसरों को देवता मानो, दूसरों को देवतामानना अपने मन्द असमर्थता से करी गुलामी को पालता हैं। "उसके विश्वास को अनुसार किसी से कम नहीं हो, चाहे वह मार्क्स हो, चाहे वह गांधी हो, केवल तुम्हें अपनी बुद्धि विकसित करनी है।" व्यक्तिवादी चेतना से मुक्त होते हुए भी भगवती बाबू व्यक्ति के अहम् को परिष्कृत करने की बात कहते हैं। "अद्भुम का विकास" में वे कहते है" इस समाज का सुख मानवता का सब है। क्योंकि मनुष्य दूसरों से सम्बद्ध जीवित रहता है।" इस बात पर अवश्य दृढ़ हैं कि व्यक्ति का अहम् ही सत्य है और उसे नष्ट नहीं किया जा सकता है व्यक्ति और समाज को एक साथ स्वीकारते हुए वे निष्कर्ष निकालते हैं" अहम् के सत्य में मानवता के रहस्य को भर लें-यही मानवता का विकास है।" भगवती बाबू की व्यक्तिवादी चेतना के संदर्भ में यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कई अन्य व्यक्तिवादी चिंतको की तरह नितांत निरंकुश और असमाजिक विचारधारा उनकी नहीं है।

" दीवाली" हरखू की बरात, होली में लेखक के सामाजिक विचार सामने आए हैं। यह अवश्य है कि व्यक्विादी होते हुए भी लेखक के विचार मानवतावादी हैं। कुछ पाश्चात्त्य व्यक्तिवादी तो निरंकुशता की सीमा तक पहुंच जाते हैं। पर इसके विपरीत भगवती बाबू की आस्था मानव और उसके समाज में है। यह ठीक है कि आज मनुष्य स्वार्थ और बेईमानी से चिपका है और अपनें कृत्यों के समर्थन में उसने पाप-पुण्य की अपनी परिभाषाएं गढ़ ली हैं पर आज का मनुष्य भी गतिमान विकास चक्र की एक कड़ी है अत: उसे इस स्थिति से ऊपर उठना होगा। व्यक्तिवादी लेखक के मानवतावादी विचार"होली" में इन शब्दों में व्यक्त हुए हैं- "और चेतना मुझसे करती है कि आँसुओं के अथाह सागर को अगर एक बूँद भी तुम सुखा सके, आँसुओं के बहुत बड़े अम्बार की एक बूँद भी तुम कमकर सके तो इसका सुख जिन्दगी भर हंसते रहने के सुख से कहीं अधिक है।"

======xxxxxx======

अध्याय- 8

=========

उपसंहार

---x--x--

:- उपसंहार :-

-----x-----

भगवती चरण वर्मा हिंदी के उन विशिष्ट लेखकों में है जिन्होंने अपनी लेखिनी हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं को अर्पित करदी है। सृजन क्षमता, अंतःदृष्टि एवं कलात्मकता के आधार पर उनकी गणना उच्च कोटि के उपन्यासकार कहानी कार एवं कवि के रूप में होती है

भगवती चरण वर्मा की कृतियों को समय की धुंधला नहीं कर सकती यह उनकी अपनी निजी विशेषता है। उनकी दृष्टि नए युग आदर्शों और परिस्थितियों के आकलन की क्षमता बराबर रखती है। समाज के संतुलित दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर वर्माजी ने साहित्य जगत् में प्रवेश किया और सर्वप्रथम कवि रूप में साहित्यागंण में आये तत्पश्चात् उन्होंने अपनी लेखनी से कहानी, उपन्यास, नाटक, रेडियोरूपक, निबंध, संस्मरण आदि को संस्पर्श कर साहित्य-गरिमा मंडित की।

वर्माजी की कविताओं में समाज की वेदना को वाणी मिली है। दीन हीन की आर्थिक समस्याओं को भी वर्माजी जानते थे। शासक शोषित दोनों की भावनाओं का अध्ययन वर्माजी ने अत्यंत निकटता से किया था। आधुनिक जीवन की विषमताओं एवं विड-म्बनाओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सामाजिक समस्याओ में प्रवेश किया।

भगवती बाबू " प्रेम के कवि" नहीं थे फिर भी प्रेमाख्यान से पूर्ण कविताएं भी लिखी हैं जिनमें मानव सुलभ दुर्बलता एवं आसक्ति नहीं है बल्कि मौलिक मनोवृत्ति की अभिव्यंजना से पूर्ण स्वस्थ एवं संतुलित सुन्दरतम् अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर हुई है। वर्मा जी की सब से बड़ी विशेषता यह दिखाई देती है कि उन्होंने सामान्य के स्थान पर विशेष का चित्रण अपनी कविताओं में किया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे जीवन को उसकी समग्रता में देखलेने के उपरांत कलाकार उसके विभिन्न अंगो का निरीक्षण कर रहा हो। काव्य में वर्माजी की दृष्ट समसामयिक परिवेश को खुले रूप में देखते हुए बहुधा सतह को तोड़ कर

यथार्थ की भीतरी परतों तक बढ़पहुँचती है। देश के आर्थिक शोषण पर जैसी कटु उक्तियाँ
हम वर्माजी की कविताओं में दिखाई पड़ती है। वैसी उनके परवर्ती कवियों में नहा दिखाई
देती है। वर्माजी ने काव्य में व्यंग्य विधा को भी अपनाया है और इस व्यंग्यास्त्र के प्रयोग
से उन्होंनें बड़ी कुशलता के साथ धर्म, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था आदि में व्याप्त
विकृतियों का पर्दाफाश किया है। प्रेम की रंगीनी का भी उन्होंने व्यापक अनुभव जनित
काव्य रचनाएं की है। इस संदर्भ में उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ- "मधु कण", "मानव",
प्रेम संगीत तथा रंगो से मोह" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उपन्यास कार के रूप में वर्माजीअधिक विख्यात हैं। भगवती बाबू उपन्यासों में
एक उपदेशक नहीं बल्कि एक समस्या मूलक उपन्यासकार के रूप में प्रस्तुत होते हैं। जहाँ "चित्र
लेखा" में "पाप-पुण्य" की समस्या है"वहीं तीन वर्ष" में आधुनिक जीवन के प्रेम विवाह की
"टेढ़े मेढ़े रास्ते" में मानव जीवन की परिस्थितियाँ ही समस्या बनकर आती है। " सामर्थ्य
और सीमा" एवं "सबहि नचावत राम गुसाईं" में मध्यमवर्ग के जीवन में सामन्तवाद और
पूंजीवाद का कैसा द्वन्द्व चल रहा है। आजादी के पूर्व भारतीयों ने किस प्रकार के दमन
सहे आदि का चित्र उपस्थित किया है। सच्चा साहित्यकारजिस मिट्टी पर जीता है जिस
समाज में रहता है और जिस युग के राजनीतिक परिवेश में उसके व्यक्तित्व का विकास होता
है। उसकी झाँकी उसके साहित्य में सर्वत्र देखी जा सकती है।

वर्तमान युग में सबसे अधिक त्रस्त है बुद्धि जीवी मध्यम वर्ग। चूँकि वर्माजी का मध्य-
वर्गीय साहित्यकार होने के नाते इस वर्ग की समस्याओं कुंठाओं, विकृतियों को प्रगति-
शील दृष्टि से चित्रित करने में वर्माजी सफल उपन्यास कार कहे जा सकते हैं।

कहानीकार के रूप में वर्माजी का चिंतक और विचारक व्यक्तित्व उनकी कहानियों
में मुखरित हुआ है। वर्मा जी ने जीवन और समाज की व्यवस्था के विविध पहलुओं का व्यापक
रूप से चित्रण किया है। वर्मा जी परंपरा विरोधी हैं और उनकी कहानियों में समाज की
मान्यताओं और परम्पाराओं के प्रति विद्रोह का स्वर स्पष्ट रूप से मुखर है। यथार्थवादी
कहानी कार होने के फलस्वरूप उनका दृष्टिकोण व्यंग्य और कटाक्ष से मिश्रित होकरबहुत
ही सुंदर रूप में उभर आयाहै। वह तटस्थ भाव से ऐसा गहरा व्यंग्य कस जाते हैं कि कहानी
का प्रवाह घनी भूत हो जाता है। "खिलते फूल" "इस्तटालमेंट", कहानी संग्रहों में यथार्थ का
सजीव चित्र है तथा कथा के प्रति सहज निर्लिप्तता, कथा कहने का अनासक्त सहज ढंग

और उनसे उभरते हुए ऐतिहासिक सामाजिक सत्य का बड़ा मनोहारी रूप प्रकट होता है।

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी नाटकों की विकसित हुई परंपरा में भगवती चरण वर्मा का योगदान कम नहीं है। इन्होंने अधिक नाटक नहीं लिखे है फिर भी इनके जो नाटक हो उपलब्धहोते हैं। उनमें तीन एकाँकी नाटक है तथा एक नाटक है। "बुझते दीपक" नाट्य संग्रह में संकलित है। इन नाटकों के माध्यम से आधुनिक समाज की अर्थ लिप्सा पर व्यंग्यात्मक कठोर प्रहार किया गया है। ये नाटक गाँधीवाद से प्रभावित हैं। मंचीय दृष्टि से भगवती बाबू के नाटक अत्यंत सफल है।

भगवती बाबू की कलम से निबंध लेखक भी अछूता न रह सका। हिंदी निबंध साहित्य में उनका योगदान अत्यंत महत्व पूर्ण है। उनके निबंधो को दो वर्गों में रखा जा सकता हैं- प्रथम वे, जिन में उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपने मन प्रकट किए हैं। दूसरे वे है, जिनमें उन्होंने समाज की समस्याओं पर विचार किया है। इनदोनों प्रकार के निबंधों में भगवती बाबू ने अपने व्यक्तिवादी विचार धारा का परिचय दिया है। इनमें निबंध चिंतन प्रधान हैं।

कुछ निबंध विश्लेषणात्मक है जिनमें उपन्यास, कहानी, कविता, रेखाचित्र, निबंध, शब्द चित्र, नाटक पर विचार किया गया है। इन निबंधों की भाषा संस्कृत-निष्ठ, परिष्कृत, एवं परिमार्जित है। कहीं-कहीं समास शैली का प्रयोग इनके निबन्धों में देखने को मिलता है। इस प्रकार के निबंध" साहित्य की मान्यताएं" में संग्रहीत हैं।

"हमारी उलझन" संकलन में प्रस्तुत निबंध विश्लेषणात्मक न होकर विवेचनात्मक हैं। वर्माजी की "अतीत के गर्त" नामक कृति संस्मरणात्मक निबंधों से युक्त है जिसकी शैली आत्मकथात्मक है। वर्माजी की सारस्वत यात्रा में पडने वाले मील के पत्थर के रूप में विभिन्न साहित्यकार जैसे गणेशशंकर विद्यार्थी, निराला, गुप्त, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान, जगमोहन "विकसित" पंत, दिनकर, प्रेमचंद आदि हैं, जिन्होने उन्हें प्रेरित कर उच्चकोटिका साहित्यकार बनाया है। इन्हो साहित्यकारों के प्रति भगवती बाबू ने अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है। इन संस्मरणात्मक निबंधो की भाषा काव्यरूपी भाषा (पोइट्रिक प्रोज) है और इन निंबंधो में वे महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों के अधिक निकट दिखाई पड़ते हैं।

आकाशवाणी में वर्माजी कार्यरत रहे हैं। अतः रेडियो नाटक/ रूपक भी उनकी दृष्टि से अस्पृश्य न रह सके है। इस संदर्भ में उनके दो रेडियो रूपक -कर्ण व द्रौपदी अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं।

चित्रलेखा के रूप में वासवदत्ता अत्यंत लोकप्रिय है"वासवदत्ता एवं"
"चित्रलेखा"का फिल्मांकन हुआहै।

अस्तु, भगवतीचरण वर्मा की सम्पूर्ण साहित्य-कला अपने युगीन साहित्यकारों से कुछ भिन्न है हालां कि इन्होंने भी अपने युगीन कवि, लेखकों की भांति सामाजिक जीवन के चित्रण किये हैं फिर भी वे किसी परिपाटी या वाद से बंधे नहीं हैं। इनकी कृतियाँ सर्वथा पृथक् सत्ता रखे हैं वह अपने आप में पूर्ण हैं। वर्माजी प्रगतिवादी नहीं थे फिर भी इनके साहित्य में प्रगतिशीलता स्पष्ट परिलक्षित होती है। कल्पना, रोमांस एवं चमत्कार प्रदर्शन के इन्द्र जाल से विमुक्त हो कर सामाजिक यथार्थ की कठोर भूमि में खड़े होकर वर्माजी ने वास्तिवक अर्थों में अपने युग का प्रतिनिधित्व किया है।

वर्माजी साहित्य को केवल मनोरंजन की सामग्री न समझकर मानव मंगल एवं मानव मन परिष्कार का एक श्रेष्ठतम साधन समझते थे। अत्याचार, अनाचार एवं शोषण के विरुद्ध उनके मन में बड़ी घृणा थी। पर अनाचारी, अत्याचारी व्यक्ति के प्रति उनके मन में कभी मैल नहीं रहा। उन्होंने परिस्थिति को दोष दिया व्यक्ति को नहीं। यही कारण है उनके संपूर्ण कथा साहित्य में बड़े-बड़े जन- शोषक, उत्पीड़क के प्रति भी पाठकों के मन मे घृणाभाव का उदय नहीं होता। यह उनकी स्वस्थ एवं व्यापक मानववादी दृष्टि एवं जीवन, के नए प्रभात की सूचना है। जिनके आधार पर इनके सम्पूर्ण कथा- साहित्य में मानवतावादी जीवनमूल्यों पर कार्य होने की सम्भावना है।

इसके अतिरिक्त भाषा पर असाधारण अधिकार ही वर्माजी की सफलता का रहस्य है। उनकी दो कृतियों को छोड़कर सभी में वह तेजस्विता, सरसता भाव व्यंजकता और मधुरता पाई जोहिंदी साहित्य में एक नवीन उपलब्धि थी। इन्होंने पात्रों की बोलचाल, मनोदशा रहन-सहन इन सबका प्राण प्रतिष्ठित वर्णन पात्रानुकूल भाषाशैली में किया जो वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करता है।

वर्मा जी की कहानियों में कल्पना और इतिहास का जो सुन्दर समन्वय है उसे ध्यान में रखते हुए युगीन कथाकारों एवं वर्माजी के कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन पर भी कार्य हो सकता है। समय की गति के सथ-साथ वर्माजी के संपूर्ण साहित्य की नयी समीक्षा चतुर्दिक प्रकाश फैलाती हुई साहित्यिक मंच पर उदित होगी।

भारतीयता का जैसा व्यापक स्वरूप अपने राष्ट्र की समस्याओं का जैसा गंभीर चित्रण, अपने युग का जैसा सच्चा इतिहास भगवती बाबू के साहित्य में है वैसा अन्यत्र नहीं। वास्तुत: वर्माजी का कथा साहित्य अपने युग की परिस्थितियों एवं उसकी समस्याओं का सच्चा दर्पण है। प्रत्येक दृष्टि से वर्मा जी महान् थे। प्राचीन मान्यताओं के शुष्क प्राणों में नूतन रक्त संचार करने वाले वर्मा जी के साहित्य को कालजयी होने का गौरव प्राप्त है। अपने अनुभवों को साहित्यक व्यंजना प्रदान करके इन्होंने मानवता की ज्योति जलाई है, वह निश्चित रूप से सराहनीय है।

वर्मा जी ने जीवन के अनेक रूपों को मानवीय सहानभूति के साथ पहचाना था और उसका समग्रता से चिंतन करके साहित्यसृष्टि की है। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य जगत् को वर्मा जी का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

======xxxxxx=======

:- पुस्तकानुक्रमणिका :-

उपजीव्य ग्रंथ --

1. भगवती चरण वर्मा : पतन, प्रथम संस्करण 1970, गंगा पुस्तक माला लखनऊ
2. भगवती चरण वर्मा : चित्रलेखा, पच्चीसवां संस्करण 1972, भारती भंडार इलाहाबाद
3. भगवती चरण वर्मा : तीन वर्ष, आठवाँ संस्कारण, संवत् 2025, भारती भंडार इलाहाबाद
4. भगवती चरण वर्मा : टेढ़े मेढ़े रास्ते, षष्ठ संस्करण, सन् 1972, भंडार इलाहाबाद
5. भगवती चरण वर्मा : आखिरी दाँव, चतुर्थ संस्करण, संवत् 2022, भारती भंडार इलाहाबाद
6. भगवती चरण वर्मा : अपने खिलौने, द्वितीय संस्करण, संवत्, 2021, भारती भंडार इलाहाबाद
7. भगवती चरण वर्मा : भूले बिसरे चित्र, पंचम संस्करण सन् 1967 राजकमल दिल्ली
8. भगवती चरण वर्मा : वह फिर नहीं आई, द्वितीय संस्करण सन् 1967 राजकमल दिल्ली
9. भगवती चरण वर्मा : थके पाँव, नवीन संस्करण 1967 पंजाबी पुस्तक भंडार, दिल्ली
10. भगवती चरण वर्मा : सामर्थ्य और सीमा, द्वितीय संस्करण सन् 1965 राजकमल दिल्ली
11. भगवती चरण वर्मा : रेखा, तृतीय संस्करण सन् 1970 राजकमल दिल्ली
12. भगवती चरण वर्मा : सीधी सच्ची बातें, द्वितीय संस्करण 1971 राजकमल दिल्ली
13. भगवती चरण वर्मा : सबहि नचावत राम गोसाईं, द्वितीय संस्करण सन् 1971 राजकमल दिल्ली
14. भगवती चरण वर्मा : प्रश्न और मरीचिका, प्रथम संस्करण सन् 1973 राज कमल दिल्ली

:- भगवती चरण वर्मा : साहित्य के सिद्धान्त और रूप

:- भगवती चरण वर्मा : त्रिपथगा

15. भगवती चरण वर्मा : मधुकरण
16. भगवती चरणवर्मा : प्रेम संगीत
17. भगवती चरण वर्मा : मानव
18. भगवती चरण वर्मा : रंगों से मोह
19. भगवती चरण वर्मा : मेरी कवितायें
20. भगवती चरण वर्मा : सविनय और एक साराज कविता
21. भगवती चरण वर्मा : हमारी उलझन । निबंध संग्रह ।
22. भगवती चरण वर्मा : साहित्य की मान्यताएँ

23. भगवती चरण वर्मा : सबसे बड़ा आदमी ‖ एकांकी नाटक‖
24. भगवती चरण मां : दो कलाकार ‖एकांकी नाटक ‖
25. भगवती चरण वर्मा : चौपाल ‖एकांकी‖
26. भगवती चरण वर्मा : बुझता दीपक ‖एकांकी‖
27. भगवती चरण वर्मा : कर्ण ‖रेडियो रूपक
28. भगवती चरण वर्मा : द्रोपदी ‖ रेडियो रूपक
29. भगवती चरण वर्मा : महाकाल ‖ रेडियो रूपक
30. भगवती चरण वर्मा : दो बाँके ‖कहानी संग्रह
31. भगवती चरण वर्मा : इंस्टालमेंट ‖कहानी संग्रह‖
32. भगवती चरण वर्मा : अतीत के गर्त से/ संस्करण

:- सहायक ग्रंथ :-
----x----

हिन्दी----

1. अमृत राय : नयी समीक्षा
2. अमृत राय: सह चिंतन, साहित्यकार की आस्था
3. डॉ० आलोक कुमार सिंह : भगवती चरण वर्मा- व्यक्तित्व एवं कृतित्व
4. डॉ० कुसुम वार्ष्णेय : चित्रलेखा से सबहि नाचावत राम गुसाईं
5. डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन
6. डॉ० नामबर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ
7. डॉ० प्रताप नारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास
8. डॉ० ब्रजनारायण सिंह : उपन्यास कार भगवती चरण वर्मा
9. डॉ० श्रीमती बीणा गुप्ता : भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन
10. महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि
11. डॉ० रघुनाथ दयाल वार्ष्णेय : भगवती चरण वर्मा और उनकी चित्रलेखा
12. डॉ० सरनाम सिंह शर्मा : साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा
13. डॉ० शांति स्वरूप गुप्ता : हिन्दी उपन्यास - महाकाव्य के स्वर
14. शिवदान सिंह चौहान : साहित्य की समस्यायें
15. डॉ० श्रीमती सावित्री शर्मा : भगवती चरण वर्मा के उपन्यास : उपलब्धि और सीमायें

16. डॉ. त्रिभुवन सिंह : हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद

17. डॉ. शिवकुमार शर्मा हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ

18. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य की भूमिका

19. आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि : भोलानाथ

20. हिंदी कविता में युगांतर : डॉ. सुधीन्द्र

21. हिंदी उपन्यास : डॉ. सुषमा धवन

22. डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास एक अंर्तयात्रा

23. डॉ. लक्ष्मी कांत सिन्हा : हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास

24. डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : हिंदी उपन्यास- उपलब्धियाँ

25. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : आज का हिंदी उपन्यास

26. डॉ. देवराज उपाध्याय : कथा के तत्त्व

27. डॉ. नंददुलारे बाजपेई : नया साहित्य नए प्रश्न

संस्कृत
------

1. शब्द कल्पद्रुम - राधाकांत देव ठाकुर

2. नाट्य शास्त्र - डॉ. सत्य व्रत सिंह

3. दशरूपक - धनन्जय

English Books

1. Ralp fox -- Novel and the people.

2. E.M. Froster -- Aspects of the Novel.

पत्र - पत्रिकाएं :-
---x-----x---

1. कल्याण, हिंदू संस्कृति विशेषांक जनवरी ' 50 गीता प्रेस गोरखपुर

2. साहित्य परिचय , आगरा फरवरी 1971

3. साप्ताहिक भारत 25 मई 1960

4. साप्ताहिक हिन्दुस्तान , 15 दिसम्बर 1963

5. सारिका , जनवरी 1962

6. हंस - प्रेमचंद

7. विशाल भारत - शिवदान सिंह चौहान

शब्द कोश :-

1. नालंदा विशाल शब्द सागर

2. हिंदी विश्वकोश : संपादक नगेन्द्र बसु

3. हिन्दी साहित्य कोश : संपादक - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा

4. भाषा शब्द कोष : -- डॉ. रमा शंकर शुक्ल "रसाल"

समाचार पत्र संदर्भ :-

रविवासरीय संस्करण{ आजकल, दैनिक जागरण, दैनिक आज, दैनिक अमर उजाला

धर्म युग, सारिका, नवनीत, कादम्बिनी आदि।